Paper Code: MD – 02

Writing for Mass Media

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

एम.जे.एम.सी. 1
जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन
(Writing for Media)

MD-02



पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन 1

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम. जे. एम. सी. - 1

जनसंचार माध्यमों के
लिए लेखन

पत्रकारिता एवं जनसंचार
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन - 1

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

- **डॉ. राधावल्लभ व्यास**
  कुलपति
  कोटा खुला विश्वविद्यालय
  कोटा (अध्यक्ष समिति)
- **डॉ. ए. डबल्यू. खान**
  कुलपति
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
  नई दिल्ली
- **राधेश्याम शर्मा**
  पूर्व-महानिदेशक
  माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
  विश्वविद्यालय, भोपाल(म. प्र.)
- **डॉ. ओ.पी. केजरीवाल**
  महानिदेशक, महानिदेशालय आकाशवाणी
  नई दिल्ली
- **प्रो. ए.के. बनर्जी**
  पूर्व-अध्यक्ष
  पत्रकारिता विभाग
  बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
  वाराणसी
- **प्रो. जे.एस. यादव**
  निदेशक
  भारतीय जनसंचार संस्थान
  नई दिल्ली
- **डॉ. भंवर सुराणा**
  ब्यूरो चीफ/ विशेष संवाददाता
  दैनिक हिंदुस्तान
  जयपुर
- **डॉ. रमेश जैन**
  अध्यक्ष-जनसंचार विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक

डॉ. रमेश जैन- अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ-संपादक एवं भाषा-संपादक

पाठ-संपादक	भाषा-संपादक
जितेन्द्र गुप्ता	**डॉ. विष्णु पंकज**
वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक	वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार
नई दिल्ली	जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.)एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(अकादमिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन - अप्रैल 2012

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित ।

एम. जे. एम. सी. -1

जनसंचार -माध्यमों के लिए लेखन

पाठ्यक्रम - प्रथम
खण्ड (1)

1

इकाई 1 लेखन के मूल तत्व	8–20
इकाई 2 फीचर-लेखन	21–40
इकाई 3 टेलीविजन के लिए फीचर-लेखन	41–47
इकाई 4 टेलीविजन के लिए लेखन	48–59
इकाई 5 टेलीविजन - संवाददाता	60–69

पाठ लेखक

1. डॉ.विजय कुलश्रेष्ठ
सहआचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

2. श्याम माथुर
उप संपादक
राजस्थान पत्रिका
जयपुर

3. डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार
जयपुर

4. रामकुमार
पत्रकार, लेखक
कोटा

5. हमीदुल्ला
हिन्दी नाटककार
जयपुर

6. डॉ. रीतारानी पालीवाल
रीडर, हिन्दी विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

7. डॉ. सुरेन्द्र विक्रम
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग
क्रिश्चियन डिग्री कॉलेज, लखनऊ(उ.प्र.)

8. डॉ. राधामोहन श्रीवास्तव
अध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग
बड़हलगंज, गोरखपुर(उत्तर प्रदेश)

9. डॉ. कैलाश पपने
विशेष संवाददाता
दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली

10. सुभाष सेतिया
संपादक 'आजकल'
प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
पटियाला हाउस, नई दिल्ली

11. डॉ.लक्ष्मीकांत दाधीच
प्राध्यापक, वनस्पति शास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय कोटा

12. दीनानाथ दुबे
पत्रकार, लेखक
कोटा

13. राधेश्याम तिवारी
जनसंचारकर्मी एवं लेखक
जयपुर

14. श्रीमती सुषमा जगमोहन
संध्या टाइम्स
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

15. सत सोनी
संपादक- संध्या टाइम्स
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

16. डॉ. रमेश जैन
अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

17. डॉ. हेमन्त जोशी
प्राध्यापक- पत्रकारिता विभाग
भारतीय जनसंचार संस्थान
नई दिल्ली

18. रामेश्वर मिश्र
वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक
नई दिल्ली

19. डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ
रीडर-हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

20. जयदेव शर्मा
प्रभारी- दैनिक नवज्योति
कोटा

खंड एवं इकाई परिचय

'जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन' खंड (1) में आपको पांच इकाई से परिचय कराया जा रहा हैं। ये हैं -1 लेखन के मूल तत्व, 2. फीचर लेखन, 3. टेलीविजन के लिए फीचर-लेखन, 4. टेलीविजन के लिए लेखन, 5. टेलीविजन संवाददाता।

इकाई 1. 'लेखन के मूल तत्व' की हैं। इसमें लेखन का प्रारम्भ, लेखन का महत्व, लेखन के प्रकार, लेखन के मूल तत्व, लेखन कौशल का विकास तथा लेखन में सावधानियां आदि बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया हैं। प्रस्तुत इकाई आपको लेखन की संभावनाओं से परिचित कराएगी। इससे आप एक कुशल लेखक बन सकेंगे।

इकाई 2. 'फीचर लेखन की हैं। इसमें फीचर क्या हैं फीचर की विशेषताएं, फीचर के मूल स्वरूप, फीचर-लेखन, विभिन्न विधाओं से तुलना, फीचर के विषय आदि पर प्रकाश डाला गया हैं। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप एक कुशल फीचर-लेखक बन सकेंगे। आप विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए अच्छी तरह फीचर लिख पाएंगे।

इकाई 3. 'टेलीविजन के लिए फीचर लेखन' से सम्बंद्ध हैं। इसमें टेलीविजन फीचर अवधारणा एवं स्वरूप, फीचर का उद्देश्य, फीचर के स्रोत, फीचर के तत्व, ध्वनि एवं छायांकन, चित्र रूपक आदि बिन्दुओं पर यथेष्ट जानकारी दी गई हैं। इसका अध्ययन करने के बाद आप टेलीविजन के लिए फीचर-लेखन अच्छी तरह लिख सकेंगे।

इकाई 4. 'टेलीविजन के लिए लेखन' की हैं इस इकाई में टेलीविजन के लिए कैसे लिखा जाए आदि पर व्यापक चर्चा की गई हैं। टेलीविजन के लिए लेखन, तकनीकी की जानकारी, लेखक, निर्देशक और फिल्मी भाषा पर सम्पूर्ण जानकारी दी गई हैं।

इकाई 5. 'टेलीविजन-सावंददाता' की हैं प्रस्तुत इकाई में टेलीविजन संवाददाता पर व्यापक प्रकाश डाला गया हैं। इसमें टेलीविजन- संवाददाता की परिभाषा, मुद्रित, माध्यम, प्रसारण, माध्यम, टेलीविजन- संवाददाता की भूमिका, संवाददाता की विशेषताएं, बाह्य पहलू, आंतरिक पहलू, दायित्व बोध, प्रबन्धन क्षमता, तकनीकी कुशलता, टीम भावना, निष्पक्षता, व्यवहारिक कार्य, समाचार-लेखन, भेंटवार्ता / साउंड लाइट, पीस ट् कैमरा आदि तथ्यों पर यथेष्ट जानकारी दी गई हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप एक कुशल टेलीविजन-संवाददाता बन सकेंगे। आजकल टेलीविजन- संवाददाता की अधिक मांग हैं और इस क्षेत्र में रोजगार की व्यापक संभावनाएं हैं

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन में आपको अन्य खंडो में जनसंचार के विभिन्न माध्यमों के लिए कैसा लिखा जाए इस संदर्भ में विशेष परिचय कराया जाएगा।

इकाई 1 लेखन के मूल तत्व

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 लेखन का प्रारंभ

1.3 लेखन का महत्व

1.4 लेखन के प्रकार

1.5 लेखन के मूल-तत्व

- 1.5.1 विषय या विचार
- 1.5.2 लेखन का स्वरूप
- 1.5.3 लेखन का ढांचा या प्रस्तुति
- 1.5.4 लेखन की शैली
- 1.5.5 आत्मिक स्पर्श

1.6 लेखन-कौशल का विकास

- 1.6.1 अध्ययनशीलता
- 1.6.2 सूक्ष्म-निरीक्षण का प्रयास
- 1.6.3 अनुभवों पर आधारित
- 1.6.4 कल्पनाशीलता
- 1.6.5 प्रारूप या रूपरेखा

1.7 लेखन में सावधानियां

1.8 मूल्यांकन

1.9 सारांश

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 उद्देश्य

लेखन एक कला है। मनुष्य के भीतर विचारों, भावों एवं संवेदनाओं की विविध प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती है जिन्हें अभिव्यक्ति देना या लिखना, उसकी एक जन्मजात प्रवृत्ति है। यह एक प्रकार की सृजन-प्रक्रिया है। इस सृजन प्रक्रिया को संपन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि इसके मूल तत्वों की गहरी समझ हो और यथाआवश्यक अभ्यास भी हो । इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप

- लेखन का महत्व और उसके प्रकारों के बारे में जान जाएंगे।
- सृजनात्मक लेखन एवं सूचनात्मक लेखन का अंतर समझ जाएंगे।
- विषय के अनुरूप लेखन का महत्व पहचानने लगेंगे।
- अनुभव और लेखन के अंतरंग संबंध को समझ जाएंगे।
- शैली और भाषा का महत्व जान जाएंगे।

- एक लेखक के आवश्यक गुणों के जानकार हो जाएंगे।

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहते हुए वह जानी या अनजानी वस्तुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। उसकी प्रवृत्ति सदैव जिज्ञासु रही है। इसके साथ ही यह भी मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है कि वह अपनी बात या अपने अनुभव दूसरों के साथ बांटे। उसके मन में जो बात है, उसे वह अभिव्यक्ति देना चाहता है। यह अभिव्यक्ति संकेतों, रेखाओं, शब्दों, चित्रों, लेखन, नाटक, नृत्य, संगीत आदि विभिन्न माध्यमों से की जा सकती है। कोई भी सूचना, विचार, प्रवृत्ति या अनुभव इस प्रकार संप्रेषित करने की मानव-प्रवृत्ति ही लेखन की विधा का आधार है।

सूचनाओं, अनुभवों, विचारों, सुख-दुख की भावनाओं के आदान-प्रदान की प्रक्रिया अनादिकाल से चली आ रही है। प्रागैतिहासिक काल में भी मनुष्य एक दूसरे से हाथों के द्वारा संकेतों या चेहरे के भावों से अपनी बात को प्रकट करने का प्रयास करता था। आपस में संवाद की यह प्रक्रिया संकेतों के साथ ध्वनि के माध्यम से भी प्रकट की जाती थी। लेकिन अभिव्यक्ति या संप्रेषण की यह प्रक्रिया अत्यधिक कठिन और अस्पष्ट थी। इस प्रक्रिया की अनेक सीमाएं थीं। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने एक दूसरे को अपनी बात समझाने और स्वयं दूसरों की बात समझने की दिशा में जिस कला का विकास किया और इस प्रक्रिया ने जिस महत्वपूर्ण विधा को जन्म दिया, वह थी-लेखन की कला।

1.2 लेखन का प्रारंभ

नदी, घाटियों और घने जंगलों के बीच उन भयावह स्थितियों की कल्पना की जा सकती हैं जिनमें शैलाश्रयों या नदीं किनारों पर बने शैलाश्रयों के बीच मनुष्य वन्य जीवों से अपनी रक्षा करता था। शैलाश्रयों और शैलाखंडो पर हजारों साल पहले अर्थात् प्रागैतिहासिक काल में अंकित रेखाचित्र, आकृतियां और रूपांकन ऐसे दस्तावेज हैं जो मनुष्य की अपने को अभिव्यक्ति करने और मन की गहरी परतों को खोलकर अपने भावों और विचारों को विभिन्न आकृतियों, प्रतीकों आदि के माध्यम से व्यक्त करने की उसकी आदिम प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। भावों को या विचारों को अंकित कर देने की इस प्रवृत्ति से ध्वनि या प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति को दिशा मिली । धीरे-धीरे ये प्रतीकात्मक रेखाएं "अक्षरों" और फिर लिपि के रूप मे विकसित हुई। इस प्रकार दृश्य-रूप में अंकित प्रतीकों, रेखाओं और रूपांकनों से आदि-मानव द्वारा अंधेरी गुफाओं मे, पाषाणों पर प्रारंभ की लेखन-यात्रा। यह भी कह सकते हैं कि मनुष्यों के बीच दृश्य-संकेतों और प्रतीकों से संप्रेषण की जो प्रणाली प्रारंभ हुई, उसमें निहित है -लेखन कला के विकास का पहला बीज।

इस प्रकार सबसे पहले शब्दों के चिह्न बने जो उचरित ध्वनि नहीं बल्कि सीधे पदार्थ का बोध कराते थे। पदार्थ का अर्थ है- संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि का बोध कराने वाला पद या शब्द। ये चिह्न लिपि-चिह्न या "आइडियोग्राफ" कहलाते हैं। इस प्रकार पदार्थ का बोध कराने वाले चिह्नों से मिस, बेबिलोन, चीन आदि देशों में लिपियां विकसित हुई। भारत में भी ऐसा हुआ होगा लेकिन चीन और जापान में तो इस प्रकार की लिपियों के विकसित रूप आज भी विद्यमान हैं । शब्द की रचना को किसी चिह्न के माध्यम से प्रकट करना संभव होने के बाद यह कठिनाई पैदा हुई कि शब्द की अनेक ध्वनियों

को किस प्रकार व्यक्त किया जाए। अत: एक ध्वनि या वर्ण के लिए एक प्रकार का चिह्न बनाने का यत्न हुआ। यों धीरे-धीरे मनुष्य ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए रास्ते खोजे ओर इस संपूर्ण खोज-प्रक्रिया से उत्पन्न हुई लेखन की विधा।

मिस और मेसोपोटामिया में छह हजार साल पहले मिट्टी के टुकड़ों पर लेखन के प्रयत्न प्रारंभ हुए जिनमें समय के साथ सुधार होता गया। शिलाओं पर लिखना प्रारंभ हुआ। लिखने का अर्थ था-खोदना। बाद में पत्थरों पर अक्षर उभारे जाने लगे जो उत्कीर्ण-लेख कहलाते हैं। फिर तलाश हुई सुवाह्य (पोर्टेबल) साधनों की। तब मिला पत्र या पत्ता। पंखों या डंडियों (कलम) का लेखन के लिए प्रयोग होने लगा। ताड़ पत्र या भोज पत्र पर गोल लिखाई शुरू, हुई ताकि पत्ता कटे नहीं। इस विकास यात्रा के अंत में आदमी कागज और स्याही तक पहुंचा। साथ ही लेखन के द्वारा ज्ञान को एक पीढ़ी-से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने का कार्य भी सरल हो गया। मानव इतिहास में जितनी भी खोजें हुई उनमें लेखन की खोज और इसके विकास का कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे मनुष्य के लिए अपनी स्वयं की क्षमताओं और ज्ञान को संचित करना संभव हुआ। मनुष्य को अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन भी प्राप्त हुआ। लेखन के द्वारा सदियों की सच्चाइयां और ज्ञान के अथाह भंडार से सतत् प्रवाहित स्रोत मानव जाति की धरोहर बन गया। अज्ञान का अंधेरा छंटने लगा ।

1.3 लेखन का महत्व

लेखन की विधा ने ज्ञान के भंडारण को संभव बना दिया और मनुष्य की जिज्ञासा-पूर्ति के हारा खोल दिए। ज्ञान-विज्ञान की प्रगति का स्रोत बन गया-मनुष्य द्वारा रचित ज्ञान-भंडार। इसके अलावा मनुष्य की अपने को अभिव्यक्ति करने की आदिम प्रवृत्ति को सहज मार्ग मिल गया। लेखन का विकास ही एक प्रकार से मनुष्य की प्रगति और सभ्यता-संस्कृति की प्रगति का आधार है। लेखन का महत्व मनोवैज्ञानिक और सौंदर्य बोध की दृष्टि से भी कम नहीं है क्योंकि मनुष्य के भावात्मक एवं वैचारिक धरातल पर क्रिया-प्रतिक्रिया या संवेदनाओं की जो लहरें उत्पन्न होती हैं, उन्हें अभिव्यक्ति देने और विचारों तथा भावों को प्रकट कर देने की उसकी प्रवृत्ति उसी प्रकार एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जिस प्रकार मां में अपने बच्चे को जन्म देने की प्रवृत्ति है या बीज के मिट्टी में डालने के बाद खाद-पानी-ऊर्जा मिलने पर उसके अंकुर निकलने की प्रक्रिया है। प्राणी मात्र अपनी संवेदना या आवेगों को अभिव्यक्त करता है। श्रावण माह में जब चारों ओर हरियाली छा जाती है तो मोर पंख फैलाकर नाचने लगता है और अपनी प्रसन्नता के आवेग को मुखर अभिव्यक्ति देने लगता है। इसी प्रकार सुख-दुख या अन्य प्रकार के विचारों और भावों को लेखन के द्वारा अभिव्यक्ति देकर संवेदनशील मनुष्य एक राहत या संतोष की अनुभव करता है। अर्जित ज्ञान और अनुभवों का लिखित संप्रेषण भी उसे आत्मविभोर करता है। इसलिए लेखन एक प्रकार की विवशता है जो मनुष्य को लिखने के लिए बाध्य करती है। वह अपनी बात लिखकर अपने को मुक्त अनुभव करता है।

लेखन के द्वारा मनुष्य अपने विचारों, अनुभवों और ज्ञान को समाज के साथ बाटता है। समाज के एक अंग के रूप में मनुष्य और समाज के रिश्ते को प्रगाढ़ करने का कार्य भी लेखन से संपन्न होता है। इन्हीं कारणों से साहित्य की रचना होती है और लेखन की विधा आज भी इलेक्ट्रानिक माध्यमों की होड़ में भी टिकी हुई है।

1.4 लेखन के प्रकार

लेखन की प्रक्रिया का क्षेत्र व्यापक है और इसके विविध आयाम और प्रकार हैं। लेखन मात्र सूचनात्मक, विवरणात्मक और सतही चीजों की अभिव्यक्ति तक भी सीमित हो सकता है। तथ्यपरक या विश्लेषणात्मक लेखन की भी एक श्रेणी होती है। साहित्य की दृष्टि से गद्य, पद्य नाटक आदि वर्गो में भी लेखन को बांटना संभव है। मोटे तौर पर लेखन को सृजनात्मक और असृजनात्मक, इन दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। परन्तु यहां यह भी ध्यान मै रखना चाहिए कि कोई भी लेखन पूर्णरूपेण सृजनात्मक या असृजनात्मक नहीं हो सकता है। जहां सृजनात्मक या रचनात्मकता का अधिक पुट हो, उसे हम सृजनात्मक लेखन की श्रेणी में रख सकते हैं और जहां तथ्य या विश्लेषण अधिक हो, उसे असृजनात्मक लेखन कह सकते हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि सूचना प्रधान लेखन या रूखी, विचारहीन, कल्पना रहित अभिव्यक्ति ही होती है।

सृजनात्मक लेखन के अंतर्गत भाव प्रवण, संवेदनशील, ललित भाषा और कल्पना से युक्त साहित्यक लेखन को ले सकते हैं। इस प्रकार के लेखन का उद्देश्य मात्र सूचना देना नहीं होता बल्कि किसी अदृश्य भाव या विचार अनुभूति को प्रकट करना होता है। लेखन की रचनात्मकता के सन्दर्भ में मनन, चिंतन या दृश्य-जगत के बारे में या अमूर्त विचारों जैसे प्रेम, देवत्व आदि विभिन्न पहलुओं को लेकर लेखन किया जाता है। सामाजिक स्थितियों, जीवन के विभिन्न पक्षों आदि पर कल्पनाशीलता के साथ जो मौलिक लेखन परंपरा है, उसे विशेष रूप से सृजनात्मक लेखन माना जाता है। इसमें कथा, कहानी, ललित निबंध, उपन्यास आदि शामिल है। जीवन के प्रति व्यक्ति का निजी सोच और दृष्टि ऐसे लेखन में प्रमुख होती है। भाषा और शैली का लालित्य भी साहित्य लेखन का सहज स्वाभाविक अंग है। सृजनात्मक लेखन का लक्ष्य, मनुष्य को उसके अंतर्मन की अभिव्यक्ति की अनुभूति देने, उसे उत्तम और अच्छा बनाने की दिशा लिए होता है।

असृजनात्मक लेखन में विचारों और तथ्यों के लेखन का वह दायरा शामिल होता है जहां सृजनात्मक रूप में मनुष्य के ज्ञान का विस्तार हो। इतिहास, भूगोल, विज्ञान, पुरातत्व आदि को इस प्रकार के लेखन में समिलित कर सकते हैं। ऐसे लेखन में तर्क या विश्लेषण के द्वारा निश्चित विधि से किसी विषय का विवेचन किया जाता है। यहां भी लेखन में गति और कौशल का होना आवश्यक है।

कुल मिलाकर लेखन को पूर्णत: अलग-अलग वर्गों में विभाजित करना संभव नहीं है क्योंकि यह एक ऐसी विधा है जिसका फैलाव बहु त अधिक है। सूचना प्रधान लेखन में लेखक की विशिष्ट अभिरुचि और अनुभवाश्रित शैली के कारण सृजनात्मक लेखन की छाप नजर आने लगती है। सुविधा के लिए और समझने के लिए लेखन को विभिन्न प्रकार के वर्गो या श्रेणियों में बांटा जाता है। सूचनात्मक लेखन का उदाहरण प्रस्तुत है जिससे किसी स्थान या प्रदेश की स्थिती का ज्ञान होता है। यहां कल्पना या रचनात्मकता की बजाय तथ्य प्रस्तुत किए गये हैं -

"भारत की मुख्य भूमि के दक्षिण पश्चिम कोने पर स्थित छोटे-से राज्य केरल में प्राकृतिक सौंदर्य का अद्भुत खजाना है। 38,663 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले इस प्रदेश को तीन भागों-उच्च भूमि, मध्य भूमि और निचली भूमि में बांटा जा सकता है। इस छोटे से प्रदेश की जनसंख्या 1981 की जनगणना के अनुसार 2 करोड़ 84 लाख 680 है। आबादी के घनत्व के हिसाब से यह 655 बैठता

है अर्थात् प्रत्येक किलोमीटर पर सर्वाधिक लोग, इतनी आबादी के बावजूद यह प्रदेश धरती पर स्वर्ग-सा लगता है तो सिर्फ इसलिए कि प्रकृति ने यहां खुले हाथों से सुन्दरता लुटाई है।'

इस प्रकार के विवरणात्मक लेखन में भी प्रवाह, गति और संयम का पुट आवश्यक है। इससे हटकर सृजनात्मक लेखन में बात पर कल्पना के पंख लग जाते हैं। केरल की भौगोलिक स्थिति के बारे में प्रस्तुत उदाहरण से भिन्न यहां अंडमान के बारे में कुछ पंक्तियां लेखन में सृजनात्मकता का परिचय देने वाली हैं

"बहर अगर बहर न होता तो बयाबान होता।"

गालिब की यह अति यथार्थवादी ढंग की कल्पना अंडमान में एक खास तरह से याद आती है जैसे हम एक साथ बहर यानी समुद्र और बयाबान में पहुंचगए हों। गंभीर, अनंत नीला समुद्र और बीच-बीच मे उभरे खूब हरे बियाबान द्वीप. समुद्र पहले अभिभूत करता है और फिर चुप कर देता है।...समुद्र मन में वैसी उत्सुकता नहीं जगाता जैसी कि पहाड़ जगाते हैं। पहाड़ ऊंचाई का और शायद उनके सामने हमारे बौनेपन का भी एहसास देते हैं और साथ ही कुछ और आगे जाकर कुछ और जिज्ञासा भी जगाते हैं, परंतु समुद्र अपनी विशालता और निर्जनता के आगे हमें लाचार-सा कर देता है। शायद समुद्र भी एक तरह का बियाबान है. पानी का बीहड़, निर्जन नंगा-विस्तार (मंगलेश डबराल)

बोध प्रश्न - 1

1. लेखन का प्रयोजन बताइए।
2. सृजनात्मक लेखन किसे कहते हैं? सोदाहरण बताइए।
3. लेखन के महत्व पर प्रकाश डालें1

1.5 लेखन के मूल तत्व

अभिव्यक्ति के रूप में लेखन एक जीवन्त विधा है। अंतर्मन या भावना के तरल धरातल पर उत्पन्न विचारों और संवेगों को शब्दों में पारदर्शी ढंग से ढाल देना और अभिव्यक्ति के स्तर पर विचारों और भावों को सजीव प्रस्तुति देना ही प्रभावपूर्ण और ठोस लेखन का सबूत है। विचारों और भावों को मात्र शब्दों का जामा पहना देना ही लेखन नहीं है। लेखन की सफलता की कसौटी यह है कि उसमें लेख की आत्मा की अनुभूतियां धुलती-मिली और रची-बसी हो। पाक को लगे कि जो कुछ वह पढ़ रहा है, उसके भीतर भी कहीं वैसा ही एहसास जीवंत हो रहा है। इस दृष्टि से लेखन कहीं शून्य में घटित नहीं होता। मनुष्य शरीर की तरह उसका एक ढांचा होता है। लेखन किसी घटना, विषय या विचार से संबंध रखता है। इस प्रकार लेखन का कोई बिन्दु या विषय आवश्यक है। विषय और ढांचे के अलावा उसका एक रूप-रंग या स्वरूप भी होता है। लेखन की जीवंतता का भाव तभी हो सकता है जब उसके भीतर एक आत्मिक स्पर्श हो। इस प्रकार, एक विषय- स्वरूप, ढांचे के अलावा लेखन की कोई शैली होनी चाहिए । मनुष्य का शरीर जिस प्रकार पाँच तत्वों से बना होता है, उसी प्रकार लेखन को गतिमय, प्रवाहमय एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उसमें पांच तत्वों की प्रमुखता होनी चाहिए।

1.5.1 विषय या विचार

लेखन में विषय या विचार का मूल अनुभव पर आधारित रहता है। ज्ञानेंद्रियों की सहायता से अपने आसपास का अवलोकन करके मनुष्य जीवन में अनुभव प्राप्त करता है। दृश्य और अदृश्य रूप

से जीवन के सुख-दुख की घटनाएं, विविध स्थितियां आदि मानव मन पर निरंतर अंकित होती रहती हैं और उसके भीतर क्रिया-प्रतिक्रिया की एक निरंतर चलने वाली धारा उसे आंदोलित करती रहती है। इस प्रकार अनुभव की एक सतत क्रिया के दारा मनुष्य की भावना या विचारों पर प्रभाव पड़ता है और उसके भीतर बहुत कुछ संगृहीत हो जाता है।

मनुष्य को बाहरी संसार की घटनाएं एवं स्थितियां विचार करने, चिंतन करने और मंथन करने के लिए उसे निरंतर प्रेरित करती हैं। इस बाह्य एवं भीतरी संसार के यथार्थ का वह अपने लेखन में ताना-बाना बुनता है। विषय या विचारों की कोई सीमा नहीं है। लेखन के लिए हजारों और अदृश्य चीजें, घटनाएं, परिस्थितियां या मानव मन में निरंतर हलचल पैदा करने वाले विचार या भावनाएं लेखन का विषय बन सकती है। लेकिन यहां यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि किसी भी विषय पर लिखने का लक्ष्य क्या है? कोई बात अभिव्यक्त करके मनुष्य अपने को संतुष्ट करना चाहता है या वह अन्य लोगों तक अपनी बात पहुंचाकर अपने भावों एवं विचारों को समाज के साथ बांटना चाहता है। यह भी हो सकता है कि ज्ञान की दृष्टि से जिस विषय को छूने का प्रयास किया गया है, वह मानव मात्र के लिए सूचनात्मक, शैक्षणिक, मनोरंजक या कल्याणकारी हो। लेखन कोई निरुद्देश्य संपन्न की जाने वाली क्रिया नहीं है। उसे सोद्देश्य, प्रभावी और सार्थक होना चाहिए।

1.5.2 लेखन का स्वरूप

बाह्य संसार पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा कि हर वस्तु की अपनी प्रकृति, स्वभाव और रंग-रूप है। इस प्रकार लेखन के भी विविध रंग-रूप या एक स्वरूप (फॉर्म) होता है। लेखन की अनेक विधाएं और रूप हैं। कोई भी व्यक्ति किसी भी विषय पर कविता, गीत, कहानी, नाटक, निबंध, उपन्यास आदि लिख सकता है। लेखन के विषय और किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लेखन किया जा रहा है, इन दो प्रश्नों के उत्तर में लेखन का स्वरूप तय होता है। यदि फलक या कैनवास छोटा है और कुछ ही पात्रों को लेकर जीवन की किसी घटना या कथा को लिखना है तो वह कहानी का रूप होगा और कथा का फलक विस्तृत है तो वह उपन्यास के दायरे में समेटी जा सकेगी।

लेखन के विभिन्न तत्व आपस में एक-दूसरे से गहरा सम्बन्ध रखते हैं । यदि किसी विचार भाव या विषय पर कविता लिखी जाती है तो उसी के अनुरूप शैली, भाषा, स्वरूप, ढांचा तय होगा।

1.5.8 लेखन का ढांचा या प्रस्तुति

जिस प्रकार किसी इमारत का ढांचा तैयार करने के लिए एक नक्शा तैयार किया जाता है और उस नक्शे को बनाते समय उस स्थान की सीमा या क्षेत्रफल (स्पेस) को ध्यान में रखना पड़ता है और इमारत के ढांचे के लिए आवश्यक सामग्री जुटानी पड़ती है, ठीक उसी तरह, लेखन के लिए यह आवश्यक है कि चुने गए विषय के अनुरूप तथ्य या जानकारी एकत्रित की जाए। इस प्रकार एकत्रित सामग्री को सिलसिलेवार संयोजित करने के बाद लेखन की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए।

लेखन में आवश्यक गुणों का समावेश करने, उसे ग्राह्य एव प्रभावपूर्ण बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे एक व्यवस्थित आकार दिया जाए। उसकी कोई व्यवस्थित प्रस्तुति हो। आमतौर से, प्रारंभ, मध्य और अंत, इन तीन भागों में किसी भी लेखन को विभाजित करने या तीन स्तंभों पर अवस्थित करने का प्रचलन है। किसी भी कृति को यों तीन भागों में प्रस्तुत करने की सदियों पुरानी

लेखन-परंपरा चली आ रही है ।लेकिन सृजनात्मक लेखन के लिए बंधी-बंधाई परंपरा का पालन हमेशा संभव नहीं होता। प्रतिभावान लेखक प्रयोग धर्मी होता है। साहित्य के क्षेत्र में तो निरंतर प्रयोगधर्मिता का निर्वाह होता है। समय-समय पर लेखन के ढांचे और प्रस्तुति की तकनीकें बदलती आई हैं। प्रस्तुति के स्वरूप में परिवर्तन भी किए जा सकते हैं क्योंकि ढांचा या प्रस्तुति अपने आप में लेखन का उद्देश्य नहीं है बल्कि यह तो लक्ष्य तक पहुंचने का माध्यम है।

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि लेखन की विधा में प्रस्तुति या ढांचा, एक शिल्प है और लेखक शिल्पकार है। वह ढांचे को लचीला बना सकता है। यह बात जरूर है कि शिल्प के अपने मूल-तत्व होते हैं और इनका संयोजन ही सौंदर्यबोध की दृष्टि से सार्थक प्रभाव की सृष्टि करता है। लेखन की सामग्री शब्द है जो विचार या भाव को अभिव्यक्ति देता है। शब्दों, वाक्यों के प्रयोग और उन्हें किसी पुस्तक के अध्यायों में प्रस्तुत करके एक पुस्तक की संरचना की जाती है। संगीत में स्वरों और वाद्यों के तालमेल से एक रचना को प्रस्तुत करके संगीत की रसमय लहरों की प्रस्तुति की जाती है। जैसे संगीत, चित्र, नृत्य, नाटक आदि में विविध शिल्प विधान द्वारा अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाया जाता है उसी तरह लेखन में भी शिल्प महत्वपूर्ण है। लेखन स्वांत: सुखाय या केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए भी हो सकता है। पुस्तक, पत्रिका या समाचारपत्र के लिए भी लिखा जा सकता है। नाटक मंचन के लिए लिखे जाते हैं। फिल्म या टेलीविजन पर प्रस्तुति के लिए भी लेखन हो सकता है या रेडियो के लिए भी।

हर माध्यम के तकनीकी और कलात्मक पक्ष को ध्यान में रखना जरूरी है। उदाहरण के लिए एक फीचर या आलेख समाचारपत्र में मुद्रण के लिए भी लिखा जा सकता है या रेडियो प्रसारण के लिए भी। उसी विषय पर फीचर टी.वी. पर भी दिखाया जा सकता है। लिखते समय मुद्रण, श्रव्य और दृश्य माध्यमों के तकनीकी पक्ष को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

1.5.4 लेखन की शैली

शैली का अर्थ है -विचारों और भावों को अभिव्यक्ति देने का अन्दाज या तरीका। एक ही विषय पर किया गया लेखन शैली की दृष्टि से अलग- अलग हो सकता है। अंदाजेबयां या अभिव्यक्ति के तरीके से प्रभाव की सृष्टि होती है। शब्द ही ब्रह्म है। लेखक का शब्द भंडार कितना व्यापक है, भाषा की प्रकृति की कितनी गहरी पकड़ है, शब्दों को किस प्रकार वाक्यों में पिरोया गया है और बात कहने का ढंग कैसा है, ये सब बातें शैली का निर्माण करती हैं । शैलीगत विशेषताओं का निर्माण व्यक्ति की निजी विशेषताओं से होता है। शैली के लिए कई बार लोग एक विशेष लेखक की कृतियों का अध्ययन करते-करते उससे प्रभावित होकर उस शैली की नकल करने लगते हैं लेकिन यह उधार की शैली होती है। जिस शैली पर आपके व्यक्तित्व की छाप होगी वही आपकी असली शैली कहलाएगी। इसके लिए कोई बना-बनाया मार्ग या फार्मूला नहीं है। शैली व्यक्तिगत पहचान का माध्यम है।

वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, संस्मरणात्मक, डायरी शैली जैसा वर्गीकरण आलेख की प्रवृत्ति बताते हैं, विषय वस्तु की प्रस्तुति के स्वरूप का बखान करते हैं। लेखन को इस तरह की शैलियों में विभाजित नहीं किया जा सकता। कथ्य का संयोजन तथ्यपरक, विचारपरक सूचनात्मक, भावात्मक हो सकता है। लेकिन किसी भी शैली की विशेषताओं में, उसका सीधा, सरल, सरस, रोचक, कलात्मक और प्रभावपूर्ण होना अनिवार्य है। यह किसी भी लेखक की शैली की सफलता

का द्योतक है, यदि वह शब्दों में जीवंत दृश्यों की अनुभूति दे सके या दृश्यों को अपनी रचनाओं में चलचित्र की तरह जीवंत कर दे। अपनी बात को पाठक के मन या हृदय पर अंकित कर दे। लेखक और पाठक के बीच संप्रेषण के स्तर पर कोई दूरी नहीं रहे तो यह लेखन शैली की सफलता माना जाना चाहिए।

1.5.5 आत्मिक स्पर्श

लेखन में ईमानदारी का होना आवश्यक है। एक सबा और ईमानदार लेखक वह है जो वह देखता है, उसे लिखता है या जो भोगता या अनुभव करता है, उसे बिना किसी चतुराई या चालाकी के सधी अभिव्यक्ति देता है। यदि लेखक विचार, चिन्तन, सुख-दुख आदि की अभिव्यक्ति को ऐसा धरातल प्रदान कर दे कि पाठक को लगे कि किसी ने उसके विचारों, कुंठाओं या भावों को सच्ची अभिव्यक्ति दी है तो ऐसे लेखन को जीवंत कह सकते हैं। इसे यों भी कह सकते हैं कि ऐसा लेखन संभव है जबकि लेखक अपनी आत्मा को लेखन में उंडेल दे अर्थात् लेखन में एक आत्मीय स्पर्श भर दे जो पाठक के अंतर्मन को छू जाए। उरने लेखन की सत्यता का आभास दे दे। हंसी-खुशी, दुख-दर्द आदि की अनुभूतियां मनुष्य मात्र में समान है। किसी भी प्राणी को दुख पहुंचाना उसके प्रति हिंसा है। अत: आत्मिक स्पर्श से पूर्ण और गंभीरता के साथ किया गया लेखन, पाठक को यह अनुभूति देने में सफल हो सकता है कि लेखक ने अपने विचारों, भावों सुख-दुख की अनुभूतियां के माध्यम से उसके सुख-दुख को अभिव्यक्ति दी है। पाठक और लेखक को एक समान धरातल पर खड़ा करने के लिए यह आवश्यक है कि लेखन में लेखक की आत्मा की गंध बसी हो।

बोध प्रश्न - 2

1. विषय और विचार महत्वपूर्ण हैं या स्वरूप?
2. लेखन के ढांचे से क्या तात्पर्य है?
3. आत्मिक का महत्व बताइए।

1.6 लेखन- कौशल का विकास

कई बार लोग इस सम में रहते हैं कि लेखक बनना तो जन्मजात प्रतिभा से ही संभव हो सकता है। अत: वे अधिक प्रयास नहीं करते । कुछ सीमा तक यह कहा जा सकता है कि आनुवांशिक परिस्थितियों या वातावरण की अनुकूलता से कई लोगों में लेखन के प्रति एक स्वाभाविक ललक होती है और यह ललक उनका मार्ग सरल बना देती है । परंतु, अभ्यास, लगन और निरंतर परिश्रम से मनुष्य असंभव को भी संभव बना सकता है। लेखन भी एक विधा है । एक कला है । किसी भी विधा या कला के प्रति अभिरूचि के साथ संबंध जोड़ने और उसको सीखने के लिए सतत प्रयत्न करने से उसमें कुशलता अर्जित करना संभव है । आवश्यकता है -समर्पण के साथ अभ्यास करते रहने की । हर वस्तु पर उसकी कीमत लिखी रहती है । किसी भी वस्तु को प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार उसकी कीमत चुकानी पड़ती है, उसी प्रकार किसी भी विधा में सफलता प्राप्त करने के लिए निरंतर चिंतन, अभ्यास और परिश्रम करते रहना आवश्यक होता है । लेखन में कुशलता का विकास करने के लिए कुछ बिन्दुओं पर ध्यान देकर आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए ।

1.6.1 अध्ययनशीलता

लेखन का क्षेत्र अति व्यापक है । इसलिए लेखन में दक्षता एवं कुशलता प्राप्त करने के लिए कोई भी क्षेत्र अपनी अभिरुचि के अनुरूप चुना जा सकता है । इसके अलावा जिस भाषा में लेखन करना हो, उसमें दक्षता प्राप्त करना या उस भाषा में अपने को सहज अभिव्यक्ति देना आवश्यक है । अत: भाषा का ज्ञान ही नहीं उसकी गहरी समझ भी होनी चाहिए । लेखन में शब्दों का सही ढंग से उचित रूप में प्रयोग करने के लिए शब्द ज्ञान भी समृद्ध होना जरूरी है । यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए भाषा पर अपनी पकड़ मजबूत करने के अलावा भाषा-विशेष में रचित साहित्य एवं लेखन का अध्ययन करते रहना चाहिए ।

आमतौर से अध्ययन की प्रवृत्ति को निरन्तर कायम रखना कठिन होता है । परन्तु एक अच्छा लेखक बनने और लेखन में सिद्धहस्त होने का रास्ता सरल होते हुए भी निरंतर कदम बढ़ाते रहने की मांग करता है । लेखन में कुशलता प्राप्त करने के लिए अध्ययनशीलता का होना आवश्यक है । ऐसा करने से जहां सामान्य ज्ञान एवं विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त होने के साथ-साथ रचनाशीलता, शब्द-रचना, उनके प्रयोग, शैली की प्रौढ़ता, लेखन में स्पष्टता एवं प्रवाह जैसे गुणों को सीखने में सहायता मिलती है वहां निरंतर अध्ययन से, ज्ञान के अथाह भंडार में डुबकी लगाने से महान लेखकों के रचना-संसार से भी साक्षात्कार होता है । अध्ययनशीलता से आत्म-शिक्षण की प्रक्रिया संपन्न होती है । व्यक्ति की जिज्ञासु - प्रवृत्ति और अधिक से अधिक सीखते रहने की अभिरुचि, उसे निरंतर गतिमान और सबल बनाने का कार्य करती है । अध्ययनशीलता प्रवृत्ति से लेखन में निखार आता है । इस प्रकार निरंतर पढ़ने - लिखने की आदत से विचारों एवं दृष्टिकोण को स्पष्ट, सरल, सुगम और सुबोध शैली में प्रस्तुत करने का मार्ग प्रशस्त होता है । अभिव्यक्ति में दक्षता और प्रौढ़ता आती है । स्वयं को लेखन में पारंगत जानकर यदि अध्ययन से हाथ खींच लिया तो अपेक्षित निपुणता प्राप्त करना संभव नहीं हो पाएगा । एक सफल लेखक बनने के लिए पढ़ने की आदत डालने का प्रयास करना चाहिए । समय काटने या मनोरंजन के लिए पढ़ना एक बात है और गंभीरता से अध्ययन करना, पढ़ी हुई पुस्तकों का विश्लेषण करना और कृति-विशेष के विविध पक्षों की बारीकियों में झांकना दूसरी बात है । गंभीरता से किया गया अध्ययन, शब्द-ज्ञान को समृद्ध करने के अलावा लेखन के लिए एक सुदृढ़ आधार भी देता है ।

1.6.2 सूक्ष्म-निरीक्षण के प्रयास

अध्ययनशीलता के साथ यह भी आवश्यक है कि एक अच्छा लेखक बनने या लेखन में कुशलता प्राप्त करने के लिए दृष्टि को सदैव खुला और चौकन्ना रखने की आदत का विकास किया जाए । जीवन के विविध पक्षों, स्थितियों और चारों और फैले विस्तार का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने का सतत् प्रयास किया जाए । जीवन के जटिल प्रश्नों को उद्घाटित करना, प्रकृति के सौंदर्य और रहस्यों को समझना, चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में जांचना, स्वभावगत विशेषताओं और चीजों की पूरी तरह पहचान करना आदि तभी संभव है, जब उनका बारीकी से निरीक्षण करने की आदत डाली जाए ।

1.6.3 अनुभवों पर आधारित

दूसरों के अनुभव और विचारों को पढ़कर भी लेखन का अभ्यास तो किया जा सकता है लेकिन मौलिक एवं रचनात्मक लेखन के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति के स्वयं का अनुभव भंडार

विकसित हो । अपने ही अनुभवों को लेकर उन्हें अभिव्यक्ति देने का कार्य लेखन में प्राण की प्रतिष्ठा करता है । लेकिन अनुभवों को ज्यों का त्यों लिख देना, मौलिक लेखन या सृजन नहीं कहलाता है । जीवन में प्राप्त अनुभवों या संकलित तथ्यों को लिख देना काफी नहीं । अनुभवों का मंथन और उन पर चिंतन करना भी जरूरी है । मंथन और चिंतन से अनावश्यक तथ्यों की कांट-छांट करके अनुभवों को परिपक्वता देनी चाहिए । अपने भीतर अनुभवों की आंच को अनुभूत करने से वे व्यक्तिगत, निजी और अधिकृत बन जाते हैं । लेखन का कार्य किसी सजीव कृति को जन्म देने की प्रक्रिया के समान है । जिस प्रकार मां के गर्भ में नौ महीने रहने के बाद शिशु का स्वत: ही जन्म होता है, ठीक वैसे ही अपने अनुभवों को तपने के बाद ही अभिव्यक्ति के योग्य समझना चाहिए । ऐसा करने से लेखन में एक शक्ति और ऊर्जा उत्पन्न होगी । एक गति और स्फूर्ति का संचार हो सकेगा ।

लेखन मे दक्षता प्राप्त करने का छोटा या तुरंत लक्ष्य तक पहुंचाने वाला कोई रास्ता नहीं है। लेखक में धैर्य और संयम होना चाहिए । पहाड़ों से फूट पड़ने वाले झरनों की तरह एक स्वाभाविक गति और प्रवाह की सृजन में लय होनी चाहिए। समझ एवं अभ्यास से ही ऐसा हो सकता है

1.6.4 कल्पनाशीलता

लेखन की विधा में सृजनात्मकता के निर्माण के लिए कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखना चाहिए । जिस विषय या विचार पर लेखन करना है, उसके बारे में यह जानना चाहिए कि उस विषय पर बहुत लोग लिख रहे हैं या वह एक नया विषय या विचार है? यह भी प्रश्न अपने आपसे पूछा जा सकता है कि उक्त विषय की सार्थकता या उपयोग क्या हो सकता है? लेखन का लक्ष्य क्या है? यदि मौलिक और नया विचार है तो श्रेष्ठ बात है । विचार या विषय नया नहीं हो तो भी उस पर लिखा जा सकता है क्योंकि हमेशा नए विषय और विचार तो उपलब्ध नहीं हो सकते । जीवन, मृत्यु, प्रेम, घृणा, भूख, बेकारी आदि विषय हैं जिन पर अनेक लोग लिख चुके हैं और इन विषयों पर लेखन का सिलसिला जारी है । विषय कोई भी हो, उसके विविध पहलू होते हैं । किसी भी विषय की गहराई में जाने, कल्पना और व्यक्तिगत चिंतन का स्पर्श देने के बाद एक लेखक की क्षमता किसी भी विषय को रोचक और पठनीय आधार दे सकती है । कल्पना के पंखों पर सवार होने की आदत डालनी चाहिए परन्तु यह सावधानी भी रखनी होगी कि यथार्थ का सूत्र हाथ में रहे ।

1.6.5 प्रारंभ या रूपरेखा

एक बार यह स्पष्ट होने पर कि किस विषय या विचार पर लेखन करना है, उस विचार या विषय के विभिन्न पहलुओं पर चिंतन करना चाहिए । चिन्तन की प्रक्रिया में कथ्य या विषय, कथानक, स्थितियों, पात्रों, संवादों आदि को समिलित किया जा सकता है । जिस विषय को छूने का प्रयास किया गया है, उसका उपयोग कहां होगा, मुद्रण के लिए लेखन है या रेडियो या टी.वी. के लिए प्रसारित किया जाना है या उसका उपयोग कहीं अन्य उद्देश्य से किया जाना है, आदि प्रश्नों पर भी विचार करना चाहिए। इस प्रक्रिया के बाद लेखन का प्रारूप तैयार कर लेना चाहिए ।

मौलिक लेखन को समर्पित लोगों के मस्तिष्क में एक अस्पष्ट विचार आने पर भी वे प्राय: लिखना प्रारंभ कर देते हैं और उनके मस्तिष्क में पहले से संकलित अनुभव उनके लेखन को प्रेरित करके किसी लक्ष्य तक उनकी रचना को पहुंचा सकते हैं परन्तु लेखन की यात्रा प्रारंभ करने वाले लेखकों

को तो अपना लक्ष्य निर्धारित करके व्यवस्थित ढंग से लेखन प्रक्रिया का अभ्यास शुरू करना चाहिए । संगीत की तरह एक प्रभाव की सृष्टि करने के लिए उन्हें रचना के प्रारंभ और अंत को ध्यान में रखते हुए एक रूपरेखा बनाकर संपूर्ण लेखन प्रक्रिया को संयोजित करने का अभ्यास करना चाहिए । लेखन में गति और प्रवाह भी हो, इसकी जांच का मापदंड यह है कि पाठक किसी रचना को पढ़ना प्रारंभ करे तो वह उस रचना को दिलचस्पी के साथ तक पढ़े । लेखन में इस गुण का समावेश करने के लिए प्रारंभ और अंत, दोनों को रुचिकर बनाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए और उसका मध्य भाग भी कमजोर न हो, यह भी सावधानी बरतनी चाहिए।

कोई भी व्यक्ति जन्म से बड़ा या महान लेखक नहीं होता । किसी भी बड़े कार्य का आरंभ एक कदम आगे बढाने से होता है । अत: लेखन कला में आगे बढ़ने के लिए डायरी लेखन का नियमित अभ्यास भी शुरू किया जा सकता है लेकिन यह कार्य मात्र घटनाओं या दिनचर्या के आलेखन तक सीमित न हो । इसमें संवेदना एवं रचनात्मकता का पुट हो । बड़े-बड़े लेखकों के डायरी लेखन की विधा का अध्ययन इस दिशा में मार्गदर्शन कर सकता है ।

1.7 लेखन में सावधानियां

लेखन की विशेषताओं में प्रमुख है-लेखन में गति एवं प्रवाह का होना । यह गुण तभी पैदा होता है जबकि लेखन में स्पष्टता हो । यह स्पष्टता तभी आती है जब लेखक के मन में विचार या विषय वस्तु की स्पष्ट रूपरेखा बन चुकी हो । यदि लेखक स्वयं विषय की बारीकियों और विवरण के बारे में पूरी तरह आश्वस्त नहीं है तो वह अपना संदेश या विचार पाठक को समझा नहीं पाएगा । आलेख में भटकाव होगा. पैनापन और प्रवाह नहीं होगा ।

स्पष्टता के साथ लेखन के विषय या विचार के प्रति लेखक की रुचि और विषय में पैठ होनी चाहिए । ऐसा नहीं होने पर लेखन में रचनात्मकता का अभाव होगा और कोई भी रचना पाठक के दिलोदिमाग पर प्रभाव डालने में सफल नहीं हो सकेगी । आप लेख लिख रहे हैं या कहानी, पाठक की दिलचस्पी बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि कथ्य तार्किक ढंग से आगे बड़े, एक के बाद एक परत खुलती चली जाए और अत में पाठक किसी नतीजे पर पहुंच सके ।

यदि किसी रचना में विषय की संपूर्णता या स्पष्टता नहीं है तो वह अपने लक्ष्य में विफल हो जाती है । व्यक्तिगत कुंठाओं या विचारों को किसी निहित उद्देश्य की पूर्ति के लिए लेखन का आधार नहीं बनाना चाहिए । ऐसा करने से लेखन की उपादेयता समाप्त हो जाती है । निष्पक्षता और पारदर्शिता के गुणों का भी हाल हो जाता है । अत: इस प्रवृत्ति से बचना चाहिए ।

लेखन में किसी भी कथ्य को घुमा-फिराकर कहने के बजाए सीधे और सरल ढंग से अपनी बात कहने का अभ्यास करना चाहिए । घुमा-फिराकर बातों को कहने या लिखने से अस्पष्टता का खतरा बना रहता है । इसके अलावा सृजनात्मक लेखन में बहुत ज्यादा तथ्यों और तर्क के साथ किसी बात को पाठकों के मस्तिष्क पर थोपने की प्रवृत्ति भी उचित नहीं मानी जाती । लेखन में एक रुचिकर प्रवाह और लचीलापन जरूरी है । स्पष्ट, सुगम, सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही सृजनात्मक लेखन की पहचान है । क्लिष्ट या कठिन शब्दों के जाल के माध्यम से अपनी लेखन- क्षमता दर्शाने या लच्छेदार भाषा का प्रयोग करने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए ।

प्रचलित शब्दों, मुहावरों या लोकोक्तियों का यथा आवश्यकता प्रयोग किया जाना चाहिए । साथ ही लेखन करते समय सदैव उन पाठकों को ध्यान में रखना चाहिए जिनके लिए लेखन कार्य किया

जा रहा है । बच्चों के लिए जो शैली और शब्दावली अपनाई जाएगी वह शिक्षित वयस्कों के लिए लिखे गए लेख से अलग होगी । साधारण पाठक के लिए पांडित्यपूर्ण शब्दावली का उपयोग कभी उचित नहीं समझा जाएगा । अपनी विद्वत्ता या लेखन प्रतिभा का चमत्कार दिखाने की कोशिश में अक्सर बात बिगड़ जाती है । सहजता हमेशा रुचिकर होती है ।

लेखन में सुस्पष्टता एवं प्रभाव की सृष्टि करने के लिए सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि पाठक को समझने के लिए कसरत न करनी पड़े । लेखक और पाठक के बीच कहीं कोई दूरी न रहे। वाक्य भी छोटे-छोटे होने चाहिए । लेखन की सफलता इस बात में है कि रचना में सहजता हो, आत्मीयता हो और पाठक के प्रति ईमानदारी एवं दायित्व भावना से जुड़ा एक सरोकार हो ।

1.8 मूल्याकन

लेखन विधा में दक्षता प्राप्त करने के लिए धैर्य और संयम के साथ निरंतर अभ्यास करते रहने के साथ-साथ अपने लेखन का स्वयं मूल्याकन करने की आदत भी डालनी चाहिए । लिखने के बाद थोड़ा जोर से पढ़ें । इससे लेखन की अभिव्यक्ति और विचारों की स्पष्टता में कहीं कमी है तो उसका एहसास हो जायेगा । हो सकता है कि लिखते समय विचारों और भावों को व्यक्त करने की धुन में कहीं कुछ ऐसा लिख दिया गया हो जो अनावश्यक लगे या जिसमें कोई बात दोहराई हुई लगे । ऐसे शब्दों या वाक्यों को काट सकते हैं । अपने लेखन को काट देना कठिन कार्य जरूर है, परंतु जो बात स्वयं को ठीक नहीं लगे, उसे पाठक के सामने परोसना उचित नहीं है । अपने ही लेखन की समालोचना करना आसान कार्य तो नहीं है परन्तु अभ्यास से बहुत कुछ संभव है । एक सप्ताह या कुछ दिन ठहरकर भी अपने लेखन को फिर से पढ़ सकते हैं।

इसके अलावा सृजनात्मक लेखन में रुचि रखने वाले या सक्रिय पाठकों का एक समूह तैयार करके उनसे अपने लेखन पर चर्चा कर सकते हैं । समालोचना से डरना नहीं चाहिए । समालोचना से सोचने और करने के लिए नया मार्ग मिलता है । इस प्रकार स्वयं अपना मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति से गंतव्य तक पहुंचने में सहायता मिल सकती है ।

बोध प्रश्न-3

1. अध्ययनशीलता के लाभ बताइए ।
2. लेखन में अनुभव की उपयोगिता का महत्व समझाएं।
3. लेखक अपनी रचना का मूल्यांकन कैसे कर सकता है।

1.9 सारांश

विचार और अभिव्यक्ति के स्तर पर परिपक्वता और सुस्पष्टता का रास्ता तय कर लिया जाए, शब्द को ब्रह्म के रूप में महत्व दिया जाए और बिना किसी आडंबर या बनावट के सहज रूप से, समर्पित भाव से लेखन विधा के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करके अपने आपको अभिव्यक्त करने का अभ्यास किया जाए तो लेखन विधा में दक्षता प्राप्त करना संभव है।

पाठक के लिए रचना बोझिल न बने, इसका ध्यान रखने के साथ-साथ सृजनात्मकता की यह भी पहचान है कि किसी भी विषय या विचार पर लेखक की बात को समझने के बाद पाठक की कल्पना और सोच के स्तर पर एक हलचल पैदा हो सके । एक प्रभाव की सृष्टि हो और उसके सोचने के लिए भी कहीं कोई गुंजाइश बची रहे ।

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1. Hopper, Vincent F. And Cesric Gale: Essentials of Writing, 3rd Ed. (LC-61-8198) Baron Pubs, 1986.
2. Jackson, Donald, the story of Writing (ISBN O-8008-00172-5) Pentalic, Taplinges, 1981.
3. Lyman, Edna, What to tell and how to tell 57 (3rd ed,) rpt. of 1911 ed Gale University Press, 1971.
4. Quigly Pat, Creative Writing. A Handbook of Technques for Effective
5. Writing Vol. II, Potentials Development, 1983 (ISBN 0-932910-40-8)
6. विविधा : प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली ।
7. भारतीय प्रसारण के विविध आयाम : मधुकर गंगाधर, महरौली, नई दिल्ली- 301

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लेखन के मूल तत्व कौन-कौन से हैं? इनकी संक्षिप्त विवेचना कीजिए ।
2. लेखन-कौशल से आप क्या समझते हैं?
3. लेखन में क्या-क्या सावधानियां रखनी चाहिए?
4. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए-
   (अ) लेखन की शैली
   (ब) लेखन का ढांचा
   (स) लेखन मे आत्मिक-स्पर्श
   (द) लेखन में कल्पनाशील

इकाई 2 फीचर-लेखन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 फीचर क्या है

2.3 फीचर की विशेषताएं

- 2.3.1 जिज्ञासा और नौ रत्न
- 2.3.2 दूसरी विधाओं के उपादान
- 2.3.3 संवेदनशीलता

2.4 फीचर के मूल स्वरूप

- 2.4.1 समाचारी फीचर
- 2.4.2 विशिष्ट फीचर

2.5 फीचर लेखन

- 2.5.1 फीचर-लेखक की योग्यताएं
- 2.5.2 फीचर-लेखन की तैयारी
- 2.5.3 भाषा, शैली और आन्तरिक गठन
- 2.5.4 शीर्षक
- 2.5.5 प्रस्तावना या भूमिका
- 2.5.6 विवेचना या विश्लेषण
- 2.5.7 उपसंहार या निष्कर्ष
- 2.5.8 चित्रांकन

2.6 विभिन्न विधाओं से तुलना

- 2.6.1 निबंध, लेख और फीचर
- 2.6.2 समाचार और फीचर
- 2.6.3 कमेंट्री और फीचर
- 2.6.4 कहानी और फीचर
- 2.6.5 संपादकीय और फीचर
- 2.6.6 अन्य विधाएं और फीचर

2.7 फीचर के विषय

- 2.7.1 व्यक्तित्व-फीचर
- 2.7.2 समाचार-फीचर
- 2.7.3 त्यौहार सम्बन्धी फीचर
- 2.7.4 रेडियो-फीचर
- 2.7.5 विज्ञान-फीचर

2.7.6 चित्रात्मक-फीचर
2.7.7 व्यंग्यात्मक-फीचर
2.7.8 यात्रा-फीचर
2.7.9 मानवीय रुचि विषयक फीचर
2.7.10 ऐतिहासिक फीचर
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- फीचर का अर्थ समझ सकेंगे,
- फीचर की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- फीचर-लेखन की प्राथमिक आवश्यकताओं से परिचित हो सकेंगे,
- फीचर के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- फीचर के विविध प्रकारों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- समाचारपत्र के विभिन्न स्तंभों और फीचर का अंतर समझ सकेंगे,
- और आप एक अच्छे फीचर-लेखक बन सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

समाचार में सभी क्षेत्रों की घटनाओं के समाचार तो होते ही हैं, इसके अलावा संपादकीय, विशेष आलेख, हास्य-व्यंग्य, कार्टून और फीचर भी होते हैं जो समाचार पत्र का चरित्र और व्यक्तित्व करते हैं । विभिन्न अखबारों में बहुत्से समाचार एक जैसे होते हैं । संवाद समिति से आए समाचार का पाठ थोड़े बहुत अंतर के साथ सभी अखबारों में एक-जैसा हो सकता है । संवाद समिति का समाचार न हो तो भी वह कौन-कब-कहीं आदि ककारों या समाचार के व्याकरण में बंधा होता है । लेकिन दूसरे स्तंभों पर यह बात नहीं लागू होती । इनमें फीचरों का स्थान सर्वोपरि है । प्रसिद्ध अमेरिकी पत्रकार एलेक्सस मैकनी के अनुसार सामान्य समाचार आधारभूत क्षेत्र कौन, कब, कहीं, क्यों और कैसे (छह ककार) से बाहर अथवा परे हटकर संघात करने वाला लेखन फीचर है । फीचर में मुख्यत: किसी मार्मिक पक्ष का प्रतिपादन होता है । समाचारों में यह पक्ष प्राय: नहीं आ पाता । अब तो हर अखबार कोशिश करता है कि हर दिन कुछ समाचार फीचर शैली में लिखे जाएं । अगर समाचार अखबार का शरीर है तो फीचर उसकी आत्मा । इस पाठ में हम फीचर के सभी पक्षों का विश्लेषण करेंगे ।

2.2 फीचर क्या है?

फीचर (Feature) शब्द लैटिन के फैक्ट्रा (Factura) से बना है । फीचर के अनेक अर्थ हैं। वेब्स्टर के नए शब्दकोश के अनुसार फीचर के कुछ अर्थ हैं -

1. व्यक्ति या वस्तु का स्वरूप
2. चेहरे अथवा चेहरे के अंग विशेष, जैसे आख, नाक, मुंह आदि का स्वरूप
3. समाचारपत्र या पत्रिका में प्रकाशित विशिष्ट रचना
4. पूरी लंबाई का चलचित्र आदि

फीचर को हिन्दी में कुछ विद्वानों ने "रूपक" भी कहा है । यह शब्द काव्यशास्त्र के एक अलंकार, दृश्य-काव्य और नाटक के अर्थ में रूढ़ हो चुका है । दूसरे, फीचर का इस्तेमाल बहुत हो रहा है । रेडियो फीचर, फोटो फीचर आदि धड़ल्ले से चलते हैं इसलिए यह शब्द इसी रूप में व्यवहृत करना समीचीन होगा । पत्रकारिता में फीचर से तात्पर्य समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित विशिष्ट आलेखों से है, जो हमें जानकारी देने के अलावा आनंदित और प्रफुल्लित भी करते हैं । इन लेखों में वर्ण्य विषय का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया जाता है कि उनका वास्तविक अर्थ और स्वरूप साक्षात् व प्रत्यक्ष हो उठता है । इसीलिए ये फीचर कहे जाते हैं ।

परिभाषा

फीचर की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं की जा सकी है । अनेक विद्वानों ने फीचर की विविध दृष्टियों से जो परिभाषाएं की हैं वे फीचर के गुणों का स्पष्टीकरण करती हैं ।

रा.र. खाडिलकर की दृष्टि में, " फीचर वे लेख हैं जो पाठकों को यह बताएं कि कोई घटना क्यों हुई तथा उसका परिणाम क्या होगा । "

डॉन डंकन के अनुसार "फीचर जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण, दैनिक जीवन की करुणा, उसकी नाटकीयता और परिहास पक्ष को ग्रहण करके उसका चित्रण करने की एक विधि है । फीचर एक "सैंडविच" के समान है, जिसके दोनों पार्श्व शक्कर की परत से ढंके हुए केक के टुक्ड़े तथा बीच में मसालेदार मांस तथा आलू भरे रहते हैं ।"

जेम्स बेविस के अनुसार, " फीचर समाचार को नया आयाम देता है, उसका परीक्षण करता है, विश्लेषण करता है तथा उस पर नया प्रकाश डालता है । फीचर का सर्वश्रेष्ठ प्रकार वह है जो सामयिक हो तथा समाचार से जुड़ा हुआ हो ।'

प्रमुख लेखक डॉ. विवेकीराय के अनुसार समाचारात्मक निबंध रूपक है और वह विभिन्न क्षेत्रों की नवीनतम हलचलों का शब्द-चित्र होता है । पी.डी. टंडन के अनुसार फीचर एक प्रकार का गदय गीत है । व्यंग्य लेखक श्रीकृष्ण चन्द्र शर्मा के लिए फीचर किसी विचार (मान्यता), व्यक्ति, घटना आदि का त्रिविध शाब्दिक चित्रण है जिसे स्थायी रूप दे दिया गया हो ।

इन परिभाषाओं में फीचर को विभिन्न दृष्टियों से देखने का प्रयास किया गया है । प्रत्येक परिभाषा उसकी किसी न किसी एक विशेषता पर बल देती है । फीचर को समग्र रूप से समझने के लिए कोई एक परिभाषा पर्याप्त नहीं है । फिर भी कहा जा सकता है कि "फीचर" वस्तुत: प्रवृत्तियों और भावनाओं का सरस, मधुर और अनुभूतिपूर्ण वर्णन है । फीचर लेखक गौण है, वह मात्र एक माध्यम है जो फीचर द्वारा पाठकों की जिज्ञासा, उत्सुकता और उत्कंठा को शांत करता हुआ समाज की विभिन्न प्रवृत्तियों का आकलन करता है । इस प्रकार फीचर में सामयिक तथ्यों का यथेष्ट समावेश तो होता ही है लेकिन अतीत की घटनाओं तथा भविष्य की सम्भावनाओं से भी वह जुड़ा रहता है । उसमें समय की धड़कनें गूंजती हैं।

2.3 फीचर की विशेषताएं

फीचर स्थिति का विहंगावलोकन ही नहीं करता, वह प्रश्नों का उत्तर भी देता है और अज्ञात का ज्ञान भी कराता है । फीचर मानो किसी घटना की दूरबीन से जांच करता है । अच्छे फीचर के गुणों की जब हम बात करते हैं, तो उसके मूल चार आधारों पर हमारा ध्यान जाना आवश्यक है । ये हैं -जिज्ञासा, सत्यता, योग्यता और विश्वास ।

2.3.1 जिज्ञासा और नौ रत्न

वह फीचर निःसार है, जो प्रथम वाक्य से ही पाठक के मन में उत्तरोत्तर जिज्ञासा उत्पन्न न कर सके । फीचर जानकारी की प्यास पैदा करे और उसे बुझाता भी रहे । फीचर सत्य पर आधारित हो । उसमें ऐसी कोई कल्पना भी न की जाए, जो किसी आधार पर टिकी न हो, कालिदास के ग्रंथों के टीकाकार मल्लिनाथ का कहना है -लेखक को यह सदैव याद रखना चाहिए- "नामूलं लिख्यते किंचित", अर्थात् जिस बात का आधार नहीं हो उसे लिखना नहीं चाहिए । योग्यता, लेखक के स्वाध्याय, तथ्यों के प्रेषण और शैली के हृदयग्राही स्वरूप में समाहित है । विश्वास लेखक और पाक दोनों के लिए जरूरी है । आत्म-विश्वास के साथ और विश्वास की शैली में लिखा गया फीचर पाक में भी विश्वास उत्पन्न करेगा । फीचर पढ़कर यदि पाठक को लगा कि बात जंची नहीं, तो फीचर का उद्देश्य ही पूरा नहीं होता। पाठक को मिला संतोष, लेखक द्वारा उत्पन्न विश्वास का ही रूपांतर है । अतः पाठक को संतुष्ट करना परम आवश्यक है । बहुधा लेखक कृति के प्रति अपने आपको संतुष्ट मानकर उसकी श्रेष्ठता आंक लेते हैं । विश्वास का गुण दूसरे की तुला पर तुलता है, अपने पर नहीं ।

फीचर-लेखक जिन बातों से अपने आलेख को अधिक आकर्षक बना देता है, उनमें से चुने हुए "नौ रत्न" इस प्रकार हैं-

1. मोहकता
2. सामान्य तथ्यों का आकर्षक रूप
3. सीमित न हो
4. तर्कसंगत दृष्टिकोण
5. गतिशील शैली
6. विचित्रता
7. व्यापकताभाव और प्रभाव का दायरा-
8. व्यक्तियों की विशेष जानकारी
9. तथ्य और उसके प्रभाव के महत्व पर जोर,
10. ज्ञान और भावना की शक्ति का विकास

2.3.2 दूसरी विधाओं के उपादान

टाइम्स ऑफ इण्डिया (दिल्ली) के भूतपूर्व समाचार संपादक श्री विश्वंभरनाथ कुमार के अनुसार भावना और आलोचना फीचर के आवश्यक अंग हैं । फीचर में भावना की व्याख्या की जाती है । काशी पत्रकार संघ की विशेष अनियतकालिक स्मारिका "पत्रकार" (1972) के पूर्वी उत्तरप्रदेश अंक में "हिन्दी में फीचर लेखन" पर डॉ. विवेकीराय का लेख दृष्टव्य है । डॉ. विवेकीराय का कहना है कि फीचर आधुनिकता का अनिवार्य आग्रह है । जिन निबंधेतर विधाओं के साथ जुड़कर विविध रूप में उसकी रचना होती है, उसकी तालिका निम्नलिखित है-

(क) पर्सनल ऐसे (ललित निबंध)
(घ) फैंटेसी (स्वैर-विधा)

(ख) स्केच (रेखाचित्र)
(ड़) शार्ट स्टोरी (लघु कथा)
(ग) रिपोर्ताज (विवरणिका)
(च) पत्र, डायरी और वार्ता आदि

इस प्रकार डॉ. विवेकीराय के मतानुसार फीचर सब कुछ है और सब में उसकी व्याप्ति है । यदि हम फीचर को इतना अधिक व्यापक कर देंगे, तब तो उसका अपनापन तथा उस विधा की विशेषता क्या होगी, उसका बोध कराना कठिन हो जाएगा । हम फीचर को यदि उसकी सीमाओं में देंखे ,तो अधिक उपयुक्त होगा । फीचर को खिचड़ी बनाने से उसका महत्व कहीं का न रहेगा और न उसकी कसौटी भी तैयार हो सकेगी । एक अन्य दृष्टिकोण वरिष्ठ पत्रकार पी.डी. टंडन का है । फीचर के विषय में टंडनजी के जो विचार 1952-53 में थे, वही 1976 में हैं । उनकी मान्यता है कि फीचर एक प्रकार का गद्यगीत है । फीचर हमारा मनोरंजन करता है । फीचर मुख्य रूप से विवेक और आनंद के लिए लिखा जाता है । अवश्य ही तीस वर्ष पहले फीचर को उसी कसौटी पर परखा जाता था, जिसका संकेत टंडनजी ने अपने लेखों में किया है । परन्तु फीचर की परख के नियम अब बहुत बदल गये हैं । अब फीचर केवल मनोरंजन और विनोद का साधन नहीं है । फीचर को जिस रस में सरोबार करना हो, किया जा सकता है । अब फीचर को गद्यगीत मानना उसके महत्व को कम करना है।

संक्षेप में हम यहां इतना ही कहना चाहते हैं कि फीचर आधुनिक पत्रकारिता के लेखन की वह विधा है जो मनोरंजक ढंग से समाचार की वर्तमान भूमि पर खड़ी होकर अतीत पर दृष्टि डालती हुई भविष्य की ओर इंगित करने में सक्षम है । फीचर में लेखक का 'व्यक्तित्व सामने नहीं आता । उसका लेखक तो पत्रकार की तरह पर्दे के पीछे रहकर पाठक के लाभार्थ घटनाओं और व्यक्तियों का वर्तमान, भूत और भविष्य के परिवेश में मूल्यांकन करना है । फीचर न रेखाचित्र है, न रूपक और न गद्यगीत, फीचर फीचर है । फीचर है किसी समाचार के व्यापक प्रभाव का दर्शन और मूल्यांकन।

फीचर में विशेष और अनोखे सत्य का विश्लेषण मिलता है । फीचर पाठक की जिज्ञासा, सहानुभूति, आशंका, विनोद, संत्रास और आश्चर्य का उद्दीपन करता है । पत्रकारिता विषयक अनेक पुस्तकों के लेखक जार्ज फाक्स मोर का विचार है कि फीचर का प्राण संवेदना है ।

2.3.3 संवेदनशीलता

डेनवर विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग के अध्यक्ष एलमो स्काट वाटसन की मान्यता है कि फीचर किसी भावना के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है । समाचार को ऐसा रूप दिया जाता है कि वह और आकर्षक बने, पाठक का ध्यान खींचे और सामान्य पाठक की भावनाओं को छू जाए । कारण यह है कि पाठक समाचार के महत्व से उतना आंदोलित नहीं होता, जितना मानवीय संवेदना (प्रेम, घृणा आदि) से । किसी अच्छे फीचर को पढने के बाद पाठक को किसी न किसी तरह का संतोष प्राप्त होता, जो मनोरंजन, जानकारी अथवा शिक्षा के रूप में हो सकता है।

"न्यूज राइटिंग" पुस्तक के लेखक जार्ज ए. हग का विचार है कि फीचर में सामान्यत: उसी प्रकार की मानव प्रकृति और वैसी ही परिस्थितियों का विश्लेषण होता है जिनका हम नित्यप्रति अनुभव करते हैं और जो किसी के जीवन में घटती या घट सकती है । उसके अनुसार फीचर यह याद दिलाता है कि हम सब समान अनुभव के भागीदार हैं ।

फीचर के लक्षणों के विषय में "मास कम्युनिकेशन एंड जर्नलिज्म इन इण्डिया" के लेखक डॉ. एस. मेहता का कहना है कि "फीचर में उस तथ्य को उभारा जाता है, जो महत्व का होते हुए भी स्पष्ट नहीं होता और उसका प्रस्तुतीकरण ही फीचर के व्यक्तित्व, उसकी शक्ति और उसके औचित्य का बोध देता है । अध्ययन, अनुसंधान और साक्षात्कारों के बल पर फीचर में तथ्यों का विस्तार किया जाता है । फीचर किसी विषय के जानकार और अज्ञानी पाठक के लिए शिक्षक और पथ-प्रदर्शक का काम करता है।

"संपादन के सिद्धान्त" पुस्तक में डॉ. रामचन्द्र तिवारी का मत है कि फीचर लेखक अपने आँख, कान, भावों, अनुभूतियों, मनोवेगों और अन्वेषणों का सहारा लेकर उसे रुचिकर, आकर्षक और हृदया ग्राही बनाता है ।

श्री विश्वनाथ सिंह का कहना है कि फीचर-लेखक पाठक को स्वस्थ तथा गंभीर मनोरंजन देता है । इसका प्रभाव क्षणिक या अस्थाई नहीं होता । यह पाठक के मन तथा विचारों को एक झटका देता है । उसे एक विशेष ढंग से सोचने-विचारने के लिए प्रेरित करता है और तब अपना एक स्वतंत्र विचार बनाने का अवसर भी प्रदान करता है । डॉ. ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श' का कहना है- 'अच्छा रूपक (फीचर) किसी विषय की पार्श्वभूमि में समाचार के पीछे समाचार का विश्लेषण, चर्चा तथा स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है । वह ज्ञात अथवा अल्पज्ञात घटना की समीक्षा कर लेखबद्ध चित्र प्रस्तुत कर पाठक को नवीन तथ्यों से अवगत कराता है । वह अन्वेषण करता है तथा विषय-वस्तु को अनावृत्त कर विश्वसनीय साक्ष्य से अपनी स्थापनाओं को पुष्ट बनाता है । वह घटनाओं के प्रभाव का पूर्वानुमान करता है तथ संभावित परिणामों की ओर ध्यानाकर्षित करता है ।

फीचर के प्रति ऐसा आकर्षण क्यों? समाचार नयी जानकारी देता है । इस नवीनता के कारण सामान्य पाठक उसको पढ़ना चाहता है । फीचर में समाचार और समस्या आदि के रहस्य की विशेष जानकारी के साथ आत्मीयता, भावना और विवेचना के गुणों का समावेश होता है । इन तत्वों के कारण ही पाठक की उससे भावनात्मक संतुष्टि होती है । पाठक की यही संतुष्टि उसके आकर्षण का मूल कारण है । इस संतुष्टि की उपलब्धि फीचर में समाविष्ट उसके अनेक मूल तत्वों के कारण होती।

बोध प्रश्न -1

1. फीचर किसे कहते हैं?
2. फीचर को कौन से नौ तत्व आकर्षक बनाते हैं?
3. फीचर समाचार का सरस, व्यापक संदर्भयुक्त मोहक विस्तार है'। क्या आप इससे सहमत हैं?

2.4 फीचर के मूल स्वरूप

2.4.1 समाचारो फीचर

समाचारयुक्त फीचर में दैनिक समाचार को मनोरंजक ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाता है । वे अल्पकालिक महत्व के होते हैं । जिन घटनाओं का या तो उसके किसी पक्ष का समाचारिक महत्व नहीं होता, परन्तु जो पाठक को आकर्षक लगने वाली होती हैं, उन्हीं को जल्दी और संक्षेप में मनोरंजक तथा आकर्षक ढंग से लिखकर फीचर का रूप दे दिया जाता है । उदाहरण के तौर पर किसी स्त्री का बच्चा नदी में डूबकर मर गया । यह तो समाचार हुआ । दुखिया स्त्री को सपना आया । उसने नदी

के किनारे अपने पुत्र के कपड़े देखे । उन्हें वहां जाकर पहचाना और इस प्रकार पुत्र के डूबकर मरने की पुष्टि हुई । पुत्र-वियोग, स्वप्न-ज्ञान और सबके साथ जुड़ी हुई मातृत्व की भावना को प्रकाश में ला देने से संक्षिप्त समाचारी फीचर तैयार हो गया ।

तात्कालिक समाचारी फीचर लिखने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना जरूरी है । यह एक ऐसी पेशबंदी है, जिससे फीचर की पकड़ आसान हो जाती है और जिससे लेखन भी सरल हो जाता है-

1. दैनिक घटनाओं और समाचारों में मानवीय पक्ष की खोज ।
2. जीवन के सुखांत और दुखांत पहलुओं पर विचार ।
3. अधिक याद रहने वाली कहानी ही पाक को अधिक छूती है ।
4. करुण फीचर को सरल और संवत रखा जाए ।
5. छिछले हास्य और बाजारू भाषा का प्रयोग न करें ।
6. धर्म, जाति और राष्ट्रीयता पर आक्षेप न हो ।
7. शब्दों के चयन पर विशेष ध्यान रखा जाए ।
8. घटना के आकर्षक पहलुओं पर ध्यान दिया जाए, लेखक उन्हें अपने मन से न गढ़े ।
9. फीचर में बनावटी तथ्यों को भरने की कोशिश न की जाए । बनावटी तथ्यों से फीचर को औपन्यासिक रूप देना उपयोगी नहीं । तथ्य पवित्र है, नाटकीयता नहीं ।

2.4.2 विशिष्ट फीचर

विशिष्ट फीचर के लिए सामग्री एकत्र की जा सकती है । कुछ सामग्री लेखक के पास है । पुरानी एकत्र सामग्री भी काम में आ सकती है । पुरानी स्मृतियों को ताजा किया जा सकता है और उन्हें पुनः आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है । नियतकालिक विषयों पर लिखे गए फीचर थोड़े हेरफेर के साथ कभी भी काम में आ सकते हैं, उत्सवों, ऋतुओं, पर्यटन-स्थलों, ऐतिहासिक स्थानों, महापुरुषों, चिरस्मरणीय घटनाओं तथा जीवन के शाश्वत प्रश्नों पर लिखे गए फीचर सदैव ताजा रहते हैं । उन्हें सदा पसंद किया जाता है ।

इस प्रकार के तैयार करने के लिए पहले से तैयारी करनी पड़ती है । इन्हें लिखने के लिए सामग्री जुटानी पड़ती है और स्वाध्याय जारी रखा जाता है । नोटबुक में यथास्थान लिखना चालू रहता है । समाचारपत्रों की कतरनें विषयवार एकत्रित करनी पड़ती है । अत: फीचर के लेखक को इन बातों पर विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है-

1. लेखक को कौन-कौन से विषय रुचिकर हैं, उसका किन-किन विषयों पर अधिकार है और, उन विषयों के बारे में लेखक को अन्य साहित्य जुटा सच्चे की सुविधा है तथा ज्ञानवर्धन का कोई और साधन भी संभव है अथवा नहीं? इन सब बातों पर विचार करने के पश्चात फीचर का विषय निश्चित करना चाहिए ।
2. जो-जो फीचर के विषय हमने सोचे हैं, उनके बारे में हमारा अनुभव कितना है और उस अनुभव को और कितना अधिक बढ़ाया जा सकता है? दूसरों के अनुभवों के आधार पर अच्छा फीचर

नहीं लिखा जा सकता । जब तक हमारे पास कुछ अपने अनुभव नहीं होंगे, तब तक दूसरे व्यक्तियों के अनुभवों के खरे-खोटे होने का पता भी तो नहीं लग सकता।

3. फीचर लेखक में निरीक्षण-शक्ति का होना अति आवश्यक है । निरीक्षण-शक्ति का अर्थ केवल देख सकता ही नहीं, किसी वस्तु को देखकर उसके प्रभाव को हृदयंगम करना भी होता है । निरीक्षण-शक्ति की सहायता से लेखक उन तथ्यों तक पहुंच सक्ता है, जिन तक सामान्य पाठक कभी नहीं पहुँच पाता । निरीक्षणशक्ति के अभाव में फीचर के लेखक में अपनापन नहीं आता । फीचर का न अपना व्यक्तित्व निखरता है और न लेखक का व्यक्तित्व ही बनता है। पैनी निगाह से देखने, उस पर मनन करने तथा अपने निष्कर्षो पर पहुंचने का सतत अभ्यास जरूरी है ।
4. फीचर का मूल आधार समाचार है । समाचार केवल पढ़े ही न जाएं, बल्कि फीचर के उपयुक्त लगने वाले समाचारों की कतरने भी एकत्र होती रहें । समाचारी फीचर के तथ्यों को आधार बनाकर जब लेखक स्वप्न के रहस्य, उनकी सत्यता, उनमें तारतम्य का गठन, दुर्घटनाओं और स्वप्नों का ताल-मेल मनोरंजक ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वे हृदय को छू जाएं, तब वह सम्पूर्ण फीचर बन जाता है । इस प्रकार का फीचर तैयार करने में कुछ समय तो लगता ही है । सम्पूर्ण फीचर तुरत-फुरत का लेखन नहीं, वह तो अध्ययन, अध्यवसाय और लेखन-चातुरी का चमत्कार होता है । सम्पूर्ण फीचर सामयिक, स्थानीय, देशव्यापी, सर्वदेशीय, नियतकालिक और शाश्वत हो सकते हैं । विशिष्ट फीचर में लेखक के साहित्यिक तथा वैज्ञानिक तरीकों के साथ-साथ प्रखर वर्णन शैली और नाटकीयता का आश्रय लेकर तथ्य-कथ्य को अधिक विस्तृत, संवेदनशील, आकर्षक तथा मनोरंजक बनाया जाता है । लेखक उसके माध्यम से पाक को शिक्षण भी देता है, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप में जबकि समाचारी फीचर में किसी प्रकार अथवा किसी रूप में शिक्षण समाहित नहीं होता ।

2.5 फीचर- लेखन

2.5.1 फीचर-लेखक की योग्यताएं

फीचर-लेखक की कलम में रवानगी होनी चाहिए, जिसके लिए प्रतिभा, परिश्रम और अनुभव की विशेष आवश्यकता है । अच्छे फीचर-लेखक में निम्न विशेषताएं अवश्य होनी चाहिए-

1. फीचर-लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए । यदि भाषा लेखक के इशारों पर थिरकती रहेगी तो फीचर में लालित्य और तरलता का समावेश हो सकेगा ।
2. फीचर-लेखक का ज्ञान बहुआयामी भी होना चाहिए । धर्म, दर्शन, संस्कृति, समाज, साहित्य, इतिहास आदि की समझ फीचर को पूर्ण तथा तर्कसंगत बनाती है ।
3. फीचर को प्रभावकारी तथा मनोरंजक बनाने के लिए आवश्यक है कि फीचर-लेखक के पास कवि-सा लय, समीक्षक-सा प्रौढ़ चिंतन, इतिहासकार-सा इतिहास-बोध, वैज्ञानिक-सी तार्किकता, समाजशास्त्री-सा समाज-बोध तथा युगदृष्टा की भांति भविष्य को परखने की शक्ति हो ।

4. आधुनिक फीचर कला में चित्रकला तथा फोटोग्राफी का विशेष स्थान है । अत: फीचर-लेखक को रेखांकन तथा छायाचित्रों की गहरी पकड़ होनी चाहिए, ताकि अपने फीचर की विषयवस्तु के अनुरूप वह उसमें रेखाचित्रों का समायोजन कर सके ।
5. फीचर-लेखक को परिवेश के प्रति सजग तथा समसामयिक परिस्थितियों के प्रति जागरूक होना चाहिए, ताकि. वह उन विविध विषयों को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देख सके, जिन पर रोचक फीचर लिखे जा सकते हों ।
6. फीचर-लेखक को अपनी आंतरिक प्रवृत्ति, ज्ञान और अनुभव पर विश्वास होना चाहिए ।
7. फीचर-लेखक को अपनी आंखों तथा कानों पर विश्वास रखते हुए भावों, अनुभूतियां, एवं निरीक्षण - शक्ति का सहारा लेकर फीचर तैयार करने चाहिए ।

2.5.2 फीचर-लेखन की तैयारी

1. फीचर-लेखक दूसरे लोगों से साक्षात्कार भी करता है और लोगों के अनुभवों की जानकारी प्राप्त कर आलेख तैयार करता है । साक्षात्कार पर आधारित लेख में अनेक तथ्य जीवन के निचोड़ के रूप में मिल जाते हैं । अत: अपने और अन्य लेखकों के साक्षात्कार विषयक लेखों की कतरनें जमा करनी चाहिए । ये फीचर-लेखन में बड़े उपयोगी सिद्ध होती हैं ।
2. सरकारी और विभागीय रिपोर्टो की विस्तृत जानकारी तो समाचारपत्रों में प्रकाशित नहीं हो पाती। अनेक रिपोर्टों में ऐसे तथ्य अप्रकाशित रह जाते हैं, जो बड़े मार्मिक और प्रभावशाली होते हैं।
3. मानसिक आधार पर गहन चिंतन किए बिना स्थूल आधार पर आडंबर और पुस्तकों के अध्ययन पर लगाया गया समय बेकार ही रहता है । इस मानसिक आधार को पुष्ट करने के लिए फीचर लेखक को निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।
   (1) फीचर का विषय ऐसा होना चाहिए जो रुचिकर हो, लोकमानस को छूने वाला हो, इसके लिए यह जरूरी है कि विषय समयोचित हो ।
   (2) कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनका दायरा विस्तृत होता है और कुछ का केवल स्थानीय । स्थानीय विषय के फीचर में स्थानीय बातों को प्राथमिकता दी जाती है, उन्हीं को उभार दिया जाता है । स्थानीय विषयों से हटकर पाठकों की रुचि को ध्यान में रख जो फीचर लिखे जाते हैं, उनका दृष्टिकोण विस्तृत होता है । उनमें संदर्भ भी ऐसे नहीं दिए जाते जो केवल स्थानीय महत्व के हों । ऐसे फीचरों की भाषा में ऐसे मुहावरों का आना भी उचित नहीं, जो केवल आंचलिक कहे जा सकते हैं ।
   (3) किस पत्र-पत्रिका के लिए फीचर लिखा जा रहा है, इसका विचार लेखक के मन में रहना चाहिए । प्रत्येक पत्र-पत्रिका का अपना अलग व्यक्तित्व होता है । उसके अपने पाठक होते हैं । अभ्यास के कारण उन पाठकों की एक प्रकार की रुचि बन जाती है । उनके दिमाग किसी खास सांचे में ढ़ल जाते हैं । अत: यह आवश्यक है कि फीचर-लेखक किसी विशेष पत्र के लिए फीचर लिखते समय उसके पाठकों की वृत्ति, रुचि और पत्र की नीति का भी ध्यान रखे ।

(4) पाठक की रुचि और पत्र की नीति का ध्यान रखते समय लेखक को इस तथ्य पर भी नजर रखनी चाहिए कि फीचर सामान्य पाठक के लिए है, न कि विशेष के लिए । सामान्य बुद्धि के पाठकों की संख्या अधिक होती है और उन्हीं से किसी पत्र की लोकप्रियता आंकी जाता है । सामान्य पाठक ने फीचर पसंद किया, तो समझिए कि फीचर-लेखक की कदर बढ़ने की संभावना है ।

(5) जहां तक फीचर के आकर्षण का प्रश्न है वह बहुमुखी हो न कि अति सीमित । आकर्षण का आधार एकांगी होने से पाठकों की संख्या सीमित होगी और वह उन्हें कम रुचेगा । मानव स्वभाव बहुरंगी है । उसकी प्रकृति एकरूपता से जल्दी ऊब जाती है । उसे विविधता में मजा आता है । इसी रहस्य को ध्यान में रखकर फीचर में आकर्षण की विविधता लाने का प्रयास किया जाता है ।

(6) फीचर का पाक उसमें समाहित सत्यों और अनुभवों का परीक्षण करने को आतुर हो जाता है । अत: फीचर में जो बातें लिखी जाएं, वे पूर्ण रूप से व्यावहारिक होनी चाहिए । वे ऐसी काल्पनिक न हों, जिनका किसी धरातल पर परीक्षण न हो सके । यदि ऐसा हुआ तो पाक का लेखक पर से विश्वास उठ जाएगा और उसकी कृति भविष्य में लोकप्रियता खो देगी ।

2.5.3 भाषा,शैली और आंतरिक गठन

जब हम लिखेंगे तो हमारा लिखने का अपना कोई ढंग होगा । वह ढंग बेढंगा भी हो सकता है और अच्छा भी। लेखन का अच्छा ढंग ही शैली बन जाता है । "लेखन कला" पुस्तक के लेखक आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार- "लेखन की अच्छी शैली वही है, जो लोक-प्रयोगों से समन्वित हो, जो अपनी, और अपने देश की जान पड़े, जिसमें शब्दों का प्रयोग शिष्ट और प्रभावोत्पादक, हो, पाठक जिसे भली प्रकार समझ सकें।"

संपादकाचार्य बाबू बालमुकुंद गुप्त ने एक प्रसंग में लिखा है- "लिखने की भाषा भी वही अच्छी समझी जाती है जो बोलचाल की भाषा हो, मनगढ़ंत न हो, उसी को बामुहावरा भाषा कहते हैं । मुहावरे का अर्थ बोलचाल है । भाषा का एक दोष जटिलता भी है । जिस वाक्य में "अर्थात्" की जरूरत पड़ती है, उसको सरल-स्वच्छ भाषा में लिखने वाले कभी पसन्द नहीं करते, एक अन्य स्थान पर गुप्तजी ने विचार प्रकट किया है- "किसी देश की भाषा उस समय तक काम की नहीं होती, जब तक उसमें उस देश की मूल भाषा के शब्द बहुतायत के साथ शामिल नहीं होते'।

भाषा और भाव के उचित संमिश्रण से शैली बनती है । किसी विद्वान की मान्यता है कि भावहीन भाषा से भाव की सृष्टि नही हो सकती । बिना संयत भाषा के अभिप्रेत भाव भी व्यक्त नहीं होता ।

मोटे तौर पर शैली के दो प्रकार हैं-वर्णनात्मक और भावात्मक । एक में लेखन का ढ़ंग वर्णन कर रूप लेता है और दूसरे में भाव की प्रधानता होती है । इन दोनों शैलियों का मिश्रण भी हो सकता है । फीचर-लेखन में मिश्रित शैली का प्रयोग ही अधिक उपयुक्त होता है । हमारे गद्य की भाषा लयात्मक होनी चाहिए । उसमें लय-लालित्य होगा, तब वह आनंददायक होगी । भाषा-शैली को गौण समझना उचित नहीं । पहले तो इस बात का महत्व है कि जो कुछ कहा जा रहा है वह कैसे, किस ढंग से, किस

चातुरी से और वह कैसा चमत्कार उत्पन्न करने वाला है । उसके पश्चात "क्या कहा जा रहा है" के महत्व की गणना होती है।

शैली के आवश्यक गुण हैं -सरलता, स्पष्टता, सजीवता, मर्मस्पर्शिता और प्रभावोत्पादकता । इनके साथ "विनोद" का पुट हो, तो वह सोने में सुहागे का काम करता है । बालकृष्ण भट्ट ने एक स्थान पर लिखा है- "सच पूछो तो हास्य ही लेख की आत्मा है । लेख पढ़कर कुंद की कली के समान दांत न खिल उठें, तो वह लेख ही क्या है ।"

इसके साथ ही यह कहना भी पूरी तरह ठीक नहीं कि व्यक्ति ही शैली है अथवा शैली ही व्यक्ति है । विश्वनाथ प्रसाद ("भाषा, "द्विवेदी स्मृति अंक, अगस्त 1964) की मान्यता है कि शैली के पूर्ण विकास के लिए यह आवश्यक है कि लेखक या कवि अपने विषय में अपने आपको बिलकुल डुबकर, अपने आपको बिल्कुल भूलकर रम जाए । विषय के वर्णन मे आत्मविभोर हुए बिना शैली का निखार कहां? शैलीकार तो अपने व्यक्तित्व का होम करके ही, अपने को बिलकुल खपा करके, वातावरण के स्वरूप अथवा स्वानुभूति कह यथावत् अंकन कर पाता है ।

फीचर लेखन की शैली में व्यक्तित्व का प्रदर्शन नहीं, उसका गोपन अधिक आवश्यक अंग माना जाता है । विषय, प्रसंग, परिस्थिति और प्रकरण के अनुरूप ही फीचर-लेखक शब्दों का चयन और वाक्यों का गठन करता है । यह लचीलापन ही शैली को निखारता है और यही उसमें प्रसाद गुण की वृद्धि करता है।

फीचर-लेखन की शैली के बारे में के. पी. नारायणन् का विचार है- "वह छोटी नदी के प्रवाह-जैसी होनी चाहिए । फीचर के लिए भावात्मक शैली का प्रयोग अधिक उपयुक्त है ।"

फीचर लेखन की प्रभावोत्पादक शैली के लिए संक्षेप मे आवश्यक गुण इस प्रकार हैं-

1. "अरथु अमित अति आखर थोरे" -तुलसीदास
2. प्रसाद गुण, आसानी से समझ में आ जाए
3. साहित्यिक पुट लिए टकसाली तथा ओजपूर्ण भाषा
4. शब्दों तथा वाक्यों के अर्थ गौरव का ज्ञान और उसका शुद्ध प्रयोग
5. कहने का अपनापन जो नवीन, चटकीला, सटीक और मनोरंजक हो
6. मुहावरे, कहावतों और सूक्तियों का सही प्रयोग
7. वाक्यों का गठन सरल हो, परन्तु ढीलापन लिए हुए नहीं
8. वाक्यों के गठन में अनेक रूपता
9. शब्दों, वाक्यों और विचारों की पुनरावृत्ति न हो
10. पैरा न तो बहुत छोटे हों और न अधिक लम्बे ही
11. जहां तक संभव हो पैरा के प्रथम वाक्य में ही महत्वपूर्ण नवीन विचार को प्रथम स्थान मिल जाए
12. प्रत्येक पैरा के गठन में भी विविधता जान पड़े
13. प्रत्येक वाक्य और पैरा में कथन का तारतम्य बना रहे
14. अनावश्यक कुछ न हो, न भाव और न वाक्य

15. विषय के अनुरूप कथन का रूप हो
16. तकनीकी तथा दुरूह वृक्षावली तथा शब्दों का कम से कम प्रयोग किया जाए
17. ग्रामीण शब्दों का प्रयोग न किया जाए तो अच्छा । प्रसंगानुसार उनका कहीं प्रयोग कर भी दिया जाए तो बुरा नहीं
18. भाव और भाषा में उलझन न जान पड़े
19. अनुवादी भाषा का पूर्ण परित्याग
20. भाव और भाषा के संस्कारों की रक्षा का ध्यान
21. शैली परिमार्जन के लिए रचना का बार-बार पतन ।

2.5.4 शीर्षक

शीर्षक का नयापन, उसकी ताजगी और आकर्षण फीचर के सौंदर्य की अभिवृद्धि में विशेष सहायक होता है । शीर्षक लगाना कष्टसाध्य कार्य है । अनेक बार यह देखा गया है कि हम निबंध, फीचर आदि तो लिख लेते हैं, किन्तु सटीक शीर्षक देते समय काफी परेशानी महसूस करते हैं । घंटों तक शीर्षक नहीं सूझता । वस्तुत: शीर्षक थोड़े से शब्दों का समुचय है, जिसमें सम्पूर्ण फीचर का मूल कथ्य या भाव हमारे सामने प्रकट हो जाता है । शीर्षक स्वयं में सम्पूर्ण फीचर की विषयवस्तु को संजोए रखता है । सामासिकता अच्छे शीर्षक का प्रमुख गुण है । आज के इस यांत्रिक एवं गतिशील जीवन में पाठक के पास अधिक समय नहीं हैं । शीर्षक का ताजापन ही उसकी रुचि एवं चेतना को फीचर को पढ़ने पर मजबूर कर सकेगा । शीर्षक का साज-सज्जा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान है । पृष्ठ को आकर्षक तथा सुरुचिपूर्ण बनाने में भी शीर्षक का विशेष योगदान होता है । अत: इस क्षेत्र में फीचर-लेखक को अपने ज्ञान और अनुभव का पूरा उपयोग करना चाहिए । शीर्षक चुनते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें पूर्णता हो । अपूर्ण तथा अस्पष्ट शीर्षक फीचर के प्रभाव को कम कर देते हैं । कुछ लेखक या संपादक उपशीर्षकों का भी प्रयोग करते हैं । उपशीर्षकों से फीचर की विषयवस्तु शीघ्र ही स्पष्ट हो जाती है । अत: सूझबूझ के साथ इनका प्रयोग भी करना चाहिए ।

2.5.5 प्रस्तावना या भूमिका

प्रस्तावना, भूमिका, आमुख या "इंट्रो" फीचर का प्राण है । यह फीचर का मुखारविंद है, चेहरा है । फीचर का सार तत्व या मुख्य तथ्य का उद्‌घाटन इस खंड में प्रस्तुत करने की सामान्य परंपरा है । अच्छा "इंट्रो" ही पाठक को पूरा फीचर पढ़ने के लिए मजबूर करेगा । घटिया या साधारण स्तर का "इंट्रो" अच्छे से अच्छे फीचर का "काल" बन जाता है । "इंट्रो" की नाटकीयता, मनोरंजकता, भावनात्मकता अथवा आलंकारिता अनायास ही फीचर में सजीवता का संचार कर देती है । पाठक की जिज्ञासा-वृत्ति को जागृत करने वाले, प्रथम पंक्ति में ही पाठकों को आकृष्ट कर लेने वाले तथा फीचर के मूल उद्देश्य को स्पष्ट करने वाले इंट्रो ही श्रेष्ठ तथा स्तरीय माने जाते हैं । जिस प्रकार किसी मनुष्य से प्रथम साक्षात्कार के समय उसके मुख-मंडल को देखकर उसके व्यक्तित्व का अनुमान करते हैं और उसकी छवि हम अपने हृदय में अंकित कर लेते हैं, उसी प्रकार आमुख के माध्यम से हम फीचर की आत्मा से साक्षात्कार करते हैं ।

2.5.6 विवेचन या विश्लेषण

आमुख के बाद वस्तु विवेचन या विश्लेषण में फीचर की मूल संवेदना या कथ्य की व्याख्या की जाती है, इसी केंद्रीय भाव को दृष्टिगत करता हुआ तथा विचारों के तानेबाने बुनता हुआ लेखक विभिन्न परिच्छेदों में लययुक्त क्रम से अपनी बात कहता चलता है । भाव या विचारों की विश्रृंखलता फीचर को हल्का व प्रभावहीन कर देती है । अत: लेखक को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि उसकी भाव या विचार-चेतना मूल कथ्य या विषय पर ही केंद्रित रहे । विषय को अधिक पुष्ट एवं प्रामाणिक बनाने वाले तथ्यों एवं विचारों का ही इस खंड में आंकलन, संकलन व ग्रंथन होना चाहिए । असंबद्ध तथा विषयेतर प्रसंगों के समावेश से फीचर पाठकों की दृष्टि की पकड़ खो देता है । अत: इस बारे में नवोदित फीचर-लेखकों को विशेष जागरूक रहना चाहिए ।

2.5.7 उपसंहार या निष्कर्ष

फीचर का अंतिम भाग उपसंहार या निष्कर्ष कहा जाता है । इस खंड में लेखक किसी निष्कर्ष पर पहुंचता हुआ पाठक की जिज्ञासाओं का समाधान कर देता है या दिशा संकेत देकर बात समाप्त कर देता है । उपसंहार प्रभावोत्पादक होना चाहिए ।

2.5.8 चित्रांकन

फीचर के साथ उसकी विषयवस्तु के अनुरूप नक्शे, चित्र या रेखाचित्र देने से आकर्षण और प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है । अत: फीचर लिखते समय तत्संबंधी कार्टूनों, चित्रों आदि का प्रयोग करना चाहिए । आजकल रेखाचित्रों, चित्रों तथा कार्टूनों का चलन बहुत बढ गया है । अत यह आवश्यक है कि फोटोग्राफी की सामान्य जानकारी लेखक, पत्रकार और संपादक को हो, जिससे कि वह चित्रों का चयन या उनको खिंचवाने की व्यवस्था स्वयं कर सके ।

2.6 विभिन्न विधाओं से तुलना

फीचर और संपादकीय, लेख, निबंध, कहानी आदि में मौलिक अंतर है, हालांकि कुछ विधाओं के तत्व फीचर में भी होते हैं ।

2.6.1 निबंध. लेख और फीचर

निबंध, (अंग्रेजी पर्याय "ऐसे") का अर्थ किसी विषय अथवा विचार से संबंधित सामग्री को बांधना या एकत्र करना है । निबंध मुक्त अथवा स्वच्छंद रचना है । फ्रांसीसी-लेखक माइकेल दमानतेन "ऐसे" या निबंध के जनक माने जाते हैं । वह निबंध के माध्यम से अपने "मैं " को सच, सहज और सामान्य तरीके से व्यक्त करते हैं । उन्हीं का अनुकरण कर निबंध लेखक का “मैं " खुलकर खेलता रहा । बाद में निबंध में "मैं " बहुत कुछ लुप्त हो गया । अब उसमें दुनिया का सब कुछ होता है सिर्फ "मैं " नहीं । लेखक को मनमानी करने की छूट होती है । वह विषय या विचार का बंधन नहीं मानता । निबंध लेखन मनमाने या अनाड़ी ढंग से शब्दों का खिलवाड़ नहीं है । वह गद्य में अभिव्यक्ति की ऐसी सिद्धि और ऐसा कलात्मक संप्रेषण है, जिसमें लेखक अपने जीवनानुभवों और उपलब्धियों को जाने या अनजाने

इस प्रकार रखता है कि पाठक उसी भाव-भूमि पर सचरण करने लगता है । उसमें लेखक का "अपनापन" स्पष्ट झलके । विषय तो व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की बैशाखी मात्र है ।

लेख आधुनिक शब्द है । इसका प्रयोग अंग्रेजी शब्द "आर्टिकल" के पर्याय के रूप में होता है । यह शब्द पत्रकारिता के विकास के साथ जुड़ा हुआ है । लेख में मुख्यत निर्वेयक्तिक ढंग से किसी विषय का विवेचन होता है । निबंध और लेख मे विशेष अंतर नहीं है । निबंध में पांडित्य का रूप अधिक निखरा हुआ और भारी भरकम होता है । लेख बहुत कुछ हल्कापन लिए हुए होता है । निबंध स्थायी साहित्य का अंग बन सकता है और बन जाता है । लेख की दृष्टि सामयिक है । वह तुरत-फुरत वाले साहित्य की कोटि में आता है ।

निबंध, लेख और फीचर की तुलना करें तो पाएंगे कि निबंध और फीचर दोनों में श्रेष्ठ गद्य के दर्शन होते हैं । दोनों स्थायी साहित्य की कोटि में पहुंचने की कोशिश में रहते हैं । दोनों में आधारभूत विषय-चयन कोई सीमा नहीं । निबंध में "मैं" किसी न किसी रूप में झलकता है । फीचर में "मैं" होता ही नहीं और होना भी नहीं चाहिए । निबंध में पांडित्य की झलक अवश्य होती है । फीचर में पांडित्य का लेशमात्र दर्शन नहीं होता ।

लेखक और फीचर पत्रकारिता से अधिक संबद्ध हैं । लेख और फीचर दोनों का ही आधार सामयिक कोटि का होता है । फीचर तथा लेख अच्छे गद्य के नमूने होने चाहिए । दोनों सूचनापरक हैं और इनका अपने-अपने प्रकार से आकर्षक होना जरूरी है । लेख के विषय विस्तृत और गहन होते हैं । लेख एक विषय को छूता हुआ अनेक विषयों को अपने दायरे में समेट लेता है । लेख में विद्वत्ता का पुट होता है । वह शैली और प्रतिपादन करने में अधिक गंभीर होता है, पर निबंध की तुलना में कम, लेख औपचारिक होता है । किसी तथ्य का प्रतिपादन करते समय अपना मत प्रकट करना लेखक का पूर्ण अधिकार ही नहीं है, उससे उसकी अपेक्षा भी की जाती है । फीचर अनौपचारिक ढंग से लिखा जाता है । फीचर-लेखक अपनी राय संक्षिप्त रूप में ही प्रकट करता है । आलोचना करने का उसका तरीका सीधा न होकर अप्रत्यक्ष होता है ।

लेख में तथ्यों, तारीखों और आकड़ों का बाहुल्य हो सक्ते है । लेख की सीमा पर कोई प्रतिबंध नहीं । यदि सीमा है, तो पत्र-पत्रिका के आकार और संपादक की इच्छा के अनुसार ।

फीचर का विषय निश्चित और संकुचित होता है । उसमें अधिक तथ्यों और आकड़ों का दिया जाना जरूरी नहीं । लेख में चित्र आवश्यक नहीं । चित्र और कार्टून फीचर के आवश्यक अंग हैं । अनेक फीचर चित्र-प्रधान होते हैं । फीचर में रंगीनी और नाटकीयता होनी ही चाहिए । फीचर-लेखन की शैली गंभीर न होकर विनोदी होती है । मन पर चोट और उस पर अधिकाधिक प्रभाव डालने का गुण उसमें होना जरूरी है । फीचर का स्वरूप छोटा ही होना चाहिए ।

किसी एक विषय पर लेख के लिए जितनी तैयारी की जरूरत है, उससे कहीं अधिक मसाला फीचर के लिए जुटाना पड़ता है । लेख के कारण, प्रवृत्ति और विचारधारा पर अधिक रोशनी नहीं डाली जाती । फीचर तो अधिकतर घटनाचक्र और लोक-प्रतिक्रिया पर केंद्रित रहता है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि लेख और निबंध मस्तिष्क की उपज है तो फीचर हृदय की । लेख और निबंध मानस-पुत्र हैं । फीचर है हृदयतंत्री की झनकार ।

2.6.2 समाचार और फीचर

समाचार घटना का विवरण है । घटना स्वयं में समाचार नहीं । दूसरी तरफ फीचर का आधार समाचार है । फीचर समाचार नहीं है । विलियम एल. रिवर्स ने "द मारन मीडिया" नामक अपनी पुस्तक में विचार व्यक्त किया है कि फीचर का जाल समाचार से बड़ा होता है । फीचर-लेखक पठनीय अनुभव प्रस्तुत करता है । उसमें सूचना को उतना महत्व नहीं दिया जाता, जितना शैली, लालित्य और विनोद को ।

"इंवेस्टीगेटिव रिपोर्टिंग" पुस्तक के लेखक प्रो. करटिस डी. मैकडेगल दोनों मे उद्देश्य का भेद मानते हैं । फीचर समाचार को आच्छादित कर लेता है । खोजी और व्याख्यात्मक समाचारों पर भी फीचर छा जाता है । समाचार पत्रों में भी समाचार की तुलना में फीचर को अधिक महत्व दिया जाता है ।

समाचार तथ्यपरक होता है, फीचर उस समाचार को नया आयाम देता है । उसकी परीक्षा और शल्य-क्रिया भी कर डालता है । दोनों की लेखन-शैली में भेद होता है । समाचार संक्षिप्त और रूखाई लिए है, पर फीचर उसकी तुलना में अधिक रंगीन और सजा- धजा । इन दोनों के प्रस्तुतीकरण में भी भेद है । समाचार को "अन्य पुरुष" के रूप में लिखा जाता है । फीचर को उत्तम, मध्यम अथवा अन्य पुरूष के रूप में लिख सकते हैं । फीचर में तथ्य रंगीन और सजीव होते हैं । चुटीली तथा प्रभावोत्पादक भाषा उसमें पृष्ठभूमि, प्रतिपादन और भावात्मक प्रस्तुतीकरण का आधार होती है । फीचर लेखक अधिक विमर्शक होता है और समाचार लेखक अधिक वर्णनात्मक । फीचर का शाश्वत तत्व समाचार की क्षणभंगुरता को लांघने वाला होता है ।

2.6.3 कमेंट्री और फीचर

कमेंट्री शब्द पत्रकारिता क्षेत्र में बहुत प्रयुक्त होता है । इस शब्द का प्रयोग दूरदर्शन अथवा आकाशवाणी पर दृश्यगत के वर्णन के साथ समीक्षा के रूप में होता है । अंग्रेजी का कमेंट शब्द टीका-टिप्पणी के अर्थ में प्रयुक्त होता है । इस शब्द से कमेंट्री शब्द बना है । उसका अर्थ है "किसी तथ्य का वर्णन करते हुए आलोचना, समीक्षा या टीका करना" । ब्रियन निकल्स का कहना है कि फीचर का बांकपन उसमें निहित भावुकता और टीका में हैं । कमेंट्री में वर्णन और टीका है, पर भावुकता नहीं । लेखन अथवा मौलिक वर्णन में तथ्यपरक आलोचना का थोड़ा बहुत अंश हो, तो पाठक या श्रोता को अच्छा लगता है । कमेंट्री में भावुकता को स्थान देना उचित नहीं । फीचर में तथ्यों की व्याख्या और टीका के साथ भावुकता का विशेष पुट होना आवश्यक है ।

2.6.4 कहानी और फीचर

फीचर तथ्यों पर आधारित है, पर कहानी कल्पना पर 1 फीचर विश्वसनीय है, कहानी नहीं । कहानी-लेखन भी सधी घटनाओं पर आधारित हो सकता है, पर उसे इतना तोड़ा-मरोड़ा और विरूपित कर दिया जाता है कि न वह इतिहास रहती है और फीचर ।

2.6.5 संपादकीय और फीचर

विलियम एल. रिवर्स की मान्यता है कि संपादकीय, समीक्षा तथा अन्य विचार लेखों से फीचर अलग होता है । यह भेद है केवल "राय" की अभिव्यक्ति के प्रकार में । तर्कसंगत निर्णय और वकालत में जो भेद है, वही फीचर और संपादकीय आदि में । फीचर-लेखक तथ्यों को तोलता है, उनके आधार पर वकालत नहीं करता । वह पाक को फुसलाता नहीं, पर उसके ज्ञान में वृद्धि करता है।

संपादकीय से फीचर कहीं मेल खाता है, कहीं नहीं । उनका मेल तो वही तक है, जब वे समाचार के तथ्यों का विश्लेषण करते, विशिष्टता प्रदान करते अथवा उन्हें छिपाते हैं । फीचर संपादकीय से तब भिन्न हो जाता है, जब उसमें तथ्यों का निष्पक्षता से सर्वेक्षण किया जाता है । संपादकीय में लेखक के विचार और मत पर विशेष जोर रहता है । फीचर इसके विपरीत है । उसका लेखक अपने विचारों का धनी तथा अपने मत का दृढ़ता से प्रतिपादक नहीं जान पड़ता है । सब कुछ होते हुए भी उसमें "अपनापन" नहीं होता । संपादकीय "लोकनेता" है, फीचर "जनसेवक।"

2.6.6 अन्य विधाएं और फीचर

फीचर की तुलना कहानी, नाटक, संस्मरण और रिपोर्ताज से कदापि नहीं की जा सकती । हां, यह अवश्य है कि लेखन की इन विधाओं की झलक फीचर में यथाप्रसंग आ सकती है । ऐसा करने से फीचर अधिक रोचक और प्रभावी बन जाता है । पर फीचर में इनका प्रयोग बहुत ही कम मात्रा में और उपयुक्त प्रकरण को अधिक निखारने के साधन रूप में करना चाहिए । जैसे मुख का सौंदर्य ललाट, कपोल अथवा चिबुक के एक-दो तिल बढ़ा देते हैं, वैसे ही इन विधाओं में से एक-दो का संक्षिप्त प्रयोग फीचर की शोभा की वृद्धि कर देता है । मुख पर छाए अधिक तिल जिस प्रकार उसको कुरूप कर देते हैं । उसी तरह फीचर में ऊपर दी गयी विधाओं की अधिक मात्रा उसकी विशिष्टता को समाप्त कर देती है । यदि हम यह कहें कि जैसे मुख और तिलों की तुलना करना हास्यास्पद है, वैसे ही फीचर की कहानी, नाटक, संस्मरण और रिपोर्ताज से किसी तरह की तुलना करने का प्रयास भी ।

बोध प्रश्न -1

1. मार्मिकता और संवेदनशीलता फीचर का प्राण है । इस कथन से क्या आप सहमत हैं? तर्क सहित उत्तर दीजिए ।
2. फीचर लेखन शैली के आवश्यक गुण बताइए ।
3. निबंध और लेख से फीचर की तुलना कीजिए ।

2.7 फीचर के विषय

परिवेश की व्यापकता के कारण फीचर-लेखन के लिए भी विभिन्न विषय चुने जा सकते हैं । मानवीय जीवन के विविध पहलुओं पर फीचर लिखे जा सकते हैं, तथा जनरुचि के अनेक क्षेत्रों को फीचर का विषय बनाया जा सकता है । सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पौराणिक आदि क्षेत्रों के विभिन्न विषयों पर श्रेष्ठ फीचर लिखे गए हैं । चित्रात्मक तथा व्यंग्यात्मक फीचर आज विशेष लोकप्रियता अर्जित कर रहे हैं । के. पी. नारायणन ने फीचर के तीन प्रमुख भेदों का विवेचन

किया है-व्यक्तित्व फीचर, त्यौहार फीचर तथा चित्रात्मक फीचर । पी. डी. टंडन ने पौराणिक फीचर का भी उल्लेख किया है ।

प्रेमनाथ चतुर्वेदी ने फीचर के दो प्रमुख भेद किए हैं-समाचार प्रधान और विशिष्ट तथा इन्हीं दो भेदों में समस्त प्रकारों को समाहित किया है । व्यावहारिक दृष्टि से फीचर के अनेकानेक भेद किए जा सकते हैं । कुछ मुख्य भेदों की चर्चा यहां की जा रही है -

2.7.1 व्यक्तित्व फीचर

प्रत्येक युग में ऐसे महान पुरुषों ने जन्म लिया है, जिन्होंने क्षेत्र-विशेष में महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त की है । उन पर फीचर लिखने का सामान्य प्रचलन है ।

2.7.2 समाचार फीचर

ऐसे फीचरों का मूल आधार समाचार ही होता है । ये फीचर कथात्मक गठन के कारण लोकप्रिय होते हैं । घटना का पूर्ण विवेचन-विश्लेषण इसके अंतर्गत किया जाता है । समाचार तो अपने आप में सूचनात्मक होता है, किन्तु समाचार फीचर उस समाचार के सन्दर्भ में व्यापक जानकारी, उसके विविध पक्षों एवं प्रवृत्तियों को समाहित करते हुए देता है ।

2.7.3 त्यौहार संबंधी फीचर

हमारे देश की संस्कृति त्यौहार बहुल संस्कृति है । विभिन्न जातियों संप्रदायों के अपने-अपने त्यौहार एवं पर्व हैं, जिनके पीछे एक सुदीर्घ सांस्कृतिक परंपरा रही है । होली, दीपावली, ईद, क्रिसमस आदि पर्वों पर ऐसे फीचर लिखे जाते हैं । इनमे पर्वो की मूल संवेदना एवं उनके पौराणिक संदर्भों को प्रस्तुत करके आधुनिक संदर्भो में उसकी व्याख्या-विश्लेषण करने की प्रवृत्ति रहती है ।

2.7.4 रेडियो-फीचर

रेडियो-फीचर समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले फीचर से सर्वथा भिन्न विधा है । इसकी शैली एवं स्वरूप में भी पर्याप्त भिन्नता है । इस भिन्नता का प्रमुख कारण यह है कि जहां पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित फीचर पढ़ने के लिए होते हैं, वहीं रेडियो फीचर प्रसारण के लिए होते हैं । इस कारण इसमें संगीत तथा ध्वनि-पक्ष काफी प्रबल होता है । लारेंस मिलियम ने फीचर को "वस्तु का रेडियो नाटकीय प्रस्तुतीकरण" (रेडियो ड्रैमेटिक प्रेजेंटेशन आफ एक्टिविटी) कहा है । लुई मैकनीस की धारणा है-रेडियो फीचर किसी गतिविधि का नाटकीय प्रस्तुतीकरण है । किन्तु इसमे लेखक की रिपोर्टर या फोटोग्राफर से कुछ और अधिक होना चाहिए, उसे अपनी यथार्थ सामग्री का चयन काफी विवेक से करना चाहिए तथा उसके बाद उसे इस प्रकार नियंत्रित करना चाहिए कि वह एकल नाटकीय प्रभाव के अनुकूल हो सके ।

भारत में ऑल इंडिया रेडियो की रिपोर्ट में फीचर की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है - "फीचर कार्यक्रम सूचनाओं तथा मनोरंजन को प्रस्तुत करने के सभी उपलब्ध साधनों एवं प्रसारण के तरीकों को रुचिकर रूप से प्रस्तुत करने की विधि है ।" हिन्दी साहित्य कोश में "रेडियो फीचर" का इतिहास इस प्रकार दिया गया है- " फेलियस फेल्टन के अनुसार बी.बी.सी. में "फीचर" नाम "डाकुमेंट्री" के लिए

व्यवहृत होता है । आज से लगभग 30 वर्ष पहले बी.बी.सी. में "फीचर" नाम की रचनाएं नहीं होती थी, लेकिन बी.बी.सी. का नाटक विभाग रेडियो टेकनीक के संबंध में नए-नए प्रयोग कर रहा था । उसे विशेष अवसरों के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करना पड़ता था । इन कार्यक्रमों की सूचनाएं "रेडियो हाइलाइट" या विशेष कार्यक्रम शीर्षकों से समाचारपत्रों में दी जाती थी । उसी प्रकार बी.बी.सी. के विशेष कार्यक्रमों की सूचनाएं पत्रों में निकलती थीं । इन्हें लोग "फीचर्ड प्रोग्राम" कहते थे । बोलचाल में "फीचर्ड" के "ड" का लोप हो गया और उसे "फीचर" प्रोग्राम कहने लगे । "

रेडियो फीचर का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । इसके माध्यम से हम महापुरुषों की जीवनी, क्षेत्र-विशेष की सांस्कृतिक जीवन-झांकी, ऐतिहासिक स्थानों का परिचय आदि पा सकते हैं ।

2.7.6 चित्रात्मक फीचर

चित्रों के माध्यम से अपनी बात कहने की प्रवृत्ति आज पाठकों में काफी लोकप्रिय हो रही है । ऐसे फीचर में चित्र ही अपनी बात कहते हैं, शब्दों की आवश्यकता काफी कम पड़ती है । चित्रों का चयन इस प्रकार से किया जाता है कि जिससे वे स्वत: ही अपनी कथा या मूलकथा को स्पष्ट कर देते हैं । चित्रों को आपस में जोड़ने के लिए तथा कथा का तारतम्य बनाए रखने के लिए कभी- कभी चित्रों के साथ शीर्षक दे दिए जाते हैं । लेकिन यहां चित्र ही प्रधान होते हैं, शीर्षक नहीं ।

2.7.7 व्यंग्यात्मक फीचर

सामाजिक और राजनैतिक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं पर व्यंग्य करते हुए सरस और चुटीली भाषा में हास्य का पुट देकर लिखे गए फीचर इस कोटि में आते हैं । इनके पीछे एक विशेष लक्ष्य या उद्देश्य रहता है । ये व्यंग्य मात्र छींटाकशी या चरित्र-हनन का प्रयास न होकर सामाजिक, राजनैतिक जीवन की विषमता, विद्रूपता और असंगति दिखाने के लिए लिखे जाते हैं । इनके मूल में सुधार की भावना रहती है । "ठिठुरता हुआ गणतंत्र" हरिशंकर परसाई का ऐसा ही व्यंग्य-फीचर है ।

2.7.8 यात्रा फीचर

यात्रा फीचर के कई रूप और उद्देश्य होते हैं । सैलानियों को दर्शनीय स्थलों और सुविधाओं की जानकारी देने के लिए लिखे गए फीचरों के मुकाबले मानसरोवर यात्रा के दौरान हुई अनुभूतियों का वर्णन-विश्लेषण अधिक सार्थक और पठनीय होगा । यह लेखक यात्री पर निर्भर करता है कि वह यात्रा के दौरान क्या देखता-सुनता है, उसकी उस पर क्या प्रतिक्रिया होती है और उसे वह व्यापक संदर्भो से कैसे जोड़ता है । यह जुड़ाव ही फीचर को विशिष्ट बनाता है ।

2.7.9 मानवीय रुचि-विषयक फीचर

मानवीय पहलू पर लिखे गये फीचर आज विशेष लोकप्रिय हो रहे हैं । विलियम रिवर्स के अनुसार- "मानवीय रुचि के फीचर वे हैं, जिनसे पाक भावनात्मक रूप से जुड़ा हो और जो पाठक को उत्तेजित या हतोत्साहित करे, क्रोधित या प्रसन्न करे और उसमें सहानुभूति या अरुचि उत्पन्न करें ।"

मानवीय रुचि के अनुकूल लिखे गए फीचर भाव-प्रधान होते हैं, जो कारुणिक, मार्मिक तथा अनुभूतिपूर्ण हो सकते हैं । ये फीचर पाठक की संवेदनाओं को उद्दीप्त करते हैं । वस्तुत: यह क्षेत्र अत्यन्त

व्यापक एवं विस्तृत है तथा अपराध, प्रेम, रोमांस, फैशन, स्वास्थ्य, मानवीय समस्याओं आदि विषयों पर लिखे गये फीचर काफी लोकप्रिय हो सकते हैं ।

2.7.10 ऐतिहासिक फीचर

अतीत की घटनाओं के प्रति मनुष्य के हृदय में स्वाभाविक उत्सुकता रहती है । ऐतिहासिक व्यक्तियों, घटनाओं और स्मारकों आदि पर भावपूर्ण ऐतिहासिक फीचर लिखे जा सकते हैं ।

इन भेदों के अतिरिक्त फीचर के कुछ और भेद किए जा सकते हैं । जैसे राजनैतिक फीचर, क्रीड़ा जगत संबंधी फीचर, पौराणिक फीचर आदि ।

2.8 सारांश

सामान्य समाचार के आधारभूत क्षेत्र यानि कौन क्या, कब, कहाँ, क्यों और कैसे के बाहर अथवा परे हटकर जानकारी देने वाला और मानवीय पल को वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत संवेदनशील रचना को फीचर कह सकते हैं । इसमें तथ्य रंगीन और सजीव होते हैं । भाषा चुटीली और असरदार होती है । फीचर किसी भी विषय पर लिखा जा सकता है । संदर्भों और प्रवृत्तियों की ओर संकेत करने वाला अनुभवाश्रित यह लेखन मर्मस्पर्शी होता है । पाठक घटनाओं को घटना-प्रधान समाचारों को आसानी से भूल जाता है लेकिन अच्छे फीचरों को नहीं । ये फीचर समाचार-पत्र को जानदार और अधिक पठनीय बनाते हैं ।

2.9 शब्दावली

फीचर (Feature)-रूपक फीचर का शाब्दिक अनुवाद हो सकता है और अनेक लेखक रुपक लिखते भी है, लेकिन रूपक अलंकार और नाटक के अर्थ में रूढ़ हो चुका है । फीचर शब्द चलन में आ गया है । इसलिए फीचर को फीचर ही कहना और लिखना चाहिए ।

इंट्रो (Intro)-समाचारों की तरह फीचर का भी आमुख या इंट्रो होता है ।

उप-शीर्षक (Sub-heading)-समाचारों में उप-शीर्षक देने की परंपरा नहीं है । लेकिन फीचर में बीच-बीच में उप-शीर्षक दिये जा सकते हैं, हालांकि यह अनिवार्य नहीं है ।

फोटो फीचर-फोटो फीचर में फोटो-चित्र प्रमुख होते हैं और शीर्षक या संक्षिप्त आलेख गौण, ये अतिरिक्त जानकारी देने और चित्रों को एक सूत्र में बांधने का काम करते हैं ।

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

फीचर लेखन-प्रेमनाथ चतुर्वेदी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली

रूपक लेखन-डॉ. ब्रजभूषण सिंह आदर्श, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

संपादन कला-के.पी. नारायणन, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल,

Feature With Flair - Brin Nichalls, Vikas Publications, New Delhi.

Feature Writing for Newspapers - Demiel R. Williamson.

Writing and Selling Feature Articles- Helen M. Patterson

Mass Communication and Joumalism in India - D. S. Mehta, Allied Publications, New Delhi.

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. फीचर के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए समझाइए कि निबंध से वह किस रूप मे भिन्न है ?
2. आपकी दृष्टि मे आदर्श फीचर की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ?
3. फीचर को विषयानुसार किन वर्गो में बांटा जा सकता है ?
4. अपनी रुचि के किसी विषय पर संक्षिप्त फीचर लिखिए ।

इकाई 3 टेलीविजन के लिए फीचर- लेखन

इकाई को रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 टेलिविजन-फीचर-अवधारणा एवं स्वरूप
3.2.1 टेलीविजन-फीचर के उद्देश्य
3.2.2 फीचर के स्रोत
3.3 टेलीविजन-फीचर के तत्व
3.4 ध्वनि एवं छायांकन
3.5 चित्र रूपक
3.6 सारांश
3.7 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 उद्देश्य

टेलीविजन के लिए फीचर-लेखन एक महत्वपूर्ण और नई विधा है । समाचारपत्रों और रेडियो के लिए फीचर-लेखन कला से आप परिचित होंगे । टेलीविजन के लिए फीचर लिखना इसलिए सहज नहीं है कि उसे लिखते समय छायांकन एवं ध्वनि पर भी दृष्टि रखनी पड़ती है । साथ ही फीचर का संपादन भी होता है ।

इस पाठ का मूल उद्देश्य आपको टेलीविजन के लिए फीचर कैसे लिखें, यह बताना है । इसके अध्ययन करने के बाद आप टेलीविजन-फीचर लेखन कला में पारंगत हो सकेंगे । उसके स्वरूप और तत्वों से भी परिचित हो सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

फीचर शब्द का प्रयोग समाचारपत्रों, रेडियो, फिल्म आदि संचार-माध्यमों में अधिकांशत: किया जाता है । दूरदर्शन को यदि इन तीनों का एक संमिलित रूप कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि टेलीविजन में रेडियो की आवाज, फिल्म के कैमरे की दृष्टि और अखबारों जैसे समाचारों को प्रेषित करने का अद्भुत संगम है । इसलिए टेलीविजन के फीचर में इन तीनों विधाओं का विशिष्ट गुण विद्यमान है।

3.2 टेलीविजन-फीचर: अवधारणा एवं स्वरूप

यद्यपि टेलीविजन फीचर की अभी सर्वमान्य अवधारणा नहीं की गई है, फिर भी टेलीविजन-फीचर के अस्तित्व से इंकार नहीं किया जा सकता । वैसे भी टेलीविजन में प्रयोग और विकास की संभावनाएं अनंत हैं । इसलिए इस विकास क्रम में टेलीविजन का एक स्वरूप फीचर का भी है जो हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है । निश्चित रूप से भारत में टी.वी. तकनीक के साथ फीचर (Feature) शब्द भी आयातित है । इसलिए फीचर शब्द का सही प्रयोग किन अर्थो में किया जाए, यह जान लेना बहुत जरूरी है । इसके पहले यह जानना जरूरी है कि आखिर फीचर क्या है?

व्यावहारिक जीवन में अक्सर ही किसी सुडौल गठन वाले शरीर को देखते ही हम कह बैठते हैं-इसका फीचर अच्छा है या इसका फीचर शार्प है यानी इसकी तस्वीर अच्छी बन सकती है । फीचर का समाचारपत्रों में भी काफी व्यवहार किया जाता है । फीचर को हम अन्य लेखों से अलग एक विशिष्ट दर्जा दे देते हैं । एक ऐसा निबंध जो शिल्प में निबंध-जैसा न लगे उसे कुछ लोग फीचर का नाम दे देते हैं । और हम अपने रोजमर्रे की जिन्दगी में भी फीचर फिल्म का जिक्र करते रहते हैं । इस फीचर स्थिति का मतलब होता है एक ऐसी कथात्मक फिल्म जो एक निश्चित अवधि या लंबाई की हो और जो हमें आनंदित भी करती हो । यदि हमें आनंदित न करे तो संभव है कि हम उसे देखने भी न जाएं । इसके अलावा फीचर का प्रयोग रेडियो में भी किया जाता है । एक ऐसा कार्यक्रम जो रेडियो रिपोर्ट न होकर फीचर की तरह लगे अर्थात् वह रिपोर्ट जो सूचनाओं के साथ अपनी विशिष्ट शिल्प और शैली के कारण आपको आनंदित करे, वह रेडियो फीचर कहलाने योग्य हो सकता है । संक्षेप में यदि देखा जाए तो फीचर शब्द का प्रयोग अखबार, रेडियो, फिल्म शब्द आदि संचार-माध्यमों में धड़ल्ले से किया जाता है । दूरदर्शन को यदि इन तीनों का एक संमिलित रूप कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी । क्योंकि दूरदर्शन में रेडियो की आवाज, फिल्म के कैमरे की दृष्टि और अखबारों जैसे समाचारों को प्रेषित करने का अद्भुत संगम है । इसलिए टेलीविजन के फीचर में इन तीन विधाओं का विशिष्ट गुण विद्यमान है ।

फीचर शब्द का हिन्दी में यदि अनुवाद करने की कोशिश करें तो इसका सही अर्थ रूपक भी हो सकता है । आकाशवाणी में फीचर का हिन्दी अर्थ रूपक ही कहलाता है । अंग्रेजी में जहां रेडियो फीचर के नाम से जाना जाता है, हिन्दी में हम उसे रेडियो रूपक ही कहते हैं । इस दृष्टि से हम अभिव्यक्ति की उस शैली को फीचर अर्थात् रूपक का नाम दे सकते हैं, जिस के द्वारा किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना का बेहद स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया जा सके । चूंकि टेलीविजन अखबार, रेडियो और फिल्म के बाद की विधा है, इसलिए टेलीविजन-फीचर का कोई विशिष्ट स्वरूप अभी तक उभर नहीं सका है । दूसरे इस विधा की सबसे महत्वपूर्ण जरूरत होती है कि वह शब्दों की जगह दृश्यात्मकता से भरपूर हो क्योंकि रेडियो में साफ कहने, अखबार में साफ लिखने और टेलीविजन में साफ दिखाने की जरूरत होती है ।

3.2.1 टेलीविजन-फीचर के उद्देश्य

अब हम देखें कि टेलीविजन-फीचर के उद्देश्य क्या-क्या हो सकते हैं?

1. टेलीविजन-फीचर वास्तविक घटनाओं का रचनात्मक प्रस्तुतीकरण होता है ।
2. टेलीविजन के रूप को प्रस्तुत करने के कई तरीके हैं किन्तु उनमें कल्पना-शक्ति का उपयोग सीमित रूप में ही किया जाता है । यदि इसमें कल्पना का उपयोग अधिक मात्रा में किया गया तो रूपक अपना स्वरूप खो देगा ।
3. इसके प्रमुख तत्व आलेख, ध्वनि, कैमरा, संगीत और संपादन होते हैं ।
4. इसके आलेख के चार स्तर होते हैं । विचार के रूप में जिसे आइडिया कहा जाता है । दूसरे इसका विस्तार देते हैं तो कहानी का रूप हो जाता है । इसे और ज्यादा विस्तार देते हैं तो पटकथा हो जाता है । जब शूटिंग की जाती है तो दृश्यों और कैमरों के हिसाब से विभाजन कर लेते हैं, जिसे कैमरा-आलेख का नाम देते हैं ।

5. रूपकों के आलेख के लिए शोध भी आवश्यक होता है । शोध के आधार पर ही रूपकों में विश्वसनीयता भरी जाती है ।
6. आवश्यकतानुसार इसमें अभिनय आदि की जरूरत भी होती है ।
7. अभिनय के लिए अभिनेता या अभिनेत्रियों की जरूरत भी होती है ।
8. इसकी शूटिंग के लिए उपलब्ध संबंधित स्थलों पर शूटिंग करने की जरूरत होती है या कल्पना से उन स्थलों का निर्माण वास्तविकता लाने के लिए किया जाता है ।
9. यह रूपक रेडियो-फीचर से भिन्न होता है क्योंकि रेडियो में हम सिर्फ आवाजों का उपयोग करते हैं जबकि टेलीविजन-रूपक में बोलता हुआ व्यक्ति भी दिखलाई पड़ता है ।

3.2.2 फीचर के स्रोत

जैसाकि यह तय है कि फीचर (रूपक) का सबसे बड़ा स्त्रोत हमारी धरती है और इस धरती का समाज है । समाज के ही क्षेत्रों में विज्ञान, कला, साहित्य, धर्म, संस्कृति या चाहे कोई भी विषय हो, घटने वाली क्षण-प्रतिक्षण की तमाम छोटी से छोटी या बड़ी से बड़ी घटनाएं रूपक का विषय हो सकती हैं । मुद्रण-कला के विकास के साथ ही इस विधा का जन्म हुआ था किन्तु रेडियो ने अपनी जीवंतता के कारण इसकी महत्ता को और ज्यादा विस्तार प्रदान किया । आगे चलकर फिल्मों के कारण यह विधा अत्यन्त ही महत्वपूर्ण और सशक्त हो गई है । समाचारपत्रों में किसी के उद्धरणों को पढ़कर हम उस व्यक्ति के स्वरूप का सहज एक कल्पनात्मक अनुमान लगा लेते थे वहीं रेडियो से उस व्यक्ति को, उन उद्धरणों को, उसके मुंह से सुनते थे । किन्तु दूरदर्शन में उसी व्यक्ति के दर्शन भी कर लेते हैं । विशेष कर द्वितीय विश्वयुद्ध में इस माध्यम की जरूरत और उसके प्रभावों का ऐतिहासिक योगदान है । इस संदर्भ में मार्शल मैकलुहान का कथन सही प्रतीत होता है कि-"राष्ट्रपति कैनेडी की शवयात्रा ने यह साबित कर दिया है कि दूरदर्शन के पास सामूहिक भागीदारी का चरित्र है, जो पूरी जनसंख्या को एक धार्मिक प्रक्रिया से जोड़ लेता है । जबकि तुलनात्मक दृष्टि से प्रेस, सिनेमा और रेडियो, उपभोक्ता के लिए सिर्फ एक माध्यम के रूप में ही बने रहते हैं ।"

3.3 फीचर के तत्व

इस दृष्टि से देखा जाए तो एक अच्छे टेलीविजन-रूपक (फीचर) के लिए यह जरूरी है कि वह रुचिकर हो । यह रुचिकर तभी हो सकता है जब विषयवस्तु छायांकन, संगीत और संपादन में चुस्ती हो और गतिशीलता हो । श्रेष्ठ छायांकन अपने आप में एक महान् कला हो सकती है और यदि इस छायांकन को वाणी और संगीत का सहयोग मिले तो यह सोने में सुगंध का काम करता है । गरज यह कि रूपकों को दिलचस्प बनाने के लिए इन तत्वों के संतुलित और भरपूर उपयोग से एक नया प्रभाव पैदा किया जा सकता है जो दर्शकों की न केवल दिलचस्पी बनाए रखे बल्कि उसके द्वारा दी गई सूचनाओं या शिक्षा को उसके मन-मस्तिष्क से जोड़ दे । इसके लिए कल्पना तो हो ही लेकिन ऐसा भी न हो कि वह दर्शकों को फूहड़ या अति अविश्वसनीय लगे । इससे रूपक की गुणवत्ता पर असर पड़ता है। उसकी गंभीरता नष्ट होती है ।

अब हम टेलीविजन फीचर के उन महत्वपूर्ण एवं आवश्यक तत्वों पर विचार करेंगे जिन को मिलाकर एक सम्पूर्ण रूपक बनाया जा सकता है । सबसे पहले हम आलेख पर विचार करेंगे । आलेख

किसी भी अच्छे रूपक का वह आधार है जिस पर रूपक की इमारत तैयार की जाती है । वैसे भी यदि हम आलेख को दूरदर्शन से निकाल दें तो किसी भी तरह का कार्यक्रम बनाना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। आलेख ही कार्यक्रमों की रीढ़ है । आलेख अपनी प्रथम अवस्था में एक विचार की तरह होता है । विचार रूपी बीज में ही आलेख का वृक्ष छिपा रहता है । अत: सबसे पहले मन में किसी विचार का आना आवश्यक है । यह विचार धीरे-धीरे कथ्य का रूप धारण कर लेता है । जब हमारे पास कथ्य हो जाता है तो हम उस कथ्य को दर्शकों तक पहुंचाने के लिए तानाबाना बुनने की तैयारी करने लगते हैं ।

कथ्य को दर्शकों तक पहुंचाने के लिए एक कहानी तैयार करनी पड़ती है क्योंकि आलेख चाहे किसी भी तरह का हो सामान्यत: इसमें आदि, मध्य एवं अंत आवश्यक हैं । आदि की अवस्था से कथा का प्रारंभ होता है, मध्य की स्थिति में इसका फैलाव तथा अंत की अवस्था में जिसे हम चरम सीमा (Climax) भी कहते हैं, कथ्य को दर्शकों तक पहुँचा दिया जाता है । रूपकों में यह कथ्य सूचनात्मक शैली में भी दिया जा सकता है ।

इसके बाद कथा विस्तार के लिए हमें स्क्रीन प्ले की जरूरत होती है । जिसे पटकथा भी कहते हैं । दिखाए जाने वाले दृश्यों और संवादों का क्रमानुसार संयोजन ही इस पटकथा का मुख्य उद्देश्य है । पटकथा-लेखन से शूटिंग में हमें काफी सुविधा मिल जाती है । हम इसके आधार पर तय कर लेते हैं कि अमुक स्थल पर कितने दृश्य हैं और उनकी लगातार शूटिंग कर श्रम एव धन को बचाया जा सकता है । अच्छी पटकथा से ही अच्छे रूपांकन की संभावना मानी जाती है । पटकथा से रूपक को एक स्वरूप मिल जाता है ।

आलेख की चौथी स्थिति होती है शूटिंग आलेख । इसे निर्देशक और कैमरामैन मिलकर अपनी सुविधा के अनुसार तैयार करते हैं । उदाहरण के लिए किसी रूपक में उदयपुर के चार स्थलों को दिखाया जाना है तो निश्चित रूप से निर्देशक चाहेगा कि उदयपुर के उन तमाम स्थलों की शूटिंग एक साथ ही कर ली जाए भले ही वे रूपक में क्रमानुसार नहीं दिखलाये गए हो ।

रूपक के अच्छे आलेख के लिए जरूरी है कि भाषा सहज एवं सरल हो । ज्यादा लच्छेदार या मुहावरेदार शब्दों का चयन न किया जाए । द्वि- अर्थी अथवा दुरूह शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए। उच्चारण में कठिन या भारी भरकम शब्दों का प्रयोग न हो तो ज्यादा अच्छा है।

आलेख के लिए टेलीविजन से जुड़े हुए लेखकों का सहयोग लेना ज्यादा अच्छा होता है क्योंकि यदि किसी बहुत बड़े साहित्यकार को दूरदर्शी-आलेख लिखने के लिए आमंत्रित किया जाता है तो कोई संभावना नहीं कि वह अच्छा आलेख भी तैयार कर देगा । उसे टेलीविजन के हिसाब से साहित्य की रचना करनी पड़ेगी जो टेलीविजन की तकनीक का जानकार कोई भी व्यक्ति कर सकता है । परामर्श और सहयोग के लिए इनका सहयोग लिया जा सकता है । टेलीविजन के रूपकों के आलेख के लिए शोध की जरूरत भी होती है । क्योंकि किसी भी घटना के बारे में जब तक पूरी और विश्वसनीय जानकारी या आकड़े नहीं हों तो रूपक में दोष आ सकता है । यदि कोई कार्यक्रम रूपक है तो घटनाओं या व्यक्ति की सत्यता की खोज तो होनी ही चाहिए । अनुसंधान और शोध पर आधारित आलेख की गरिमा बढ़ जाती है।

3.4 ध्वनि एवं छायांकन

आलेख के बाद रूपक के निर्माण के अगले चरण में ध्वनि एवं छायांकन का प्रश्न उठता है। फिल्म के माध्यम से रूपक बनाने में 16 एम.एम. के कैमरे तथा ध्वनि रिकार्डिंग के लिए एक अलग

टेप रिकार्डर की जरूरत होती है । ध्वनि का आशय यहां पर रूपक के संवादों तथा उन आवाजों की रिकार्डिंग से है जिसके सहयोग से रूपक को ज्यादा से ज्यादा सजीव बनाया जा सकता है । जैसे रात के दृश्य के लिए झींगुरों की आवाज या पानी की बहती हुई धारा दिखाने के समय पानी की कल्कल की ध्वनि ही इस श्रेणी मे आते हैं । अंग्रेजी में इसका नाम साउंड इफेक्ट है । किन्तु इलेक्ट्रानिक्स कैमरे के द्वारा रूपक बनाने का लाभ यह है कि इसके लिए शूटिंग के समय अलग से साउंड रिकार्डर की जरूरत नहीं होती । खासकर इ.एन.जी. कैमरे और इ.एफ.जी. कैमरे में यह सहूलियत मिलती है कि इसके रिकार्डर में ही छायांकन और ध्वनि-रिकार्डिंग की व्यवस्था एक साथ हो जाती है । कैमरामैन और निर्देशक मिलकर रूपक की स्थितियों के हिसाब से कैमरे का कोण निर्धारित करके शूटिंग करते हैं ।

शूटिंग के बाद फिल्म या वीडियो-संपादक के सहयोग से तमाम दृश्यों को आलेख के अनुसार निरन्तरता के साथ जोड़ा जाता है । दृश्य की अनावश्यक लंबाई, अनावश्यक हिस्सों को काटकर अलग कर दिया जाता है । जिससे रूपक में चुस्ती आ जाती है । संपादन में जितनी चुस्ती रहेगी । रूपक में दर्शकों को बांधकर रखने में उतना ही सामर्थ्य और आकर्षण होगा । कहा भी जाता है कि "अच्छी फिल्में संपादन-टेबल पर ही बनती है ।"

संपादन के साथ ही संगीत रूपक का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है । दृश्य और संवादों के खालीपन को संगीत से ही भरा जाता है । इसके जुड़ने के साथ ही रूपक की संपूर्णता मानी जा सकती है । संगीत, संवाद और ध्वनि-प्रभाव को मिश्रित करके एक ट्रैक बना लिया जाता है जिसे फिल्म संपादन के समय मैच करते हुए जोड़ दिया जाता है । इससे रूपक में जीवंतता आ जाती है । जैसे किसी जंगल के दृश्य के पीछे विभिन्न प्रकार की चिड़ियों की चहचहाहट और आते-जाते राहगीरों के संवाद को मिलाकर एक अच्छा-सा प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है । निर्माण की इस प्रक्रिया की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद यह जानना जरूरी है कि रूपक के कितने प्रकार हो सकते हैं ।

यह सैद्धान्तिक रूप से देंखे तो विषय की भिन्नताओं के हिसाब से कई प्रकार के रूपक हो सकते हैं । किसी ऐतिहासिक घटना या व्यक्ति को भी रूपक का विषय बनाया जा सकता है । यदि 1857 रूपक का विषय हो सकता है तो रानी लक्ष्मीबाई या तात्या टोपे भी रूपक के विषय हो सकते हैं । इस दृष्टि से रूपक व्यक्ति परक, इतिहास परक, समाचार या मौजूदा घटनाओं पर आधारित हो सकते हैं। सांस्कृतिक संदर्भो से जुड़ी छोटी से छोटी या बड़ी से बड़ी घटनाओं को भी रूपक का विषय बनाया जा सकता है । यात्राओं पर आधारित रूपक भी दूरदर्शन द्वारा बनाए गए हैं । प्रख्यात् फिल्मकार श्याम बेनेगल ने भारतीय रेलों पर यात्रा नाम से धारावाहिक फीचर तैयार किया है । इसके अतिरिक्त मानवीय रुचि विषयक रूपक भी हो सकते हैं । दूरदर्शन हर सप्ताह सुबह की सभाओं में "ए फेस इन दी क्राउड" शीर्षक से इस प्रकार के धारावाहिक प्रस्तुत कर रहा है । किन्तु इन सबसे अलग दूरदर्शन पर 'फोटो फीचर' की अपनी अलग पहचान है । यह टेलीविजन की एक विशेष विधा मानी गई है । इस पर विचार अलग से करना उचित होगा ।

3.5 चित्र- रूपक

स्थिर चित्रों के माध्यम से ध्वनि, संगीत एवं संवादों के सहयोग से टेलीविजन में रूपक बनाने की पद्धति काफी पुरानी है । इसमें निर्माण की उन स्थितियों या प्रक्रियाओं से होकर नहीं गुजरना पड़ता

है । अपेक्षाकृत इस विधा द्वारा बातें कहने में हमें आसानी हो जाती है क्योंकि दृश्यों की शूटिंग के लिए हमें बाहर नहीं जाना पड़ता । बाह्य दृश्यों की शूटिंग की मेहनत से हम बच जाते हैं क्योंकि इन संबंधित दृश्यों का स्थिर छायांकन करके स्टूडियों में ले आते हैं और स्टूडियो में पुनः फिल्म या इलेक्ट्रानिक्स कैमरे से दुबारा छायांकन करते हैं । इसके साथ ही स्थिर चित्रों में कैमरे के मूवमेंट से गति देने की कोशिश करते हैं । वैसे भी देखा जाए तो चित्रों के माध्यम से बात कहने की पुरानी परंपरा हमारे समाज में सभ्यता के विकास के साथ चलती आ रही है । किन्तु वैज्ञानिक सुविधाओं के कारण तरह-तरह के प्रयोग संप्रेषण माध्यमों में भी होते रहे हैं । फोटो-फीचर भी उसी प्रयोग का हिस्सा है । यदि हम फोटो फीचर अर्थात् चित्र-रूपक को 'बायस्कोप' का परिवर्तित रूप मानें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । सिनेमा की शुरूआत के प्रथम चरण में बायस्कोप मेले या गांवों में दिखाया जाता था । एक लकड़ी के डिब्बे के अन्दर कुछ चित्रों को दिखाने के लिए उस बक्से में छह छेद होते थे जिसमें विशेष प्रकार के शीशे लगे होते थे जो चित्र को स्पष्ट और बड़ा करके दिखलाते थे । चित्रों को दिखाने के साथ ही, दिखाने वाला उन चित्रों के बारे में गा-गा कर या संवादों के माध्यम से बतलाया करता था । समय के साथ चलकर टेलीविजन का चित्र-रूपक आज अपनी अलग और महत्वपूर्ण पहचान बना चुका है । इस प्रकार हमने देखा कि टेलीविजन के फीचर छह प्रकार के हो सकते हैं । इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं -

1. ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण घटनाओं पर आधारित जैसे -1857, 1942 इत्यादि ।
2. व्यक्ति-विशेष पर आधारित
3. सांस्कृतिक विषयों पर आधारित
4. यात्रा संबंधी रूपक
5. समाचार रूपक
6. मानव रूचि विषयक
7. स्वास्थ्य, कला, विज्ञान से जुड़े हुए विषयों पर आधारित रूपक
8. फोटो -फीचर या चित्र-रूपक

इसके प्रकारों की जानकारी प्राप्त लेने के बाद हमें इनकी उपयोगिता पर एक नजर डालना ज्यादा उचित होगा । इसके पहले वृत्तचित्र और रूपक के अंतर को भी समझ लेना जरूरी है क्योंकि टेलीविजन की दोनों विधाएं इतनी मिलती-जुलती हैं कि कभी-कभी दोनों में भेद करना मुश्किल हो जाता है । वृत्तचित्र और रूपक निर्माणावस्था से लेकर अंत इतने समरूप हैं कि मोटे तौर पर इन्हें जुड़वां भाई कहा जा सकता है । जिस प्रकार बहुत ही मिलतेजुलते जुड़वां भाइयों को बिना विशेष चिह्न या लक्षण के सही पहचान पाना कठिन है, वैसे ही इन विधाओं को एक दूसरे से अलग करना भी कठिन है । इन दोनों के बीच का अंतर शैलीगत तो है ही इसके साथ ही वृत्तात्मकता मे भी यह थोड़ा-सा भिन्न है । वृत्तचित्र जहा निर्माण के संदर्भ में कल्पना की उतनी उड़ान नहीं भर जितनी दूर तक चित्र-रूपक का विस्तार किया जा सकता है । कहने का अर्थ यह है कि वृत्तचित्र तथ्यों एव विषय की यथार्थता के घेरे को नहीं तोड़ सकता, जबकि रूपक में साहित्य का प्रभाव ज्यादा हो सकता है । रूपक में भावना एवं कल्पना का आधिक्य होता है और वृत्तचित्र में कल्पना यथार्थ या वास्तविकता के घेरे से बाहर नहीं लाई जाती । एक ही विषय पर वृत्त चित्र भी बनाए जा सकते है और रूपक भी किन्तु वृत्तचित्र में तथ्य, आकड़ों आदि की जरूरत होती है वहां रूपक में भाव प्रवणता, माधुर्य और कल्पनाशीलता का

होना अत्यन्त आवश्यक है । यहां पर हम एक मोटी विभाजक रेखा खींचकर दोनों के स्वरूपों को अलग कर देख सकते हैं ।

3.6 सारांश

हम टेलीविजन-रूपक की उपयोगिता पर नजर डालें तो हम पाएंगे कि यह विधा टेलीविजन पर अभी तक इतनी लोकप्रिय नहीं हो पाई है जितनी स्वीकृति इसे रेडियो रूपक के अप में मिली है फिर भी यह संप्रेषण की छत ही कोमल और आकर्षक विधा है चित्र संगीत संवाद और ध्वनि के सहयोग से किसी भी व्यक्ति, वस्तु, जीव निर्जीव के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी जा सकती है । भले ही हम वास्तविक जीवन में बीते क्षणों की मधुरता को वापस नहीं ला सकते किन्तु टेलीविजन के रूपकों के माध्यम से उसके काल्पनिक स्वरूप को तो वापस ला ही सकते हैं । संभव है कि यह विधा कल्पना की खोज ज्यादा ही करती है और इसके साथ ही प्रस्तुतीकरण में रचनात्मकता की जरूरत होने के कारण अभी तक कठिन प्रतीत होती रही है जबकि वृत्त-चित्र के निर्माण में एक फ्रेम के अंदर समेटने की स्वतंत्रता ज्यादा सहज प्रतीत होती है । फिर दूरदर्शन के लि रूपकों के निर्माण पर भी ध्यान देने की जरूरत ज्यादा है एक तो इस माध्यम की जरूरत है दूसरे दर्शकों को कल्पनाशीलता में ही नयापन नजर आता है ।

3.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. टेलीविजन के लिए फीचर-लेखन और समाचारपत्रों के लिए फीचर-लेखन में क्या अंतर ?
2. टेलीविजन-फीचर के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?
3. फीचर के प्रमुख स्रोत क्या हैं?
4. टेलीविजन-फीचर के प्रमुख तत्वों का उल्लेख कीजिए ।
5. चित्र-रूपक से आप क्या समझते हैं?

इकाई 4 टेलीविजन के लेखन

इकाई की रूप रेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 टेलीविजन-लेखन का महत्व

- 4.2.1 समूह लेखन
- 4.2.2 आलेखों का वर्गीकरण
- 4.2.3 पटकथा
- 4.2.4 संवाद
- 4.2.5 शूटिंग-आलेख

4.3 आलेख के प्रकार

- 4.3.1 वृत्त-चित्र

4.4 तकनीक जानकारी

- 4.4.1 स्पष्ट परिपक्वता
- 4.4.2 ध्वनि प्रयोग
- 4.4.3 उत्कर्ष
- 4.4.4 सीन सिक्वेंस
- 4.4.5 शब्द-चयन का स्वरूप

4.5 लेखक, निर्देशक और फिल्म भाषा

- 4.5.1 फिल्म भाषा

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 उपयोगी पुस्तकें

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन कर लेने के बाद आप-

- टेलीविजन कार्यक्रम के मूल तत्वों से परिचित हो जाएंगे ।
- आलेख के विभिन्न सोपानों का महत्व समझने लगेंगे ।
- आलेखों के प्रकारों और उनकी पेचीदगियों के जानकार हो जाएंगे ।
- आलेखन में तकनीकी और कलात्मकता का महत्व जान जाएंगे ।
- दृश्य-माध्यम की दृश्यात्मक भाषा का महत्व बता सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

टेलीविजन ग्रीक भाषा के शब्द टेली (दूरी) और लैटिन भाषा के विजन (मैं देखता हूं) को मिलाकर बना है । हजारों मील की दूरी पर क्या घटित हो रहा है उसे हम पर्दे पर देख सकते हैं उसके प्रत्यक्षदर्शी हो सकते हैं । अलबत्ता हमें टेलीविजन के पर्दे पर वही दिखाई देता है जो कैमरा दिखाना चाहता है।

घटनाओं और समाचारों के अलावा अनेक प्रकार के कार्यक्रम टेलीविजन पर आते हैं -नाटक धारावाहिक, वृत्त-चित्र, संगीत-कार्यक्रम, फिल्म, भेंटवार्ताएं, प्रश्नोत्तर और पहेलियां आदि । टेलीविजन कैमरा, ट्रांसमीटर और कमरे में रखे टेलीविजन यंत्र की सहायता से संप्रेषित दृश्य या कार्यक्रम स्टूडियो या घटनास्थल से हम तक पहुंचते हैं।

जिन यंत्रों, उपकरणों और उपस्करों की सहायता से कार्यक्रम-संप्रेषण संभव होता है उसे हार्डवेयर कहते हैं । जैसे कैमरा, प्रकाशीय उपस्कर, माइक्रोफोन, कनसोल, स्पेशल एफेक्ट जेनरेटर आदि ।

जो दृश्य, संदेश कार्यक्रम संप्रेषित किए जाते हैं उन्हे साफ्टवेयर की संज्ञा दी जाती है । यह बौद्धिक पक्ष है । उद्देश्यपरक संप्रेषित कार्यक्रमों का सर्जनात्मक पहलू होता है । लेखक, निर्देशक संगीतकार, संपादक आदि के सहयोग से कार्यक्रमों की प्रस्तुति होती है।

दर्शकों के प्रकार और उनकी अभिरुचि के अनुसार कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं । जैसे - मनोरंजन के लिए सामाजिक धारावाहिक, संगीत कार्यक्रम, फिल्मों का प्रसारण, ज्ञानवर्धन के लिए डिस्कवरी चैनल, खेलकूद कार्यक्रमों का प्रसारण आदि।

दृश्य यद्यपि माध्यम होने के बावजूद टेलीविजन में शब्द-संयोजन और लेखन का महत्व कम नहीं है और कुछ नहीं तो कार्यक्रम की अवधारणा, उद्घोषणा, कैमरामैन और निर्देशक के लिए निर्देश ये सब लिपिबद्ध किए ही जाते हैं । वृत्त-चित्र, धारावाहिक, नाटक आदि के लिए आलेख अनिवार्य होते हैं । कथानक, संवाद, स्क्रीन प्ले और शूटिंग स्क्रिप्ट के लिए अलग- अलग व्यक्ति अनुबंधित किए जा सकते हैं । छायांकन और संपादन के दौरान पटकथा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहते हैं, इसलिए इस माध्यम में लेखन समूह-लेखन का रूप ग्रहण कर लेता है ।

लेखक को माध्यम की तकनीकी की बारीकियों, भाषागत आवश्यकताओं और विशेषताओं की जानकारी होनी चाहिए ।

4.2 टेलीविजन-लेखन का महत्व

4.2.1 आलेख समूह लेखन

टेलीविजन के कार्यक्रम मुख्यत: चार अलग-अलग तत्वों पर आधारित होते हैं जिसमें सर्वप्रथम है लेखन/ निर्देशन, छायांकन एवं संपादन की प्रक्रिया बाद में आती है । हालांकि इन मुख्य तत्वों के अतिरिक्त संगीत, ध्वनि प्रभाव जैसे अन्य सहायक तत्व हैं किन्तु प्रारंभिक अवस्था में इन्हीं चार तत्वों पर विचार किया जाता है । लेखन और बचे हुए कार्यक्रम या तैयार कार्यक्रम के बीच एक अजीबसा रिश्ता होता है । हालांकि नाटक, उपन्यास या अन्य विधाओं की तरह से टेलीविजन- लेखन में बहुत फर्क होता है, फिर भी लेखन सम्पूर्ण कार्यक्रम की पहली शर्त होती है । अन्य विधाओं में तो आलेख

बदलना संभव नहीं होता किन्तु टेलीविजन में आदि-अन्त तक इसमें परिवर्तन की संभावना बनी रहती है ।

आमतौर पर यदि लेखन ही आलेख घोषणा के लिए दो-चार पंक्तियां भी लिख लेता है तो इस लेखन को ही आलेख कहा जाता है । इस आलेख में कार्यक्रम निर्माण के अंत तक परिवर्तन होने की संभावना बनी रहती है । इसलिए टेलीविजन के लेखन को सामूहिक लेखन माना जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि लेखक से लेकर निर्देशक, छायाकार एवं संपादन के स्तर तक आलेख में काट-छांट की संभावना बनी रहती है । यहां तक कि कलाकार भी कभी-कभी अपनी सुविधा एवं स्थितियों के अनुसार संवादों या आलेख की पंक्तियों को प्रभावशाली बनाने के लिए अपना योगदान दे सकते हैं । इसलिए किसी लेखक को टेलीविजन-लेखन से पहले इस तथ्य को स्वीकार करके ही लेखन के क्षेत्र में आना चाहिए क्योंकि इसमें अन्य विधाओं की तरह हठधर्मिता नहीं चलती क्योंकि यह भी फिल्म की तरह निर्देशक का माध्यम है । इसका पूरा कर्ता-धर्ता निर्देशक ही होता है । निर्देशक ही जहाज का कप्तान है जो पूरे कार्यक्रम के निर्णय को गति देता है या अपनी इच्छा से उसे मोड़ भी सकता है । निर्देशक ही लेखक के शब्दों को छायाकार के सहयोग से रूपायित करता है, अत: उसे आलेख को अपनी कल्पना के हिसाब तोड़-मोड़ भी सकता है ।

यदि निर्देशक और लेखक अलग-अलग न होकर एक ही होते हैं तब यह समस्या नहीं होती। इस प्रकार विवाद की समस्या तब भी नहीं होती जब लेखक और निर्देशक दोनों मिलकर समभाव से कार्यक्रम के निर्माण सें जुड़े रहते हैं लेकिन जब कार्यक्रम का निर्माण हो जाता है तब भले ही इन स्तरों पर आलेख में परिवर्तन किये गए हों किन्तु आलेख के लिए लेखक का ही नाम आता है । टेलीविजन के क्षेत्र में या कमोबेश फिल्म के क्षेत्र मे यह दिलचस्प पहलू है । कभी-कभी मूल लेखक की कहानी ही फिल्म बनते-बनते बदल जाती है फिर भी आलेख के लेखक के रूप में उसी लेखक का नाम आता है जब तक वह लेखक स्वयं को उससे अलग होने की घोषणा या उस कहानी को अस्वीकार न कर दे।

फिल्म या टी.वी. आलेख पर कार्यक्रम बनाना चूंकि सामूहिक कला है इसलिए इसके साथ एक लेखक के साथ अन्य दूसरे लेखक भी जुड़े हो सकते हैं । भारत की मशहूर फिल्म कम्पनी बीआर. फिल्म्स ने तो इसके लिए एक विभाग ही अलग से खोल दिया है जिस में एक लेखक की जगह स्टोरी-डिपार्टमेंट का नाम आता है । इसमें कार्यक्रम से जुड़े कई महत्वपूर्ण लोग शामिल होते हैं । खासकर विदेशी धारावाहिक में तो लेखकों की संख्या बढ़ाने की जरूरत तो होती ही है क्योंकि एक लेखक के लिए लगातार वर्षो तक सप्ताह में पांच दिनों तक चलने वाले धारावाहिकों के लिए लिखना असंभव होता है । इसलिए आलेख की जिम्मेदारी को अलग-अलग खंडों में बांट दिया जाता है ।

4.2.2 आलेखों का वर्गीकरण

सबसे पहले हम यदि आलेख का वर्गीकरण करें तो अनेक खंडों में इसे विभक्त कर सकते हैं। सर्वप्रथम तो किसी भी कार्यक्रमो के निर्माण के लिए किसी आइडिया या मोटे तौर पर कहा जाए तो 'थीम' की जरूरत होती है । 'थीम' किसी आलेख की आत्मा होती है । यदि आलेख का कलेवर विशाल हो और उसमें थीम नहीं हो तो उसका कलेवर उसी प्रकार निष्प्राण होता है जिस प्रकार एक स्थूल शरीर बिना आत्मा के मृत हो जाता है । यह एक विचार है जो किसी आलेख की सफलता या असफलता के लिए जिम्मेदार हो सकता है । इसलिए किसी भी आलेख के लिए सबसे पहले मस्तिष्क मे एक विचार

का पैदा होना जरूरी है । विचार के आने के बाद इसकी दूसरी प्रक्रिया कथा लिखने की शुरू होती है ।

विचार को केंद्रित करके ही कथा या कहानी की रचना प्रारंभ होती है । पूरी कहानी उसी विचार को प्रतिपादित करने के लिए लिखी या गढ़ी जाती है । इसके लिए चरित्र गढ़े जाते हैं । इसके विकास के लिए भी इसी विचार को ध्यान में रखा जाता है जिसमें एक प्रारंभ, मध्य और उत्कर्ष होता है । कथा की प्रारंभिक अवस्था में विचार एक बिन्दु की तरह होता है । मध्य तक उस बिन्दु का विस्तार हो जाता है और उत्कर्ष तक आते-आते उस विचार के प्रतिपादन के साथ कहानी खत्म हो जाती है । किन्तु दृश्य-माध्यमों में फिल्म या टी.वी या यह कहें कि इलैक्ट्रानिक माध्यमों के दृश्य प्रधान विधा के लिए कहानी का यह स्वरूप भी तीन अन्य भागों में विभक्त हो जाता है पटकथा, संवाद, शूटिंग आलेख।

4.2.3 पटकथा

सबसे पहले हम पटकथा के बारे में बात करें जिसे अंग्रेजी में स्क्रीन प्ले कहा जाता है । जब तक कहानी साहित्य की विधा में होती है तो पटकथा की जरूरत नहीं होती है क्योंकि वह सिर्फ पढ़ने के लिए होती है, किन्तु जैसे ही इस कहानी को परदे पर लाने की कोशिश की जाती है तब इस कहानी में दृश्यात्मक तत्वों को वास्तविक रूप से दिखाने के लिए पटकथा की जरूरत हो जाती है । छोटे से उदाहरण में यदि समझने की कोशिश की जाए तो इस प्रकार लिखा जा सकता है-

कहानी का अंश है- 'रधिया भागने लगी । सामने एक बहुत पुराना मकान दिखलाई पड़ा । उसमे वह छिप गयी । वह हांफ रही थी । आखों में मौत की छाया स्पष्ट नजर आ रही थी । अब यदि इस की पटकथा तैयार करनी पड़े तो मुख्य रूप से सबसे पहले मैदान का दृश्य आएगा जिसमें रधिया भाग रही है । दूसरा दृश्य एक पुराने महल का होगा जिस में रधिया छिपती है । तीसरा दृश्य उसकी आखों का क्लोजअप होगा, जिसमें डरी हुई भावनाओं की अभिव्यक्ति आखों से प्रकट होगी । पटकथा में ऐसे ही विस्तार से सैट तथा कलाकार के अभिनय पक्ष को विस्तार से लिखा जाता है जो अन्य विधाओं के आलेख से भिन्न होता है, क्योंकि पटकथा को लिखते समय कैमरे की जरूरत को भी ध्यान में रखना पड़ता है । कैमरे को क्या-क्या तस्वीरें लेनी है प्रथम स्तर पर पटकथा में तय किया जाता है ।

4.2.4 संवाद

पटकथा के बाद की स्थिति संवाद की होती है । रधिया इन स्थितियों में यदि बोलना चाहे तो क्या करेगी? चिल्लाएगी? किसी से मदद मांगेगी या भगवान से प्रार्थना करेगी? इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए संवाद लिखा जाता है । यहां दिलचस्प तथ्य यह है कि कहानी पटकथा और संवाद लिखने के लिए एक आदमी का होना कोई जरूरी नहीं । यदि विचार किसी निर्माता के दिमाग मे आता है तो वह किसी भी कहानी लेखक से इस पर आधारित कहानी लिखने का आग्रह कर सकता है । यदि कहानी लिखी गई है तो वह किसी दूसरे पटकथा लेखक को इसके लिए अनुबंधित कर सकता है । ठीक इसी प्रकार यदि वह चाहे तो अच्छे संवादों के लिए पटकथा के अनुसार अनुभवी संवाद लेखक से सम्पर्क करके अनुबंधित कर सकता है । संवाद लेखक के लिए भी कोइ जरूरी नहीं है कि वह एक ही हो । 'मुगले आजम' फिल्म में उर्दू के पांच मशहूर लेखकों को संवाद लिखने के लिए अनुबंधित किया गया था । जिस प्रकार भारतीय फिल्मों में संगीतकारों की जोड़ी को संगीत निर्देशन के लिए अनुबंधित करने

की परंपरा चल पड़ी उसी प्रकार सलीम-जावेद या मिर्जा ब्रदर्स ने भी सामूहिक रूप से कथा, पटकथा एवं संवाद लिखने की नई शुरूआत की थी ।

4.2.5 शूटिंग आलेख

आलेख की अंतिम परिणति शूटिंग आलेख में होती हैं जब निर्देशक कैमरा के विभिन्न कोणों के हिसाब से आलेख तैयार करता है और पूरी पटकथा की उसी तरह से शूटिंग करता है । यदि ऊपर के उदाहरण को याद करें तो पटकथा के बाद शूटिंग आलेख में तय किया जायेगा कि रधिया जब दौड़ेगी तो उस समय कैमरे की स्थिति क्या होगी? कैमरा एक तो लांग शॉट पर रधिया को भागते हुए दिखला सकता है । इसको और गतिमान बनाये रखने के लिए बीच में दौड़ती हुई रधिया के पैरों का क्लोज-अप और फिर दौड़ते हुए चेहरे के क्लोज-अप को भी दिखाया जा सकता है । यदि रधिया दौड़कर खंडहर में चली जाती है तो प्रभाव की दृष्टि से उतना अच्छा नहीं होगा जितना कि रधिया के भागते हुए पैरों एवं चेहरे के क्लोज-अप दिखने के बाद पड़ सकता है ।

इस तरह हम देखते हैं कि मूल रूप से आलेख के पांच स्तर होते हैं । विचार से लेकर शूटिंग तक कथा, पटकथा, संवाद और शूटिंग आलेख जैसी पांच स्थितियां होती है ।

बोध प्रश्न-1

1. आलेख का स्वरूप अंत तक क्यों बदलता रहता है?
2. स्क्रीन प्ले से क्या तात्पर्य है?
3. आलेख के पांच स्तरों के नाम बताइए ।

4.3 आलेख के प्रकार

कार्यक्रमों के हिसाब से आलेख के कई प्रकार होते हैं । उद्घोषणा, कंपीयरिंग, नाटक, वृत्तचित्र जैसे अलग-अलग कार्यक्रमों के लिए अलग-अलग प्रकार के आलेख होते हैं । चाहे उद्घोषणा के लिए दस पंक्तियां लिखी गई हों या दस पेज का नाटक लिखा गया हो, दोनों स्थितियों में उन्हें आलेख ही कहा जाएगा । इसलिए यहां मूल तथ्य यह है कि बिना आलेख के किसी कार्यक्रम की कल्पना नही की जा सकती । किन्तु यह जितना सैद्धांतिक रूप से सच है उतना व्यावहारिक रूप से सच नहीं है, क्योंकि आलेख को कई कार्यक्रमों में जरा भी महत्व नहीं दिया जाता, हालांकि समाचारों का वाचन भी आलेख के अनुसार होता है । आलेख का ज्यादा प्रचलन नहीं होने के कारण सिर्फ महत्वपूर्ण और बड़े-बड़े कार्यक्रमों में ही आलेख की मांग की जाती है । आज दूरदर्शन में इतने कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं किन्तु आलेख का महत्व भी सिर्फ महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के लिए है ।

4.3.1 वृत्तचित्र

वृत्तचित्र के लिए भी आलेख उतना ही जरूरी है शरीर के लिए जितनी आत्मा । चूंकि वृत्तचित्र में अनेक घटनाओं की एक श्रृंखला होती है जिसे आलेख के द्वारा ही एक सूत्र में बांधा जा सकता है । इसलिए कई विद्वानों का मत है कि एक अच्छे आलेख में ही एक बेहतर फिल्म की संभावना बनी रहती है । यदि अच्छा आलेख नहीं हो तो निर्देशक, छायाकार, संपादक और अच्छा अभिनेताओं के होते हुए भी कार्यक्रम प्रभाव नहीं डाल सकते । उदाहरण के लिए समीक्षकों का मानना है कि आज मुंबई फिल्म उद्योग में फिल्म तकनीक ने काफी प्रगति कर ली है, किन्तु बेहतर आलेख के अभाव में बड़ी-बड़ी

फिल्में भी बाकर ऑफिस पर दम तोड़ रही है । आलेख के बिना फिल्म उद्योग में मंदी का दौर आ गया है । कमोबेश टी.वी. के लिए भी आलेख की ऐसी ही महत्वपूर्ण उपयोगिता है ।

जब वृत्तचित्र के लिए आलेख की रचना तैयार की जाती है तब अन्य तरह के आलेखों से यह भिन्न होती है, क्योंकि उसमें कल्पना और सच का कठिन समन्वय करना जरूरी होता है । इस आलेख में कल्पना से ज्यादा महत्वपूर्ण किसी प्रवृत्ति, घटना या व्यक्ति से जुड़े तथ्य होते हैं और तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश नहीं किया जा सकता । इसलिए इसके लेखन के लिए शोध एवं विषय से जुड़ी सामग्री की मुख्य भूमिका होती है । इसलिए वृत्तचित्र की कथा, पटकथा, संवाद इत्यादि लिखते समय तथ्यों को ध्यान में रखना जरूरी होता है । कमोबेश उद्घोषणा के साथ भी ऐसी मजबूरी होती है कि उद्घोषक सिर्फ एक नियोजित तरह के कार्यक्रमों की ही चर्चा करता है और स्वयं अपनी ओर से सिवाय विशेषण जोड़ने के और कुछ नहीं करता । किन्तु वृत्तचित्र में इस तरह की छूट आलेख के रचयिता को नहीं मिलती । इतिहास ने अकबर के लिए जिस प्रकार के विशेषण की स्वीकृति दी है लेखक उससे अलग नहीं हो सकता । इसलिए वृत्तचित्र के आलेख को ऐतिहासिक एवं घटनाओं की यथार्थ सीमा के तहत ही लिखना पड़ता है जबकि नाटक या इस प्रकार की शैली के लिए आलेख की ऐतिहासिक प्रतिबद्धता उतनी नहीं होती जब तक कि इस तरह के विशेष विषय लेखन के लिए न लिए जाएं जिसका इतिहास से किसी भी प्रकार का संबंध हो ।

4.4 तकनीकी जानकारी

4.4.1 स्पष्ट परिकल्पना

यह एक लेखक, के लिए जो टी.वी. के लिए लेखन करना चाहते हैं, यह जरूरी है कि विषय की जानकारी के साथ-साथ टी.वी. माध्यम की तकनीक की भी अच्छी तरह से जानकारी हो । क्योंकि मूल रूप से उसी की परिकल्पना (विजन) पर पूरे कार्यक्रम को तैयार किया जाना है । इसलिए उसकी परिकल्पना में स्पष्टता और संप्रेषणीयता जरूरी है । यदि संप्रेषणीयता में किसी प्रकार की गड़बड़ी या अवरोध होता है तो निर्देशक, कैमरामैन एवं संपादक की टेबल तक भ्रम की सी स्थिति बनी रहती है जिसका सीधा प्रभाव कार्यक्रम की गुणवत्ता पर पड़ता है । इसलिए लेखक को लिखते समय माध्यम के तमाम तकनीकी एव कलात्मक पक्ष की संभावना को भी ध्यान में रख लेना उचित होगा । लेख और निर्देशक के बीच संप्रेषणीयता का अभाव पूरे कार्यक्रम को चौपट कर सकता है ।

4.4.2 ध्वनि-प्रभाव

इस संदर्भ में यहां एक पक्ष यह भी विचारणीय है कि लेखक को दृश्य के साथ-साथ ध्वनि के प्रभावों को भी समझने और उसके उपयोग के संकेत को प्रस्तुत करने की योग्यता होनी चाहिए । क्योंकि टी.वी. के कार्यक्रमों को सिर्फ कैमरे के माध्यम से ही प्रस्तुत नहीं किया जा सकता बाछ उसके साथ ध्वनि एवं संगीत के जरूरी उपयोग की जानकारी भी देनी पड़ती है और यह सकते पटकथा के समय लेखक को बताना जरूरी होता है । यदि रधिया भाग रही है और भय के कारण वह बेचैन हो रही है तो लेखक इसका संकेत दे सकता है कि उसके डर के प्रभाव को किसी संगीत रग किसी ध्वनि इफेक्ट से प्रभावी बनाया जा सकता है । क्योंकि असल में कार्यक्रम का सबसे पहला दर्शक लेखक/ मानसिक रूप से स्वयं होता है । इसलिए ध्वनि, संवाद और संगीत के अंतर्संबंधों का उसके लिए समझना जरूरी

है । यही कारण है कि तकनीक की दृष्टि से आलेख लिखना सहज नहीं होता और सुविधानुसार कुछ भी लिखे को आलेख मानकर काम चला लिया जाता है ।

4.4.3 उत्कर्ष

वैसे चाहे वृत्तचित्र का आलेख हो या किसी धारावाहिक का उत्कर्ष (Climax) एक महत्वपूर्ण स्थिति है जिस पर कार्यक्रम का प्रभाव आधारित होता है । टी.वी. कार्यक्रम ही क्यों, यह इतना आवश्यक तत्व है कि नाटक, उपन्यास, नृत्य और कविता किसी भी विधा के लिए उत्कर्ष का तत्व महत्वपूर्ण एवं आवश्यक होता है । किसी समय 'एक राजा था' से लेकर 'अंत में वह खुशी-खुशी साथ रहने लगा' एक ऐसी रेखा है जिसे नजर अंदाज कर देना या किसी लेखक के लिए संभव नहीं है । आलेख एक बिन्दु से शुरू होकर उत्कर्ष के बिन्दु पर समाप्त हो जाता है और जिसके आगे कहने-सुनने एवं समझने के लिए कुछ भी बचा नहीं रहता । जिस आलेख के अंत मे दर्शकों की जिज्ञासा ऐसा क्यों हुआ या कैसे हुआ बनी रहती है वह उतना प्रभावी नहीं होता । अत: उसका संदेश स्पष्ट और भ्रमरहित होना चाहिए । इसके लिए एक बेहतर उत्कर्ष की रचना जरूरी हो जाती है । चूंकि आलेख की कुंजी उत्कर्ष में होती है इसलिए इस यात्रा में लेखक और निर्देशक दोनों की गुणवत्ता का परिचय भी मिल जाता है । हालांकि दृश्य-माध्यम में खासकर नई पीढ़ी के निर्देशकों ने उत्कर्ष के बाद भी उत्कर्ष जैसे तत्व को जोड़ने की कोशिश की है किन्तु इसका निर्वाह करना कठिन होता है ।

4.4.4 सीन सिक्वेंस (Scene Sequence.)

आलेख लिखते समय लेखक की खास कर टी.वी. नाटक या फिल्म के लिए सीन एवं सिक्वेंस अर्थात दृश्य एवं अंक का संकेत भी देना होता है । नाटकों के लेखन में इसे अंक एवं दृश्य के रूप में देखा जाता है । उदाहरण के लिए एक अंक में कई दृश्य होते हैं और सभी एक दूसरे से जुड़े होते हैं। उसी प्रकार एक सिक्वेंस में कई दृश्य होते हैं और कई दृश्य मिलकर एक सिक्वेंस पूरा करते हैं । खासकर शूटिंग के संदर्भ में इस प्रकार के विभाजन से कई लाभ होते हैं । समय और श्रम दोनों की बचत तो होती ही है साथ में धन भी ज्यादा व्यय नहीं होता । इसलिए शूटिंग के लिहाज से तमाम दृश्यों को सिक्वेंस के अनुसार रिकार्ड कर लिया जाता है । हालांकि टी.वी. नाटकों के लिए इस प्रकार के विभाजन की जरूरत कम ही होती है क्योंकि आमतौर पर टी.वी. नाटक एक स्टूडियो और लगभग एक समय में रिकार्ड किए जाते हैं । इस प्रकार का विभाजन वृत्तचित्र या फिल्म के निर्माण में ज्यादा लाभ पहुंचाता है।

टी.वी. को क्लोज- अप का माध्यम कहा गया है जिसका तात्पर्य यह है कि कैमरे का मूवमेंट मुख्यतया चेहरे या सब्जेक्ट के क्लोज-अप के इर्द गिर्द ही संचालित होता है । दूसरे शब्दों में लांग-शॉट की ज्यादा जरूरत टी.वी. परदे के लिए नहीं होती । चिल्लाये की चकाचौंध ने टी.वी. के परदे को भी प्रभावित किया, इसलिए अब ने टीवी. के सैट भी भड़कीले बनाए जाने लगे हैं. और परदे पर एक साथ पांच से लेकर सात कलाकार भी इकट्ठे नजर आते हैं । जबकि इसके व्याकरण के अनुसार टीवी. कैमरे के सामने. एक और अधिक से अधिक तीन कलाकार एक साथ दिखाए जा सकते हैं । इसलिए टी.वी. लेखन के लिए इस बात पर भी ध्यान देना जरूरी हो जाता है कि ज्यादा से ज्यादा कलाकार एक साथ मंच पर कैमरे के सामने नजर नहीं आएं और दूसरा यह कि उनके संवाद क्लोज-अप को ध्यान में रखकर लिखे जाने चाहिए।

4.4.5 शब्द-चयन का स्वरूप

यहां ध्यान देने की जरूरी बातें ये हैं कि टी.वी. अपने आप में एक दृश्य-माध्यम है और कई दृश्य इतने प्रभावशाली होते हैं कि उन्हें अलग से विश्लेषण की जरूरत नहीं होती । उदाहरण के लिए क्रिकेट मैच की कमेंटरी जब आकाशवाणी केंद्रों से रिले की जाती है तब उसका स्वरूप कुछ और होता है । कमेंट्री को क्रिकेट के मैदान में होने वाली तमाम छोटी-बड़ी गतिविधियों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना होता है । वैसी ही कमेंट्री यदि दूरदर्शन पर प्रसारित की जाए तो दर्शकों में चिढ़ और गुस्सा दोनों तरह के भाव उत्पन्न हो सकते हैं । इसलिए दूरदर्शन के जो अनुभवी कमेंटेटर हैं वे बहुत कम ही चिढ़ नपे-तुले शब्दों का प्रयोग करते हैं । शब्दों की जरूरत वहीं महसूस होती है जहां दृश्य का प्रभाव कम हो जाता है । इस भेद को इस उदाहरण से भी समझा जा सकता है ।

दृश्य के एक आदमी के पैर के पास एक गेंहुअन सांप फन उठाए बैठा है जिसके बारे में वह आदमी बिल्कुल अनजान है । यदि रेडियो पर उस आदमी को सावधान करना है तो हमें बताना होगा। "अरे भागो, तुम्हारे बाएं पैर के पास एक गेंहुअन सांप फन काढ़े खड़ा है. काट लेगा । भागो । "किन्तु दूरदर्शन पर इतना ही कहना होगा-"अरे भागो सांप" यहां यह कहने की जरूरत नहीं है कि सांप कैसे और कहां खड़ा है, क्योंकि दर्शक देख रहा होता है । इसलिए संवादों में शब्दों के चयन पर भी सतर्कता बरतनी पड़ती है । हम उन्हीं शब्दों का सहारा लेते हैं जो उस दृश्य को ज्यादा प्रभावकारी बना सके हैं । शब्द से भी कभी-कभी ज्यादा महत्वपूर्ण ध्वनि-प्रभाव लगते हैं । कैमरा की कुशलता और ध्वनि के प्रभाव से दृश्य को ज्यादा ही संप्रेषणीय बनाया जा सकता है । इसलिए आलेख लिखते समय लेखक को ध्वनि और संवाद दोनों के प्रभाव को तौलना पड़ता है । कभी-कभी तो ध्वनि-प्रभाव या संगीत कैमरे के प्रभाव के साथ मिलकर संवादों की जरूरत ही खत्म कर देते हैं । क्लोज-अप में आंसुओ का बहना और करुण संगीत मिलकर संवादों की जरूरत पूरी कर देते हैं । ऐसे में कहने या अलग से संवाद की जरूरत नहीं रह जाती-वह रो रहा है । दुखी है बेचारा ।

बोध प्रश्न-2

1. आलेख के प्रकार बताइए ।
2. वृत्तचित्र के आलेख के लिए शोध क्यों आवश्यक है?
3. ध्वनि-प्रभाव से क्या तात्पर्य है?

4.5 लेखक-निर्देशक और फिल्मी भाषा

'थीम' किसी भी टी.वी. कार्यक्रम का बौद्धिक तत्व होता है जिसे आलेख एवं निर्देशन के सहयोग से दर्शकों तक पहुंचाया जाता है । इसलिए आलेख के लेखक और निर्देशक के बीच जितना सहज एवं स्पष्ट चिंतन का आदान-प्रदान होगा, थीम उसी तीव्रता के साथ दर्शकों तक पहुंचायी जा सकेगी । आलेख और निर्देशक की सोच मिलकर ही एक महान कृति की रचना कर सकते हैं । हालांकि किसी एक थीम को दर्शकों तक पहुंचाने के लिए हर निर्देशक अपनेअपने ढंग से स्वतंत्र है किन्तु लेखक के साथ उसका सहज संप्रेषण इसे महत्वपूर्ण बना सकता है । यदि 'हम लोग' धारावाहिक की सफलता पर एक नजर डालें तो लेखक और निर्देशक के बीच अच्छे तालमेल को ज्यादा बेहतर तरीके से समझ सकते हैं । दूरदर्शन के अन्य धारावाहिकों में गुलजार कृत मिर्जा गालिब की प्रस्तुति को इस माध्यम की कलात्मकता एवं तकनीकी पक्ष की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता है । यहां उल्लेखनीय यह है कि इसके लेखक एवं

निर्देशक स्वयं गुलजार हैं और उनके पास दृश्य माध्यमों के लिए बड़ी सशक्त भाषा है । इसलिए जब यह कहा जाता है कि दृश्यों को प्रभावशाली बनाने के लिए ही संवादों का उपयोग किया जाना चाहिए तो इसे समझने के लिए मिर्जा गालिब धारावाहिक के दृश्यों का स्मरण करना उचित है । इस धारावाहिक में संवाद कैमरे की खूबसूरती को बढ़ाता हुआ सुनाई देता है ।

4.5.1 फिल्मी भाषा

विश्व के महान फिल्मकार व समीक्षक एलेन राव ग्रिलेत का मानना है कि- "कैमरा ही कलाकारों के संवाद के बीच ऐसी चीज पर केंद्रित हो सकता है जो बिल्कुल अलग दिखलाई पड़े खास कर दृश्य सन्ना पर या कमरे की दीवारों पर या गलियों में जहां कलाकार संवाद के दौरान टहलते हुए दिखलाई पड़ रहे हैं । यदि इसकी ऊंचाइयों के अर्थ को समझने की कोशिश कर तो लगेगा कि इस प्रक्रिया से जो दृश्य बनते हैं जिसके शब्द महज साधारण और नितांत विस्मरणीय हैं । खासकर रूप एवं छवि की गतिशीलता की तुलना में जिनका महत्व है और उनका अर्थ भी है । "यहां तात्पर्य यह है कि दृश्य-माध्यमों में केवल उसे ही आलेख नहीं माना जा सकता जो शब्दों में लिखे गए हैं या निर्देश दिए गए हैं बल्कि वैसे रूप या छवि भी फिल्म की भाषा को ज्यादा संप्रेषणीयता बना सकती हैं, जिसे कैमरे ने बड़ी स्वाभाविकता के साथ कैद करने की कोशिश की है । उदाहरण के लिए आलेख में किसी पुल का दृश्य लिखा है किन्तु उस पुल पर चिपकाए पोस्टर या पास लुढ़के कोलतार के डिब्बों का उल्लेख नहीं है । किन्तु जब कैमरा दृश्य की मांग के अनुसार उस पुल के चित्र लेता है तब इस प्रकार की छोटी-मोटी चीजें भी उस पुल के दृश्य में शामिल हो जाती है जिसका विस्तार से वर्णन आलेख में नहीं किया गया है किन्तु ऐसी चीजें उस पुल को एक अलग छवि जरूर प्रदान करती है ।

यहां कहने का तात्पर्य यह है कि यदि आलेख की विस्तृत रूप से व्याख्या की जाए तब लेखक के विचार से लेकर कैमरे द्वारा खींचे गए चित्रों के संकेतार्थ भी इसके अविभाज्य अंग बन जाते हैं । यही कारण है कि समय के बदलने-के साथ ही आलेख के अर्थ में भी परिवर्तन आया है और जैसा लिखा गया है कि वर्तमान समय में इसे भी एक सामूहिक विधा के रूप में स्वीकृत किया गया है । आज से पूर्व जब आलेख के महत्व को एक किस्म की प्रतिबद्धता के साथ स्वीकारा जाता था तब यह मान लिया जाता था कि पूरी फिल्म आलेख से ही बनी है ।

विश्व कें विख्यात् फिल्मकार स्व. सत्यजीत रे भी आलेख को पूरी प्राथमिकता के साथ स्वीकार करते थे । एक तरह से उनकी फिल्मों के बारे में कहा जाता है कि उनकी फिल्म कागज पर ही आलेख के रूप में तैयार हो जाती थी । सिर्फ कैमरे से उसके विजुअल्स जोड़ने का काम बचा रहता था ।

यह सत्य है कि टी.वी. के कार्यक्रमों में विशेष परिस्थितियों में ही आलेख का इस्तेमाल किया जाता है जबकि आकाशवाणी में थोड़ी बहुत परंपरा अभी भी कहीं-कहीं देखने को मिल जाती है । टी.वी. कार्यक्रम निर्माण, खासकर इलेक्ट्रॉनिक कैमरे के सहयोग से इतना आसान हो गया है कि सामान्य तौर पर इसकी ट्रेनिंग की ज्यादा जरूर महसूस नहीं होती । इसलिए इस माध्यम से कार्यक्रम बनाना जितना आसान हो गया है उतना आलेख तैयार करना भी जबकि आलेख तैयार करना सरल कार्य नहीं है । खासकर नाटकों या फिल्म के आलेख में अभिनेताओं को सबसे कड़ी चुनौति का सामना करना पड़ता है । सुप्रसिद्ध फिल्म चिंतक जोसेफ वान स्टर्नबर्ग लिखते हैं - "अभिनय वेशभूषा बदलकर आलेख के शब्दों को याद करना ही नहीं है बल्कि विचारों का पुनर्निर्माण करना भी है जिसे संवादों और अभिनय के द्वारा किया जा सकता है । यह आसान नहीं है । शब्दों के सबसे अच्छे अर्थ में अभिनेता सिर्फ

दुभाषिया ही नहीं है और न सिर्फ विचारों का संवाहक है जो दूसरों के मस्तिष्क तक ले जाता है बल्कि उसे स्वयं भी एक अच्छे रचनात्मक कलाकार की तरह जीना पड़ता है।"

इस पाठ के आरंभ में लेखक, निर्देशक यानी संवाद और कैमरे की प्रतिबद्धता की बात कही गई थी । अब ऐसी परंपरा देखने को नहीं मिलती । आमतौर पर यह निर्देशक का माध्यम हो गया है क्योंकि आलेख की कल्पना को पूर्णरूप से यथार्थ रूप देना उसी की जिम्मेदारी होती है-फिर भी कई ऐसे निर्देशक हैं जो आलेख को अक्षरश: फिल्माने की कोशिश करते हैं । मुंबई फिल्म संसार में चूंकि लेखकों के महत्व को अपवाद स्वरूप ही सराहा गया है इसलिए इसका प्रभाव टी.वी. की संस्कृति पर भी देखने को मिलता है । प्रारंभ में स्व. कृष्ण चन्दर, सआदत हसन मंटो, राजेन्द्रसिंह बेदी, ख्वाजा अहमद अब्बास, मुखराम शर्मा, सचिन भौमिक जैसे अपवाद स्वरूप लेखक ही हैं जिन्होंने पटकथा लेखक के रूप में अपनी विशिष्टता बनाए रखी । बाद में गुलजार और सलीम जावेद ने इस वर्ग की विशिष्टता में चार चंद लगा दिए । सलीम जावेद ने पटकथा लेखन के महत्व को मुंबई फिल्म उद्योग में एक जरूरी तत्व के रूप में स्वीकारने के लिए मजबूर कर दिया।

प्रस्तुत उदाहरण पटकथा और कैमरे की प्रतिबद्ध रचना है जिसमें काफी ईमानदारी से पटकथा को फिल्माने की कोशिश की गई है । फ्रांस के सुप्रसिद्ध फिल्म लेखक मारग्रिट डुरास की पटकथा को विश्वविख्यात् निदेशक एलेन रेसनेस ने फिल्माया था । इस आलेख को इसलिए असाधारण माना जाता है कि निर्देशक ने इसके मूल स्वरूप पर ही पूरी फिल्म को केंद्रित रखा है । बहुचर्चित फिल्म हिरोशिमा ऑन अमूट के प्रारंभिक आलेख का नमूना इस प्रकार है -

जैसे ही फिल्म शुरू होती है नंगे कंधों वाले दो जोड़े धीरे-धीरे नजर आते है । जैसे ही इन कंधों को हम लोग देखते हैं पता चलता है कि वे धड़ के सर एवं कूल्हे के भाग से कटे हुए हैं- एक दूसरे से लिपटे हुए और जैसे कि इन्हें राख, ओस, बरसात या पसीने में मिलाकर सुखा दिया गया हो (जो भी आसान लगे) । यहां मुख्य बात यह है कि यह ओस या पसीने का चुहचुहाना आणविक मशरूम की तरह लगते हैं जो हिलते है और वाष्प बनकर उड़ जाते हैं । इस दृश्य से ताजा विचारों की हिंसात्मक एव द्वन्द्वात्मक अनुभूति होनी चाहिए । कंधे कई रंगों के हैं । एक काला और दूसरा प्रकाशवान । इसके पार्श्व से फुस्को का शौक देने वाला संगीत सुनाई पड़ता है । हाथों की भिन्नता भी पहचान में आ जाती है । स्त्री का हाथ काले कंधों पर पड़ा हुआ है । पड़ा हुआ होना से ज्यादा उचित होगा जकड़ा हुआ है । एक आदमी की आवाज-बेलौस और ठंडी-जैसे कुछ पंक्तियां उद्धृत कर रही हो -

मर्द की आवाज :-तुमने हिरोशिमा में कुछ नहीं देखा-कुछ नहीं देखा ।

(सुविधा के अनुसार इस आवाज का इस्तेमाल किया जा सकता है । एक स्त्री की आवाज बेलौस, फंसी हुई एक रस जैसे वह पाठ उद्धृत कर रही हो ।)

स्त्री की आवाज - मैंने सब कुछ देख लिया. सब कुछ (फुस्को का संगीत जो पहले फेड आउट हो गया था दुबारा शुरू होता है । ठीक उसी क्रम से जिस क्रम से उस स्त्री का हाथ कंधे को कसता जा रहा है. सहलाने लगता है । उसके नाखूनों के लगने का चिह्न उस कंधे पर दिखलाई पड़ते हैं । फिर स्त्री की आवाज सुनाई पड़ती है । शांत. रंगहीन. बेलौस)

स्त्री अस्पताल.. जैसा कि मैंने देखा.. मैंने सचमुच देखा. हिरोशिमा में एक अस्पताल है.. मैं कैसे नहीं देखती?

(अस्पताल सीढ़ियां, मरीज, कैमरा, ठंडेपन के साथ आब्जेक्टिव शॉट लेता है (हम लोग उस स्त्री को देखते हुए नहीं देखते हैं । फिर हम लोग उस कंधे पर वापस आते हैं जिसे स्त्री ने जोर से पकड़ रखा है जैसे कि वह उसे जाने नहीं देगी) ।

पुरुष: नहीं तुमने हिरोशिमा में अस्पताल नहीं देखा, तुमने हिरोशिमा में कुछ नहीं देखा । (अब स्त्री की आवाज और निर्वैयक्तिक हो जाती है । संग्रहालय के शॉट । वहां की प्रकाश-व्यवस्था वैसी है जैसी अस्पताल की थी । अंधेरी और अस्पष्ट बम के गिराने के प्रमाण माडल, झुलसी चमड़ी, गले लोहे, जली-झुलसी देह.)

स्त्री : -संग्रहालय में चार बार....

पुरुष : -क्या हिरोशिमा में संग्रहालय है?

स्त्री : -हिरोशिमा के संग्रहालय में चार बार.... मैंने देखा लोगों को घूमते हुए । विचारों में खोए। चित्रों में किसी चीज के अभाव में पुनर्निर्माण करने में लगे हुये...

यह उदाहरण फिल्म लेखन का जरूर है किन्तु कैमरा टी.वी. माध्यम के लिए उतना ही जरूरी है इसलिए फिल्म प्रभाव को अलग नहीं किया जा सकता । यहां तक कि टीवी. को फिल्म का जेबी संस्करण माना जाता है । कहां 270 एस.एम. के परदे पर दिखाई जाने वाली फिल्म जब 61 या 51 सेंटीमीटर के परदे पर आ जाती है तो टी.वी. उस का बौन्साई संस्करण लगता है । इसलिए आलेख में परदे की सीमा को ध्यान में रखते हुए शॉट इत्यादि की व्यवस्था की जाती है। कैमरों के शॉट के अतिरिक्त आलेख या पटकथा या संवादों के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता ।

बोध प्रश्न-3

1. लेखक और निर्देशक घनिष्ठ सहयोग क्यों आवश्यक है?
2. पटकथा के महत्व को स्थापित करने में गुलजार और सलीम जावेद का विशेष योगदान क्यों रहा?
3. टी.वी के फिल्म माध्यम का जेबी संस्करण क्यों कहते हैं?

4.6 सारांश

टी. वी कार्यक्रम के लिए आलेख दस पंक्तियों का हो सकता है जैसे उद्घोषणा के लिए, और दस पृष्ठ का भी वृत्तचित्र या धारावाहिक के लिए । फिल्म की तरह टी.वी भी निर्देशक का माध्यम है। वही आलेख को छायाकार के माध्यम से अपनी कल्पना के अनुसार निर्णायक स्वरूप देता है । नाटक या धारावाहिक का आलेख पटकथा का रूप धारण करता है फिर संवाद लिखे जाते हैं और शूटिंग स्क्रिप्ट बनती है इस दौरान आलेख में अनेक परिवर्तन होते हैं फिर निर्देशक छायाकार और कलाकार कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए सुविधा या स्थिति के अनुसार आलेख संशोधन कर सकते हैं इसलिए टी.वी लेखन सामूहिक लेखन कहलाता है।

टी.वी लेखक को दृश्य- माध्यम के तकनीकी और कलात्मक पक्ष की गहरी समझ होनी चाहिए। उसमें संगीत, ध्वनि-प्रभाव, फिल्मी भाषा और प्रतीकों का सर्वोत्तम उपयोग करने की क्षमता हो।

4.7 शब्दावली

क्लोज-अप : पात्र का नजदीक से लिया गया फोटो चित्र जिसमें कंधे से लेकर सिर तक नजर आये।

शूटिंग स्क्रिप्ट: छायांकन की दृष्टि से तैयार किया गया आलेख जिसमें कैमरे की स्थिति कोण, सामीप्य या दूरी सम्बन्धी स्पष्ट निर्देश अंकित हों । इसमें प्रत्येक शॉट, संवाद, संगीत, साउंड इफेक्ट, कैमरा मूवमेंट और सिक्वेंस का उल्लेख होता है ।

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. द वर्क ऑफ द टेलीविजन जर्नलिस्ट: राबर्ट टाइरेल, फोकल प्रेस लि., लंदन
2. टेलीविजन एण्ड स्क्रीन राइटिंग: रिचर्ड ए. ब्लुम, बटरवर्थ-हैनिमैन ।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कहानी-उपन्यास के लेखन और टी.वी. लेखन में क्या अन्तर है?
2. लेखक और निर्देशक में सहयोग और समरसता क्यों आवश्यक है?
3. टी.वी. कार्यक्रम में कैमरा संचालन, ध्वनि-प्रभाव और संगीत का महत्व समझाइए ।
4. अपने नगर की किसी प्रमुख समस्या पर 10 मिनट का वृत्तचित्र बनाने के लिए कमेंटरी लिखिए और बताइए किन स्थानों के छायांकन और किन लोगों से बातचीत शामिल है

इकाई 5 टेलीविजन-संवाददाता

ईकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 संवाददाता को परिभाषा

5.2.1 मुद्रित माध्यम

5.2.2 प्रसार माध्यम

5.3 टेलीविजन संवाददाता की भूमिका

5.4 संवाददाता की विशेषताएं

5.4.1 बाह्य पहलू

5.4.2 आंतरिक पहलू

5.4.2.1 दायित्व बोध

5.4.2.2 प्रबंधन क्षमता

5.4.2.3 तकनीकी कुशलता

5.4.2.4 टीम भावना

5.5 व्यावहारिक कार्य

5.5.1 समाचार लेखन

5.5.2 भेंटवार्ता/साउंड बाइट

5.5.3 पीस टू कैमरा

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 उपयोगी पुस्तकें

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस ईकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि पत्रकारिता और टेलीविजन समाचारों के प्रसारण मे संवाददाता की क्या भूमिका रहती है । आपको यह भी मालूम हो जाएगा कि टेलीविजन संवाददाता में क्या विशेषता होनी चाहिए और अच्छा संवाददाता बनने के लिए किन-किन तकनीकी पक्षों का ज्ञान होना आवश्यक है । आप यह भी जान सकेंगे कि जनसंचार-माध्यमों के स्वरूप में तेजी से आ रहे बदलाव के कारण टेलीविज़न संवाददाता की भूमिका मे क्या परिवर्तन हुआ है । इस पाठ से आप समझ सकेंगे कि टेलीविजन समाचारों के प्रस्तुतीकरण के लिए संवाददाता को किन-किन प्रक्रियाओं से गुजर कर समाचार तैयार करना पड़ता है।

5.1 प्रस्तावना

अपने आस पास की घटनाओं को जानने की मनुष्य की सहज इच्छा ने ही पत्रकारिता और जनसंचार-माध्यमों को जन्म दिया है । एक दूसरे तक संदेश पहुंचाने का जो काम पहले अंतर्वैयक्तिक संम्पर्क के जरिए हुआ करता था, वह छपाई टैक्नोलोजी तथा रेडियो टैक्नालोजी के विकास के पश्चात् सामूहिक रूप से होने लगा । इसलिए इन माध्यमों को मास मीडिया या जनसंचार-माध्यम कहा जाता है । किन्तु पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो और टेलीविजन केवल माध्यम हैं जो किसी घटना की सूचना अथवा समाचार को असंख्य लोगों तक पहुंचाने की भूमिका निभाते हैं । इस जानकारी को एकत्र करने का कार्य तो व्यक्तियों द्वारा ही किया जाता है । समाचार एकत्र करने के कार्य को रिपोर्टिंग और इस दायित्व को निभाने वाले व्यक्ति को संवाददाता अथवा कोरेस्पोंडेंट कहा जाता है ।

रेडियो और टेलीविज़न समाचार यानी प्रसारण पत्रकारिता के प्रादुर्भाव से पूर्व संवाददाता द्वारा केवल समाचारपत्रों और संवाद एजेंसियों के लिए रिपोर्टिंग की जाती थी जो सहज और सरल कार्य था । इसमें संवाददाता घटना विशेष की जानकारी विभिन्न स्रोतों से प्राप्त करके लिख कर या टेलीविजन, टेलीप्रिंटर अथवा फैक्स से समाचारपत्र या एजेंसी को भेज देता है । परन्तु टेलीविजन संवाददाता का कार्य अत्यन्त जटिल है । इसमें संवाददाता को घटना का केवल लिखित ब्यौरा नहीं देना होता बल्कि समाचार के श्रव्य एवं दृश्य तथ्य भी जुटाने होते हैं, क्योंकि समाचार श्रव्य अथवा दृश्य रूप में प्रस्तुत करना होता है । भारत में इस दशक के प्रारंभ तक टेलीविजन समाचार केवल दूरदर्शन से प्रसारित होते थे । दूरदर्शन समाचारों में नवीनता, विविधता तथा रोचकता का अभाव था । संवाददाता की भूमिका भी सीमित थी । किन्तु उपग्रह टेलीविजन चैनलों के आगमन तथा विभिन्न चैनलों द्वारा समाचार प्रसारण शुरू हो जाने के पश्चात् टेलीविजन समाचार की शैली में सुधार हुआ है और दूरदर्शन सहित सभी चैनलों में स्पर्धा होने के फलस्वरूप टेलीविजन समाचारों को पेश करने की तकनीक में नित नए प्रयोग किए जा रहे हैं ।

समाचार एकत्र करने यानी रिपोर्टिंग की बुनियादी आवश्यकताएं वहीं रहते हुए भी संवाददाता की भूमिका तथा दायित्व में काफी विस्तार हुआ है । आज टेलीविजन संवाददाता की भूमिका परंपरागत संवाददाता से काफी भिन्न हो चुकी है और नई-नई चुनौतियां उसके सामने आ रही हैं । यदि आप टेलीविजन के लिए रिपोर्टिंग करना चाहते हैं तो टेलीविजन संवाददाता की बदली हुई भूमिका, कर्त्तव्यों, दायित्वों तथा विशेषताओं को समझना आवश्यक है ।

5.2 संवाददाता की परिभाषा

जैसाकि आप पढ़ चुके हैं कि संवाददाता का मुख्य कार्य संवाद यानी समाचार एकत्र करना है। इसके लिए संवाददाता को घटना या समाचार के स्थल अथवा समाचार के स्रोत तक व्यक्तिगत रूप से पहुंचना होता है । संवाददाता समाचार से जितना निकटता से जुड़ा होगा उतना ही समाचार विश्वसनीय और प्रभावशाली बनेगा । वैसे तो संवाददाता द्वारा दिए गए या भेजे गए समाचार का अनेक स्तरों व चरणों पर परिष्कार यानी संपादन होता है किन्तु अंतिम तौर पर तैयार समाचार की बुनियाद संवाददाता द्वारा भेजा गया डिस्पेच ही बनता है । रिपोर्टिंग पत्र-पत्रिका के लिए हो या प्रसारण-माध्यमों के लिए, समाचार की प्रस्तुति में संवाददाता की आधारभूत भूमिका रहती है । इसके लिए संवाददाता को अपने सम्पर्क सूत्र विकसित करने पड़ते हैं ताकि उसे समाचार और समाचार की संभावनाओं वाले स्रोतों की

तत्काल जानकारी मिल सके । कोई भी समाचार सबसे पहले प्राप्त करना किसी भी संवाददाता का मुख्य लक्ष्य रहता है । राजनीतिक संवाददाता इस मामले में विशेष रूप से चिंतित और सक्रिय रहते हैं । समाचारपत्र या संवाद समिति की विश्वसनीयता बढ़ाने में 'न्यूज़ ब्रेक' यानी अन्य माध्यमों से पहले खबर प्रसारित या प्रकाशित करने का काफी महत्व है । समाचार की रचना और स्वरूप अलग-अलग माध्यमों के लिए अलग- अलग होता है । अत: पत्र-पत्रिकाओं का संवाददाता जिस शैली में खबर तैयार करेगा, वह प्रसारण-माध्यम के लिए काम करने वाले संवाददाता की शैली से भिन्न होगी ।

5.2.1 मुद्रित-माध्यम

मुद्रित माध्यमों में दैनिक एव अन्य नियतकालिक समाचारपत्र-पत्रिकाएं तथा संवाद एजेंसियां आती हैं । क्योंकि दैनिक समाचारपत्र ही समाचार संप्रेषण का प्रभावशाली और व्यापक माध्यम दीर्घकाल तक रहा है । इस लिए आज भी समाचारपत्रों के संवाददाताओं का प्रभुत्व कायम है । यही कारण है कि रेडियो और टेलीविजन केंद्रों तथा चैनलों के लिए संवाददाता मुख्यत: समाचारपत्रों ने ही उपलब्ध कराए । आज भी जिन स्थानों पर रेडियो या टेलीविजन समाचार संगठनों के अपने प्रतिनिधि नियुक्त नहीं है, वहां अखबारों या संवाद समितियों के संवाददाता से वायस डिस्पैच या फोन के माध्यम से समाचार लेने की विश्वसनीय तकनीक का प्रयोग किया जाता है । मुद्रित-माध्यमों के संवाददाता किसी घटना या गतिविधि का पूर्ण विवरण अन्य स्रोतों से पुष्टि या खंडन एवं प्रतिक्रिया तथा उपलब्ध जानकारी के आधार पर घटना की पृष्ठभूमि आदि तार, फैक्स, टेलीप्रिंटर, फोन, इंटरनेट, ई-मेल आदि के माध्यम से पत्र के प्रकाशन के स्थान तक भेजता है । हां, दैनिक समाचारपत्र का संवाददाता अपने पत्र की नीति को ध्यान में रखते हुए समाचार की खोज और प्रस्तुति करता है जबकि संवाद समिति के संवाददाता के सामने इस तरह की कोई बंदिश नहीं रहती । वह घटना का ब्यौरा ज्यों का त्यों भेज देता है क्योंकि समाचारों का इस्तेमाल करने वाले समाचारपत्र अलग-अलग विचारधाराओं के हो सकते हैं (बल्कि होते ही हैं) जो संवाद समितियों से निष्पक्ष, विश्वसनीय और संयमपूर्वक लिखे गए समाचार की अपेक्षा करते हैं । सरकारी विभाग और विदेशी दूतावास भी संवाद समिति की सेवा लेते हैं । समाचार प्रधान पत्रिकाओं के संवाददाताओं को समाचार तत्काल भेजने की आवश्यक्ता नहीं होती । अत: वह घटना के सभी पक्षों पर अतिरिक्त जानकारी एकत्र करके अपनी राय और भावी संभावनाओं के साथ समाचार तैयार करके भेजता है । पत्रिका के संवाददाता की भूमिका में समाचार संपादक की भूमिका का कुछ पुट भी शामिल रहता है ।

5.2.2 प्रसारण-माध्यम

प्रसारण-माध्यमों के संवाददाता को समाचार एकत्र करने की ऊपर बताई गई भूमिका तो निभानी ही पड़ती है साथ ही अपने माध्यम की मांग के अनुसार उसे श्रव्य और दृश्य सामग्री भी जुटानी और प्रेषित करनी होती है । प्रसारण-माध्यमों के संवाददाता के लिए लिखित पक्ष को विस्तार देना आवश्यक नहीं है जबकि मुद्रित माध्यमों के संवाददाता का पूरा काम लिखित रूप में होता है । उदाहरण के लिए रेडियो का संवाददाता घटना का मोटा-मोटा ब्यौरा देने के बाद मौके पर मौजूद किसी व्यक्ति, विषय के किसी विशेषज्ञ या घटना से प्रभावित व्यक्ति की ध्वनि रिकार्ड करके भेज देगा जिससे घटना का ब्यौरा तथा अन्य पहलू स्वत: ही सामने आ जाएंगे । संवाददाता घटना का ब्यौरा स्वयं अपनी आवाज में देकर समाचार को अधिक विश्वसनीय बना सकता है । रेडियो का श्रोता जब घटना से जुड़े लोगों

की अपनी आवाज में विवरण सुनता है तो समाचार सीधे उसके मन-मस्तिष्क से जुड़ जाता है । रेडियो संवाददाता अपना समाचार टेलीफोन लाइन से रिकार्ड करवा सकता है अथवा आडियो कैसेट में रिकार्ड करके वायु अथवा सड़क मार्ग से भेज सकता है । स्थानीय संवाददाता मौके पर जाकर सभी पक्षों की आवाज रिकार्ड करके समाचार कक्ष को उपलब्ध कराता हैं

टेलीविजन संवाददाता की भूमिका इससे भी दो कदम आगे है । उसे ध्वनि के साथ-साथ दृश्य सामग्री भी जुटानी पड़ती है जिसमें कैमरामैन उसकी सहायता करता है । टेलीविजन संवाददाता को लिखित सामग्री, ध्वनि तथा दृश्य तीनों पक्षों का ध्यान रखना होता है ।

5.3 टेलीविजन-संवाददाता की भूमिका

आपने पढ़ा कि प्रसारण-माध्यमों के लिए काम करने वाले अधिकतर संवाददाता मुद्रित माध्यमों से ही अपने कैरियर की शुरूआत करते हैं । बहुत कम संवाददाता हैं जिन्होंने सीधे टेलीविज़न संवाददाता के रूप में काम प्रारंभ किया हो । समाचारपत्रों, संवाद एजेंसियों या रेडियो के लिए समाचार एकत्र करने वाले व्यक्ति टेलीविजन की तकनीकों की जानकारी प्राप्त करके तथा कुछ व्यावहारिक अनुभव या प्रशिक्षण लेकर सफल एवं कुशल टेलीविजन संवाददाता बन जाते हैं । भारत में तो यह बात और भी अधिक सार्थक है क्योंकि यहां टेलीविजन समाचार का इतिहास अपेक्षाकृत नया है । दूरदर्शन समाचार में तो अभी तक भारतीय सूचना सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति के कारण रेडियो तथा अन्य माध्यमों में काम कर चुके अधिकारी संवाददाता के रूप में भी काम करते हैं । दूरदर्शन ने विशेष रूप से समाचार संकलन के लिए जो संवाददाता कुछ वर्ष पहले नियुक्त किए थे, उनमें से अधिकांश लोग अखबारों, पत्रिकाओं और रेडियो में काम कर रहे थे । अन्य चैनलों द्वारा भी समाचार कार्यक्रमों के लिए जो संवाददाता नियुक्त किए गये हैं वे भी अखबारों की पृष्ठभूमि वाले हैं । किन्तु सभी अखबारी संवाददाता टेलीविजन संवाददाता नहीं बन सकते । इसके लिए तकनीकी जानकारी के अलावा कुछ खास गुणों की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न-1

1. समाचारपत्र-संवाददाता और टेलीविजन के संवाददाता में बुनियादी अंतर बताइए ।
2. टेलीविजन समाचार प्रसारण में संवाददाता की भूमिका स्पष्ट कीजिए ।

5.4 टेलीविजन संवाददाता की विशेषताएं

आप जान चुके हैं कि टेलीविजन संवाददाता की भूमिका अन्य माध्यमों के संवाददाता की भूमिका से अधिक जटिल तथा बहु-आयामी होती है । यहां हम जिन विशेषताओं की चर्चा कर रहे हैं, उनमें वे विशेषताएं भी शामिल है जो पत्र-पत्रिकाओं, संवाद समितियों और रेडियो समाचार के संवाददाताओं पर भी लागू होती हैं ।

संवाददाता की बुनियादी विशेषता तो यह है कि उसकी समाचार और पत्रकारिता में रुचि और, निष्ठा हो । पत्रकारिता से जुड़ी शैक्षणिक योग्यताएं और प्रशिक्षण सोने में सुहागा है । टेलीविजन समाचारों मे अन्य माध्यमों की तुलना में भाषा का योगदान कम होता है, फिर भी भाषा के महत्व को कम नहीं आका जा सकता । संवाददाता को समाचारों की भाषा पर अधिकार और भारतीय संदर्भ में अंग्रेजी और हिन्दी का अच्छा ज्ञान होना चाहिए । संवाददाता को अपने समाचारों की भाषा में हो रहे विकास तथा परिवर्तनों पर नजर रखनी चाहिए और उस भाषा के साहित्य का सामान्य परिचय होना चाहिए । उसे

टेलीविजन के विभिन्न तकनीकी पक्षों की भी पूरी समझ होनी चाहिए । इन बुनियादी विशेषताओं के अलावा संवाददाता में अन्य अनेक विशेषताओं की अपेक्षा है जिसका विवरण आगे दिया जा रहा है ।

5.4.1 बाह्य पहलू

बाह्य पहलुओं से अभिप्राय: उन विशेषताओं से है जो प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं और संवाददाता के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाती हैं । ये पहलू उसे सहज ढंग से समाचार एकत्र करने तथा उनकी प्रस्तुति में सहायक सिद्ध होते हैं । टेलीविजन चूंकि दृश्य माध्यम है, अत: इन पहलुओं की प्रासंगिकता असंदिग्ध है । संवाददाता यदि देखने में स्वस्थ, रूपवान और प्रभावशाली व्यक्तित्व का स्वामी है तो वह अधिक विश्वास के साथ लोगों से मिल सकता है और बातचीत कर सकता है । टेलीविजन पर अपना समाचार प्रस्तुत करते हुए भी वह मनोहारी लगेगा, जिससे समाचार की संप्रेषणीयता, विश्वसनीयता और प्रभाव में वृद्धि होगी । इसी प्रकार उसकी आवाज मधुर, स्पष्ट और चमकदार होगी तो उसकी बात निश्चय ही अधिक प्रभावशाली होगी । निस्संकोच और धारा प्रवाह बोल सकने और समय तथा संदर्भ के अनुरूप शब्दों व मुहावरों का चयन तथा प्रयोग कर सकने की क्षमता कुशल संवाददाता की महत्वपूर्ण विशेषता है । संवाददाता को समाचारों तथा उन पर प्रतिक्रियाएं प्राप्त करने के उद्देश्य से हर उम्र, हर वर्ग तथा विविध स्वभावों व विचारधाराओं वाले व्यक्तियों से मिलना होता है अत: उसमें मिलनसारिता. शिष्टाचार तथा सद्व्यवहार का. गुण होना आवश्यक है, इसी से मिलती-जुलती विशेषता वेशभूषा की भी । संवाददाता को अवसर, परिस्थिति तथा अपने व्यक्तित्व के अनुरूप प्रभावशाली किन्तु सुरुचिपूर्ण वेशभूषा धारण करनी चाहिए । कुछ संवाददाता, विशेषकर महिला संवाददाता अधिक भड़कीली, तंग और रंग-बिरंगी वेशभूषा धारण करके अपने व्यक्तित्व का प्रभाव कम कर देती हैं । किन्तु विशेष परिस्थितियों जैसे कि युद्ध, भूकंप, बाद, दुर्घटना, महामारी, भुखमरी, उपद्रव जैसे त्रासद समाचारों के समाचार एकत्र करते और प्रस्तुत करते समय वेषभूषा का महत्व गौण हो जाता है ।

5.4.2 आंतरिक पहलू

अभी आपने पढ़ा कि टेलीविजन संवाददाता को अपना व्यक्तित्व तथा अपने काम-काज को प्रभावशाली बनाने के लिए अपने व्यावहारिक, व्यावसायिक जीवन में कुछ बाह्य पहलुओं का ध्यान रखना पड़ता है । किन्तु संवाददाता को कुछ आन्तरिक गुण भी विकसित करने चाहिए जो बाह्य पहलुओं से अधिक महत्वपूर्ण हैं ।

5.4.2.1 दायित्व बोध

इनमें सबसे पहली विशेषता है दायित्व संभालने की तत्परता । संवाददाता को किसी भी समय किसी भी प्रकार की घटना का समाचार लेने के लिए निकलना पड़ सकता है । कुछ वर्ष पहले दिल्ली के निकट हरियाणा में चरखी-दादर में दो विमान टकरा कर दुर्घटनाग्रस्त हो गए थे । इससे पहले दिल्ली हवाई अड्डे के निकट रूस का एक विमान दुर्घटनाग्रस्त हुआ था । ये दोनों दुर्घटनाएं तड़के हुई थी और संवाददाताओं को तत्काल घटनास्थल पर पहुंचकर अंधेरे में ही दुर्घटना को कवर करके चित्र तथा समाचार भेजने का दुष्कर एव चुनौतीपूर्ण कार्य संभालना पडा था । इसी प्रकार 1993 में महाराष्ट्र में लिटर में भीषण अप के दौरान अचानक संवाददाताओं को भूकंप प्रभावित क्षेत्र में पहुंचकर समाचार भेजने पड़े

। अच्छा टेलीविजन संवाददाता वास्तव में चुनौतियों की प्रतीक्षा करता है और कोई भी कठिन दायित्व आते ही उसे निभाने के लिए आगे आता है ।

5.4.2.2 प्रबन्ध क्षमता

संवाददाता को परिश्रमी और कल्पनाशील होना चाहिए ताकि वह अपना मिशन पूरा करने के यानी समाचार और दृश्य सामग्री जल्दी से जल्दी गंतव्य स्थान तक पहुँचाने के उपाय छू सके । ऐसे में व्यवहार कुशलता का गुण काफी काम आता है । ऊपर हमने लातूर के भीषण भूचाल की चर्चा की है । जिन दिनों यह भूकंप आया था निजी चैनलों पर समाचार प्रसारण अपनी अवस्था में था । दूरदर्शन के हैदराबाद स्थित संवाददाताओं ने प्रतिदिन तीन-तीन सौ किलोमीटर सड़क यात्रा करके वहाँ के चित्र और समाचार दिल्ली भेजने की व्यवस्था की क्योंकि भूचाल स्थल के निकट किसी भी स्थान से चित्र प्रेषित करने की संचार सुविधा नहीं थी । संवाददाता को अपनी सूझ-बूझ और सीमित साधनों के बल पर संवाद तथा विजुअल प्रेषित करने पड़ते हैं । अत: बिना घबराए अपना लक्ष्य पूरा करने के लिए धैर्यपूर्वक परिश्रम तथा विवेक का इस्तेमाल करने की क्षमता टेलीविजन संवाददाता की महत्वपूर्ण विशेषता है । दूसरे शब्दों में संवाददाता को कुशल प्रबन्धक भी होना चाहिए । उसे कैमरामैन, लाइट ब्वाय, ध्वनि संयोजक आदि सभी का सहयोग लेना होता है । यदि कभी कोई उपकरण खराब हो जाए तो कैसे तत्काल उसे ठीक कराना है या कौन-सा-वैकल्पिक तरीका अपनाना है, यह सब सोचने-समझने की शक्ति उसमें होनी चाहिए । दिल्ली में हुई विमान्दुर्घटना के बाद आस-पास बिजली का कोई प्वाइंट नहीं था और कैमरे की बैटरी फेल हो गई तो दूरदर्शन के संवाददाता ने कहीं दूर जाकर बिजली का प्वाइंट ढूंढा और लंबे तार की मदद से कैमरा ऑपरेट किया । उसकी इस सूझबूझ और परिश्रम की बदौलत दर्शकों को कुछ ही समय बाद सवेरे के समाचारों में विमान दुर्घटना की तस्वीरें देखने को मिल सकीं।

5.4.2.3 तकनीकी कुशलता

संवाददाता अपना काम बखूबी तभी कर सकता है जब उसे टेलीविजन प्रसारण के तकनीकी पहलुओं का व्यावहारिक ज्ञान होगा । जब उसे वीडियो तथा ऑडियो रिकार्डिग, संपादन, वीडियो-ऑडियो मिक्सिंग, कैमरा संचालन जैसे कार्यो का ज्ञान होना चाहिए क्योंकि अनेक बार ऐसे अवसर भी आते हैं जब संवाददाता को बिना किसी सहायक के स्वयं ही ये सब काम करने पड़ते हैं ।

जब संवाददाता को बाहर किसी स्थान पर या विदेश में कवरेज के लिए जाना हो तो उसे पहले मालूम कर लेना चाहिए कि किस स्थान पर वीडियो संपादन तथा समाचार प्रेषण की सुविधाएं उपलब्ध हैं । इसी तरह माइक के इस्तेमाल का भी समुचित ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि उसे लोगों से बातचीत करके भी समाचार एकत्र करने होते हैं ।

5.4.2.3 टीम भावना

आपने पहले पढ़ा कि टेलीविजन समाचारों के लिए रिपोर्टिंग करना एक जटिल और बहु-आयामी प्रक्रिया है जिसमें अनेक पक्ष सम्मिलित हैं । संवाददाता ई. एन. जी. (इलेक्टॉनिक न्यूज गैदरिंग) टीम का मुखिया होता है और उसे कैमरामैन, लाइटमैन, ध्वनि-संयोजक, इंजीनियर आदि अनेक व्यक्तियों का सहयोग लेना होता है । अत: उसमें सबको साथ लेकर चलने की क्षमता और नेतृत्व का गुण अवश्य होना चाहिए । कई बार बहुत कम समय में उसे न केवल समाचार प्राप्त करना होता बल्कि अपनी

आवाज में रिकार्ड करके पूरा कैप्सूल बनाकर प्रस्तुत करना होता है । यदि उसमें नेतृत्व-कुशलता तथा सहयोगियों को साथ लेकर चलने की क्षमता नहीं होगी तो वह अपना काम सफलतापूर्वक नहीं कर पाएगा । उसे समाचार बुलेटिन के संपादक के साथ भी पूरा तालमेल रखकर काम करना होता है क्योंकि संपादक ही यह तय करता है कि अमुक समाचार को किस प्रकार का स्वरूप देना है, उसकी अवधि कितनी रखनी है और उसमें कौन-कौन से पहलू शामिल हैं । अत: अपने मिशन के प्रति व्यावसायिक निष्ठा, अनुशासन और टीम भावना को अपने भीतर विकसित करके ही टेलीविजन संवाददाता सही भूमिका निभा सकता है ।

5.4.2.4 निष्पक्षता

निष्पक्षता और तटस्थता यों तो सभी माध्यमों के संवाददाताओं और प्रस्तुतकर्त्ताओं का अनिवार्य गुण है, किन्तु टेलीविजन संवाददाता के लिए यह सावधानी अधिक महत्वपूर्ण है । इसका कारण यह है कि टेलीविजन में व्यक्ति, समूह अथवा संगठन प्रत्यक्ष दर्शकों के सामने आते हैं जिससे उन्हें प्रचार या ख्याति मिलने की संभावना बढ़ जाती है । किसी नेता, अधिकारी या कार्यकर्त्ता को आवश्यकता से अधिक प्रोजेक्ट करना या कम अवधि के लिए विजुअल में रखना पक्षपातपूर्ण अथवा भेदभावपूर्ण माना जा सकता है । कई बार कुछ पक्षों की ओर से दबाव तथा प्रलोभन भी आते हैं । किन्तु संवाददाता में इन दबावों और प्रलोभनों का सामना करने तथा अपने पर अंकुश लगा सकने की क्षमता होनी चाहिए । विषय और प्रस्तुति दोनों दृष्टियों से निष्पक्षता बरतना आवश्यक है । उसे अपनी व्यक्तिगत विचारधारा, निष्ठा और पसंद-नापसंद को समाचार की प्रस्तुति पर कभी भी हावी न होने देना चाहिए।

बोध प्रश्न-2

1. टेलीविजन संवाददाता के बाहरी स्वरूप को क्यों महत्व दिया जाता है?
2. टीम भावना के बिना टेलीविजन संवाददाता कभी सफल नहीं हो सकता । क्यों?
3. प्रबन्ध कुशलता की अपेक्षा क्यों की जाती है?

5.5 व्यावहारिक कार्य

आप जान चुके हैं कि टेलीविज़न संवाददाता में क्या-क्या विशिष्ट गुण होने चाहिए । इन गुणों और विशेषताओं के आधार पर संवाददाता रिपोर्टिंग तथा समाचार की प्रस्तुति कर अपना दायित्व सही ढंग से निभा सकता है । अब हम समाचार एकत्र करने तथा उसे टेलीविजन के समाचार बुलेटिन में शामिल करने योग्य रूप देने की प्रक्रिया के कुछ मुख्य पहलुओं तथा विधियों की चर्चा करेंगे । घटनास्थल या समाचार के स्थल, सभा, बैठक, सम्मेलन, कार्यक्रम, उत्सव, प्रतियोगिता आदि को देख-सुनकर उसके बारे में जानकारी एकत्र करना और उसे लिखना यह सभी माध्यमों की रिपोर्टिंग का प्राथमिक पहलू है । किन्तु टेलीविजन संवाददाता को समाचार लेने तथा उसकी प्रस्तुति में जो अन्य कार्य करने पड़ते हैं, उन्हें जान लेना भी आवश्यक है ।

5.5.1 समाचार लेखन

किसी घटना के विभिन्न पहलुओं की मुख्य बातें टांकने बाद संवाददाता समूचे घटनाक्रम को व्यवस्थित रूप देता है । इसके लिए सबसे पहले उसे इंट्रो यानी आमुख लिखना होता है । आमुख किसी

समाचार का वह हिस्सा है जिससे समाचार प्रारंभ होता है । पूरी घटना का सबसे महत्वपूर्ण भाग जो सभी दर्शकों की रुचि का हो, आमुख बनता है । आमुख का निर्णय क़रते हुए संवाददाता को अपने समाचार संगठन की नीति का भी ध्यान रखना होता है । संवाददाता बाद में इस इंट्रो को बदल भी सकता है । इसके बाद समाचार की काया (बाडी) की तैयारी की जाती है । यह आवश्यक नहीं कि घटना को क्रमवार ही लिखा जाए । उदाहरण के लिए किसी दुर्घटना के समाचार मे सबसे पहले मृतकों की संख्या बताई जाएगी । उसके बाद सहायता और राहत कार्यो का ब्यौरा दिया जाएगा और घायल लोगों तथा जीवित बचे व्यक्तियों की राय ली जाएगी । आप अंत में यह बता सकते हैं कि दुर्घटना किस समय और किस तरह हुई । जैसा कि पहले आप पढ़ चुके हैं टेलीविजन में भाषिक विवरण को कम तथा श्रव्य एव दृश्य पक्ष को अधिक महत्व दिया जाता है । अत: कम से कम किन्तु प्रभावशाली भाषा का इस्तेमाल करते हुए समाचार इस तरह लिखा जाए कि उसमें संबंधित पक्षों की प्रतिक्रियाएं उनके चित्र आदि को भरपूर स्थान दिया जा सके । जब चित्र और स्वाभाविक ध्वनि उपलब्ध होती है तो भाषा निरर्थक हो जाती है । स्वाभाविक ध्वनि यानी नेचुरल साउंड घटना के प्रभाव को कई गुना बढ़ा देती है । किसी की हत्या, मृत्यु या प्राकृतिक आपदा का समाचार देते हुए पीड़ित व्यक्ति अथवा उसके संबंधियों के रुदन अथवा कराह की स्वाभाविक ध्वनि के साथ घायलों के घाव या चेहरों पर परेशानी व पीड़ा के भाव क्लोज-अप में दिखा दिए जाएं तो उससे जो प्रभाव उभरेगा उसके सामने मार्मिक शब्दों में दिया गया ब्यौरा एकदम फीका साबित होगा । अत: टेलीविजन संवाददाता हर प्रकार के समाचार में, विशेषकर मानवीय घटनाओं के समाचारों में शब्दों से बहुत कम और चित्रों व ध्वनि के माध्यम से अधिक कहने की कोशिश करता है । इससे समाचार की प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता स्थापित होती है । टेलीविजन समाचार अधिक प्रभावोत्पादक होते हैं क्योंकि दर्शक को घटनास्थल का साक्षी बना देते हैं ।

5.5.1.2 भेंटवार्ता/साउंड बाइट

अभी आपने पढ़ा कि टेलीविजन समाचार में चित्रों और ध्वनि का सर्वाधिक महत्व है । किसी घटना के विविध पक्षों के चित्र कैमरे. में कैद करके उन्हें आवश्यकता के अनुरूप संपादित करके इस्तेमाल किया जा सकता है और स्वाभाविक ध्वनि मौके पर रिकार्ड करके उसका यथास्थान उपयोग किया जा सकता है । टेलीविजन समाचार को विश्वसनीय और सहज बनाने में साउंड बाइट यानी संबंधित व्यक्तियों द्वारा बोले गए शब्दों का अत्यधिक योगदान है ।

यह साउंड बाइट यानी वाचिक अंश कई तरह से प्राप्त किये जाते हैं। किसी घटना के प्रत्यक्षदर्शियों के पास जाकर संवाददाता उनसे घटना का ब्यौरा देने को कह सकता है। किसी बैल्ट या संमेलन से बाहर निकलने वाले प्रतिनिधियों या विशिष्ट पदाधिकारियों से बैठक में हुई बातचीत अथवा लिए गए निर्णयों की जानकारी मांगी जा सकती है। इस तरह की अनौपचारिक (आफ हैंड) बातचीत में कई बार बहुत महत्वपूर्ण खबरें हाथ लग जाती हैं। इस तरह की साउंड बाइट से घटना से जुड़े सभी पक्षों की राय सामने आ जाती है और श्रोता स्वयं उसकी संचाई की मात्रा का अनुमान लगा सकता है। उदाहरण के लिए मिलावटी शराब से लोगों के मरने व बीमार हो जाने की स्थिति में संवाददाता को पीड़ित व्यक्तियों, मृतकों के परिवारजनों, उस क्षेत्र की पुलिस, किसी डॉक्टर तथा किसी सामाजिक कार्यकर्त्ता की प्रतिक्रियाएं रिकार्ड करनी चाहिए ।

साउंड बाइट अथवा ध्वनि अंश रिकार्ड करने का एक अन्य उपाय है भाषण दे रहे अथवा विचार-विमर्श में भाग ले रहे व्यक्ति की आवाज को मौके पर रिकार्ड करना । इसी तरह संवाददाता

सम्मेलन को संबोधित करने वाले व्यक्ति की ध्वनि को रिकार्ड करके उसके अंश को साउंड बाइट के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है । संवाददाता सम्मेलन में टेलीविजन संवाददाता अपने तथा दूसरों दारा पूछे गए प्रश्नों तथा उनके उत्तर में कही गई बातों को रिकार्ड कर सकता है।

भेंटवार्ता या इंटरव्यू टेलीविजन समाचार का एक प्रमुख स्रोत है । यह भेंटवार्ता किसी घटना, बैठक, सम्मेलन आदि के स्थल पर की जा सकती है और स्टूडियों में व्यवस्थित रूप से भी ली जा सकती है । भेंटवार्ता का एक लाभ यह होता है कि संवाददाता पहले से संगत प्रश्न सोच लेता है या लिख लेता है । इसी तरह स्टूडियो में एक से अधिक लोगों के बीच हुई परिचर्चाओं के अंश भी सछंड बाइट के रूप में प्रसारित किए जा सकते हैं । इन ध्वनि अंशों के उपयोग से संवाददाता अपने दारा दिए गए समाचार की पुष्टि करा लेता है । इससे समाचार की विश्वसनीयता और प्रभाव सहज ही बढ़ जाता है ।

5.5.3 पीस टू कैमरा

आपने ऊपर पढ़ा कि श्रव्य एवं दृश्य सामग्री से समाचार को प्रामाणिकता तथा विश्वसनियता प्राप्त होती है । इस संदर्भ में टेलीविजन प्रसार में पीस टू कैमरा तकनीक की भी उपयोग भूमिका है । पीस टू कैमरा का अर्थ है संवाददाता द्वारा घटना के मौके से दृश्य और श्रव्य रूप में घटना का ब्यौरा देना या समाचार का समापन करना । संवाददाता जहां खड़ा होकर या बैठक कैमरे के सामने अपनी बात कहता है उसकी पृष्ठभूमि प्राय: घटनास्थल या उसे जुड़ा स्थान दिखाई देता है । उदाहरण के लिए किसी राजनीतिक दल के राष्ट्रीय अधिवेशन का समाचार देते हुए संवाददाता अधिवेशन के मंच के सामने खड़े होकर अपनी बात कहता हुआ दिखाया जाता है तो श्रोताओं को एहसास हो जाता है कि संवाददाता स्वयं समाचार के स्थान पर उपस्थित है जिससे सहज ही समाचार की विश्वसनीयता स्थापित हो जाती है ।

जैसा कि पहले कहा गया है कि दृश्य एवं श्रव्य माध्यम होने के कारण टेलीविजन से प्रसारण में संवाददाता के लिए निष्पक्षता एवं संयम से काम लेना आवश्यक है । संयम तथा आत्मानुशासन की पीस टू कैमरा में विशेष जरूरत रहती है क्योंकि इसमें संवाददाता स्वयं को प्रस्तुत कर रहा होता है । यदि संवाददाता अपने को समाचार बुलेटिन में अनुचित ढंग से या आवश्यकता से अधिक समय तक मौजूद रहने या अपनी छवि निखारने के लोभ का शिकार हो जाएगा तो पीस टू कैमरा का उलटा प्रभाव पड़ेगा और समाचार तथा संवाददाता की विश्वसनीयता आहत हो जाएगी । हर समाचार में पीस टू कैमरा आवश्यक नहीं होता । इस प्रकार पीस टू कैमरा में संवाददाता की समाचार-प्रस्तुति-क्षमता की ही नहीं, उसके व्यावसायिक कौशल एवं पत्रकारिता सम्बन्धी सूझ-बूझ की भी परीक्षा होती है । इस कसौटी पर खरा उतरना टेलीविजन संवाददाता के लिए अनिवार्य है ।

बोध प्रश्न-3

1. टेलीविजन समाचार में भेंटवार्ता का क्या महत्व है?
2. पीस टू कैमरा से क्या तात्पर्य है?

5.6 सारांश

इस पाठ में आपने जाना कि टेलीविजन संवाददाता बनने के लिए क्या-क्या गुण और विशेषताएं होनी चाहिए । आप यह भी जान गए कि टेलीविजन संवाददाता का काम अन्य संचार माध्यमों के

संवाददाताओं से किस तरह भिन्न और अधिक जटिल होता है आपने यह भी पढा कि टेलीविजन संवाददाता में व्यवहार कुशलता, शिष्टाचार, वेशभूषा की समझ के साथ-साथ आत्म-विश्वास हर चुनौती एवं दायित्व को संभालने की क्षमता व पहलू प्रबन्ध कौशल निष्पक्ष दृष्टि टीम भावना और नेतृत्व-क्षमता भी होनी चाहिए। इसके अलावा टेलीविजन तकनीक के विभिन्न पहलुओं की व्यावहारिक जानकारी होना भी आवश्यक है । हमने इस पाठ में आपको यह भी बताया कि टेलीविज़न संवाददाता को समाचार एकत्र करने तथा उसकी प्रस्तुति में किन विशिष्ट विधियों और तकनीकों का आश्रय लेना पड़ता है।

5.7 शब्दावली

1. **टेलीविज़न संवाददाता:** टेलीविज़न संवाददाता को केवल समाचार संग्राहक ही नहीं, वक्ता और प्रसारण तकनीक का जानकार भी होना चाहिए ।
2. **आफ हैंड-इंटरव्यू:** ऐसे साक्षात्कार या सवाल-जवाब जो मौके पर उपस्थित और विषय से संबंधित व्यक्तियों से किए जाते हैं । पहले से नहीं मालूम होता कि किससे बात करनी होगी, और न प्रश्नों का कोई पूर्व-नियोजित सिलसिला होता है।
3. **साउंड बाइट:** राय या प्रतिक्रिया प्रकट करने वाले व्यक्ति की आवाज का रिकार्ड किया गया अंश, जिसे समाचार या किसी कार्यक्रम के बीच में सुनाया जा सकता है ।
4. **पीस टू कैमरा:** संवाददाता द्वारा घटनास्थल से संवादप्रेषण के लिए जब दूसरे कैमरे का इस्तेमाल किया जाए ।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. द वर्क ऑफ द टेलीविजन जर्नलिस्ट: राबर्ट टेइरेल, फोकल प्रेस, लंदन ।
2. ब्राडकास्ट जर्नलिज्म: हैकमुल्डर, जोंगे बी.पी सिंह, अनमोल प्रकाशन, दिल्ली ।
3. दृश्य-श्रव्य संप्रेषण और पत्रकारिता: डॉ. जेम्स एस. मूर्ति, भारतीय भाषा पीठ, नई दिल्ली
4. ब्राडकास्ट जर्नलिज्म: ऐंड्यू बॉयड, हैनिमैन प्रोफेशनल पब्लिशिंग ।

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. टेलीविज़न संवाददाता का काम समाचारपत्र तथा संवाद एजेंसियों के संवाददाताओं से किस प्रकार भिन्न है?
2. टेलीविजन समाचारों के प्रसारण में संवाददाता की भूमिका पर निबंध लिखिए ।
3. टेलीविजन संवाददाता की आंतरिक विशेषताओं से क्या अभिप्राय: है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. टेलीविजन माध्यम की तकनीकी जानकारी संवाददाता के लिए क्यों आवश्यक है?
5. टेलीविजन समाचार प्रस्तुति में शब्दों से अधिक महत्व श्रव्य एवं दृश्य तत्वों का है, इसे स्पष्ट कीजिए।
6. टेलीविज़न तथा रेडियो के लिए रिपोर्टिंग में क्या समानताएं और भिन्नताएं हैं ?

NOTES

विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की सूची

	पाठ्यक्रम का नाम	अवधि
1.	स्नातक उपाधि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
2.	भोजन एवं पोषण में सर्टिफिकेट	6 माह
3.	कम्प्यूटर ज्ञान एवं प्रशिक्षण का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
4.	सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटिंग	6 माह
5.	पंचायती राज प्रोजेक्ट में प्रमाण-पत्र	6 माह
6.	संस्कृति एवं पर्यटन में प्रमाण-पत्र	6 माह
7.	महिलाओं में वैद्यानिक बोध में प्रमाण-पत्र	6 माह
8.	राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति में प्रमाण-पत्र	6 माह
9.	बी.ए.एफ./बी.सी.एफ. (त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम)	1 वर्ष
10.	एम.ए.(अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, हिन्दी)	2 वर्ष
11.	एम.बी.ए.	3 वर्ष
12.	पी.जी.डी.एच.आर.एम.	1 वर्ष
13.	पी.जी.डी.एफ.एम.	1 वर्ष
14.	पी.जी.डी.एम.एम.	1 वर्ष
15.	पी.जी.डी.एल.एल.	1 वर्ष
16.	टी.एच.एम.	1 वर्ष
17.	डी.एन.एच.ई.	1 वर्ष
18.	डी.सी.ओ.	1 वर्ष
19.	डी.एल.एस.	1 वर्ष
20.	डी.सी.सी.टी.	18 माह
21.	बी.जे.(एम.सी.)	1 वर्ष
22.	एम.जे.(एम.सी.)	2 वर्ष
23.	बी.लिब.	1 वर्ष
24.	पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा	1 वर्ष
25.	बी.एड.	2 वर्ष
26.	पी.एच.डी.	3 वर्ष
27.	पी.जी.डी.ई.एस.डी.	1 वर्ष



पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन 2

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम. जे. एम. सी. - 1

जनसंचार माध्यमों
के लिए लेखन

पत्रकारिता एवं जनसंचार
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन - 2

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

* **डॉ. राधावल्लभ व्यास**
कुलपति
कोटा खुला विश्वविद्यालय
कोटा
(अध्यक्ष समिति)

* **डॉ. ए. डबल्यू. खान**
कुलपति
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

* **राधेश्याम शर्मा**
पूर्व-महानिदेशक
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
विश्वविद्यालय, भोपाल(म. प्र.)

* **डॉ. ओ.पी. केजरीवाल**
महानिदेशक, महानिदेशालय आकाशवाणी
नई दिल्ली

* **प्रो. ए.के. बनर्जी**
पूर्व-अध्यक्ष
पत्रकारिता विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

* **प्रो. जे.एस. यादव**
निदेशक
भारतीय जनसंचार संस्थान
नई दिल्ली

* **डॉ. भंवर सुराणा**
ब्यूरो चीफ/ विशेष संवाददाता
दैनिक हिंदुस्तान
जयपुर

* **डॉ. रमेश जैन**
अध्यक्ष-जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक

डॉ. रमेश जैन- अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ-संपादक एवं भाषा-संपादक

पाठ-संपादक
जितेन्द्र गुप्ता
वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक
नई दिल्ली

भाषा-संपादक
डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार
जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)एम.के. घड़ोलिया
निदेशक(अकादमिक)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन - अप्रैल 2012

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

पाठ्यक्रम -प्रथम
खण्ड -2

2 एम. जे. एम. सी.

इकाई 6 नाटक-लेखन	8–41
इकाई 7 रेडियो के लिए लेखन	42–62
इकाई 8 उद्घोषणा -लेखन	63–78
इकाई 9 दूरदर्शन से सीधा प्रसारण	79–96

पाठ लेखक

1. डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
सहआचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

2. श्याम माथुर
उप संपादक
राजस्थान पत्रिका
जयपुर

3. डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार
जयपुर

4. रामकुमार
पत्रकार, लेखक
कोटा

5. हमीदुल्ला
हिन्दी नाटककार
जयपुर

6. डॉ. रीतारानी पालीवाल
रीडर, हिन्दी विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

7. डॉ. सुरेन्द्र विक्रम
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग
क्रिश्चियन डिग्री कॉलेज, लखनऊ(उ.प्र.)

8. डॉ. राधामोहन श्रीवास्तव
अध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग
बड़हलगंज, गोरखपुर(उत्तर प्रदेश)

9. डॉ. कैलाश पपने
विशेष संवाददाता
दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली

10. सुभाष सेतिया
संपादक 'आजकल'
प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
पटियाला हाउस, नई दिल्ली

11. डॉ.लक्ष्मीकांत दाधीच
प्राध्यापक, वनस्पति शास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय कोटा

12. दीनानाथ दुबे
पत्रकार, लेखक
कोटा

13. राधेश्याम तिवारी
जनसंचारकर्मी एवं लेखक
जयपुर

14. श्रीमती सुषमा जगमोहन
संध्या टाइम्स
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

15. सत सोनी
संपादक- संध्या टाइम्स
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

16. डॉ. रमेश जैन
अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

17. डॉ. हेमन्त जोशी
प्राध्यापक- पत्रकारिता विभाग
भारतीय जनसंचार संस्थान
नई दिल्ली

18. रामेश्वर मिश्र
वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक
नई दिल्ली

19. डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ
रीडर-हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

20. जयदेव शर्मा
प्रभारी- दैनिक नवज्योति
कोटा

खंड एवं इकाई परिचय

इससे पूर्व आप खंड 1 में लेखन के मूल तत्व , फीचर लेखन , टेलीविज़न के लिए फीचर लेखन, टेलीविज़न के लिए लेखन एवं टेलीविज़न सवांददाता विषयक पाठ का अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत खंड 2 में आपको चार इकाइयों से परिचय कराया जाएगा।1. नाटक -लेखक ,2.रेडियो के लिए लेखन, 3. उद्घोषणा-लेखन, 4. दूरदर्शन से सीधा प्रसारण।

इकाई 6 'नाटक लेखन' की है। इस इकाई में नाटय की विषय-वस्तु, नाटक में पात्र सृष्टि, नाटय भाषा, शैली और संवाद, नाटक के रंगमंचीय आयाम तथा इलेक्ट्रोनिक माध्यमों के लिए नाटक-लेखन बिन्दुओं पर व्यापक चर्चा की गयी है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप सफल नाटक -लेखक बन पाएंगे। साथ ही उन सभी तथ्यों से अच्छी तरह परिचित हो जाएंगे जो नाटक-लेखक में सहायक है।

इकाई 7 'रेडियो लेखक' से संबद्ध है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप रेडियो का इतिहास, श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियो, रेडियो के विभिन्न कार्यक्रम, रेडियो-लेखन के क्षेत्र, रेडियो के लेखकीय उपकरण, रेडियो-लेखन की विशेषतायें तथा आलेख लेखन आदि के बारे में विस्तार से जान सकेंगे। इस इकाई के पठन के पश्चात आप कुशल रेडियो-लेखन की संभावनाओं से परिचित हो सकेंगे।

इकाई 8 'उद्घोषणा-लेखन' है। यह इकाई उद्घोषणा-लेखन की विभिन्न आयामो पर प्रकाश डालती है। इसमें 'उद्घोषणा' शब्द की व्युत्पति और अर्थ, उद्घोषणा का लक्ष्य, उद्घोषणा के विविध रूप, उद्घोषणा की भाषा और शैली, उद्घोषणा कैसे हो? उद्घोषणा-आलेख और आकाशवाणी तथा दूदर्शन की उद्घोषणाओं में अंतर आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। आशा की जाती है यह इकाई आपको कुशल उद्घोषणा-लेखन में सहायक होगी। आप एक योग्य उद्घोषक बन सकेंगे।

इकाई 9 'दूरदर्शन से सीधा प्रसारण' की है। प्रस्तुत इकाई में प्रसारण की प्रक्रिया, सीधा प्रसारण, भारत में दूरदर्शन का पदार्पण , दूरदर्शन के प्रारम्भिक सीधे प्रसारण, एशियाड, 1982, सी. एन.एन. का धमाका,बहिः प्रसारण केन्द्र या एक सचल दूरदर्शन केन्द्र, उपग्रहों के माध्यम से सीधे प्रसारण आदि बिन्दुओं पर व्यापक चर्चा की गयी है। इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान पाएंगे कि दूरदर्शन से सीधा प्रसारण कैसे होता है? साथ ही प्रसारण कि तकनीक से भी भली-भांति परिचित हो जाएंगे।

इकाई 6 नाटक-लेखन

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 नाट्य विधा

- 6.2.1 सजीव अनुकृति
- 6.2.2 प्रत्यक्षता
- 6.2.3 प्रभाव की तीव्रता और सघनता
- 6.2.4 तात्कालिकता
- 6.2.5 सामूहिकता
- 6.2.6 नाटक की रचना -प्रक्रिया और दर्शक
- 6.2.7 नाट्य -प्रस्तुति और दर्शक
- 6.2.8 सक्रियता और संवादात्मकता
- 6.2.9 विभिन्न कलाओं का समावेश

6.3 नाटक और रंगमंच का अन्योन्याश्रित संबंध

6.4 नाटक के प्रकार

6.5 नाटक की विषय-वस्तु

- 6.5.1 विषय-वस्तु के स्रोत
- 6.5.2 विषय-वस्तु का चयन
- 6.5.3 विषय को कथावस्तु में ढालना
- 6.5.4 आधिकारिक प्रासंगिक कथानक
- 6.5.5 कार्य-व्यापार और देश-काल के बीच समन्वय
- 6.5.6 कथा-वस्तु का विकास

6.6 नाटक में पात्र-सृष्टि

- 6.6.1 पात्रों का चयन
- 6.6.2 पात्रों का चरित्र-चित्रण
- 6.6.3 चरित्र का विकास

6.7 नाट्य-भाषा, शैली और संवाद

- 6.7.1 भाषा
- 6.7.2 शैली
- 6.7.3 संवाद

6.7 नाटक के रंगमंचीय आयाम

- 6.8.1 रंगमंच-विषयक जानकारी

6.8.2 अभिनेयता और मंचीयता
6.8.3 रंग-निर्देश
6.8.4 अंक-दृश्य विभाजन
6.9 इलैक्ट्रानिक-माध्यमों के लिए नाटक-लेखन
6.10 सारांश
6.11 निबंधात्मक प्रश्न
6.12 व्यावहारिक अभ्यास
6.13 उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- नाट्य विधा की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे,
- नाटक और रंगमंच के संबंध पर प्रकाश डाल सकेंगे, और
- नाटक के लिए समुचित विषय-चयन करके नाट्य-लेखन का प्रयास कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

दृश्य-माध्यम होने के कारण नाटक का जनसंचार से गहरा संबंध रहा। आधुनिक जनसंचार माध्यमों की शुरुआत से पहले भी नाटक के माध्यम से बात को व्यापक जन-समूह तक पहुँचाया जाता था। लोक-नाटकों की सभी समाजों में व्याप्ति इसका प्रमाण है। जीवंत रूप में प्रदर्शित होने के कारण जन-मानस पर इसका प्रत्यक्ष और गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी दृष्टि से 'जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन' संबंधी पाठ्यक्रम में आपको नाटक-लेखन के विषय में भी बताया जाएगा।

पत्र-पत्रिकाओं में तो नाटक प्रकाशित होते ही हैं, रेडियो और टेलीविजन पर भी इनका व्यापक प्रचलन है। डॉक्यूमेंटरी कार्यक्रमों में भी इनका व्यापक उपयोग होता है।

प्रस्तुत पाठ में आपको नाटक लिखने की तैयारी और नाट्य- लेखन कला का परिचय मिलेगा। नाटक में विविध पक्षों का हिंदी तथा अन्य भाषाओं में प्रसिद्ध नाटकों के उदाहरण देकर भली भांति समझाया गया है। हो सके तो इनमें से कुछ नाटक पढ़ें।

6.2 नाट्य - विधा

नाटक सृजनात्मक लेखन की एक महत्वपूर्ण विधा तो है ही इससे हमारा संबंध बहुत गहरा और पुराना है। नाटक का अस्तित्व दुनिया भर के साहित्य में प्राचीन काल से ही मौजूद है। यह भी कह सकते हैं कि नाटक प्राचीन काल से ही मनुष्य का सहचर रहा है। अपार दुःख के गहन क्षणों में जैसे आदि कवि के मुख से कविता फूट पड़ी उसी तरह अपने हर्ष, विषाद, उल्लास, करुणा, आस्था एवं अर्चना के गहन भावों की शारीरिक-मानसिक अभिव्यक्ति के रूप में नृत्य और नाटक की शुरुआत हुई। प्राचीन यूनान में डायोनीशियस देवता और आराधना में झूमते -गाते नर्तक हों या भारत में देवासुर-संग्राम का विजयोल्लास मनाते देवता और असुर, सभी नाटक के माध्यम से अपने भावों की सामूहिक अभिव्यक्ति करके आत्म-विस्तार पाते रहे। सर्जनात्मक कार्यकलाप ही नहीं, साहित्य के

सिद्धान्तों का विवेचन -विश्लेषण भी नाट्य-चर्चा को केन्द्र में रखकर ही हुए हैं। भरतमुनि के ' नाट्य-शास्त्र' और अरस्तु का 'Poetics' दोनों ही नाटक को केन्द्र में रखकर ही साहित्य सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हैं।

समय के साथ-साथ मानवीय जीवन-पद्धति, चिंतन-मनन, वैचारिक और सामाजिक सरोकारों में आए बदलावों के साथ-साथ नाटक के स्वरूप, दृष्टि और प्रयोजन में भी बदलाव आते रहे। आज भी हम सबके साथ नाटक विभिन्न रूपों में मौजूद हैं। गाँव, नगर, मौहल्ले में आयोजनों, उत्सवों - त्यौहारों में नाटक किसी-न-किसी रूप में मौजूद है चाहे वह रासलीला, रामलीला, नौटंकी या भवई जैसे लोक-नाटकों के रूप में हो अथवा व्यावसायिक अथवा अव्यावसायिक (शौकिया) नाट्य- मंड़लियों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले नाटकों के रूप में। इस तरह, नाटक की प्रस्तुति देखने अथवा उसमें अभिनय करने का अनुभव आपको अवश्य होगा। चाहे वह स्कूली स्तर पर ही क्यों न हो।

नाटक के बारे में खास बात यह है कि यह साहित्य की अन्य विधाओं / रचनाओं से इस अर्थ में भिन्न और विशिष्ट है कि यह दृश्य-विधा है। कविता, कहानी अथवा उपन्यास हम पढ़ते हैं, जबकि नाटक हम देखते है। साहित्य की अन्य विधाएं केवल पढ़ने के लिए होती हैं जबकि नाटक देखने और पढ़ने दोनों के लिए होता है। नाटक का यह अतिरिक्त आयाम यानी उसका दृश्यात्मक पक्ष उसकी संपूर्ण रचना-प्रक्रिया को प्रभावित करता है। नाट्य लिखते समय नाट्य विधा के दृश्यात्मक पक्ष को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

6.2.1 सजीव अनुकृति

नाटक अनुकरणमूलक रचना होती है। वैसे तो सभी कलाएं अनुकरणमूलक होती हैं लेकिन नाटक के बारे में खास बात यह है कि इसमें अनुकरण जीते-जागते रूप में किया जाता है। साहित्य के अन्य रूपों की भांति यहां भी शब्द ही अभिव्यक्ति का आधार होता है लेकिन यहां लेखक द्वारा प्रस्तुत शब्द को अभिनय द्वारा रंगमंच पर सजीव रूप में पुन: प्रस्तुत किया जाता है। इसीलिए संस्कृत साहित्य चिंतन परम्परा में नाटक को अवस्था की अनुकृति कहा गया है। 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम' (धनंजय 'दशरूपक')। अवस्था की इस अनुकृति से तात्पर्य है व्यक्तियों के कार्यों, मनोभावों, विचारों, स्थितियों आदि का सजीव और साकार रूप में अनुकरण। यह सजीव अनुकरण वाणी, शारीरिक चेष्टाओं, हाव-भावों, वेशभूषा तथा परिवेश के अनुकरण द्वारा होता है। यह सजीव अनुकरण ही नाट्य-प्रस्तुति कहलाता है।

नाटक लिखते समय आपको निरंतर ध्यान रखना होगा कि नाटक के पात्र जो कुछ कहते और करते हैं उनके साथ जो घटनाएं घटती हैं वे रंगमंच पर सजीव रूप में प्रस्तुत होकर कैसी लगेंगी किस रूप में प्रभावित करेंगी?

6.2.2 प्रत्यक्षता

नाटक की प्रत्यक्षता अथवा दृश्यता उसकी सजीवता के कारण ही होती है। हम चर्चा कर चुके हैं कि साहित्य की अन्य विधाओं का आस्वाद हम पढ़ या सुनकर करते हैं। जबकि नाटक पढ़ने- सुनने के साथ-साथ देखने की भी चीज है और इसका माध्यम शब्द के साथ-साथ रूप भी है। रूप के अनुकरण के कारण ही नाटक का प्राचीन नाम 'रूपक' है। रूप के अनुकरण द्वारा नाटक दृश्य बनता है, प्रत्यक्ष रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। अत: इसके ग्रहण करने की हमारी इन्द्रिय बदल जाती है। अन्य

साहित्य विधाएं शब्द के द्वारा हमारी कल्पना में भाव-चित्र उपस्थित करती हैं लेकिन नाटक स्थिति-परिस्थिति को हमारे समक्ष दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। हमें लगता है कि हम वास्तविक जीवन की घटनाओं को अपने सामने वास्तव में घटित होता हुआ देख रहे हैं, उसमें स्वयं भागीदारी कर रहे हैं। नाटक का यह दृश्य पक्ष लेखक की परिकल्पना में निरंतर मौजूद रहता है। विषय-चयन से लेकर पात्रों की चरित्र-सृष्टि, संवाद योजना आदि सभी इसको ध्यान में रखकर की जाती है।

6.2.3 प्रभाव की तीव्रता और सघनता

दृश्य होने के कारण नाटक मूर्त होता है और मूर्त का प्रभाव अमूर्त की तुलना में स्वाभाविक रूप से ज्यादा होता है। किसी व्यक्ति या चरित्र के बारे में सुनकर हम जितना प्रभावित होते है उससे अधिक उसको देखकर प्रभावित होते हैं। कहावत भी है कि 'प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या जरूरत?' अत: पढ़ने या सुनने के बजाय नाटक देखने का प्रभाव व्यक्ति पर गहरा और स्थायी पड़ता है। यही कारण है कि नाटक को सामाजिक-राजनीतिक सांस्कृतिक जागरण के औजार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। किसी भी समाज अथवा देश में नवजागरण की चेतना के विस्तार अथवा समाज-सुधार आंदोलनों में नाटक अत्यंत गंभीर और प्रभावकारी भूमिका का निर्वाह करते हैं। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के दौरान भारतीय भाषाओं में नाट्य लेखन प्रक्रिया का विस्तार इसका एक ठोस उदाहरण है। राजनीतिक आंदोलन के रूप में जन-नाट्य मंच अथवा नुक्कड़ नाटक की भी ऐसी ही भूमिका रही है।

6.2.4 तात्कालिकता

प्रभाव की तीव्रता और सघनता के परिणामस्वरूप नाटक की अपील तात्कालिक होती है। देखी हुई बात तुरंत समझ में आती है। लेकिन यहीं नाट्य-रचनाकार से अपेक्षा शुरू होती है कि वह संपूर्ण नाट्य-व्यापार में तात्कालिक प्रभाव की क्षमता पैदा करे। नाट्य-व्यापार में यदि अस्वाभाविक जटिलता होगी तो वह तात्कालिक ढंग से दर्शक पर असर नही डाल पाएगी। ऐसे में संपूर्ण प्रयास बेकार हो जाएगा। इसके विपरीत, स्वाभाविक जटिलता में सघन प्रभाव. क्षमता होती है। सजीव होने के कारण नाटक में घटनाओं अथवा संवादों की पुनरावृत्ति नहीं हो सकती। एक बार में प्रस्तुत संवाद अथवा कार्य ही समग्र प्रभाव में सक्षम होना चाहिए। कविता या कहानी या उपन्यास को हम धीरे- धीरे एक बार में या रुक-रुक कर पढ़ते हैं, इच्छा होने पर दोबारा पन्ने पलट कर फिर से पढ़ लेते हैं लेकिन नाट्य-कर्म में इसकी गुंजाइश नहीं। वह तो तत्काल और एक बार में न केवल समझ में आना चाहिए बल्कि समग्र प्रभाव उत्पन्न भी होना चाहिए। भाषा, शैली, संवाद सभी से यह अपेक्षित है।

6.2.5 सामूहिकता

नाटक एक सामूहिक माध्यम है। नाट्य-कर्म की प्रक्रिया नाटक-लेखन के साथ पूरी नहीं हो जाती। रंगमंच पर अभिनीत होकर ही नाटक पूर्णता पाता है। नाट्य-कृति तो मात्र स्क्रिप्ट होती है जिसे नाट्य-निर्देशक, अभिनेता तथा रंग-प्रस्तुति के सहायक अन्य कर्मी प्रस्तुति के माध्यम से हम तक पहुंचाते हैं। इस तरह नाटक में एक तरह की सामूहिकता होती है जिसमें लेखक के अलावा रंगकर्मियों का भी योगदान होता है।

मंचन के अलावा, आस्वाद के स्तर पर भी यह सामूहिकता मौजूद रहती है। कविता- कहानी या उपन्यास अकेले में पढ़े जाते हैं जबकि नाटक देखते समय बहुत्से लोग साथ मौजूद होते हैं। यहां व्यक्तिगत अनुभव सामूहिक अनुभव का ही एक अंग होता है।

6.2.6 नाटक की रचना-प्रक्रिया और दर्शक

सामूहिक कला होने के कारण दर्शक नाट्य-कर्म का अनिवार्य अंग होते हैं। लेखक और रंगकर्मियों के समग्र प्रयास दर्शक को दृष्टि में रखकर चलते हैं। कोई नाट्य-प्रस्तुति कितनी ही अच्छी क्यों न हो उसकी सफलता और सार्थकता सिद्ध करने के लिए दर्शक- वृंद की उपस्थिति अनिवार्य है। नाटक यदि दर्शक को आकृष्ट और प्रभावित नहीं कर पाएगा तो सफल नहीं होगा। दर्शक आएंगे ही नहीं तो नाटक किसके लिए? इसके मायने ये नहीं कि नाटककार अथवा नाट्य- निर्देशक सस्ती लोकप्रियता के पीछे रहे। रचनाकार और नाट्य कर्मियों से अपेक्षा की जाती है कि नाटक के जरिए वे जन-रुचि का संस्कार करें, उन्हें बौद्धिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर जागरूक बनाएं।

नाट्य-लेखक को इस बात का ध्यान रखना होता है कि नाटक देखने आए दर्शकों में सामूहिकता के बावजूद पर्याप्त विविधता होती है। विभिन्न दर्शकों के आयु-वर्ग, शिक्षा-दीक्षा और सामाजिक स्तर में पर्याप्त भिन्नता होती है। इसलिए उनकी पसंद-नापसंद, सोच -विचार और रुचियां तथा संस्कार एक - दूसरे से काफी अलग- अलग हो सकते हैं। ऐसी विविधतापरक मानसिकता वाले समूह से एक-साथ तादात्म्य स्थापित करने की क्षमता नाटक में अपेक्षित होती है। नाटक का केन्द्रीय भाव और उसे पोषित करने वाले सहयोगी भाव और कार्य -व्यापार इतने सघन और तीव्र प्रभाव वाले होने चाहिए कि इस विविधतापूर्ण समाज को अपील कर सके।

6.2.7 नाट्य- प्रस्तुति और दर्शक

नाटक में दर्शक की अहम स्थिति नाट्य-लेखक के साथ-साथ नाट्य-प्रस्तोताओं की दृष्टि से भी होती है। रंग-स्थल पर मौजूद दर्शकों का रंग-प्रस्तोताओं से जीवंत संपर्क होता है। नाटक के दर्शक सिनेमा अथवा टेलीविजन के दर्शक की भांति अलग व्यक्ति नहीं होते क्योंकि नाटक का अभिनय किसी स्टूडियो में अकेले न होकर दर्शकों की मौजूदगी में होता है। वे समग्र रंग-प्रस्तुति में सक्रिय रूप से हिस्सेदार होते हैं। उनकी पसंद-नापसंद से अभिनेताओं का एक खास तरह का तालमेल होता है जो अभिनेताओं की अभिनय- क्षमता को सहज रूप से प्रभावित करता है। प्रस्तुत करने वाले और देखने वाले के बीच यह जीवंत संपर्क ही नाटक को अन्य विधाओं से विशिष्ट और अधिक प्रभावी बनाता है। नाटक की इस विशेषता के कारण ही संस्कृत-आचार्यों ने साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में नाटक को ऊपर रखा है - 'काव्येषु नाटकमू रम्यम्'।

6.2.8 सक्रियता और संवादात्मकता

जीवन का सजीव अनुकरण होने के कारण नाटक एक सक्रिय विधा है। अन्य विधाओं में घटनाक्रम विवरण दिया जा सकता है, लेखक स्वयं कथा को आगे बढ़ाते हुए वर्णन कर सक्ता है, किन्तु नाटक में कार्य-व्यापार वर्णित न होकर घटित होता है। अत: संपूर्ण स्थिति-परिस्थिति का उद्घाटन यहां पात्रों के कार्यकलाप और संवादों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। अत: कार्य-व्यापार में न तो अतिशय

विस्तार की गुंजाइश होती है, न ही उसकी गति धीमी होने की। नाट्य-प्रस्तुति का समय भी सीमित होता है और देखने वालों के धैर्य की भी सीमा होती है। अत: कार्य,व्यापार में ऐसी क्षिप्रता,सघनता और सक्रियता अपेक्षित होती है कि अनुकृति यथार्थ महसूस हो, नितांत नकल नहीं।

संवाद भी कथा को आगे बढ़ाते हुए स्थिति की गहनता और तीव्रता का वहन करने में समर्थ होने चाहिए। दूसरी ओर, दृश्य रूप में प्रस्तुत हो सकने की सहजता भी उनमें होनी चाहिए।

6.2.9 विभिन्न कलाओं का समावेश

नाट्य-कला की सामूहिकता उसमें विभिन्न कलाओं के समावेश में प्रकट होती है। हालांकि नाटक देखते समय हमारा ध्यान अक्सर केवल अभिनेताओं की ओर जाता है, लेकिन अभिनेताओं के अलावा और भी कई व्यक्ति होते हैं जो नाटक की प्रस्तुति में सहायता करते हैं। सर्वप्रथम तो निर्देशक होता है जो संपूर्ण नाट्य-प्रस्तुति की परिकल्पना करता है। मंच-सज्जा, पात्रों की वेशभूषा और श्रृंगार आदि के लिए इनके विशेषज्ञ अपेक्षित होते हैं। मंच पर प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि प्रभाव माइक आदि के व्यवस्थापक इन क्षेत्रों के जानकार व्यक्ति होते हैं। आज के युग में नाट्य-प्रस्तुति और प्रभाव में प्रकाश की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ध्यान रखना होता है कि मंच के किस भाग पर कब और कितना प्रकाश दिया जाए कि अभिनय अधिक से अधिक यथार्थ और प्रभावपूर्ण बन सके। गीत, नृत्य आदि की प्रस्तुति में सहायता के लिए वाद्य-संगीत के क्षेत्र में कुशल लोगों की आवश्यकता होती है।

6.3 नाटक और रंगमंच का अन्योन्याश्रित संबंध

आप जान चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है। दृश्य होने के कारण यह रंगमंचीयता अथवा प्रस्तुति पक्ष नाट्य-रचना प्रक्रिया का अनिवार्य और अत्यंत महत्वपूर्ण अंग होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि नाटक वह विधा है जिसकी सफलता की जांच रंगमंच पर होती है जो रचना अभिनेय नहीं उसे नाटक नहीं कहा जा सकता भले ही वह संवादों के माध्यम से क्यों न प्रस्तुत की गई हो। इस दृष्टि से नाटक और रंगमंच में घनिष्ठ संबंध होता है। दोनों एक-दूसरे पर आधारित होते हैं। रंगमंच का विकास, नाटकों की प्रस्तुति के लिए होता है और नाटक मंचन के लिए लिखे जाते हैं। इस तरह, दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं। यदि किसी भाषा और समाज में अच्छे नाटकों का अभाव है तो वहां रंगमंच समृद्ध नहीं हो सकता और समृद्ध रंगमंच के अभाव में श्रेष्ठ नाटकों का सृजन कठिन होता है।

कुछ लोग 'मंचीय नाटक' और 'पाठ्य नाटक' जैसे दो भेदो को, बात करते है जो अपने आप में भ्रामक और बेबुनियाद है क्योंकि यदि अच्छी नाट्य-कृति होगी तो रंगमंच पर अवश्य प्रभावकारी होगी और जिस कृति को सफलता से मंचित नहीं किया जा सकता वह संवादात्मक कथा मात्र है। नाटक बनने के लिए आवश्यक है कि रचना में मंचित हो सकने की, दृश्य रूप में संप्रेषित होने की क्षमता हो। यानी कि वह अभिनेय हो और अभिनीत रूप में दर्शकों को प्रभावित कर सके।

नाटक और रंगमंच के इस अपरिहार्य संबंध के कारण ही हर भाषा और समाज के नाटक वहा मौजूद रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखे जाते हैं। वहां के रंगमंच की सीमाएं और संभावनाएं उन नाटकों की सीमाएं और संभावनाएं बन जाती है। उदाहरण के लिए शेक्सपियर के नाटक एलिजाबेथ- युगीन रंगमंच की प्रस्तुति पद्धतियों और रूढ़ियों, रंगशाला की बनावट और दर्शक-वर्ग की अभिरुचियों से प्रभावित है क्योंकि इन नाटकों की रचना उन परिस्थितियों और व्यक्तियों के लिए ही की गई थी। न केवल

इन नाटकों के दृश्य-विधान और भाषा- शैली को बल्कि इनके घटना-व्यापार और मनःस्थितियों को भी तत्कालीन रंगमंच ने प्रभावित किया था।

नाटक और रंगमंच की परस्पर निर्भरता एक-दूसरे को प्रभावित करती है। समय के साथ- साथ नाटक-लेखन की प्रवृत्ति और पद्धति में बदलाव के अनुकूल रंगमंचीय पद्धतियाँ और परिस्थितियां बदलती रहती हैं। नाटकों की जरूरत के अनुसार रंगमंच की बनावट,सजावट, प्रस्तुति की शैली और अभिनय-पद्धति में बदलाव आता है और यह बदलाव लोक-रुचि के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उदाहरण के लिए, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पश्चिम में यथार्थवादी नाटक के आरंभ के साथ-साथ समस्त रंग-प्रक्रिया में युगांतरकारी परिवर्तन हुआ। कल्पना के स्थान पर यथार्थ की स्थापना के उद्देश्य से रंगमंच को जीवन-यथार्थ के ज्यादा से ज्यादा नजदीक लाने के प्रयास हुए। मंच-सज्जा ऐसी की जाने लगी कि यथार्थ का भ्रम हो।

नाटक और रंगमंच के इस संबंध की पहचान नाट्य-लेखक को अवश्य होनी चाहिए, अन्यथा वह रंगमंच की परिकल्पना को नाटक में समाहित नहीं कर सकता। यदि लेखक को निरंतर ध्यान रहेगा कि उसकी रचना मंचन के लिए है तो वह नाटक के दृश्य पक्ष को सदैव दृष्टि में रखेगा। दृश्य- पक्ष को दृष्टि में रखने से ही सफल मंचीय नाटक का सृजन होगा।

6.4 नाटक के प्रकार

नाटकों का वर्गीकरण कई तरह से किया जा सकता है

परम्परा के आधार पर नाटक दो तरह के हो सकते हैं - साहित्यिक नाटक, और लोक- नाटक।

कथ्य के स्वरूप के आधार पर नाटकों को सुखांत, दुखांत, दुख-सुखांत और प्रहसन की श्रेणियों में रखा जा सकता है।

विषय के आधार पर नाटक ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि विषयों से संबंधित हो सकते हैं।

आकार अथवा अंकों के आधार पर नाटकों के दो भेद हो सकते हैं - एकांकी नाटक, और पूर्णकालिक नाटक (जिसमें एक से अधिक अंक होते हैं)।

शैली के आधार पर नाटक के भेद व्यंग्यपरक, हास्यपरक, प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक नाटक के रूप में हो सकते हैं

गद्य-पद्य के आधार पर गद्य, नाटक और पद्य, नाटक भेद हो सकते हैं।

पात्रों के आधार पर एक-पात्रीय नाटक, और बहुपात्रीय नाटक हो सकते हैं।

प्रस्तुति माध्यम के आधार पर नाटकों को रंगमंचीय नाटक, नुक्कड़ नाटक, रेडियो नाटक, टेलीविजन नाटक आदि भेद हो सकते हैं।

नाटक के ये प्रकार उनकी विशिष्टताओं के आधार पर निर्धारित किए गए हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि कोई नाटक उपर्युक्त में से किसी एक ही प्रकार का हो सकता है। किसी भी नाटक में विभिन्न प्रकार के नाटकों की विशेषताओं का समावेश हो सकता है। जैसे कोई नाटक राजनीतिक होने के साथ प्रतीकात्मक, व्यंग्यात्मक और हास्यपरक भी हो सकता है। वह समस्या नाटक के रूप में मंचीय नाटक भी हो सकता है और नुक्कड़ नाटक भी।

नाटक के विभिन्न प्रकारों के विषय में जानना आपके लिए इस दृष्टि से उपयोगी होगा कि आप चुनाव कर सकेंगे कि आपको कैसा नाटक लिखना है, उसके लिए विषय-चयन, पात्र- विकास आदि किस तरह करना है। यदि आप मीडिया (रेडियो अथवा टेलीविजन) के लिए नाटक लिखना चाहते हैं तो आपको मीडिया-प्रस्तुति के विभिन्न आयामों को भी ध्यान में रखना होगा।

बोध प्रश्न -1

1. *नाटक साहित्य की अन्य विधाओं से किस प्रकार अलग है?*
2. *नाटक में किन-किन कलाओं का समावेश होता है?*
3. *नाटक और रंगमंच एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। सिद्ध कीजिए।*

6.5 नाटक की विषय- वस्तु

6.5.1 विषय-वस्तु के स्रोत

नाटक-लेखन के लिए सबसे पहले आपके सामने प्रश्न होगा कि किस विषय पर नाटक लिखा जाए। नाट्य-सिद्धान्तों की चर्चा करते समय आचार्यो ने कहा है कि नाटक का कथानक तीन स्रोतों से लिया जा सकता है - (1) प्रख्यात् (2) काल्पनिक और (3) मिश्र।

(1) प्रख्यात् : प्रख्यात् विषय इतिहास, संस्कृति, पुराकथा, लोक-कथा आदि कहीं से भी लिया जा सकता है। यानी आपके नाटक का कथानक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक या मिथकीय हो सकता है। आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि यह विषय तो सर्वज्ञात है, इस पर नाटक लिखने का या कोई भी रचना करने की क्या सार्थकता है? वास्तव में इतिहास या लोक-कथा या मिथक किसी समाज और, संस्कृति का अतीत मात्र नहीं होते, वरन् व उस समाज और संस्कृति की चेतना, आचार-विचार, व्यवहार को वहन करते हैं, उसके सामूहिक मन का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका अवगाहन उस समाज और संस्कृति को ही नहीं संपूर्ण मानव जाति के लिए उपयोगी होता है क्योंकि मनुष्य न केवल उनसे सबक सीखता है बल्कि अपने वर्तमान की चुनौतियों का मुकाबला करने की शक्ति और मार्ग पाता है। साहित्यिक रचना में अतीत का उपयोग पुरानी कथा को दोहराने मात्र के लिए नहीं होता, उनकी वर्तमान और भावी प्रासंगिकता को तलाशने के लिए भी होता है। यही कारण है कि दुनिया-भर के साहित्य अपने इतिहास और परम्परा से प्रेरणा और दिशा लेते रहे हैं। पश्चिम के महानतम नाटककार शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तु प्राचीन ग्रीक और लैटिन कथाओं से अथवा इतिहास से ली गई है। इसी तरह, चन्द्रगुप्त-चाणक्य का ऐतिहासिक प्रसंग संस्कृत नाटकों से लेकर आज तक भारतीय भाषाओं में नाट्य -लेखन की प्रेरणा बनता रहा। रामकथा और कृष्ण-कथा के कितने ही प्रसंग विविध रचनाओं के विषय रहे हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

रचनाकार प्रख्यात् विषय के माध्यम से उन बातों को बहुत सारगर्भित और प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत कर सकता है कि जिन्हें वह आज अनुभव कर रहा है। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के दौरान लिखे गए अधिकांश नाटकों में प्रख्यात् कथानकों के माध्यम से राष्ट्रीयता की चेतना जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बंगला में द्विजेंद्रलाल राय, हिन्दी में जयशंकर प्रसाद और हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। यह लेखक की अपनी पर्यवेक्षण- क्षमता, अनुभव की गहनता और कल्पना-

शक्ति पर निर्भर करता है कि वह प्रख्यात् कथानक का समसामयिक संदर्भ में किस हद तक उपयोग कर पाता है।

(2) काल्पनिक : आप चाहें तो अपने नाटक का विषय अपनी कल्पना के आधार पर तय कर सकते हैं। किन्तु यहां काल्पनिक का सही मायने ग्रहण करना आवश्यक है। काल्पनिक का मायने ऐसी कपोल-कल्पित घटना नहीं है. कि उसे देख या पढ़कर लगे कि ऐसा तो कही होता ही नहीं, ऐसा तो हो ही नहीं सकता। कोरी कल्पना की उड़ान रचना के लिए उपयुक्त विषय नहीं बन सकती। मनोरंजन भी वही चीज करती है जिसमें कहीं न कहीं यथार्थ की संभावना हो। काल्पनिक कथानक से तात्पर्य है अपने अनुभवों को (जो स्थितियां, घटनाएं आपने देखी या महसूस की हों उन्हें) हू-ब-हू न प्रस्तुत करके, उन्हें काल्पनिक स्थानों, व्यक्तियों, कार्यों के माध्यम से प्रस्तुत करना। यदि आप घटनाओं अथवा स्थितियों का यथावत वर्णन कर देते हैं तो वह विवरण तो हो सकता है, साहित्यक रचना नहीं। उदाहरण के लिए दहेज की समस्या अथवा बेमेल -विवाह की समस्या हम अक्सर अपने समाज में देखते हैं। इस समस्या को प्रस्तुत करने के लिए जगदीश चन्द्र माथुर ने 'रीढ़ की हड्डी' नामक एकांकी लिखा है। हो सके तो आप एकांकी पढ़ें। लड़कियों की बेबसी और उसके खिलाफ उठती आवाज को यह नाटक बड़े प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। नाटककार ने समस्या प्रस्तुत करने के लिए स्थिति एवं घटनाओं की कल्पना की है जिसमें एक निहायत निकम्मा और आवारा लड़का अपने पिता के साथ लड़की पसंद करने आता है। इस तरह के काल्पनिक कथानक के माध्यम से आप अपने कई तरह के अनुभवों को एक कथा-सूत्र में पिरो सकते हैं।

(3) मिश्र कथानक : मिश्र कथानक वे होते हैं जिनमें प्रख्यात् कथा और कल्पना, दोनों का मेल होता है। प्रसिद्ध घटनाओं, इतिहास-प्रसिद्ध कथाओं में कल्पना का समावेश करके न केवल उन्हें रोचक बनाया जा सकता है बल्कि उनके माध्यम से समसामयिक प्रश्नों को उठाया जा सकता है। समसामयिक प्रश्नों के उत्तर खोजे जा सकते हैं। इस बात को एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। शिक्षक-विद्यार्थी संबंधों में आज कई तरह की चुनौतियां उत्पन्न हो गई हैं। छात्रों में स्वस्थ राजनीतिक चेतना और निष्ठा का अभाव उनमें अवांछित दिशा में उन्मुख होने की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है। दूसरी ओर, शिक्षकों का निहित स्वार्थों के लिए सत्ता व्यवस्था से जुड़ जाना उन्हें अपने दायित्वों के प्रति गैर ईमानदार बना देता है। इस यथार्थ किन्तु त्रासदायी स्थिति को शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' में महाभारत की कथा और आधुनिक महाविद्यालयों को समानांतर रखते हुए बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। द्रोणाचार्य जिस तरह एकलव्य के साथ अन्याय करते हैं, उसी तरह आधुनिक आचार्य, प्रधानाचार्य सामान्य वर्ग के साधनहीन विद्यार्थियों के साथ अन्याय करते हैं क्योंकि उन्हें सत्ता व्यवस्था से जुड़े परिवारों के छात्रों के हितों की रक्षा करनी है और उनके माध्यम से व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति करनी है। प्रख्यात् और कल्पना के इस मेल में यह ध्यान देना जरूरी है कि प्रख्यात् कथा में विश्वसनीयता को तोड़-मरोड़ न दिया जाए। यानी जिस समय विशेष को ले रहे हैं, उसमें ऐसी चीजें न दिखाई जाए जो उस समय में कल्पनातीत हों या असंभव हों। यदि आप सम्राट अशोक, पृथ्वीराज चौहान और औरंगजेब को आमने-सामने दिखा दें तो यह कालक्रम की दृष्टि से असंगत होगा, लेकिन यदि आप कल्पना करते हैं कि समय अथवा अतीत एक पात्र के रूप में खड़े वर्तमान से बातचीत कर रहे हैं तो उक्त पात्र बारी-बारी से अपना पक्ष प्रस्तुत करने आ सकते हैं। समसामयिक जीवन और उसके

प्रश्न कोई भी रचना जिस समय और जिस समाज में लिखी जा रही है वे उसके लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि रचना उस समय और समाज को अपने भीतर समेटे होती है, यानी उस समय और समाज के जीवन, वहां मौजूद मानवीय संबंधों, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियो का दस्तावेज होती है। दूसरी ओर वह उसी समय और समाज के लोगों के लिए लिखी जाती है। यानी वहीं के लोग उसके पहले पाठक या दर्शक होते हैं। इसलिए समसामयिक स्थितियों - परिस्थितियो, प्रश्नों और समस्याओं की अभिव्यक्ति उसके माध्यम से होनी चाहिए। आपका कथानक चाहे प्रख्यात् हो या काल्पनिक या मिश्र उसमें आपके अपने समय और समाज के जीवन की अभिव्यक्ति अवश्य होनी चाहिए, अन्यथा वह कथा का विवरण या कपोल-कल्पना मात्र रह जाएगा। समसामयिक जीवन के प्रश्नों को रचना में कैसे लाया जा सकता है, इसके उदाहरणस्वरूप हम विभिन्न नाटककारों की रचनाओं को देख सकते हैं। भारतेंदु के नाटकों पर ध्यान दें तो हम पाएंगे कि उन्होंने सामाजिक, नैतिक कमजोरियों पर व्यंग्य करते हुए राष्ट्रीय स्वाधीनता और मानवीय प्रेम को नाटकों का कथ्य बनाया है जो उनके समय में भारतीय समाज की मांग थी। इसी तरह, जयशंकर ' प्रसाद' के नाटक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक होते हुए भी नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना को अपने में समेटे हुए हैं।

6.5.2 विषय-वस्तु का चयन

विषय-वस्तु के उपर्युक्त स्रोतों में से किस विषय को चुना जाए यह प्रश्न आपके मन में सहजता से उठ सकता है। विषय-वस्तु चयन के संदर्भ में कुछेक बातों को आपको ध्यान में रखना होगा :

1. आपका अपना अनुभव यानी जो कुछ आपने स्वयं देखा और अनुभव किया है उसे आप अपनी रचना का आधार बनाएं तो आपकी रचना पूर्णत: प्रामाणिक होगी। लेकिन आपकी देखी-जानी हर बात रचना का विषय-वस्तु नहीं बन सकती। आपको यह तलाशना होगा कि आपके अनुभव का ऐसा कौन-सा हिस्सा है जो दूसरों के लिए प्रासंगिक है। हर व्यक्ति के जीवन में ऐसे बहुत से व्यक्ति और घटनाएं होती हैं जो उसे गहराई तक प्रभावित करती हैं। कभी- कभी वह ऐसी घटनाओं के लिए स्वयं भी जिम्मेदार होता है। इन अनुभवों को वह अपनी रचना का हिस्सा बना सकता है लेकिन उस घटना का यथावत् बयान कथा-वस्तु नही बन सकता। देखना होगा कि उस अनुभव के सामाजिक सरोकार कितने व्यापक और गहरे हैं। उदाहरण के लिए कुसुम कुमार का नाटक है 'चूहे', जिसमें रोजगार के लिए साक्षात्कार को नाटक के विषय-वस्तु के रूप में चुना गया है। साक्षात्कार की प्रक्रिया में मौजूद गैर-ईमानदारी यानी योग्य एव सुपात्र व्यक्ति को दरकिनार कर मनचाहे व्यक्ति का चयन और चयन की इस भ्रष्ट प्रक्रिया का विरोध करने वाले व्यक्ति का अकेला पड़ जाना आदि ऐसी स्थितियां हैं जो वर्तमान व्यवस्था पर उंगली उठाती है। इस तरह रचनाकार के अनुभव में व्यापक सामाजिक सरोकार शामिल हो जाते हैं।
2. विषय-चयन के समय आपको यह जरूर सोच लेना चाहिए कि उस विषय के माध्यम से आप क्या कहना चाहते हैं और आपके द्वारा चुनी गई विषय-वस्तु आपके संदेश को वहन कर सकेगी अथवा नहीं। उदाहरण के लिए द्वितीय महायुद्ध के दौरान हुए विनाश, संहार और मानव मूल्यों के अवमूल्यन की विभीषिका ने युद्ध की सार्थकता पर प्रश्न-चिह्न लगाया। दुनिया-भर में रचनाकारों और विचारकों ने अपने - अपने ढंग से इस विषय में अपनी- अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। धर्मवीर भारती का काव्य-नाटक 'अंधायुग' महाभारत की कथा के माध्यम से इसी मानसिकता को व्यक्त

करता है। लेखक ने समसामयिक घटना की प्रस्तुति के लिए सांस्कृतिक और मिथकीय कथ्य चुना ताकि विनाश की गहनता और युद्ध की निरर्थकता को गंभीर प्रभाव के साथ उद्घाटित किया जा सके।

3. संभावित दर्शक वर्ग को भी विषय-वस्तु के चयन के दौरान आपको दृष्टि म रखना होगा। विशेष रूप से दर्शक का आयु -वर्ग और शिक्षा-दीक्षा का ध्यान रखा जाना जरूरी है। यदि आपका नाटक बच्चों या किशोरों के लिए है तो खास तौर पर ऐसे विषय लेने होंगे जो उनके लिए रोचक और बोधगम्य हों। नाटक जिन लोगों के लिए है उनकी अभिरुचि के संस्कार-परिष्कार और विकास का ध्यान तो रखा ही जाना चाहिए।

6.5.3 विषय को कथावस्तु में ढालना

उपयुक्त विषय-वस्तु का चयन करने के पश्चात् आपको उसे नाटक की कथा-वस्तु क रूप में विकसित करना होगा। नाट्य विधा के विशिष्ट एवं संश्लिष्ट रूप की चर्चा की जा चुकी है। अत: आपको निम्नलिखित के बारे में ध्यान रखना होगा :

1. **कथ्य की सजीव और सक्रिय रूप में प्रस्तुति** कैसे की जाए। संपूर्ण कथ्य कार्य- व्यापार के रूप में प्रस्तुत होना चाहिए, वर्णन की गुंजाइश नहीं है। घटनाएं पात्रों के कार्यों के रूप में घटित हों। किसी घटना से जो पात्र प्रभावित हुए हैं वह प्रभाव उनके व्यवहार में दिखाई दे। उदाहरण के लिए, मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' का एक प्रसंग लें। कालिदास की उदासीनता देख मल्लिका उसे जाने के लिए प्रेरित करती है। इस अवसर पर मल्लिका के दो तीव्र किंतु परस्पर विरोधी भावों - कालिदास को सम्मान दिलाने की आकांक्षा और उससे बिछुड़ने का कष्ट- की अभिव्यक्ति मल्लिका के हाव-भाव और वाणी द्वारा होती है। लेखक अपनी ओर से कुछ नहीं कहता।

2. **दृश्य और सूच्य घटनाएं :** नाटक में घटनाओं को दृश्य रूप देने के लिए उन्हें सजीव बनाना पड़ता है। वरना वे सार्थक और प्रभावपूर्ण नहीं हो पाती। कुछ दृश्यों की तो मंच पर प्रस्तुति वर्जित मानी गई है। दूसरी ओर, नाट्य-प्रस्तुति की अवधि घंटे-दो घंटे होती है। इस दृष्टि से भी सीमित दृश्यों का ही विधान संभव है। इस दृष्टि से नाटककार को चुनना पड़ता है कि कथा के किस भाग को दृश्य रूप में कितना विस्तार दिया जाए। कथा के कुछ अंश ऐसे कार्य-व्यापार के रूप में घटित होते हुए नहीं दिखाए जाते। किन्तु इनका नाटक में समावेश नितांत आवश्यक होता है- कथा को आगे बढ़ाने के लिए, उसे अपेक्षित मोड़ देने के लिए। ऐसे अंशों को नाटक में सूच्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यानी प्रस्तुत पात्रों के मुख से उन अप्रस्तुत घटनाओं की सूचना दिलवाई जाती है। यह सूच्य घटनाएं दृश्य घटनाओं का अंग बनकर आती हैं, अलग से नही। उदाहरण के लिए मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' में नंद के दीक्षा-ग्रहण, वन की ओर चले जाने, बाघ से निरस्त्र स्थिति में जूझने की घटनाएं सूच्य रूप में आती हैं। इसी तरह, ' आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास को राजकीय सम्मान दिए जाने का प्रस्ताव और कालिदास हारा उसे स्वीकार करने से इंकार करने की घटनाएं मातुल, मल्लिका और अम्बिका के वार्तालाप से सूचित होती हैं। नाटक का यह अंश उदाहरण के रूप में नीचे उद्धृत किया जा रहा है -

(बाहर से मातुल के शब्द सुनायीं देने लगते हैं।)

मातुल : अम्बिका ..!अम्बिका घर में हो कि नहीं ....!?

(अम्बिका और मल्लिका ड्योढ़ी की ओर देखती हैं। मातुल अस्तव्यस्त सा -

(आता है।

मातुल : हो, हो , हो, घर में ही होमैं आज सारे ग्राम में घोषणा करने जा रहा हूं ! कि मेरा इस कालिदास नामधारी जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मल्लिका : क्या हुआ आर्य मातुल ?

मातुल : मैंने इसे पाला-पोसा, बड़ा किया। क्या इसी दिन के लिए ? कि यह इस तरह कुलद्रोढी बने।

मल्लिका : परंतु उन्हें तो, सुना है, राज्य की ओर सम्मानित किया जा रहा है। उज्जयिनी से कोई आचार्य आए हैं।

मातुल : यही तो कह रहा हूं। उज्जयिनी से कोई आचार्य आए हैं।

मल्लिका : परंतु आप तो कह रहे हैं।

मातुल : मैं ठीक कह रहा हूं। आचार्य कल से ही इसे अपने साथ उज्जयिनी ले जाना चाहते हैं।

मल्लिका : किन्तु।

मातुल : दो रथ, दो रथवाह और चार अश्वारोही उनके साथ हैं। मैं तुमसे नहीं कहता था अम्बिका, कि हमारे प्रपितामह के एक दौहित्र का पुत्र गुप्त राज्य की ओर से शकों से युद्ध कर चुका है?

अम्बिका : तुम अपने भगिनेय की बात कर रहे थे।

मातुल : उसी की बात कर रहा हूं अम्बिका ! तुम समझो कि एक तरह से राज्य की ओर से हमारे वंश का सम्मान किया जा रहा है। और वे वंशवतंस कहते हैं, 'मुझे यह सम्मान नहीं चाहिए।.....'

(मल्लिका सहसा उकर खड़ी हो जाती है।(

'मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूं। '

(उत्तेजना में एक कोने से दूसरे कोने तक टहलने लगता है। मल्लिका कुछ क्षण विस्मृत(सी खड़ी रहती है।-

मल्लिका : वे राजकीय सम्मान को स्वीकार नहीं करना चाहत?

मातुल : मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रयविक्रय की क्या बात है-।सम्मान मिलता है, ग्रहण करो। नहीं, कविता का मूल्य ही क्या है ?

मल्लिका : कविता का कुछ मूल्य है आर्य मातुल, तभी तो सम्मान का भी मूल्य है। .. मैं समझतीहूं कि उनके हृदय में यह सम्मान क्हाँ चुभता है।

- - ' आषाढ़ का एक दिन', मोहन राकेश

6.5.4 आधिकारिक और प्रासंगिक कथानक

कथानक दो तरह का होता है - आधिकारिक और प्रासंगिक। आधिकारिक कथानक से तात्पर्य है - प्रमुख कथानक और प्रासंगिक से तात्पर्य है - सहायक कथानक। आधिकारिक कथानक का संबंध

नाटक के मुख्य कार्य से होता है। प्रासंगिक कथानक गौण कथानक होता है। यह मुख्य कार्य- व्यापार को आगे बढ़ाने में सहायक होता है। आधिकारिक कथानक शुरू से लेकर आखिर तक चलता है। प्रासंगिक कथानक बीच में शुरू होकर आखिर तक चल सकता है अथवा बीच में ही समाप्त हो सकता है। खास बात यह है कि यह मुख्य कथानक से स्वतंत्र अथवा निरपेक्ष नहीं होता। अक्सर तो यह मुख्य कथानक के अविभाज्य अंग के रूप में चलता है। उदाहरण के लिए, जयशंकर प्रसाद के ' ध्रुवस्वामिनी' नाटक में ही शकराज और कोमा के प्रसंग को लिया जा सकता है। इसी तरह, मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' में श्यामांग और अलका के प्रसंग को लिया जा सकता है।

एकांकी नाटक में कथानक अक्सर इकहरा होता है। दोहरे कथानक का प्रावधान करने का समय और अवकाश वहां नहीं होता। यद्यपि इस संबंध में आपको ध्यान यह रखना है कि यह कोई बंधन नहीं है कि कथानक दोहरा (आधिकारिक और प्रासंगिक) अवश्य ही हो। विषय के विस्तार और कथा-वस्तु के ढाँचे के अनुरूप लेखक स्व-विवेकानुसार कथानक को इकहरा अथवा दोहरा रख सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि आधिकारिक और प्रासंगिक कथानक भली-भांति परस्पर अनुस्यूत हों। प्रासंगिक कथानक, आधिकारिक कथानक का सहायक हो।

6.5.5 कार्य-व्यापार और देश-काल के बीच समन्वय

आपने जो विषय चुना है, उसे कथा में ढालते वक्त आपको उसे किसी समय या समाज-विशेष से जोड़ना होगा यानी आपको उस परिवेश की कल्पना करनी होगी जिसके भीतर कथा-तंतु का विकास हो सके। इस परिवेश को अंग्रेजी में 'सैटिंग' (Setting) भी कहा जाता है। यदि आपने किसी प्रख्यात् ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक कथा को आधार बनाया है तो आपके कथानक का परिवेश इतिहास और संस्कृति के उस काल और देश-विशेष से सम्बद्ध होगा। यदि आपकी कथा काल्पनिक है तो आपको विषयानुरूप उपयुक्त परिवेश से कथा को जोड़ना होगा। परिवेश से जोड़ने का मायने है - घटनाओं, कार्यों, पात्रों के व्यक्तित्व, वेश-भूषा, आचरण, सोचने-समझने के ढंग, तौर-तरीके, भाषा आदि के माध्यम से वातावरण की सृष्टि करना। उदाहरण के लिए, हम मोहन राकेश के नाटक ' आधे- अधूरे' को लें। मध्यमवर्गीय परिवार के बिखराव को प्रस्तुत करने के लिए. लेखक ने घर की अस्त-व्यस्त स्थिति को, घर के सदस्यों का एक-दूसरे से बिस्कुल कटे होने, आपस में लगाव की कमी को, संतोष के अधूरेपन आदि को न केवल कथा के माध्यम से बल्कि पूरे वातावरण के माध्यम से दिखाया है। कहने का अर्थ है कि घटनाएं और स्थितियां जिस समय के लोगों के बीच घटित हो रही हैं, उस समय की पहचान उनसे होनी चाहिए।

मोहन राकेश के सांस्कृतिक नाटक ' आषाढ़ का एक-दिन' और 'लहरों के राजहंस' या जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटक 'स्कंदगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'जनमेजय का नागयज्ञ' आदि के कथानक पर ध्यान दीजिए। आपको अनुभव होगा कि थोड़े समय के लिए हम इतिहास के उस कालखंड में प्रवेश पा गए हैं। दर्शका / पाठक को यह अनुभव करा पाना ही वास्तव में देश-काल और कार्य -व्यापार का समन्वय स्थापित करना है।

यथार्थवादी नाटकों में यह अनुभव यथार्थ की वास्तविक अनुभूति द्वारा कराया जाता है। इसके लिए मंच-सज्जा को विशिष्ट माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

संकलन-त्रय (नाटक में स्थान, कार्य और समय की एकता) का विधान भी इसी दृष्टि से किया जाता है। संकलन- त्रय का अर्थ है कि नाटक की सभी घटनाएं एक ही स्थान पर एक ही समय में घटित हों ताकि दर्शक को समय या स्थान की दूरी की कल्पना न करनी पड़े और मंच-सज्जा में स्थान या समय के अनुकूल परिवर्तन की जरूरत न हो।

लेकिन देश, काल और कार्य की इस एकता का निर्वाह रचनाकारों ने बहुत आवश्यक नहीं माना। सभी बड़े रचनाकार अपनी जरूरतों के अनुसार इससे छूट लेते रहे हैं। इसके बावजूद उनके नाटकों की परिवेश-सृष्टि में कोई दोष भी पैदा नहीं हुआ है।

6.5.6 कथा-वस्तु का विकास

अगला प्रश्न आपके सामने है कि नाटक के लिए जो विषय-वस्तु आपने चुनी है उसे किस ढंग से व्यवस्थित और विकसित किया जाए कि वह अपने आप में पूर्ण कथावस्तु का रूप ले सके। पूर्ण होने के लिए किसी कथानक में तीन स्थितियां होना आवश्यक है - आरंभ, मध्य और अंत। इन तीनों का परस्पर अनुस्यूत होना आवश्यक है। आरंभ जिस स्थिति, प्रश्न अथवा समस्या के साथ हो उसका विकास होकर कथा मध्य में पहुँचे और विकसित अवस्था की परिणति अंत में हो। इसके लिए तीनों में कार्य -कारण संबंध होना चाहिए। यानी आगे आने वाली घटना पिछली घटना का परिणाम हो और अगली घटना का कारण बने। लेकिन यह कार्य -कारण संबंध ढर्रेदार ढंग का न हो। यदि पाठक या दर्शक को स्वयं अनुमान लग जाए कि आगे क्या होने वाला है तो कथानक का समुचित विकास नहीं कहलाएगा। उसकी यह जिज्ञासा निरंतर बनी रहे कि आगे क्या होगा तभी आपकी रचना उसे आकृष्ट करेगी। स्थितियों की टकराहट और उनके परस्पर संघर्ष से जब घटनाएं अप्रत्याशित मोड़ लेंगी तो आपके नाटक में कौतूहल की सृष्टि हो सकेगी। अभिज्ञान शांकुतलम् नाटक में राजा द्वारा शकुंतला को न पहचाने जाने और अंगूठी खो जाने की घटनाएं ऐसी अप्रत्याशित आती हैं कि दर्शक में कौतूहल और जिज्ञासा बनी रहती है। आगे चलकर मछुआरे को दण्डित करने के बजाए पुरस्कृत किए जाने की घटना भी इसी तरह अप्रत्याशित होती है।

कथावस्तु नाटक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग होता है। पश्चिमी और भारतीय दोनों ही परम्पराओं के आचार्यो ने इसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं का विधान किया है। पश्चिमी नाटक में कार्य की छह अवस्थाएं मानी गई हैं और भारतीय आचार्यो ने नाटक की कार्यावस्थाओ अर्थ- प्रवृत्तियों और संधियों का विधान किया है। बदली हुई स्थितियों में आज यद्यपि इनका नाटक में पालन अनिवार्य नहीं माना गया है लेकिन कथा-वस्तु का सम्यक् निर्वाह आज भी अपेक्षित है, उसके लिए रचनाकार को अपने ढंग से प्रयास करना चाहिए।

1. कथानक का आरंभ

जो विषय आपने चुना है उसके किस अंश से कथानक की शुरुआत करना उचित होगा इस पर विचार करें। कथानक के आरंभ का महत्व इस बात में है कि यहीं से दर्शक / पाठक का स्थिति से परिचय होता है। अत: आरंभ विषयानुकूल परिवेश निर्मित करने में सक्षम होना चाहिए। साथ ही पाठक को आकृष्ट करने और उसकी जिज्ञासा जानने की क्षमता उसमें होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, 'चन्द्रगुप्त' (जयशंकर प्रसाद) का आरंभिक अंश यहां उद्धृत किया गया है -

(स्थान-तक्षशिला के गुरुकुल का मठ)

(चाणक्य और सिंहरण)

चाणक्य : सौम्य, कुलपति ने मुझे गृहस्थजीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी-।केवल तुम्हीं लोगों को' अर्थशास्त्र पड़ाने के लिए ठहरा था; क्योंकि इस वर्ष के भावी स्नातकों को अर्थशास्त्र का पाठ पढ़ाकर मुझ अकिंचन को गुरुदक्षिणा चुका - देनी थी।

सिंहरण : आर्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी अस्त्रशस्त्र - की। इसीलिए मैं पाठ में पिछड़ा रहा, क्षमाप्रार्थी हूं।

चाणक्य : अच्छा, अब तुम मालव जाकर क्या करोगे?

सिंहरण : अभी तो मैं मालव नहीं जाता। मुझे तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है।

चाणक्य : मुझे प्रसन्नता होती है कि तुम्हारा अर्थशास्त्र पढ़ना सफल होगा। क्या तुम जानते हो कि यवनों के दूत यहां क्यों आये हैं?

सिंहरण : मैं उसे जानने की चेष्टा कर रहा हूं। आर्यावर्त्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारण की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड राजद्वेष से जर्जर है-।शीघ्र भयानक विस्फोट होगा ।

(सहसा आम्भीक और अलका प्रवेश)

आम्भीक: कैसा विस्फोट ? युवक, तुम कौन हो?

सिंहरण: एक मालव।

आम्भीक: नहीं, विशेष परिचय की आवश्यकता है।

सिंहरण: तक्षशिला गुरुकुल का एक छात्र।

आम्भीक: देखता हू कि तुम दुर्विनीत भी हो।

सिंहरण : कदापि नहीं राजकुमारविनम्रता के साथ निर्भीक होना मालवों का वंशानुगत ! चरित्र है और मुझे तो तक्षशिला कीशिक्षा का भी गर्व है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक के आरंभ को ध्यान से पढ़ने पर आपने और गौर किया होगा कि तीन पात्रों के बीच इस बातचीत से कई स्थितियों का उद्घाटन होता है। यवनों से मिलकर तक्षशिला में चल रही घुसपैठ, गुरूकुल के आचार्यों की इस विषय में जागरूकता, मालव राज्य द्वारा इस विषय में की जा रही गुप्तचरी आदि के बारे में इससे जानकारी मिलती है। पूरे नाटक के संदर्भ में इस आरंभिक अंश पर विचार करें तो आप पाएंगे कि यही वे बीज हैं जिनपर कथानक-रूपी वृक्ष विकसित हुआ है।

उपर्युक्त उदाहरण के माध्यम से आपने देखा कि आरंभिक संवादों द्वारा नाटककार आगे चलने वाले प्रमुख कार्य -व्यापार के संकेत देता है और उनके लिए मनोभूमिका एवं परिवेश निर्मित करता है। यहां आरंभ का छोटा-सा भाग ही उद्धृत किया गया है। अत: यह नहीं समझना चाहिए कि इतनी सूचना मात्र से कथानक का आरंभ पूरा हो गया। कथानक के आरम्भ के मायने है कि मूल कार्य-व्यापार की घटनाएं शुरू होकर विस्तार पाने लगें और कथानक की केन्द्रीय समस्या अथवा संघर्ष का परिचय मिल जाए। नाटक का आरंभ विषय एवं नाट्य रूप के अनुकूल संक्षिप्त अथवा विस्तृत हो सकता है। आरंभ

के विषय में यह भी आवश्यक नहीं कि वह प्रमुख पात्रों द्वारा ही शुरू हो। गौण पात्र के वार्तालाप से भी प्रमुख घटनाओं की सूचना मिल सकती है, जैसा कि मोहन राकेश के ' लहरों के राजहंस' अथवा सुरेन्द्र वर्मा के 'आठवां सर्ग' में हुआ है।

2. कथानक का विकास :

आरंभ में आपने जिन स्थितियों और घटनाओं को प्रस्तुत किया है या जिनकी सूचना दी है उनको धीरे- धीरे विस्तार करते हुए आपको आगे बढ़ाना है। घटनाओं के विकास और विस्तार के समय आपको ध्यान रखना होगा कि स्थितियां सपाट रूप से आगे न बढ़े बल्कि उनमें नाटकीय कौतुहल एवं जिज्ञासा रहे। सपाट रूप से बढने पर उनमें कोई रोचकता पैदा न होगी। उदाहरण के लिए, यदि आपका कथानक एक ग्रामीण बेरोजगार युवक के शहर में जाकर रोजगार की तलाश से शुरू होता है और शहर जाकर उसे कोई उदारमना सहायक मिल जाता है जो फैक्ट्री में उसकी नौकरी लगवा देता है और वह युवक चैन का जीवन बिताने लगता है तो यह घटनाओं की सपाटबयानी कही जाएगी। आपको उस युवक के मार्ग की कठिनाइयों, उसकी दुविधाओं और संकटों को प्रस्तुत करना होगा और यह भी दिखाना होगा कि किस प्रकार अपनी बुद्धि, कौशल एवं उदारमना सहायक व्यक्तियों की सहायता से उसने उन कठिनाइयों को दूर किया, किस प्रकार अपने मन की दुविधाओं का समाधान किया तभी आप उपयुक्त कथा-वस्तु का विकास कर सकेंगे। मार्ग की ये कठिनाइयां और जटिलताएं जितनी गंभीर होंगी और इन्हें दूर करने का जितना अधिक प्रयास करना होगा उतना ही कथानक प्रभावपूर्ण होगा।

लेकिन इसका यह अर्थ न समझना चाहिए कि कठिनाइयां एक-एक करके सामने लाने -भर से ही कथा-वस्तु विकसित हो जाएगी। यह भी हो सकता है कि वह अनेक अलग-अलग स्थितियों का संग्रह मात्र लगे। अत: आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न कठिनाइयां, दुविधाएं और विपत्तियां एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़ी हों कि पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी परस्पर मिल कर अनिवार्य परिणाम दें। इसमें एक, दो, तीन, चार का क्रम-निर्वाह जरूरी नहीं है। चौथी घटना पहली का परिणाम हो सकती है। लेकिन उन सबमें कार्य -कारण संबंध अपेक्षित है। उदाहरण के लिए, मोहन राकेश के नाटक " आषाढ़ का एक दिन' को लेते हैं। कालिदास को राजकीय सम्मान के लिए उज्जयिनी भेजने में मल्लिका की अहम् भूमिका है, वह अपने आपको त्रस्त करके कालिदास को राजाश्रय तक यह सोचकर पहुंचाती है कि वहां उसकी प्रतिभा को विकसित होने का बेहतर अवसर मिलेगा। यह घटना कालिदास के जीवन में नए मोड़ लाती है, जो मल्लिका के जीवन को प्रभावित करते हैं। मल्लिका के संघर्षों का विस्तार होता जाता है - भावनात्मक तथा भौतिक, दोनों स्तरों पर। वर्षों पश्चात कालिदास ग्राम में आते हैं, लेकिन मल्लिका से मिले बगैर चले जाते हैं। दूसरी ओर, कालिदास की पत्नी प्रियंगुमंजरी माल्हका से मिलती है, उसकी सहायता करना चाहती है। लेकिन पूरी स्थिति बड़ी ही नाटकीय, निर्मम और व्यंग्यपूर्ण है। मल्लिका की हृदय-दशा को समझे बगैर भांति-भांति के उपकार या सहायता के प्रस्ताव प्रियंगुमंजरी की ओर से आते हैं जिन्हें वह अत्यंत विनम्रता के साथ अस्वीकार कर देती है। दूसरी ओर, अम्बिका की बिगड़ती दशा और विलोम के व्यंग्य-बाण मल्लिका के हृदय को छलनी कर डालते हैं।

इस प्रकार की घटनाओं का एक-एक करके निर्मम तनावपूर्ण स्थिति की ओर बढ़ना उनका अपरिहार्य परिणाम है। यह कार्य-कारण संबंध कथा में सहज जिज्ञासा की सृष्टि करता है। कालिदास के गांव में आने की सूचना मिलने पर पाठक को कुछ देर के लिए लगता है कि कालिदास की मल्लिका

से भेंट होगी, वह मल्लिका के हृदय को समझने की कोशिश करेगा, हो सकता है कि उससे क्षमा-याचना भी करे। लेकिन नाटक का कथानक अप्रत्याशित ढंग से बढ़ता है। कालिदास के इस व्यवहार से दर्शक में कौतुहल होता है, नाट्य-व्यापार गंभीर,जटिल मोड़ लेता है। इस प्रकार का विकास नाटक को न केवल रोचक और प्रभावपूर्ण बनाता है, बल्कि मानवीय संबंधों की जटिलता को भी उद्घाटित करता है, साथ ही जिज्ञासा बनी रहती है कि आगे क्या होगा। यही नाटक की सफलता का सूत्र है।

आपको नाटक लिखते समय ध्यान रखना होगा कि विकास के मध्य चरण में अक्सर कथानक तनाव और संघर्ष की चरम सीमा पर पहुंच जाता है जिसकी परिणति कई ढंग से हो सकती है। स्थितियां किसी भयानक त्रासद अंत की ओर मुड़ सकती हैं अथवा संघर्ष का समाधान होकर बेहतर अवस्था को प्राप्त हो सकती हैं। अत: घटनाओं की परिणति की ओर चलने से पहले आपको परिणति की दिशा तय करनी होगी।

3. कथानक की परिणति अथवा अंत

कथानक का अंत संपूर्ण क्रिया-व्यापार की सहज परिणति होना चाहिए अर्थात् घटनाओं के विकास का सहज परिणाम होना चाहिए, ऊपर से आरोपित स्थिति नहीं। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि घटनाओं में आकस्मिक अथवा अप्रत्याशित प्रत्यावर्तन नहीं होना चाहिए - वह तो अवश्य होना चाहिए। लेकिन यह प्रत्यावर्तन घटनाओं के भीतर से होना चाहिए अचानक घटित नहीं। उदाहरण के लिए हम 'आषाढ का एक दिन' के कथानक के विकास की चर्चा कर रहे थे। इसके अंत पर ध्यान देने पर हम देखते हैं कि मल्लिका की मानसिक और भौतिक व्यथा से कथानक को आगे बढ़ाया गया है। मल्लिका के घर की जीर्ण - शीर्ण, अस्त-व्यस्त, दशा मातुल का अस्त- व्यस्त हालत में आगमन, कालिदास के कश्मीर छोड़कर संन्यास की सूचना पर अविश्वास, अपनी आस्था में भरोसा, अपने को तिल-तिल नष्ट करके कालिदास के उत्थान की कामना, अचानक थके, टूटे-हारे हुए हाल में कालिदास का आगमन, पिछली स्मृतियों और संघर्षों की पुनरावृत्ति, आत्म- विश्लेषण, नए सिरे से जीवन आरंभ करने का प्रस्ताव, लेकिन मल्लिका की वर्तमान अवस्था को, उसकी बच्ची को, देखकर मन: स्थिति परिवर्तन और अचानक चले जाना आदि घटनाएं एक के बाद एक कार्य-कारण श्रृंखला से जुड़ी हैं और नाटक का अंत अत्यन्त मार्मिक बिन्दु पर पहुंचकर होता है। मल्लिका और कालिदास दोनों ही टूटे- थके-हारे हैं। कालिदास फिर से शुराआत का सुझाव देता है लेकिन मल्लिका की वर्तमान अवस्था से समझौता नहीं करना चाहता। मल्लिका के लिए और कोई रास्ता नहीं है। एक बार फिर उसका हृदय टूटता है और बच्ची को दुलारने में राहत पाने का प्रयास करती है।

कथानक के अंत के विषय में यह अंतिम रूप से नहीं कहा जा सकता कि किस प्रकार का अंत उपयुक्त होता है। अंत वही उपयुक्त होगा जो घटनाओं की सहज परिणति में दिखाई देगा। कथानक के अंत के विषय में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह नाटक के संपूर्ण प्रभाव का वाहक होता है। दर्शक अथवा पाठक पर नाटक का समग्र प्रभाव कथानक के अंत द्वारा पड़ता है, आरंभ और विकास नामक चरण इस प्रभाव की तैयारी करते हैं और धीरे- धीरे इसके लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। इस तरह, कथावस्तु-विकास की सफलता अथवा असफलता उसकी चरम परिणति पर निर्भर करती है। इस दृष्टि से हम आपको सुझाव देंगे कि आप विभिन्न लेखकों के नाटकों को पढ़ें और देखें।

नाटक के अंत के बारे में यह जरूरी है कि उसमें समस्याओं का समाधान ही दिखाया जाए या चरम सीमा की त्रासद परिणति ही दिखाई जाए। आप स्थितियों को चरम सीमा के बिन्दु पर पहुंचाकर

भी अंत दिखा सकते हैं। एकांकी का तो अंत अक्सर चरम सीमा पर हो ही जाता है। हाँ, बाल-नाटक के बारे में यह उचित होगा कि समाधान प्रस्तुत किया जाए और यह समाधान नैतिक दृष्टि से भी अनुचित न हो ताकि बच्चों के मानसिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़े।

6.5 नाटक में पात्र- सृष्टि

पात्र नाटक का अनिवार्य अंग है क्योंकि कथानक का विकास पात्रों से होता है और पात्रों के कार्यों को दिशा कथानक के द्वारा मिलती है। इस तरह दोनों एक-दूसरे से अपरिहार्य रूप से जुड़े होते हैं। आपके कथानक की बुनावट में पात्रों की अनिवार्य भूमिका होनी चाहिए। कोई पात्र ऐसा नहीं होना चाहिए जिसको निकाल देने से कथावस्तु पर कोई प्रभाव ही न पड़े अथवा कथा-वस्तु खंडित न हो जाए। न ही कोई पात्र ऐसा होना चाहिए जिसके व्यवहार और आचरण से कथानक में अनावश्यक विस्तार या आरोपित स्थितियां उत्पन्न हों। दूसरी ओर, घटनाओं ओर स्थितियों की अभिव्यक्ति में हर पात्र की भूमिका के माध्यम से उसका चरित्र उभरना चाहिए ताकि अन्य पात्रों से उसे अलग व्यक्तित्व प्राप्त हो सके, समग्र नाट्य-व्यापार में उसकी भागीदारी उद्घाटित हो सके।

पात्रों की संख्या आप नाट्य-वस्तु की आवश्यक्तानुसार रख सकते हैं। हां, यह जरूर ध्यान रखें कि मंचित होते समय पात्रों की अव्यावहारिक भीड़ न हो और दर्शक प्रत्येक पात्र को अलग- अलग पहचान सकें।

पात्रों की भूमिका के बारे में आपको काफी स्पष्ट होना चाहिए। कौन-से पात्र का कार्य-व्यापार में कहां और कितना योगदान होगा अर्थात् कौन-सा पात्र क्या-क्या करेगा, किस प्रकार व्यवहार करेगा, उसकी मन: स्थिति किस तरह की होगी यह आपको निर्धारित करना है। इस तरह आप नाटक के पात्रों के निर्माता हैं। आप उनमें से जिसे जैसा व्यक्तित्व प्रदान करना चाहेंगे वैसा वह विकसित होगा। ऐसी स्थिति में आपको ध्यान रखना होगा कि पात्रों में अंतर्विरोध न पैदा हो और उन्हें स्वतंत्र व्यक्तित्व मिले, वे आपके हाथ का खिलौना न दिखाई पड़े। हर पात्र का अपना व्यक्तित्व हो। शेक्सपियर के पात्रों की विशेषता यही है कि शेक्सपियर स्वयं का व्यक्तित्व उसके किसी पात्र में नहीं दिखाई देता, हर पात्र अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखता है। इस तरह के पात्र स्वयं इतने प्रभावपूर्ण और अविस्मरणीय हो जाते हैं कि रचनाकार से ज्यादा उन्हें याद किया जाता है। हेमलेट, ऑथेलो, शकुंतला, चाणक्य इसी तरह के पात्र हैं।

6.6.1 पात्रों का चयन

पात्रों का चयन आपके नाटक की विषय-वस्तु की आवश्यकतानुसार होना चाहिए। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, काल्पनिक कथा-वस्तु के अनुरूप पात्र भी उसी समय अथवा परिवेश से आएंगे। प्रख्यात पात्रों के व्यक्तित्व में उनकी प्रख्यात् विशेषताएं मौजूद होंगी। लेकिन इतिहास-प्रसिद्ध पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्रों की भी आवश्यकता होती है। ऐसे पात्रों की लेखक काल्पनिक सृष्टि करता है। इन पात्रों से लेखकीय उद्देश्य को प्रस्तुत करने में भी सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए, 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास के व्यक्तित्व के माध्यम से सर्जनशील रचनाकार के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने के लिए विभिन्न पात्रों - मल्लिका, अम्बिका, मातुल, विलोम आदि की योजना की गई है। काल्पनिक पात्रों की सहायता से प्रख्यात् विषयों में समसामयिक प्रश्नों और स्थितियों का समावेश

करने में सहायता मिलती है। 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास और प्रियंगुमंजरी को छोड़कर सभी पात्र काल्पनिक हैं यहां तक कि मल्लिका भी। इन पात्रों के माध्यम से नाटक रचनाकार की मानसिकता को उद्‌घाटित करने, उसके प्रतिभावान और संवेदनशील व्यक्तित्व में आत्म केन्द्रिकता को अनुस्यूत करने में सफल हो सका है। प्रख्यात् विषयों में काल्पनिक पात्रों के समावेश करते समय आपको ध्यान रखना होगा कि उनके समावेश से कथा के प्रख्यात् ढांचे में कोई अविश्वसनीय परिवर्तन न हो।

यदि आपका कथानक काल्पनिक है अथवा समसामयिक जीवन से लिया गया है तो पात्रों की परिकल्पना में आप अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र हैं। आप अपने आस-पास के समाज से पात्र चुन सकते हैं। आपके घर, मौहल्ले, शहर का कोई व्यक्ति, कोई राजनीतिज्ञ, नौकरशाह या इसी तरह का अन्य व्यक्ति आपके नाटक का पात्र हो सकता है। ऐसे विभिन्न व्यक्तियों की विशेषताओं का आप किसी एक पात्र के चरित्र में समावेश कर सकते हैं। उनके स्वभाव, व्यवहार, बोलचाल के तौर- तरीकों के अनेक पक्ष आपके पात्रों में आ सकते हैं। उदाहरण के लिए, जगदीशचन्द्र माथुर के 'रीढ़ की हड्डी' नामक एकांकी के पात्रों को लें तो गोपालप्रसाद, शंकर, उमा आदि जैसे अनेक दहेज-लोभी, स्वार्थी व्यक्ति आपने देखे होंगे। उमा जैसी साहसी लड़कियां भी आपके देखने में आई होंगी।

यह न सोचें के आसपास के विशिष्ट व्यक्ति ही आपके पात्र हो सकते हैं। आम से आम व्यक्ति भी आपके नाटक का प्रमुख पात्र बन सकता है। ध्यान रखने की बात यह है कि अपने आसपास के लोगों की कौन-सी विशेषताएं आपके पात्रों में आनी चाहिए, उनकी क्या प्रासंगिकता है, क्या सामाजिक महत्व है। यानी नाटक पढ़ने या देखने वालों को वे क्यों और किस तरह प्रभावित कर सकेंगे। उनकी बातचीत का ढंग, शब्दावली, भाषा, उठने-बैठने और चलने -फिरने का तौर-तरीका, उसका बाह्य व्यक्तित्व- -सभी कुछ आपको गौर से देखना होगा।

यथार्थ से जुड़ाव : आपके पात्र चाहे काल्पनिक हों अथवा प्रख्यात् उनका विकास इस प्रकार होना चाहिए कि वे इस धरती के जीते-जागते पात्र प्रतीत हों। उनका यथार्थ से जुड़ाव हो, वे काल्पनिक होकर भी संभव लगें। किसी परिस्थिति-विशेष में मनुष्य कैसा व्यवहार करता है, यह प्रकट करना तो यथार्थ है ही, उन परिस्थितियों में कैसा व्यवहार संभव है यह प्रकट करना भी यथार्थ ही है। पश्चिमी आचार्य अरस्तु 'ट्रेजेडी' की चर्चा करते समय 'संभाव्य संभावना' की बात कहते हैं और उसे असंभव संभावना से बेहतर और महत्वपूर्ण मानते हैं। अत: आपको मानवीय मनोविज्ञान पर गौर करना होगा कि मनुष्य किस-किस तरह व्यवहार करता है या कर सकता है। अच्छे से अच्छा व्यक्ति किस क्षण बुराई की ओर मुड़ सकता है या दुर्जन से दुर्जन व्यक्ति किस स्थिति में सज्जनता का व्यवहार कर सकता है- ये चरित्र के नाट्‌कीय मोड़ हो सकते हैं लेकिन यह परिवर्तन आकस्मिक होते हुए भी सहज होना चाहिए, आरोपित नहीं। क्रूर व्यक्ति का अचानक करुणापूर्ण व्यवहार अस्वाभाविक लगेगा जब तक कि उसके पीछे कोई ऐसा ठोस कारण न हो जो हृदय-परिवर्तन का औचित्य स्थापित कर सके।

यथार्थ से यह जुड़ाव काल्पनिक पात्रों में ही नहीं, ऐतिहासिक- पौराणिक चरित्रों में भी उतना ही आवश्यक होता है। महत्वाकांक्षी आत्म-केन्द्रित ऐतिहासिक पात्र सम्राट अशोक का कलिंग विजय के उपरांत बौद्ध धर्म की अहिंसा की ओर प्रवृत्त होना दिखाते समय आपको पहले महत्वाकांक्षा की चरम क्रूरतम स्थिति को उद्‌घाटित करना होगा। तभी उससे विरक्ति दिखाना प्रभावपूर्ण हो सकेगा अरि अहिंसा की प्रेरणा स्वाभाविक लग सकेगी।

पात्रों को यथार्थ बनाने के लिए आपको जीवन-जगत को बहुत नजदीक से देखना होगा और यह समझ विकसित करनी होगी कि किस प्रकार की चरित्रगत विशेषताएं किसी पात्र को कपोल - कल्पित रूप दे सकती है और कौन-सी विशेषताएं उसे यथार्थ की भूमिका पर खड़ा कर सकती है।

पात्रों के चरित्र को यथार्थ बनाने में **उनके वर्गगत और निजी स्वरूप** की भूमिका रहती है। स्वरूप से यहाँ तात्पर्य है- उनकी खास विशेषताएं जो दो तरह की हो सकती हैं।

पात्रों के वर्गगत स्वरूप से तात्पर्य है वह जीवन और समाज के जिस क्षेत्र से आया है, उस क्षेत्र की अपनी खास विशेषता होती हैं। राजनीतिज्ञ, उद्योगपति, व्यापारी, प्रोफेसर, अफसर, डाक्टर, किसान, मजदूर आदि जिस तरह की भूमिका पात्र को 'दी जाएगी उसके अनुरूप विशिष्टताएं पात्र में अपेक्षित होगी। उदाहरण के लिए, यदि आपने 1980 के दशक के मध्य में टीवी. पर प्रसारित सीरियल 'बुनियाद' देखा हो तो प्रधान पुरुष पात्र क्रांतिकारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है और उसके परिवार के अन्य पुरुष पात्र-पिता और भाई-व्यापारी वर्ग का। उनके सोचने का ढंग, भाषा, व्यवहार, कार्यकलाप, उनकी यह वर्गगत पहचान दिखाते हैं जिससे उनका चरित्र यथार्थ और रोचक बनता है।

वर्ग-विशेष के भीतर पात्र की अपनी निजी विशेषताएं होती हैं जो उसे अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करती हैं। यदि ये विशेषताएं न हों तो सभी पात्र ढर्रेदार किस्म के हो जाएंगे। उदाहरण के लिए, विष्णु प्रभाकर के नाटक 'संस्कार और भावना' में पुरानी पीढ़ी की मां-बेटे के अंतर्जातीय विवाह को स्वीकार नहीं कर पाती। पुत्र से संबंध तोड़ लेती है। उसका पूरा व्यवहार उसके वर्ग - चरित्र को प्रकट करता है लेकिन संस्कारों की भावना से टकराहट तब होती है जब उसे पता चलता है कि पुत्र की गंभीर बीमारी में बहू किसी से मदद मांगे बगैर स्वयं पूरी स्थिति को संभालती है। पुत्र की जीवन-रक्षा, उसकी भावनाओं के सम्मान का बहू द्वारा अथक प्रयास मां का हृदयपरिवर्तन कर देता है। यहां मां के चरित्र की निजी विशेषता है जो सहज मानवीय भावनाओं के अनुकूल है।

6.6.2 पात्रों का चरित्र-चित्रण

पात्रों के चरित्र के विकास की कई युक्तियां होती हैं जिन्हें चरित्र-चित्रण की शिल्प-विधि कहा जा सकता है। किसी व्यक्ति का परिचय चार चीजों से मिलता है -

1. बाह्य रूपाकार और स्वभाव
2. बोली अथवा भाषा
3. उसके कार्य
4. लोगों की उसके बारे में राय

इन चारों का इस्तेमाल आपको अपने नाटक के पात्रों के चरित्र के उद्घाटन में करना है। इसके लिए चार युक्तियां अपनाई जा सकती हैं -

1. रंग-निर्देश
2. पात्रों के अपने संवाद
3. उनके कार्य और व्यवहार
4. उनके विषय में अन्य पात्रों के कथन।

1. पात्रों के विषय में सर्वप्रथम जानकारी रंग-निर्देश से मिलती है। रंग-निर्देश के माध्यम से नाटककार द्वारा पात्रों के बारे में बहुत कुछ बताया जा सकता है। पात्र के बाह्य रूपाकार, वेश- भूषा,

उम्र, स्वभाव आदि के बारे में इसमें बताया ही जाता है। उदाहरण के लिए, '(बाबू गोपाल प्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आखों से चतुराई टपकती है। आवाज से मालूम होता है कि काफी अनुभवी और फितरती महाशय हैं। उनका लड़का कुछ खीस निपोरने वाले नौजवानों में से हैं। आवाज पतली और खिसियाहट-भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।)' इन रंग-संकेतों से दोनों पात्रों के व्यक्तित्व के बारे में पूरी जानकारी मिलती है और नाटक के अभिनेताओं को इसमें निर्देश मिलता है।

2. पात्रों के अपने संवाद उनके चरित्र के उद्‌घाटन का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम हैं। पात्र स्वयं जो कुछ बोलते हैं, उससे उनके गुण, स्वभाव, मनोदशा, प्रतिक्रिया आदि के विषय में पता चलता है। अत: आपने अपने पात्र को जो चरित्र, व्यक्तित्व प्रदान किया है उसी के अनुरूप उसके संवाद होने चाहिए। उदाहरण के लिए नीचे 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी के तीन पात्रों के संवादों में उनकी स्थिति और स्वभाव का परिचय मिलता है -

गो: प्रसाद . अरे नहीं साहबजैसा मेरा काम वैसा आपका काम !।आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है। बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी।

रामस्वरूप : हंयह लीजिए ! हं-हं-, आप तो मुझे कांटों में घसीटने लगे। हम तो आपके सेवक हैं- हं - हं-। (थोड़ी देर बाद लड़के की तरफ मुखातिब होकर) !हं- हं और कहिए शंकरबाबूकितने दिनों की और छुट्टियां हैं?

शंकर: जी, कालेज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं। 'वीक एण्ड' में चला आया था।

रामस्वरूप : तो आपका कोर्स खत्म होने में तो अब सालभर रहा होगा-?

शंकर: जी, यही कोई सालदो साल-।

रामस्वरूप : साल, दो साल?

शंकर: हं हं-हं-....जी !, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूं।

गो .प्रसाद : बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बताए, इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियां सताती हैं। एक हमारा जमाना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौरियां उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसीवैसी भूख-की- !

रामस्वरुप : कचौड़ियां भी तो उस जमाने में पैसे की दो आती थीं।

गो: प्रसाद . जनाब, यह हाल था कि चार पैसे में ढेरसी मलाई आती थी-।और अकेले दो आने की हजम करने की ताकत थी, अकेलेऔर अब तो बहुतेरे खेल ! वगैरह भी होते हैं स्कूलों में।तब न कोई वॉलीबाल जानता था , न टेनिस, न बैडमिंटन। बस, कभी हॉकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर क्या मजाल कि कोई कह जाय कि यह लड़का कमजोर है।

(शंकर और रामस्वरूप खीस निपोरते हैं।)

रामस्वरुप : जी हाँ, जी हाँ उस जमाने की बात ही दूसरी थी !!! हं-हं

3. पात्र जो करते हैं उससे उनके चरित्र की रेखाएं स्पष्ट उभरती हैं। प्रत्येक पात्र का आचरण उसके व्याक्तत्व के अनुरूप होता है। जयशंकर प्रसाद के 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में रामगुप्त और चन्द्रगुप्त दो विरोधी व्यक्तित्व के पात्र हैं। रामगुप्त कायर, धूर्त और स्वार्थी है जबकि चन्द्रगुप्त वीर, पराक्रमी और आत्म-सम्मानवान् है। उन दोनों का प्रत्येक आचरण उनके इस व्यक्तित्व को प्रकट करता है। रामगुप्त अपने राज्य और अपने जीवन की रक्षा के लिए अपनी पत्नी को भी शत्रु को भेंट में दे देता है। दूसरी ओर, चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देता है।

4. किसी पात्र के विषय में **अन्य पात्रों के कथन** और मत उस पात्र के चरित्र को प्रकाशित करते हैं। अन्य पात्र, आपस में बात करते हुए अथवा उसी पात्र से बात करते हुए उसके विषय में बहुत कुछ कह जाते हैं। उदाहरण के लिए ' अश्क' के एकांकी 'जोंक' में बनवारीलाल के विषय में दो पात्रों के संवाद देखिए -

आनन्द: देश भक्त है?

भोलानाथ : खाक!

आनन्द : कवि ?

भोलानाथ : इसकी सात पुश्तों में किसी ने कविता का नाम नहीं सुना!

आनन्द: तो वक्ता, डॉक्टर, हकीम, वैद्य

भोलानाथ : (चिढ़ कर)तुम सुनते तो हो नहीं और ले उड़ते हो, वो थे न मशहूर ऐक्टर मास्टर रहमतयह उनके साथ रह चुका है ! ।

आनन्द : !तो ये ऐक्टर हैं (ठहाका लगाकर)

भोलानाथ : अब यह तो (कन्धे झटक कर) मुझे मालूम नहीं कि इसने मास्टर रहमत के प्रसिद्ध नाटक 'खून का बदला खून और 'दर्दे जिगर' में कोई पार्ट किया है या नहीं, पर सुना था कि यह उनका बायां हाथ है।

6.6.3 चरित्र का विकास

आपने जो नाट्य-विधा चुनी है उसी के अनुरूप पात्रों के चरित्र का विकास कीजिए। उदाहरण के लिए, यदि एकांकी नाटक अथवा लघु नाटक है तो पात्रों के चरित्र के किसी एक पक्ष को उभारना होगा। यदि पूर्णकालिक नाटक है तो चरित्र के विभिन्न पक्ष उद्घाटित किए जा सकते हैं। नुक्कड़ नाटक है तो समस्या-विशेष पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। इसी प्रकार यदि वह बाल-नाटक है तो बच्चों की अभिरुचि और ज्ञान को दृष्टि में रखते हुए पात्रों का विकास करना होगा॥

चरित्र-चित्रण में जिस बात पर सर्वाधिक ध्यान देना है वह है मानवीय। मनोविज्ञान अच्छी-बुरी सभी भूमिकाओं में मनोविज्ञान सक्रिय रहता है। आज पात्रों को सत्-असत् की बंधी-बधायी श्रेणियों में नहीं रखा जा सकता क्योंकि माना जाता है कि अच्छे से अच्छे व्यक्ति की भी कुछ कमजोरियां होती हैं और बुरे से बुरा व्यक्ति भी कुछ अच्छा हो सकता है। व्यक्ति न तो केवल गुणों की खान हो सकता है न ही दुर्गुणों का पिटारा। इनमें से किसी एक पक्ष की प्रबलता और दूसरे की न्यूनता दिखाना स्वाभाविक होता है।

इसे प्रकट करने के लिए अंतर्द्वद्व का सहारा लिया जा सकता है। किसी काय को करने, न करने के बीच का दंत, कोई गलती करने या निर्णय लेने के बाद का पछतावा, आत्म-ग्लानि, किसी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए छटपटाहट, पूर्ति न हो पाने का असंतोष, इच्छाओं के दमन से उपजी कडुवाहट आदि अनेक प्रकार की मन: स्थितियां दिखाकर पात्रों के मनोविज्ञान को उजागर किया जाता है। उनके धैर्य, विवेक, सहानुभूति, कर्मण्यता आदि गुणों के बीच उनकी मनोदशा, भावों और विचारों के उतार-चढ़ाव का संतुलन जिस ढंग से स्थापित किया जाता है उसी ढंग से उनका चरित्र विकसित होता है। उदाहरण के लिए, मोहन राकेश के बहु चर्चित नाटक'आधे- अधूरे' के पात्रों, विशेष रूप से सावित्री की खीज, झुंझलाहट, महत्वाकांक्षा और परिवार की टूटन के बीच पनपी घुटन से उपजती है। महेन्द्रनाथ, बिन्नी, अशोक, जुनेजा आदि सभी पात्र अपने आप में आधे-अधूरे हैं, अपनी विफलताओं, कुंठाओं और अकर्मण्यता को ढोते हुए।

एक और उदाहरण लें - ' ध्रुवस्वामिनी' नाटक का। प्रमुख पात्र ध्रुवस्वामिनी का चरित्र प्रसाद ने विवशता और अपमान से जूझता हुआ दिखाया है जिसके परिणामस्वरूप वह आत्महत्या की ओर प्रेरित होती है किन्तु चन्द्रगुप्त के प्रति कोमल भाव ध्रुवस्वामिनी में मनोद्वंद्व उपस्थित करता है- 'वक्षस्थल में दो हृदय हैं क्या' ? जब अंतरंग ' हाँ ' करना चाहता है तो ऊपरी मन से 'ना' क्यों कहला देता है ? उसका पति रामगुप्त उसे शकराज को भेंट-स्वरूप दे चुका है, चन्द्रगुप्त शकराज का अंत कर ध्रुवस्वामिनी के सम्मान की रक्षा करता है। किन्तु यह ध्रुवस्वामिनी की समस्या का समाधान नहीं है। कायर और स्वार्थी रामगुप्त का अब भी उस पर अधिकार हो- यह और भी अपमानजनक तथा विडम्बनापूर्ण स्थिति है और वह अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए पुन रामगुप्त से प्रश्न करती है 'क्या अब भी मैं महादेवी हूं।

ध्रुवस्वामिनी का चरित्र अंतर्बाह्य परिस्थितियों से जूझता हुआ विकसित होता है उसमें क्रोध और विनय, दीनता और आत्म-सम्मान, धृणा और प्रेम के परस्पर विरोधी भाव टकराते हैं। चरित्र का इस तरह से विकास मानवीय स्वभाव की दृष्टि से काफी गहन और यथार्थ है।

अपने नाटक के पात्रों का विकास करते हुए आप उन्हें भांतिभांति की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में डालें। परिस्थितियों की गहनता और व्यापकता के भीतर पात्रों के मन, वाणी और कार्यो को आगे बढ़ाएं। विभिन्न परिस्थितियों के प्रति पात्रों की प्रतिक्रियाओं और आचरण के माध्यम से चरित्र को विकसित करें। सभी पात्रों के अपने स्वतंत्र गुण-दोष, स्वभाव, आचरण, कार्यक्षमता, अन्य पात्रों के प्रति उनकी पसंद-नापसंद का भी संतुलन रखें। ताकि कोई भी पात्र न तो आपके व्यक्तित्व की छाया मात्र रहे और न ही दूसरे पात्रों के व्यक्तित्व की। ध्यान रखें कि वस्तुनिष्ठता नितांत आवश्यक है। अच्छे गुण वाले पात्रों में सहज मानवीय कमजोरियां तथा दुष्ट प्रवृत्ति वाले पात्रों में मानवीयता की संभावनाएं तलाशने का प्रयास आपको अवश्य करना चाहिए। उदाहरण के लिए 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के कालिदास में करुणा, संवेदनशीलता, प्रकृति के प्रति लगाव और मल्लिका के प्रति आकर्षण और प्रेम है। लेकिन उसका प्रेम वैसा एकनिष्ठ नहीं है जैसा कि मल्लिका का क्योंकि कालिदास आत्म-सीमित है, वह मल्लिका से ज्यादा अपने आप से प्रेम करता है। यही कारण है कि अंत में पस्त और पराजित रूप में मल्लिका की शरण में लौटता है किन्तु मल्लिक को उसके पूरे वर्तमान में (बच्ची सहित) स्वीकार करने में असमर्थ है।

नाटक में सभी पात्रों की भूमिका बराबर नहीं होती। कुछ पात्र प्रमुख होते हैं और कुछ गौण। ये पात्र, प्रमुख पात्र के सहायक पात्र अथवा प्रतिद्वंद्वी या विरोधी रूप में आते हैं। आपको यह तय करना है कि किस पात्र को कितनी भूमिका दी जाए कि वह नाटक की कथा का अनिवार्य अंग बन सके और केन्द्रीय पात्रों के व्यक्तित्व और कार्य-कलाप को उभारने में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से योगदान दे। तात्पर्य यह नहीं कि इन पात्रों का अपना व्यक्तित्व ही नहीं होता। उनका अपना व्यक्तित्व हो, लेकिन वह केन्द्रीय पात्र के व्यक्तित्व पर हावी न होने पाएं। उदाहरण के लिए, 'आषाढ़ का एक दिन' में मातुल की भूमिका देखिए। कालिदास के कार्यकलाप को मातुल के संवाद और कार्यकलाप प्रभावित करते हैं किन्तु आलोचनात्मक ढंग से। इस प्रक्रिया में मातुल का स्वार्थपरक व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है।

बोध प्रश्न - 2

1. *नाटक के प्रकार बताइए।*
2. *कार्य-व्यापार और देश-काल के बीच समन्वय का महत्व समझाइए।*
3. *अभिनेयता अथवा मंचीयता सफल नाटक की कसौटी है। कैसे?*

6.7 नाट्य- भाषा, शैली और संवाद

6.7.1 भाषा

हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक एक संवादात्मक और सक्रिय विधा है। इसे यह रूप प्रदान करने में भाषा की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। नाटक प्रस्तुति के लिए लिखा जाता है। अत: इसकी भाषा, मौखिक भाषा होती है। अभिनेताओं द्वारा बोले जाने और दर्शक द्वारा देखे-सुने जानें के कारण इसका उच्चरित-व्यवहृत रूप दृश्य-प्रधान होता है। इस इकाई के आरंभ में हम बता चुके हैं कि नाटक में तात्कालिकता अपेक्षित है। अभिनेता जो कुछ कहे और करे वह दर्शकों को तुरंत सम्प्रेषित होना चाहिए, क्योंकि अन्य साहित्य विधाओं की तरह वे उसे पुन: पढ़ या सुन नहीं सकते। कथन और सम्प्रेषण के बीच विचार करने की गुंजाइश यहां नहीं होती। अत: आवश्यक है कि भाषा ऐसी हो कि

1. स्वाभाविक ढंग से उच्चरित हो सके। शब्दों का प्रयोग सहज हो, वाक्य-विन्यास में अवांछित जटिलता या दुरूहता न हो। अन्यथा अभिनेताओं का उच्चारण या स्वर का उतार-चढ़ाव कृत्रिम होगा या लड़खड़ा जाएगा।
2. उसमें बोलचाल की सहज रवानी हो। वह लिखित भाषा की रटी हुई प्रस्तुति न हो।
3. मौखिक भाषा होते हुए भी वह भाषण या उपदेश न लगे। उसमें वार्तालाप की लय और जीवन के यथार्थ की सहजता हो।
4. दर्शक को आसानी से और तुरंत समझ में आए क्योंकि न तो अभिनेता अपने संवाद दोहराएंगे, न ही दर्शक के पास सोचने-विचारने का समय होगा।
5. दर्शक को श्रव्य और दृश्य दोनों रूपों में सम्प्रेषित हो, यानी वाणी के साथ-साथ शारीरिक व्यवहार और मनोभावों का प्रकटन भी भाषा के द्वारा हो।
6. पात्रानुकूल हो यानी उसके गुण, स्वभाव, संस्कार, मनःस्थिति, सामाजिक हैसियत- आचरण आदि के अनुरूप भाषा में भी उतार-चढ़ाव, गति और गहनता हो।

नाटक की भाषा सदैव वर्तमान की भाषा होती है। दृश्य और सजीव अनुकरण होने के कारण नाटक में वर्तमान तो वर्तमान रहता ही है अतीत भी वर्तमान के रूप में सजीव होता है। कार्य- व्यापार सक्रिय रूप से घटित होता है। अत: भाषा भी सक्रिय व्यवहार की भाषा होती है। नाटक का कथ्य चाहे समकालीन हो या प्राचीन, काल की दृष्टि से भाषा सदैव वर्तमान की भाषा होती है क्योंकि अतीत वर्तमान में जीवंत रूप में उभारा जाता है। जिस प्रकार, यथार्थ जीवन में हम अतीत और भविष्य से जुड़े रह कर वर्तमान में कार्यरत होते हैं वैसे ही नाटक में भी कार्य-व्यापार पिछली घटनाओं को आगे आने वाली घटनाओं से जोड़ते हुए चलता है। कथा साहित्य की भाषा में 'हुआ', ' किया' जैसे प्रयोग प्रचुर होते हैं और नाटक में 'है', 'हो रहा है',' होगा' जैसे प्रयोग।

यह अंतर केवल व्याकरणिक काल का ही अंतर नहीं है। वर्तमान की भाषा होने के कारण नाटक में समय की निरंतरता और प्रवाहमयता होती है। समय लगातार गतिशील रहता है अत: नाटक की भाषा में ठहराव की गुंजाइश नहीं होती। वह कार्य -व्यापार को क्षिप्रता से आगे बढ़ाती चलती है। जब कभी नाटक की भाषा कार्य-व्यापार से अलग हो जाती है तब संवादों में लिखी होने के बावजूद नाटक में नाटकीयता नहीं रहती। ऐसे में या तो भाषण बन जाती है या संवादपरक विवरण।

संवादात्मकता नाट्य भाषा का प्रमुख गुण है। नाटक में विवरण-वर्णन न होकर कार्य -व्यापार प्रत्यक्ष रूप से घटित होता है और उसकी अभिव्यक्ति संवादों और आचरण द्वारा होती है। संवादों के साथ जुड़ी होती है मनोभावों की अभिव्यक्ति। इस तरह, नाट्य-भाषा की सम्पूर्ण परिकल्पना व्यवहारगत भाषा की होती है। अत: नाटक लिखते समय आपके मन में भाषा-व्यवहार का निश्चित बिम्ब होना चाहिए। यानी आपको स्पष्ट होना चाहिए कि विभिन्न स्थितियों में सुख-दुख, प्रेम- घृणा, तनाव-कुंठा भावावेग अथवा मस्ती में लोग कैसी भाषा बोलते हैं या बोल सकते हैं। उनका बोलने का ढंग कैसा हो सकता है। दूसरे की बात पर उनकी कैसी प्रतिक्रिया हो सकती है और प्रतिक्रिया किस-किस ढंग से व्यक्त हो सकती है। भाषा-व्यवहार की यह पहचान जितनी गहन और प्रखर होगी उतनी ही समर्थ भाषा का प्रयोग आप कर सकेंगे। समर्थ भाषा के मायने है सम्प्रेषणीय और प्रभावकारी भाषा जैसे मोहन राकेश के नाटकों में देखने को मिलती है।

संवादात्मकता के कारण नाट्य-भाषा में कुछ व्याकरणिक विशेषताएं भी होती हैं -

- वर्तमान काल के वाक्यों का अधिक प्रयोग,
- उत्तम पुराष (First Person) और मध्यम पुरुष (Second Person) का अक्सर प्रयोग यानी 'मैं' और 'तुम' का 'वह' की अपेक्षा अधिक प्रयोग,
- वार्तालाप के बीच सम्बोधनों का प्रयोग,
- विराम चिह्नों का सोद्देश्य और सार्थक प्रयोग।

संवादात्मकता के परिणामस्वरूप नाटक की भाषा में बोलचाल की सहजता अपेक्षित है। इसके लिए आवश्यक है कि आप शब्द-चयन में सतर्कता बरतें, पात्रों के वर्ग और संस्कार के अनुरूप उनकी शब्दावली हो। उदाहरण के लिए, राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिक भाषा में वर्गगत अंतर देखा जा सकता है। अपराधी, पुलिस अधिकारी और न्यायाधीश की शब्दावली में संस्कार और वर्ग दोनों तरह का अंतर होगा।

मुहावरों और कहावतों का प्रयोग नाट्य-भाषा को सहज और रोचक बनाता है - बशर्ते कि ये सहज रूप से आएं। भारतेदुयुगीन नाटकों में यह प्रवृत्ति बहुत ही सटीक ढंग से विद्यमान है। नाटक के परिवेश और भाषा का गहन संबंध होता है। ऊपर हम जिस बोलचाल की सहजता और पात्रानुकूल

भाषा की चर्चा करते रहे हैं वह तभी उत्पन्न होती है जब भाषा, परिवेश के अनुकूल हो। यानी नाटक में जिस देश-काल (Setting) को लिया गया हो भाषा उसकी अभिव्यक्ति करे। शब्दावली शैली, लहजा आदि उस परिवेश का निर्माण करें। परिवेश का संबंध समय और स्थान तो है ही, कथ्य की मनोभूमिका से भी है। उदाहरण के लिए, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वर्तमान युग के परिवेश अथवा स्थानपरक परिवेश भारतीय, पश्चिमी, शहरी, ग्रामीण, पहाड़ी, सागरतटीय, रेगिस्तानी परिवेश की सृष्टि में युग अथवा स्थान- विशेष की संभावित भाषा का योगदान रहता है। दूसरी ओर, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, वैज्ञानिक, हास्यपरक, तनावपूर्ण, व्यंग्यात्मक परिवेश की सृष्टि में भी भाषा का पर्याप्त योगदान होता है।

6.7.2 शैली

शैली के मायने है कथ्य को भाषा में प्रस्तुत करने का ढंग अथवा बात को कहने का ढंग। भाषा और शैली अन्योन्याश्रित होते हैं। अपने नाटक को कौन-सी शैली प्रदान करना चाहेंगे यह आपकी पसंद और कथ्य की आवश्यकता पर निर्भर होगा। शैली कई तरह की हो सकती है -

- व्यंग्यात्मक
- हास्य-व्यंग्य मिश्रित
- प्रतीकात्मक
- मनोवैज्ञानिक
- तर्क-वितर्क विश्लेषणपरक

व्यंग्यात्मक शैली (कथन का व्यंग्यात्मक ढंग)

व्यंग्य किसी बात को कहने का बहुत ही प्रभावपूर्ण तरीका होता है। इसमें बात को तीखे, चुभते हुए ढंग से कहा जाता है ताकि जिस स्थिति, प्रथा, व्यक्ति पर व्यंग्य किया गया हो वह पूरी तरह उजागर हो जाए और लोगों को महसूस हो कि सुधार नितांत आवश्यक है। सामाजिक बुराइयों के सुधार के रूप में अक्सर इस शैली का सार्थक प्रयोग नाटककार करते रहे हैं। पश्चिम मे इब्सन, बर्नार्ड शा आदि के नाटकों में इसे देखा जा सकता है। हिन्दी नाटक के आरंभ से ही सामाजिक कमजोरियों और बुराइयों के सुधार के उपाय के रूप में व्यंग्यात्मक शैली को अपनाया गया। भारतेंदु युग के अधिकांश नाटकों में इसका उपयोग शुरू हुआ है और समसामयिक नाटक तक होता चला आ रहा है।

अपने समय और समाज के विभिन्न प्रकार के प्रश्नों और समस्याओं को आप व्यंग्य के माध्यम से उजागर कर सकते हैं। ध्यान रहे कि समस्या की गहराई को छूने का प्रयास किया जाए और उसके विभिन्न पहलुओं को व्यंग्यात्मक ढंग से उद्घाटित किया जाए।

हास्य-व्यंग्य मिश्रित शैली

हास्यपरक रचनाएं मनोरंजन का महत्वपूर्ण माध्यम होती हैं। हास्य में व्यंग्य का समावेश अक्सर होता है। इसलिए उसका असर गहरा और रोचक -बन जाता है। यहां व्यंग्य अपने कटु, तीखे रूप में न प्रस्तुत करके हल्के-फुल्के ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। बड़ी से बड़ी बात बहुत साधारण लहजे में कह दी जाती है। हास्यपरक व्यंग्य (Humour) की विशेषता होती है कि सुनने वाला समझ भी जाता है और उस बात का बुरा भी नहीं मानता क्योंकि उसे ऐसा नहीं लगता कि प्रहार उसी पर किया जा रहा है। भारतेंदु के 'अंधेर नगरी' नाटक को लें। इस नाटक में राज्य-व्यवस्था पर व्यंग्य करते

हुए राजा का सम्पूर्ण प्रसंग हास्य-व्यंग्यपरक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उसकी मूर्खता, अक्षमता, सनक की चरम सीमा बड़े ही कौशल के साथ उभारी गई है जिसमें अंधेरगर्दीपूर्ण न्याय के नाम पर राजा स्वयं फांसी पर चढ़ जाता है -

राजा: यह क्या गोलमाल है?

सिपाही : महाराज चेला कहता है मैं फांसी चढ़ूंगा !, गुरु कहता है मैं चढ़ूंगा; कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है।

राजा : (गुर। सेबोलो काहे को आप फांसी चढ़ते हैं !बाबा जी (?

महंत : राजाहै कि जो मरेगा सीधा बैकुंठ जाएगा- इस समय ऐसा साइत ! ।

मंत्री: तब तो हमीं फांसी चढ़ेंगे।

गो: .दा . हम, हम हम को तो ! हुकुम है।

कोतवाल : हम लठकेंगे। हमारे सबब तो दीवार गिरी।

राजा: चुप रहो सब लोग। राजा के होते और कौन बैकुंठ जा सकता है? हमको फांसी चढ़ाओ। जल्दी, जल्दी।

महंत: जहां न धर्म न बुद्धि नहि, नीति न सुजान समाज।
ते ऐसहि आपुहि नसे, जैसे चौपटराज।।
(राजा को लोग टिकटी पर खड़ा करते हैं)

प्रतीकात्मक शैली

नाटककार जब कथ्य को सीधे प्रस्तुत न करके प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करता है तो वह प्रतीकात्मक शैली कहलाती है। प्रतीकों का इस्तेमाल विभिन्न स्तरों पर किया जाता है। जैसे नाटक का नाम (भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, मादा कैक्टस, लहरों के राजहंस, बकरी, गिरती दीवारें, रीढ़ की हड्डी आदि), पात्रों के नाम (भारत भाग्य, भारत दुर्दैव, रोग, आलस्य, मदिरा, सत्यानाश, फौजदार, कामना, लालसा आदि), विषय-वस्तु क स्तर पर जैसे भारतेंदु के 'भारत दुर्दशा, 'जयशंकर प्रसाद के 'कामना'।

प्रतीकात्मक शैली का उपयोग करते समय ध्यान रखना जरूरी होता है कि प्रतीक का प्रयोग सार्थक रूप में और असंदिग्ध ढंग से हो तथा प्रतीकार्थ दर्शक को सहज रूप में सम्प्रेषित हो। यदि ऐसा न हुआ तो उद्देश्य विफल हो जाएगा।

जहां तक प्रतीक के चयन का सवाल है, जीवन के किसी भी क्षेत्र से चुने जा सकते हैं - प्रकृति, पशु-पक्षी, मानवीय मनोभाव, ऐतिहासिक-पौराणिक पात्र आदि।

मनोवैज्ञानिक शैली

मानवीय मन की गहराइयों को खोजने और उद्घाटित करने के लिए मनोवैज्ञानिक शैली का इस्तेमाल किया जाता है। बाह्य कार्यकलाप के घात-प्रतिघातों की मनुष्य के अंतर्मन पर होने वाली प्रतिक्रिया इसके माध्यम से व्यक्त होती है। वैसे तो सभी रचनाओं में मानवीय मन की गहराइयों को छूने का प्रयास किया जाता है लेकिन मनोवैज्ञानिक शैली इसको विशेष ढंग से उद्घाटित करती है जैसे जगदीशचन्द्र माथुर के एकांकी 'मकड़ी का जाला' या भुवनेश्वर के एकांकी 'ऊसर' में या लक्ष्मीनारायण लाल के ' मादा कैक्टस' में।

तर्क -वितर्क विश्लेषण शैली

तर्क-वितर्क विश्लेषण शैली का प्रयोग किसी खास विषय को लेकर उस पर बहस के रूप में किया जाता है। जैसे प्रसाद के 'एक घूंट' नाटक में प्रेम और आनंद को लेकर बहस या लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या-नाटकों ('राक्षस का मंदिर', सिंदूर की होली', 'संन्यासी' आदि) में बुद्धिवादी विश्लेषण।

शैली के विषय में यह बंदिश नहीं कि आप कोई एक शैली चुन लें और उसका हर कदम पर निर्वाह करें। आप अपने नाटकों में अवसरानुकूल कई शैलियों का इस्तेमाल कर सके हैं। आवश्यक यह है कि आप जहां जिस शैली इस्तेमाल करें वह विषय एवं प्रसंगानुकूल हो और उसका समुचित ढंग से निर्वाह हो।

शैली और विषय-वस्तु में तालमेल होना नितांत आवश्यक है। यानी आपको यह ध्यान देना है कि जो विषय आपने चुना है उसकी अभिव्यक्ति के लिए कौन-सी शैली उपयुक्त होगी। अत्यधिक गंभीर विषय के लिए हास्यपरक शैली अथवा हल्के-फुल्के विषय के लिए गंभीर विवेचनपरक शैली उपयुक्त नहीं होती। व्यंग्य दोनों तरह से किया जा सकता है। हास्यपरक ढंग से भी और गंभीर शैली में भी। लेकिन यहाँ भी चुनाव विषयानुकूल होना चाहिए। शैली का संबंध पात्रों की मनोदशा से भी होता है। उदाहरण के लिए 'आषाढ़ का एक दिन' में अम्बिका के संवाद काफी कटु व्यंग्यपरक हैं जबकि मल्लिका के संवादों में प्रेम और त्याग की ऊष्मा है। दूसरी ओर, विलोम के संवादों में आत्म-सीमित, स्वार्थ -लोलुप धूर्तता।

6.7.3 संवाद (नाटक में संवादों की भूमिका)

नाटक की रचना संवादों में होती है। अत: संवादों की ओर आपको विशेष सतर्क रहना होगा। आवश्यक है कि आपके नाटक के सवाद दर्शकों पाठक को स्वाभाविक ढंग से तुरंत सम्प्रेषित हों और उन्हें सार्थक और रोचक प्रतीत हों। पात्रों का व्यक्तित्व भली-भांति उद्घाटित कर सकें तथा कार्य - व्यापार को नाटकीयता के साथ आगे बढाएं। इसके लिए संवादों में निम्नलिखित विशेषताएं अपेक्षित हैं।

1. स्वाभाविकता
2. सरसता और रोचकता
3. संक्षिप्तता, चुस्ती और प्रवाहमयता
4. वाग्विदग्धता और मर्मस्पर्शिता

ये विशेषताएं मुख्यतया नाटक की प्रस्तुति को ध्यान में रखते हुए बताई गई है। नाटक दर्शकों को तभी प्रभावित कर सकेगा जब उसमें कही गई या दिखाई गई हर बात सार्थक और हृदय-ग्राही लगेगी, जीवन के अधिकाधिक निकट प्रतीत होगी। भाषा में कसावट और मर्मस्पर्शिता होगी। इसके लिए आपको शब्द का सही अर्थ और उसका कौशलपूर्ण प्रयोग आना चाहिए। शब्द की विभिन्न अर्थच्छायाओं को समझते हुए उनके बीच का अंतर पहचानते हुए उनका व्यंजनाश्रित प्रयोग आपको सीखना चाहिए उदाहरण के लिए जगदीशचन्द्र माथुर के नाटक 'रीढ़ की हड्डी' के निम्नलिखित संवादों को देखिए :-

(उमा बैठती है(

गो. प्रसाद : तो तुमने (उमा से)पेंटिंगवेटिंग भी सीखी है-?

(उमा चुप(

रामस्वरूप : हां, वह तो आपको बताना भूल ही गया। यह जो तस्वीर टंगी हुई है, कुत्ते वाली इसी ने खींची है। और वह उस दीवार पर भी।

गोप्रसाद . : हं। यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह?

रामस्वरूप : सिलाई तो सारे घर की इसी के जिम्मे रहती है, यहां तक मेरी कमीजें भी। हूंहूं ।हूं-

गोप्रसाद . : ठीक है। लेकिन, हां बेटा, तुमने कुछ इनामविनाम भी जीते हैं-? (उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खांसते हैं लेकिन उमा चुप है, उसी तरह गर्दन झुकाए। गोपालप्रसाद अधीर हो उसे हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।(

रामस्वरूप : जवाब दे, उमा हं-हं (प्रसाद से .गो), जरा शरमाती है। इनाम तो इसने ...

गो. प्रसाद : (जरा रूखी आवाज मेंजरा मुंह भी तो खोलना चाहिए (।

रामस्वरुप : उमा देखोआप क्या कह रहे हैं .? जवाब दो न!

उमा : (हल्की लेकिन मजबूत आवाज में (क्या जवाब दूं बाबूजीजब कुर्सी मेज ! बिकती है तब दुकानदार कुर्सीमेज से कुछ नहीं पू-छता, सिर्फ खरीददार को दिखला देता है। पसंद आई तो अच्छा है वरना.....

रामस्वरूप : (चौंक्कर खड़े हो जाते हैंउमा (, उमा!

उमा : अब मुझे 'कह लेने दीजिए बाबूजी।ये जो महाश .... य मेरे खरीददार बन कर आए हैं, इनसे जरा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता ? क्या उनके चोट नहीं लगती ? क्या वे बेबस भेड़ बकरियां हैं जिन्हें-कसाई अच्छी तरह देखभाल कर खरीदते हैं-।

गोप्रसाद . :)ताव में आकारबाबू रामस्वरूप (, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहां बुलाया था ?

उमा : (तेज आवाज मेंजी हां (, और हमारी बेइज्जती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप तोल कर रहे हैं-? और जरा अपने इन साहबजादे से पूछिये कि पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्दगिर्द क्यों घूम रहे - थे, और वहां से कैसे भगाए गाए थे।

शंकर : बाबूजी, चलिये।

6.8 नाटक के रंगमंच आयाम

आप पढ़ चुके हैं कि नाटक और रंगमंच का अति घनिष्ठ संबंध होता है। अत: नाटक लिखते समय आपको रंगमंच और उसकी जरूरतों को दृष्टि में रखना होगा। क्या आप जानते हैं कि रंगमंच क्या है ? मोटे तौर पर इसका अर्थ है नाटक के प्रदर्शन का स्थान यानी विशाल चबूतरेनुमा या समतल-स्थल, जिसपर आकर अभिनेता नाटक का अभिनय करते हैं। दायीं- बायीं ओर से अभिनेताओं के प्रवेश-प्रस्थान का मार्ग, पीछे दीवार या पर्दे की पृष्ठभूमि और सामने दर्शकों के बैठने का स्थान।

लेकिन, रंगमंच का अर्थ इतना मात्र नहीं है। वस्तुत: इसमें नाटक के समस्त दृश्य प्रदर्शनपरक आयाम शामिल है। नाटक की प्रस्तुति का संपूर्ण विधान प्रस्तुति के समस्त उपादान, सजावट, स्टेज

प्रॉपर्टी, अभिनय, प्रकाश-व्यवस्था, ध्वनि-व्यवस्था और यहां तक कि दर्शक भी। क्योंकि दर्शक के बिना रंगमंच किसके लिए ? इस अर्थ में रंगमंच और रंगकर्म समानार्थी शब्द हैं। अंग्रेजी में इसके लिए 'Theatre' (थियेटर) शब्द प्रयुक्त होता है।

प्रस्तुत इकाई में हम आपको ध्यान दिलाते रहे हैं कि आपके नाटक की कथावस्तु, घटनाएं, संवाद, स्थितियां, दृश्य बन सकें और सार्थक हो सकें। दृश्य-रूप में यह सार्थकता ही वस्तुत: नाटक की रंगमंचीयता है। इसके लिए आपको रंगमंच की जानकारी अवश्य होनी चाहिए। इसके लिए केवल पुस्तकीय ज्ञान पर्याप्त नहीं होगा, किसी नाट्य-मंच पर जाकर स्वयं स्थिति को देख लेना भी उपयुक्त होगा।

6.8.1 रंगमंच-विषयक जानकारी

रंगमंच संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए आपको नाटक अवश्य देखने चाहिए। कोई भी नाटक-प्रस्तुति देखते समय यदि गौर करेंगे तो आपको प्रस्तुति-विषयक कई तरह की जानकारियां मिलेंगी। अभिनेता जो बातें बोल रहे हैं उन्हें बोलने का उनका ढंग कैसा है, उनके हाव-भाव शारीरिक चेष्टाएं, स्वर का उतार-चढ़ाव, कथ्य के अनुरूप है अथवा नहीं, विभिन्न पात्रों की भूमिकाएँ सजीव ढंग से प्रस्तुत कर पाए हैं या नहीं, नाटक का निर्देशन कैसा है, नाट्य-प्रस्तुति में क्या कमियां रही हैं। ये कमियां किस तरह की हैं - नाटक की, स्क्रिप्ट की अथवा निर्देशन और प्रस्तुति की। इसके अलावा, यह भी ध्यान से देखें कि पात्रों का प्रवेश, प्रस्थान, प्रकाश-व्यवस्था, ध्वनि-व्यवस्था तथा अन्य मंचीय उपकरण प्रस्तुति में कितने सहायक या बाधक रहे हैं।

इन सब बातों पर गौर करने से आप नाटक-लेखन की प्रस्तुति-परक जरूरतों के प्रति सचेत हो सकेंगे। आपके मन में रंगमंच की एक तस्वीर उभरेगी जो कथ्य के दृश्यात्मक पक्षों को पहचान में आपकी सहायता करेगी।

आपने जो नाटक देखा है उसकी मूल कृति भी अगर मिल सके तो अवश्य पढ़ें और प्रस्तुति तथा मूल कृति की तुलना करें। इससे आपको लेखक की रंगमंचीय परिकल्पना और नाट्य-प्रस्तुति में निर्देशक की भूमिका को समझने में सहायता मिलेगी। आप जान सकेंगे कि रचना किस हद तक अभिनेय थी और निर्देशक ने उसे किस ढंग से पुन: सृजित किया है।

6.8.2 अभिनेयता अथवा मंचीयता

अभिनेयता अथवा मंचीयता से तात्पर्य है - नाट्य कृति में निहित प्रस्तुतिपरक संभावनाएं। यानी कि नाटक का अभिनय संभव हो ओर अभिनीत होने पर वह उबाऊ, बेतरतीब या निरुद्देश्य न प्रतीत हो बल्कि दर्शक प्रति- क्षण उसमें रमे रहें।

इसके लिए दो तरीके अपनाए जा सकते हैं - पहला, यह पहचानें कि कौन-सी स्थितियां प्रस्तुति की दृष्टि से अनुपयुक्त या असंभव हैं, अथवा प्रस्तुत होने पर प्रभावपूर्ण नहीं हैं। इस संबंध में कोई खास नियम नहीं है। दूसरा, यह ध्यान दिया जाए कि मंच पर कौन-सी स्थिति किस रूप में प्रभावपूर्ण हो सकती है। जो स्थितियां या घटनाएं मंच पर दिखाने में सार्थक न प्रतीत हो उन्हें नेपथ्य से सूचित

किया जा सकता है। नेपथ्य रंगमंच के पीछे का स्थान है जहां से ध्वनि-प्रभाव, प्रकाश- व्यवस्था आदि का संचालन होता है।

अभिनय नाटक को दृश्य रूप देने वाला प्रमुख तत्व है। अन्य मंचीय उपादान न भी हों, केवल समर्थ अभिनय ही हो तब भी नाटक की सफल प्रस्तुति संभव है। पात्रों के अनुकरण अभिनय हैं। जैसे राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, सुग्रीव, हनुमान, रावण आदि का रूप धारण करके उनके वचनों और कार्यो का अनुकरण करते हुए अभिनेता- अभिनेत्रियां रामलीला की प्रस्तुति करते हैं और रामकथा सजीव घटित होती प्रतीत होती है।

इस सजीव अनुकरण में जीवन की विविध स्थितियों का विविधतापूर्ण अनुकरण शामिल होता है- (1) विभिन्न पात्रों का बाह्य रूपाकार, वेशभूषा, श्रृंगार, केश-विन्यास (2) गुण, स्वभाव, मनःस्थिति (उ) शारीरिक चेष्टाएं - उठना-बैठना, कार्य करना (4) वाणी का अनुकरण किया जाता है। इस दृष्टि से चार प्रकार के अभिनय की चर्चा 'नाट्यशास्त्र' में की गई है -

1. **आंगिक अभिनय :** विभिन्न अंगों का संचालन और शारीरिक चेष्टाएं।
2. **वाचिक अभिनय :** वाणी द्वारा अभिनय यानी संवाद-प्रस्तुति। भूमिका और परिस्थिति के अनुकूल वाणी का चढ़ाव-उतार, स्वर की गति, लहजा आदि इसमें शामिल हैं।
3. **सात्विक अभिनय :** सात्विक अभिनय के अंतर्गत भावाभिनय (विभिन्न भावों का अभिनय) आता है। सुख-दुख, आश्चर्य, आवेग, अशांति, क्रोध, प्रेम, घृणा, आदि के अनुरूप मुख-मुद्राएं तथा अन्य चेष्ठाएं इसमें शामिल हैं।
4. **आहार्य अभिनय :** इसमें पात्रों की रूप-सज्जा, वेशभूषा श्रृंगार आदि का विधान है।

इन सबकी जानकारी नाटक में उपयुक्त रंग-निर्देश देने की दृष्टि से जरूरी है

पात्रों का प्रवेश-प्रस्थान

मंच पर उतने ही पात्र उपस्थित हों जिनकी कथा-वस्तु को आवश्यकता हो। कोई पात्र फालतू न खड़ा हो, प्रत्येक की कोई न कोई भूमिका हो। इसके लिए आपको पूरी घटनाओं का क्रम और उनमें पात्रों की भूमिका का स्पष्ट खाका अपने दिमाग में रखना होगा। पात्रों के कार्यो और वार्तालाप का संयोजन इस प्रकार हो कि पात्र मंच पर आएं, अपनी भूमिका का अपेक्षित अंश निर्वाह करें और चले जाएं। जितनी देर मंच पर रहें घटनाक्रम में निश्चित योगदान करें। उनके आने और जाने के समय की भी कथा-विकास में निश्चित प्रभावपूर्ण स्थिति हो। यह पूरी प्रक्रिया सुनिश्चित अंतर्योजना की अपेक्षा रखती है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित उदाहरण में तीन पात्र हैं, किन्तु उनका मंच पर मौजूद रहना, जाना किस तरह मूल नाट्य-व्यापार को सजीव एवं सक्रिय बनाता है -

रामगुप्त : तो क्या तुम मेरी हत्या करोगी (भयभीत होकर पीछे हटता हुआ)?

ध्रुवस्वामिनी : तुम्हारी हत्या ? नहीं, तुम जिओ। भेड़ की तरह तुम्हारा क्षुद्र जीवन ! अपना ही जीवन समाप्त उसे न लूंगी। मैं करूंगी।

रामगुप्त : किन्तु तुम्हारे मर जाने पर उस बर्बर शकराज के पास किसको भेजा जायेगा? नहीं, नही। ऐसा न करो। हत्याभागता) !! दौड़ो ! दौड़ो !! हत्या !

हुआ निकल जाता है; दूसरी ओर से वेग सहित चन्द्रगुप्त का प्रवेश(

चन्द्रगुप्त : हत्या यह क्या (ध्रुवस्वामिनी को देखकर) !! कैसी हत्या ! ? महादेवी

ठहरिए !

ध्रुवस्वामिनी : कुमार, इसी समय तुम्हें भी आना थामैं प्रार्थना (सकरुण देखती हुई) ! नग्न -करती हूं कि तुम यहां से चले जाओ। मुझे अपने अपमान में निर्वसन झे मृत्यु की चामु ! देखने का किसी पुरुष को अधिकार नहींदर से अपने को ढंक लेने दो।

(ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद(

6.8.2 रंग-निर्देश

रंग-निर्देश नाटक के वे अंश हैं जिन्हें नाटककार निर्देशक और अभिनेताओं के दिशा-निर्देश के लिए संवादों के साथ कोष्ठक में प्रस्तुत करता है। जैसे, नाटककार जो बातें संवादों द्वारा नहीं कहला सकता उन्हें भी रंग-निर्देशों द्वारा कहलाता है। ये निर्देश वस्तुत: नाटक के प्रस्तुति पक्ष से संबंधित होते हैं। इनमें मंच-सज्जा, नाटक के वातावरण, पात्रों के रूप-विन्यास, मनःस्थिति तथा अभिनय संबंधी जानकारी होती है। ये रंग-निर्देश कई तरह के होते हैं-

- स्थान, समय और परिवेश संबंधी
- ध्वनि, प्रभाव संबंधी
- प्रकाश-व्यवस्था संबंधी
- पात्रों के व्यक्तित्व और वेशभूषा संबंधी
- अभिनय संबंधी

रंग-निर्देशों का सही उपयोग वास्तव में एक बाह्य युक्ति है जिसके माध्यम से आप अपने नाटक को रंगमंचीय दृष्टि से प्रभावपूर्ण बना सकते हैं।

6.8.3 अंक-दृश्य-विभाजन

प्रस्तुति की दृष्टि से नाटक की कथा-वस्तु को अंकों और दृश्यों में विभाजित किया जाता है। कथानक को कार्य के विकास की दृष्टि से कुछ भागों में बाँट लिया जाता है। उसके आधार पर अंक-दृश्य नियोजित किए जाते हैं। प्रत्येक अंक कार्य के विकास का एक बिन्दु होता है। जिसके विभिन्न दृश्यों में कार्य की विभिन्न स्थितियां उद्घाटित होती हैं। कार्य के स्थान और समय का बदलाव दृश्यों के परिवर्तन से प्रस्तुत किया जाता है। दृश्य-परिवर्तन के साथ घटना-स्थल बदलता है और मंच-सज्जा, प्रकाश-व्यवस्था आदि में अपेक्षित परिवर्तन किया जाता है। इस परिवर्तन को रंग - निर्देशों के माध्यम से नाटककार सूचित करता है।

अंक-दृश्य-विभाजन वस्तुत: नाटक के विस्तार और कार्य-व्यापार की आवश्यकतानुसार होती है। प्राचीन नाटकों में पांच से सात तक अंक होते थे और दृश्यों की संख्या काफी होती थी। आजकल नाटकों के आकार के अनुसार अंक-दृश्य संख्या होती है- एकांकी नाटक, वो या तीन अंकीय नाटक। कभी-कभी अंकों के भीतर दृश्य नहीं रखे जाते और कभी-कभी अंकों के बजाए केवल दृश्य ही रखे जाते हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' और 'आषाढ़ का एक दिन' नाटकों में केवल तीन अंक ही हैं, जबकि सर्वेश्वर के नाटक 'लड़ाई' में अंक न होकर 13 दृश्य ही हैं। 'आधे-अधूरे' में कथावस्तु का 'पूर्वार्द्ध' और उत्तरार्द्ध के रूप में विभाजन है। अत: आप अपनी सुविधानुसार अंक- दृश्य नाटक में रख सकते हैं। केवल इतना ध्यान

रखें कि यह विभाजन असंतुलित न हो। यदि आपका नाटक बहुत लंबा नहीं है तो इस विभाजन की आवश्यकता भी नहीं है।

6.9 इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों के लिए नाट्य-लेखन

आप पढ़ चुके हैं कि नाटक आदिकाल से ही मनुष्य का साथी रहा है। आज के विज्ञान के युग में रेडियो और टेलीविजन-जैसे माध्यमों के आ जाने पर नाटक ने अपने आपको इन माध्यमों से भी जोड़ लिया है। इनसे सम्बद्ध हो जाने पर भी नाटक के मंचीय रूप और आवश्यकता का महत्व कम नहीं हुआ है बल्कि उसके आयामों का विस्तार हुआ है रंगमंच के नाटक अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर रहे हैं, दूसरी ओर इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की जरूरतों के अनुरूप नाटक के स्वरूप में परिवर्तन और विस्तार हुआ है।

रेडियो नाटक ने तो नाटक के दृश्य-रूप को श्रव्य-माध्यम में बदल दिया है, उसे सुनने की वस्तु बना दिया है। परिणामस्वरूप यहां नाट्य-विद्या के श्रव्य-आयामों का विस्तार हुआ और दृश्य- आयामों का संकोच। रंगमंचीय नाटक जो प्रभाव दृश्य के माध्यम से डालता है रेडियो नाटक वही प्रभाव शब्दों के माध्यम से कल्पना में बिम्ब जगा कर डालता है। वाणी का अभिनय और ध्वनि- प्रभाव महत्त्वपूर्ण होने के कारण भाषा की अपेक्षाएं भी बदली हैं। अभिनेता की भूमिका में परिवर्तन आया है। जो कुछ मंच पर दिखाना संभव नहीं है, उसे भी स्वर के माध्यम से कल्पना में जागृत करना संभव हुआ है। फलत: देश और काल की दूरी कम हुई है। अंक-दृश्य-विभाजन की आवश्यकता नहीं रही है।

टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले नाटक और धारावाहिकों की भी अपनी तकनीक है। यद्यपि रंगमंच और टेलीविजन दोनों ही दृश्य-माध्यम हैं, लेकिन दोनों की जरूरतें पूरी तरह समान नहीं हैं। एक जीवंत माध्यम है तो दूसरा तकनीकी माध्यम जो सिनेमा के अधिक नजदीक है।

टेलीविजन के लिए नाटकों में भी देश-काल का बंधन नहीं होता। दृश्य-परिवर्तन, घटनाचक्र का तेजी से बदलना विभिन्न तकनीकों से सुविधापूर्ण ढंग से दिखाया जा सकता है।

टेलीविजन नाटक में समय की काफी बंदिश होती है। सीमित समय में नाटक को पूरा होना होता है। कथा में विस्तार की गुंजाइश नहीं होती, जब तक कि धारावाहिक प्रस्तुति ही न हो।

टेलीविजन का पर्दा क्लोजअप के माध्यम से अभिनेताओं की मुख-मुद्राओं को बहुत नजदीक से उभारता है। अत: सफल भावाभिनय अपेक्षाकृत ज्यादा आवश्यक होता है। पात्रों का मूल अभिनय भी कैमरे की सहायता से बहुत प्रभावी हो सकता है।

संगीत का उपयोग रेडियो नाटक की भांति काफी सार्थक ढंग से कर लिया जाता है।

वस्तुत: इलैक्ट्रॉनिक मीडिया पर प्रसारित नाटकों का मंचीय नाटकों से अंतर तकनीकी और प्रस्तुतिपरक है। एक माध्यम के लिखे नाटकों को दूसरे माध्यम के लिए अनुकूलित किया जा सकता है।

6.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई मे आपने नाट्य विधा के विशिष्ट स्वरूप और नाट्य-लेखन के विविध पहलुओं के विषय में पड़ा है। अब आप जान गए हैं कि नाटक कैसे लिखा जाए और इसे लिखते वक्त किन बातों का विशेष ध्यान रखा जाए। नाटक के रंगमंचीय पहलू को आप भली भांति समझ गए हैं ध्यान रखें कि रंगमंच की परिकल्पना आपके मन में जितनी स्पष्ट होगी और उतना ही आप नाटक को रंगमंच

के उपयुक्त बना सकेंगे। मंचीय होने पर भी आपका नाटक प्रभावपूर्ण तभी होगा जब आप उसे जीवन के यथार्थ से जोड़ सकेंगे।

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाट्य विधा की प्रमुख विशेषताओं का परिचय दीजिए।
2. नाटक और रंगमंच के संबंध पर एक लघु निबंध लिखिए तथा नाटक के रंगमंचीय आयामों पर प्रकाश डालिए।
3. नाटक की विषय-वस्तु किन स्रोतों से ली जा सकती है ? समसामयिक जीवन से उसका क्या संबंध होना चाहिए ?
4. नाटकों में पात्र-सृष्टि आप किस प्रकार करेंगे ?
5. नाटक की भाषा-शैली और संवादों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
6. रेडियो-नाटक और टेलीविजन-नाटक में अन्तर बताइए।

6.12 व्यावहारिक प्रश्न

1. बाल मजदूरी आधुनिक समाज की बहुत ही निर्मम समस्या है। फैक्ट्रियों, दुकानों, घरों तथा विभिन्न सार्वजनिक स्थलों पर अबोध बच्चे अपनी क्षमता से अधिक कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। इस विषय पर एक नाटक लिखिए।
2. प्रदूषण का जहर आज हमारे जीवन के लिए बहुत जबरदस्त चुनौती बनकर खड़ा है। इस विषय पर आम आदमी को जागरूक बनाना जरूरी है। प्रदूषण को रोकने की जिम्मेदारी हम सबकी है। इस बात के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए लगभग 30 मिनट की प्रस्तुति के लिए एक नाटक लिखिए।
3. अपनी रुचि का विषय चुनते हुए एक नाटक बच्चों के लिए लिखिए।

6.13 उपयोगी पुस्तकें

नाट्य कला, डा. रघुवंश

रंग-दर्शन, नेमीचन्द्र जैन

रंगमंच, बलवंत गार्गी

हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच मीमांसा, कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह

रंगमंच : नया परिदृश्य, रीतारानी पालीवाल

The Art of Drama, Ronald Peacock

The Development of Theatre, A. Nicoll

Our Theatre Today, Hershel, L. Bricker

The Director in the Theatre, Hugh Hunt

The Idea of Theatre, Francis Fergusson

इकाई 7 रेडियो के लिए लेखन

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

- 7.2.1 रेडियो से तात्पर्य
- 7.2.2 रेडियो का इतिहास
- 7.2.3 रेडियो और जनसंचार
- 7.2.4 रेडियो: एक संगठन

7.3 माध्यम के रूप में रेडियो

- 7.3.1 आवाज की दुनिया
- 7.3.2 श्रोता की कल्पना-शक्ति का उपयोग
- 7.3.3 जीवंतता
- 7.3.4 लचीलापन
- 7.3.5 तत्परता

7.4 रेडियो के विभिन्न कार्यक्रम

- 7.4.1 वार्ता
- 7.4.2 समाचार
- 7.4.3 नाटक और अन्य विधाएं
- 7.4.4 रूपक, डॉक्युमेंट्री और डॉक्यूड्रामा
- 7.4.5 आखों देखा हाल

7.5 रेडियो लेखन के क्षेत्र

- 7.5.1 शिक्षा
- 7.5.2 सूचना
- 7.5.3 मनोरंजन
- 7.5.4 श्रोता-आधारित कार्यक्रम

7.6 रेडियो के लेखकीय उपकरण

- 7.6.1 बोले हुए शब्द
- 7.6.2 ध्वनि प्रभाव
- 7.6.3 संगीत
- 7.6.4 मौन

7.7 रेडियो की प्रस्तुतीकरण-तकनीक

- 7.7.1 फेड आउट
- 7.7.2 फेड इन

7.7.3 क्रॉस फेड
7.7.4 सुपर इम्पोजिंग और अंडर
7.8 रेडियो लेखन की विशेषताएं
7.8.1 रेडियो-लेखन और मुद्रित-लेखन
7.9 आलेख लेखन
7.9.1 विधा का चुनाव
7.9.2 विषय-वस्तु
7.9.3 आलेख का आकार
7.9.4 आलेख का गठन
7.9.5 आलेख लिखने की विधि
7.10 सारांश
7.11 निबन्धात्मक प्रश्न
7.12 उपयोगी पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

जनसंचार माध्यम के रूप में रेडियो की विशेषताएं जान सकेंगे,
लेखन की दृष्टि से रेडियो माध्यम की आधारभूत आवश्यकताओं को समझ सकेंगे,
रेडियो से प्रसारित होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों से परिचित हो सकेंगे,
रेडियो लेखन के विविध क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
रेडियो लेखन की विशिष्टताओं को समझ सकेंगे, और
रेडियो के लिए आलेख तैयार करना सीख सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

इस पाठ में हम आपको रेडियो के लिए लिखने की विधि बता रहे हैं। रेडियो एक अलग प्रकार का इलैक्ट्रानिक माध्यम -है और इसकी अपनी खास विशेषताएं हैं जिन्हें रेडियो-माध्यम के लिए लिखने से पहले जानना जरूरी है। रेडियो -लेखन की ओर हम धीरे- धीरे बढ़ेंगे। आइए, सबसे पहले बतौर पृष्ठभूमि रेडियो का अर्थ, इतिहास और वर्तमान से परिचित हो लें।

7.2.1 रेडियो से तात्पर्य

यह सवाल आपको बचकाना लग सकता है कि रेडियो क्या है ? रेडियो से तो बच्चा-बच्चा परिचित है। गांव और सुदूर इलाकों में रहने वाला अनपढ़ और गाँव का व्यक्ति भी रेडियो से अपरिचित नहीं है। अब फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' का जमाना गया जब रेडियो कौतुहल और आश्चर्य का पिटारा हुआ करता था। अब तो रेडियो घर-घर बजता है, हर दुकान में, हर चौबारे पर....। परंतु क्या

आपको मालूम है कि जिस यंत्र से आपके पास आवाज आती है वह रेडियो नहीं, रेडियो अभिग्राही (Radio Reciver) है जो रेडियो संकेत (Radio Signal) को ग्रहण कर आपके पास पहुँचाता है।

रेडियो शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द ' रेडियस' से हुई है। रेडियस विधुत चुम्बकीय तरंगों को कहते हैं। इन विधुत चुम्बकीय तरंगों के जरिए रेडियो स्टेशन से प्रसारित कार्यक्रम ' 'रेडियो अभिग्राही' ' के माध्यम से आप- हम तक पहुंचाता है। इसीलिए रेडियो को पहले 'वायरलेस' (बेतार का तार) भी कहा जाता था।

रेडियो मात्र एक यंत्र नहीं है। यह एक जीती-जागती दुनिया है। रेडियो केवल कुछ शब्दों का संयोजन नहीं है। रेडियो का एक सामाजिक मकसद है, एक सामाजिक दर्शन है, एक समाजशास्त्र है। रेडियो एक सशक्त जनसंचार माध्यम है जिसके जरिए राष्ट्र को प्रगति के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है। सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का यह सशक्त वाहक-प्रबल और शक्तिशाली जनसंचार माध्यम है। इसकी सशक्तता और सामर्थ्य पर विचार करने से पहले इसके इतिहास से परिचित होना उचित प्रतीत होता है।

7.2.2 रेडियो का इतिहास

रेडियो के आविष्कार की कहानी बड़ी रोचक है जिसकी यहां संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

रेडियो -तरंगों की खोज उन्नीसवीं शताब्दी में हुई। 1864 में अंग्रेज वैज्ञानिक कमैहसवेल ने पहली बार रेडियो तरंगें होने की भविष्यवाणी की। 1888 में जर्मन वैज्ञानिक हटर्ज ने रेडियो तरंगों की खोज की और 12 अगस्त, 1891 को इंगलैंड के वैज्ञानिक मारकोनी ने इसके माध्यम से आवाज भेजने में सफलता प्राप्त की। 1947 में तीन अमेरिकी वैज्ञानिक राकले, ब्राटेन तथा बार्डीन ने ट्रांजिस्टर का आविष्कार किया और उसे जन-जन का माध्यम बना दिया।

दुनिया का सबसे पहला प्रसार केन्द्र 1920 के अमेरिका में पिट्सबर्ग के स्थापित हुआ। 1928 में इंग्लैंड में ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिग कॉरपोरेशन की स्थापना हुई और वहां नियमित रूप से प्रसारण शुरू हो गया। भारत में भी रेडियो प्रसारण उन्हीं दिनों शुरू हुआ। 1923 में टाइम्स ऑफ इंडिया और डाक-तार विभाग ने मिलकर रेडियो क्लब आफॅ बॉम्बे के नाम से बंबई (मुंबई) से एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसे इस प्रांत के गवर्नर ने पूना में सुना। इसी समय, बंगाल की गैर-व्यावसायिक रेडियो सभा ने कलकत्ते से प्रसारण आरंभ किया। इसी प्रकार, 1924 में मद्रास से भी प्रसारण शुरू हो गया। 23 जुलाई, 1926 को इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी ने प्रसारण आरंभ किया। 1930 में इसका नाम इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस रखा गया। जनवरी, 1936 में दिल्ली में एक मुख्य प्रसारण केन्द्र स्थापित किया गया। 1936 में इसका नाम ' ऑल इंडिया रेडियो ' रख दिया गया। 1957 में ऑल इंडिया रेडियो को ' आकाशवाणी' बना दिया गया। इस समय पूरे देश में आकाशवाणी के 177 केन्द्र हैं।

7.2.3 रेडियो और जनसंचार

रेडियो जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है। जनसंचार विस्फोट के इस युग में जब टेलीविजन, कंप्यूटर, ईमेल, इंटरनेट का बोलबाला बढ़ रहा है, रेडियो अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने में सफल रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण रेडियो की अपनी खास विशेषता है जिसकी हम अगले भागों में चर्चा करेंगे।

आज का युग संचार का युग है। संचार के प्रसार और आदान-प्रदान ने समूचे विश्व को एक गांव में बदल दिया है। दुनिया में कहीं भी कोई घटना घटती है वह क्षण-भर में सारी दुनिया में फैल जाती है। अब हम उसे न केवल सुन सकते हैं बल्कि उसे साक्षात् देख भी सकते हैं। टेलीविजन के आगमन और सैटेलाइट के माध्यम से पूरी दुनिया के साथ जुड़ जाने के बाद ऐसा लगा कि रेडियो का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। लोग रेडियो सुनना छोड़ देंगे, परंतु ऐसा हुआ नहीं। अपने समस्त ग्लैमर के बावजूद टेलीविजन रेडियो को निगल नहीं सका। इसकी सर्वसुलभता, व्यापकता, लचीलेपन तत्परता और कम कीमत में उपलब्धता ने इसे आज जन-जन का माध्यम बना दिया है। जहां बिजली नहीं, सड़क नहीं, संचार के आधुनिक साधन मौजूद नहीं, वहां भी रेडियो मौजूद है। रेडियो की दुनिया आवाज की दुनिया है। अपनी आवाज के संमोहन से इसने सारी दुनिया को मोहित कर रखा है। अपनी प्रकृति और गुण के कारण रेडियो लोकप्रिय रहा है और इसकी लोकप्रियता अब भी बनी हुई है।

रेडियो जब ट्रांजिस्टर बनकर आया तो इसने धूम मचा दी। बड़े-बड़े रेडियो सेट जब छोटे- छोटे ट्रांजिस्टर सेट का रूप लेने लगे तो इसके पूरे चरित्र में बदलाव आ गया। पहले रेडियो सेट बड़ा होता था और इसे लोग समूह में सुनते थे। ट्रांजिस्टर के आ जाने के बाद इसे परिवार में व्यक्तिगत रूप से सुना जाने लगा। फिर यह लोगों के दुःख-सुख का साथी बना। लोग एकांत में रेडियो सुनने लगे। रेडियो उन्हें आत्मीय साथी लगने लगा। रेडियो के इस चारित्रिक बदलाव के कारण उस पर प्रसारित कार्यक्रमो की प्रकृति भी बदलने लगी। पहले जहां समूह को सम्बोधित किया जाता था वहां अब व्यक्ति-विशेष से बात की जाने लगी। सुबह-सुबह एफ. एम. चैनल खोलिए या फिर कोई भी स्टेशन लगाइए रेडियो बड़ी आत्मीयता से आपका स्वागत करेगा और ऐसा लगेगा कि वह आपसे-सिर्फ आपसे - ही बातें कर रहा है। रेडियो अपनी इस आत्मीयता के कारण ही जनसंचार का लोकप्रिय साधन बना हुआ है।

7.2.4 रेडियो: एक संगठन

रेडियो एक यंत्र है, एक आवाज है, ज्ञान और मनोरंजन का एक साधन है जिससे तरह-तरह के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। ये सारे कार्यक्रम रेडियो स्टेशन से प्रसारित किए जाते हैं। एक रेडियो - लेखक को इस संगठन की जानकारी होनी चाहिए ताकि जब वह रेडियो स्टेशन में अपना आलेख लेकर जाए तो उसे बेवजह भटकना न पड़े।

आम तौर पर एक रेडियो स्टेशन में तीन विभाग होते हैं - (1) कार्यक्रम विभाग, (2) तकनीकी विभाग और (3) व्यापार विभाग। कार्यक्रम विभाग, केन्द्र से प्रसारित होने वाले. कार्यक्रमो की सूची बनाता है। किसी भी रेडियो स्टेशन से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की सफलता कार्यक्रम नियोजन पर निर्भर करती है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की प्रतिस्प्रर्धा को देखते हुए इस विभाग की जिम्मेदारी और भी बढ़ गई है। यही विभाग स्क्रिप्ट आदि भी जुटाता है। अत: आप अपनी स्क्रिप्ट या आलेख के लिए इस विभाग से सम्पर्क कर सकते हैं। यही से आपको कार्यक्रम-सूची प्राप्त होगी और आप इन कार्यक्रमों के अनुसार लेखन कर सकते हैं। आकाशवाणी केन्द्रों में कार्यक्रमों को अलग-अलग यूनिटों में बांट दिया जाता है। उदाहरण के लिए, वार्ता, नाटक, श्रोता-आधारित कार्यक्रम आदि यूनिट। प्रत्येक यूनिट का एक प्रभारी अधिकारी होता है जो कार्यक्रम-सूची तैयार करता है। आप अपनी रुचि के क्षेत्र की यूनिट में जाकर वहां

के कार्यक्रम अधिकारी से मिल सकते हैं और अपनी रुचि के अनुसार आलेख-लेखन का कार्य प्राप्त कर सकते हैं।

प्रत्येक रेडियो स्टेशन में एक तकनीकी नियंत्रण कक्ष होता है जिसे 'कंट्रोल रूप' के नाम से जाना जाता है। रेडियो स्टेशन के उपकरणों की देखभाल, स्टूडियो का संयोजन और संचालन तथा कार्यक्रम-प्रसारण इसी के जरिए होता है। कार्यक्रम विभाग कार्यक्रम-सूची की प्रति कंट्रोल रूम को भी भेजता है।

इसके अलावा, रेडियो स्टेशन पर प्रशासन, लेखा आदि एकांश भी होते हैं। कलाकारों के पास अनुबंध भेजना, समय पर कलाकारों को भुगतान करना आदि इन्हीं एकांशों का काम होता है। रेडियो स्टेशन में एक व्यापार और विपणन एकांश होता है जो कार्यक्रम के विपणन आदि की व्यवस्था करता है।

7.3 माध्यम के रूप में रेडियो

इस पाठ में हम यह बात बार-बार दुहरा चुके हैं कि रेडियो एक श्रव्य-माध्यम है जिसे घर-घर में ही नहीं बल्कि कार, बस, रेल-कहीं भी सुना जा सकता है। रेडियो के लिए आलेख लिखते समय रेडियो की विशेषताओं का ध्यान रखना अति आवश्यक है। आइए, माध्यम के रूप में रेडियो की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की जाए।

7.3.1 आवाज का दुनिया

रेडियो की दुनिया आवाज की दुनिया है। रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम उच्चरित शब्दों और भाषा के माध्यम से श्रोताओं तक पहुंचता है। अन्य माध्यमों जैसे अखबार, पत्रिकाओं, पुस्तकों, फिल्मों या टीवी. के समान इसमें छपे शब्द या शब्द के साथ-साथ चित्र नहीं होते। रेडियो में शब्द, ध्वनि और मौन का सहारा लिया जाता है। इसलिए यह एक श्रव्य माध्यम है जिसमें आवाज प्रसारक और श्रोता के बीच की कड़ी होती है। रेडियो के लिए आलेख तैयार करते समय लेखक को इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए कि जो वह लिख रहा है वह लिखित रूप में श्रोताओं तक नहीं पहुंचेगा बल्कि किसी की आवाज के जरिए आपका आलेख श्रोताओं तक पहुंचेगा। इसलिए आलेख तैयार करते समय माध्यम की इस विशेषता को ध्यान में अवश्य रखिए।

आवाज की सबसे बड़ी सीमा यह है कि यह उच्चरित होने पर ठहरती नहीं बल्कि हवा में विलीन हो जाती है। यदि कोई वाक्य रेडियो पर बोला जाता है और आप उसे ठीक से सुन नहीं पाते हैं तो वह आपके लिए 'खोई हुई चीज' हो जाती है। जब तक उस वाक्य को पुन: दोहराया न जाए, तब तक आप उसे सुन नहीं सकते। रेडियो के लिए आलेख तैयार करते समय आवाज की इस ' क्षण-भंगुरता' को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। तभी आप रेडियो के अनुरूप लेखन करने में सफल हो सकेंगे।

रेडियो माध्यम के बारे में आधारभूत तथ्य यह है कि इससे प्रसारित 'संदेश' देखे नहीं जा सकते। श्रोता इसके 'संदेश' देख नहीं सकते, उसे सुन-भर सकते हैं। कानों से 'संदेश' सुनने के लिए ध्यान लगाने की जरूरत होती है क्योकि थोड़ा-सा ध्यान भंग हुआ और संदेश आपके कान में न जाकर हवा में विलीन हुआ। श्रव्य-माध्यम होने के कारण रेडियो पर प्रसारित होने वाले 'संदेशों ' को बड़ी सावधानी से ढालना

होता है। इसके संदेश सरल, सहज और ग्राह्य बनाए जाते हैं। थोड़ी-सी भी जटिलता आई और संचार बाधित हुआ।

आवाज का माध्यम होने के कारण रेडियो में अपनापन, वैयक्तिकता और आत्मीयता आ जाती है। ऐसा लगता है कि कोई अपना बिल्कुल पास बैठा बात कर रहा है। प्रसारकों और श्रोताओं के बीच इतनी आत्मीयता हो जाती है कि उद्घोषक घर-घर के सदस्य बन जाते हैं और हजारों पत्र उद्घोषको के नाम से आते हैं जिनमें कई पत्र तो भावुकता और संवेदनशीलता से भरपूर होते हैं। आप रेडियो सुनिए, आपको इसके सैकड़ों उदाहरण मिल जाएंगे।

7.3.2 श्रोता की कल्पना- शाक्ति का उपयोग

रेडियो से निकली आवाज में अद्रभुत जादुई शक्ति होती है। आवाज सुनते ही श्रोता, स्थिति, घटना आदि के बारे में कल्पना करने लगता है। वह कैसा होगा, क्या होगा, किस तरह होगा। मसलन, याद कीजिए जब आप और हम बचपन में रेडियो पर क्रिकेट कमेंट्री सुनते थे। जैसे ही जसदेव सिंह की आवाज रेडियो पर गूंजती थी और वे मैदान का हाल सुनाते थे तो कितना रोमांच होता था। हम सुनते थे तो कान से, परन्तु सारा का सारा दृश्य हमारी आंखों के सामने उपस्थित हो जाता था। कमेंटेटर का एक-एक शब्द हमारे लिए मोहक दृश्य के समान होता था।

वस्तुत: मानव की कल्पना - शक्ति जागृत करने के लिए रेडियो एक चुनौती-भरा माध्यम है। यह माध्यम अपनी 'दृष्टिहीनता' की भरपाई व्यक्ति की भावनाओं और कल्पनाओं को सुगबुगा कर पूरा करता है। रेडियो श्रोताओं की कल्पना- शक्ति को अपने साथ लेकर चलता है। रेडियो के आलेख-लेखक को रेडियो के इस पहलू और विशेषता का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। कई बार फिल्मों और टेलीविजन में कई दृश्यों को प्रतीकात्मक रूप में दिखाने के लिए आवाजों का प्रयोग किया जाता है। अत: श्रोता अपनी कल्पना- शक्ति का सहारा लेकर आवाज के सहारे दृश्य जुटाता है। यदि कोई पौराणिक कथा चल रही है या कोई नाटक चल रहा है तो श्रोता अपनी कल्पना के आधार पर शिव-पार्वती, राजा-रानी, पति-पत्नी, चोर-डाकू आदि की कल्पना करेगा। इसके अलावा, रेडियो के कार्यक्रम काल की किसी भी सीमा तक पहुँच सकते हैं क्योंकि रेडियो के कार्यक्रम केवल प्रसारण अवधि के घेरे में घिरे होते हैं। इसलिए रेडियो पर किसी भी युग का नाटक ध्वनियों के सहारे आराम से प्रसारित किया जा सकता है। वस्तु, आभूषण, परिधान, वातावरण, चरित्र, परिवेश, सबका दायित्व आवाज पर ही होता है। रेडियो से श्रोताओं की कल्पना- शाक्त जागृत होती है। इससे उनकी विचार- शक्ति, मौलिक सोच और विचार-प्रक्रिया को सृजनात्मक शक्ति मिलती है। रेडियो के लिए आलेख तैयार करते समय आप इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि आपका आलेख श्रोताओं के अंतर्मन को झकझोर दे, उनकी कल्पना- शाक्त को सृजनशील बनाए। इसके लिए आपके आलेख में भी सृजनशीलता होनी चाहिए। तभी आप श्रोताओं को प्रभावित कर सकेंगे।

7.3.3 जीवंतता

रेडियो के कार्यक्रम जीवंतता से भरपूर होते हैं। अगर आपके बनाए कार्यक्रम जीवंत न हुए तो श्रोता रेडियो बंद कर देगा या स्टेशन बदल देगा और आपका सारा परिश्रम व्यर्थ चला जाएगा। अब सवाल यह है कि रेडियो कार्यक्रमों को जीवंत कैसे बनाया जाए।

श्रोता दूर बैठा है। आप सब श्रोताओं के मन की बात जानते भी नहीं। कोई भी कार्यक्रम तैयार करते समय या उसका स्क्रिप्ट लिखते समय श्रोताओं का अवश्य ध्यान रखें। आप ध्यान रखें कि आप किन श्रोताओं के लिए कार्यक्रम तैयार कर रहे हैं। श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखते हुए उनके मन की बात कीजिए। इसके अलावा, स्क्रिप्ट इस प्रकार तैयार कीजिए कि जब उद्घोषक उसे पढ़कर प्रसारित करे तो श्रोता को ऐसा लगे कि सब कुछ उसकी आखों के सामने घटित हो रहा है। पुस्तक पढ़ते वक्त पाठक के सामने अक्षर, शब्द, वाक्य और पुस्तकीय संसार होता है, टेलीविजन देखते समय दर्शकों के सामने दृश्यों का एक सिलसिला होता है, जिससे दर्शक एकटक बंधा होता है।

रेडियो से केवल आवाज आती है। आवाज का माध्यम होने के कारण यह श्रोताओं के मन मे कौतुहल और जिज्ञासा उत्पन्न करता है। इसी कौतुहल और जिज्ञासा के कारण श्रोता रेडियो से चिपका रहता है। इसी कौतुहल और जिज्ञासा से रेडियो-कार्यक्रम जीवंत बनता है।

इसके अलावा, रेडियो वर्तमान का बोध कराता है। ऐसा लगता है कि सब कुछ अभी तुरंत और सामने घट रहा है। टेलीविजन में इस घटित को दर्शक सीधे देख लेता है। अत: उसकी जिज्ञासा का शमन हो जाता है, पर रेडियो में वह कुछ देख नहीं पाता। अत: उसकी उत्सुक्ता बढ़ जाती है। आपके आलेख में उत्सुक्ता जगाने की जितनी ज्यादा शक्ति होगी आपका कार्यक्रम उतना ही जीवंत बनेगा और आप ज्यादा से ज्यादा श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित कर सकेंगे। चौबीसों घंटे प्रसारित होने वाला एफ. एम. कार्यक्रम इसका ज्वलंत उदाहरण है।

7.3.4 लचीलापन

क्या आप टहलते हुए, काम करते हुए, गाते हुए या नाचते हुए दौड़ते हुए, स्कूटर या कार चलाते समय, पुस्तक पढ़ सकते हैं, टेलीविजन देख सकते हैं? नहीं न! पर रेडियो सुन सकते हैं। वस्तुत: रेडियो एक लचीला माध्यम है। यहां लचीलेपन से तात्पर्य है कि इसे किसी भी स्थान और समय पर किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त किया जा सकता है। रेडियो का सस्ता होना इसके लचीलेपन को और भी बढ़ा देता है। सस्ता उपकरण होने के बावजूद इसमें ज्ञानप्रद और मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत करने की अपार संभावनाएं हैं। इसमें घटनाओं का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। ध्वनि-प्रभावों और संगीत के माध्यम से श्रोताओं को सीधे घटना-स्थल से जोड़ा जा सकता है।

रेडियो एक सुलभ और सस्ता माध्यम है। निरक्षर और दृष्टिहीन व्यक्ति भी रेडियो सुन सकता है। जहां बिजली नहीं है, वहां भी रेडियो बैटरी की सहायता से सुना जा सकता है। इस चलते - फिरते जनसंचार माध्यम के लिए आलेख तैयार करने में इसके 'लचीलेपन' का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। आपकी स्क्रिप्ट इतनी रोचक होनी चाहिए कि चलते हुए राहगीर के कदम भी ठिठक जाएं; वह रुककर आपका कार्यक्रम सुनने लगे। अमीन साहनी की आवाज में ऐसी ही जादुई शक्ति है जो दूर जाते राही के कदम भी रोक लेती है। जरूरी नहीं कि रेडियो सुनने वाले श्रोता केवल आपका कार्यक्रम ही सुन रहा हो। श्रोतागण अपना कार्य करते हुए भी रेडियो कार्यक्रम सुनते रहते हैं कई विद्यार्थी रेडियो ऑन करके ही अपनी पढ़ाई करते हैं। खेत में काम करते किसानों, शहरों में काम करते मजदूरों को रेडियो सुनते देखा जा सकता है। वस्तुत: रेडियो की ध्वनि से एक पृष्ठभूमि निर्मित होती है। इससे व्यक्ति का अकेलापन, एकांतता, बोरियत और उबाऊपन दूर होता है और उसे काम करने की शक्ति तथा ऊर्जा

प्राप्त होती रहती है। इसलिए इसमें आत्मीयता का रस भरपूर होना चाहिए ताकि लोग कार्यक्रम को चाव से सुन सकें।

7.3.5 तत्परता

किसी भी घटना या दुर्घटना की सूचना सबसे पहले रेडियो से प्राप्त होती है। अपने लचीलेपन के कारण इसमें कार्यक्रम तैयार करने और उसे प्रस्तुत करने में काफी कम समय लगता है। टीवी., टेलीप्रिंटर, फोन, ई. मेल, फैक्स आदि से भी समाचार प्राप्त होते हैं। अगर समाचार जरूरी है, मसलन मछुआरों तक सूचना पहुंचानी है कि वे समुद्र में न जाएं भयंकर तूफान आने वाला है तो इसे तुरंत रेडियो पर प्रसारित किया जा सकता है। अपने लचीलेपन के कारण मछुआरों तक तेजी से खबर पहुंच सकती है। इसी प्रकार, यदि किसी साहित्यकार या अर्थशास्त्री को पुरस्कार मिलता है या किसी विख्यात् व्यक्ति का निधन हो जाता है तो उस पर भी तुरंत कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। ऐसे अवसरों पर रेडियो -लेखक को भी रेडियो-माध्यम के अनुरूप तत्पर होना पड़ता है। कोई भी जरूरी समाचार मिलने पर समाचार का आलेख तैयार करना होता है। इसी प्रकार, किसी व्यक्ति से संबंधित समाचार तैयार करते समय उस व्यक्ति-विशेष के बारे में जल्द से जल्द सूचना जुटाकर एक व्यक्ति-चित्र (प्रोफाइल) तैयार करना पड़ता है। याद रखिए आपके द्वारा तैयार किया गया व्यक्ति-चित्र संभवत: प्रसारित होने वाला प्रथम व्यक्ति-चित्र होगा। अत: तथ्यों की ठीक से जांच-पड़ताल कर लें। उदाहरण के लिए अमर्त्य सेन को 1998 में अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार मिला। यदि आपको डॉ. सेन पर तुरंत प्रोफाइल तैयार करना है तो आप निकट के किसी अर्थशास्त्र- प्रोफेसर से सम्पर्क कर सकते हैं। उनका इंटरव्यू ले सकते हैं। फोन पर अमर्त्य सेन की मां से बात कर सकते हैं और उसे रिकॉर्ड कर श्रोताओं को सुना सकते हैं। इस प्रकार एक रेडियो-लेखक को रेडियो-माध्यम के अनुरूप तत्पर भी होना पड़ता है।

1. माध्यम के रूप में रेडियो की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. रेडियो के सांगठनिक रूप के महत्वपूर्ण पक्ष बताइए।

7.4 रेडियो के विभिन्न कार्यक्रम

रेडियो पर तरह-तरह के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। रेडियो के लिए आलेख लिखने वाले लेखकों को रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की जानकारी होनी चाहिए। इससे उन्हें आलेख लिखने में सहूलियत होती है। इसी उद्देश्य से इस भाग में रेडियो पर प्रसारित होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

7.4.1 वार्ता

यह रेडियो की सबसे पुरानो और सर्वप्रचलित विधा है। रेडियो प्रसारण की शुराआत से ही वार्ता का जन्म हुआ। रेडियो पर प्रसारित वार्ता में एक व्यक्ति किसी विषय के बारे में श्रोताओं को जानकारी देता है। इसमें वार्ताकार या तो स्वयं आलेख तैयार करता है और उसे स्टूडियो में पढ़कर श्रोताओं को सुनाता है या आलेख लेखक वार्ता का आलेख तैयार करता है और उद्घोषक उसका वाचन करता है। दोनों ही स्थितियों में आलेख-लेखक को रेडियो-माध्यम की विशेषताओं का ध्यान रखना चाहिए। साथ ही साथ उसे श्रोता वर्ग को भी अपने सामने रखना होता है। आम तौर पर वार्ता -लेखक लेख लिखकर ले आते हैं। यह जानना बहुत जरूरी है कि रेडियो पर प्रसारित होने वाली वार्ता पत्र-पत्रिकाओं में छपने

वाले लेख या निबंध से अलग होती है। श्रोताओं के पास लिखे हुए अक्षर नहीं पहुंचते बल्कि आपके बोले हुए शब्द पहुंचते हैं अत: वार्ता का आलेख तैयार करते समय आप बातचीत की शैली अपनाएं। आप बोल कर देख लें किं जो कुछ आपने लिखा है वह आसानी से समझ में आ रहा है या नहीं। वार्ता को लेख न बनाएं। इसे नीरसता से बचाएं।

वार्ता को नीरसता से बचाने के लिए इसमें कहानीपन डालने की कोशिश कीजिए। तथ्यों और आकड़ों से ठसाठस भरी वार्ता असफल होने के लिए अभिशप्त है। इसलिए आवश्यक है कि नपे - तुले शब्दों में अपनी बात कहें और जो कहें स्पष्ट रूप में कहें। याद रखें कि रेडियो-वार्ता न तो मंच पर दिया जाने वाला भाषण है न ही कक्षा में दिया जाने वाला व्याख्यान। यह पत्रिका में लिखा जाने वाला लेख या निबंध भी नहीं है। यह तो बातचीत की शैली में लिखी गई एक रेडिया -विधा है जिसमें सरल-सहज शब्दों में किसी विषय की जानकारी श्रोताओं को दी जाती है।

किसी भी विषय पर वार्ता तैयार की जा सकती है। अक्सर ऐसा समझा जाता है कि वार्ता लिखना सबसे आसान काम है परन्तु यह एक चुनौतीपूर्ण विधा है। आज के व्यस्त जीवन में आपकी वार्ता सुनने की किसे फुर्सत है? आपको अपनी वार्ता को इस प्रकार सरस और रोचक बनाना होगा कि श्रोता अपने व्यस्त जीवन से भी कुछ समय निकाल कर आपकी बात सुनें। इसलिए जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वार्ता में कहानीपन अवश्य होना चाहिए। वार्ता की शुरुआत कहानी से, अपने अनुभव से, किसी और के अनुभव से, किसी महान् व्यक्ति के कथन से, चुटकुले से, संस्मरण से की जा सकती है। इससे आप श्रोता को अपनी ओर आकृष्ट कर सकेंगे। इसके बाद विषय पर आइए और उसे इस रूप में पेश कीजिए कि श्रोता उसे सुनने के लिए बाध्य हो जाए।

अब मान लीजिए आपको दिल्ली में फैल रहे प्रदूषण पर एक वार्ता तैयार करने के लिए कहा गया। तो आप क्या करेंगे ? सबसे पहले आप प्रदूषण के संबंध में विभिन्न प्रकार की तथ्यात्मक जानकारियां इकट्ठी करेंगे। फिर दिल्ली शहर का दौरा करेंगे। वहां देखेंगे कि दिल्ली में किस प्रकार का प्रदूषण फैल रहा है ? आप चाहें तो किसी एक प्रदूषण-प्रकार को उठा सकते हैं, मसलन मोटरकारों से फैलने वाला प्रदूषण। विषय निर्धारित होने और तथ्य जुटाने के बाद आप इसे लिखने बैठिए। इसे लिखते समय माध्यम (रेडियो), श्रोता (जिसे सम्बोधित करना चाहते हैं) और विषय के ट्रीटमेंट पर ध्यान रखिए। याद कीजिए अपना कोई अनुभव.... कोशिश कीजिए...।

7.4.2 समाचार

दुनिया में घटने वाली किसी भी घटना या दुर्घटना का समाचार सबसे पहले रेडियो सुनाता है। इसलिए रेडियो पर प्रसारित होने वाले समाचार का महत्व बढ़. जाता है। समाचार-पत्र में भी समाचार प्रकाशित होते हैं और टेलीविजन भी इसे प्रसारित करता है। परंतु रेडियो पर प्रसारित होने वाला समाचार शैली की दृष्टि से इन सबसे अलग होता है।

जैसा कि आप जानते हैं, रेडियो ध्वनि का माध्यम है और इसके माध्यम से श्रोताओं तक उच्चरित शब्द पहुंचते हैं। रेडियो के लिए समाचार तैयार करते समय शैली का विशेष ध्यान रखना चाहिए। भाषा सरल और बोधगम्य होनी चाहिए। भारी-भरकम तत्सम शब्दों से बचना चाहिए। इसका हर शब्द स्पष्ट होना चाहिए। शब्दावली ऐसा हो कि अर्थ एकदम स्पष्ट हो जाए। रेडियो की भाषा और शैली पर हम बाद में विस्तार से विचार करेंगे।

रेडियो-समाचार तैयार करना एक जिम्मेदारी भरा, श्रम-साध्य और तकनीकी कार्य है। इसे प्रशिक्षित व्यक्ति ही तैयार कर सकता है। रेडियो स्टेशन तक समाचार विभिन्न स्रोतों से पहुंचते हैं। ये स्रोत हैं - संवाददाता, समाचार एजेंसी टेलीप्रिंटर, ईमेल, फ़ैक्स, फोन आदि। समाचार चाहे किसी भी स्रोत से आएं उन्हें 'रेडियो-समाचार' में ढालना पड़ता है। सबसे पहले समाचारों को इकट्ठा किया जाता है और समाचार-सम्पादक इन समाचारों को छांटता है। समाचारों को छांटकर इसे रेडियो-माध्यम के अनुरूप लिखा जाता है।

रेडियो पर समय की पाबंदी होती है और पांच मिनट से लेकर पन्द्रह मिनट तक के समाचार इसमें प्रसारित किए जाते हैं। प्रसारण-समय सीमित होता है और समाचार काफी होते हैं। ऐसी स्थिति में कम से कम शब्दों का इस्तेमाल कर अधिक से अधिक बात कहने की कला में माहिर होना पड़ता है। इसके अलावा इस प्रकार लिखना चाहिए कि समाचार-वाचक को समाचार पढ़ने में दिक्कत न हो। इसे स्पष्ट, बड़े-बड़े अक्षरों में, कागज के एक तरफ लिखना चाहिए। और यदि समाचार एक पृठ से लंबा हो तो पृष्ठ के अंत में - का निशान लगा देना चाहिए। प्रत्येक समाचार के अंत में ० - - - - - - - - - ० का निशान लगा देना चाहिए ताकि समाचार-वाचक को पता चल जाए कि एक समाचार समाप्त हो रहा है और दूसरा समाचार शुरू हो रहा है।

7.4.3 नाटक और अन्य विधाएं

रेडियो पर प्रसारित होने वाली विधाओं में नाटक का विशेष महत्व है। रेडियो पर प्रसारित होने वाले नाटकों का लेखन एक चुनौती-भरा कार्य है। रेडियो पर नाटक के अलावा झलकी, प्रहसन, कहानी-उपन्यास का नाट्य-रूपांतरण भी प्रस्तुत किया जाता है। रेडियो के लिए लिखे जाने वाले नाटक मंचीय नाटकों से भिन्न होते हैं। भिन्न इस अर्थ में कि मंच पर वाचिक और आंगिक अभिनय द्वारा नाटक अभिनीत किया जाता है जबकि रेडियो-नाटक में वाचिक अभिनय के जरिए ही श्रोताओं के समक्ष दृश्य उत्पन्न करना पड़ता है। रेडियो-नाटक का निर्माण शब्द, संगीत, ध्वनि-निर्माण और मौन-सामंजस्य से होता है। रेडियो -नाटक लिखने वाले नाटककारों के शब्द, संगीत, ध्वनि-निर्माण और मौन का सार्थक उपयोग करना आना चाहिए। उसे इन्हीं उपकरणों के जरिए दृश्य का निर्माण करना पड़ता है। आप रेडियो-नाटक लिखें, प्रहसन या झलकी तैयार करें, कहानी-उपन्यास का नाट्य रूपांतरण करें, सब जगह आपको इन्हीं उपकरणों की सहायता लेनी पड़ेगी।

7.4.4 रुपक, डॉक्यूमेंट्री और डॉक्युड्रामा

नाटक में काल्पनिक कथाओं को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है जबकि रूपक, डॉक्युमेंट्री और डॉक्युड्रामा में किसी वास्तविक विषय या स्थिति को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भी स्क्रिप्ट तैयार करते समय शब्द, संगीत, ध्वनि-प्रभाव और मौन का सहारा लेना होता है। रूपक के अनेक रूप रेडियो पर प्रसारित होने लगे हैं और इनमें कई प्रयोग भी हुए हैं। मसलन, डॉक्युमेंट्री, काव्य-रूपक, संगीत रूपक आदि। डॉक्युमेंट्री में गंभीर विषय या समस्या को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। काव्य-रूपक, काव्य-नाटक का ही एक रूप है। विषय-विशेष को गीतों में पिरोकर संगीत-रूपक भी प्रस्तुत किया जाता है। किसी भी विशेष अवसर या त्यौहार पर इस प्रकार के रूपक तैयार किए जाते हैं। डॉक्युमेंट्री और ड्रामा (नाटक) से मिलकर एक नई विधा डाक्युड्रामा का जन्म हुआ

है। इसमें कल्पना भी होती है और यथार्थ भी। मसलन, हम रेडियो स्टेशन की कार्य-प्रणाली पर एक डॉक्युड्रामा तैयार करना चाहते हैं। इसके लिए एक नाटकीय स्थिति पैदा की जा सकती है। एक घर में कुछ सदस्य आपस में किसी घरेलू समस्या पर विचार-विमर्श कर रहे हैं। इसी समय डाक आती है। डाक खोलने पर पता चलता है कि उसमें डॉ. अवधेश कुमार (जो उस घर के मुखिया हैं) के लिए रेडियो पर वार्ता प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रण आया है। डॉ. अवधेश कुमार कार्यक्रम संचालक से फोन पर बात करते हैं। कार्यक्रम संचालक उन्हें अनुमति दे देता है। नियत तिथि को डा. अवधेश कुमार अपने पुत्र के साथ रेडियो स्टेशन पहुंचते हैं। कार्यक्रम-संचालक उस बच्चे को रेडियो स्टेशन के भिन्न अंगों और कार्य-प्रणालियों से परिचित कराते हैं।

7.4.5 आंखों देखा हाल

कोई भी खेल हो, समारोह हो, उत्सव हो रेडियो उसका सीधा प्रसारण करता है। इसे 'आंखों देखा हाल' (कमेंट्री) के नाम से जाना जाता है। आखों - देखा हाल सुनाने वाले के सामने कोई स्क्रिप्ट या आलेख नहीं होता। परंतु इसके लिए भी कमेंटेटर को कुछ नोट्स तैयार करने पड़ते हैं। जिस समारोह या खेल का आखों - देखा हाल वह अपने श्रोताओं को सुना रहा होता है उसकी पूरी जानकारी उसके पास होनी चाहिए। मसलन, यदि किसी फुटबॉल मैच की कमेंट्री करनी है तो फुटबॉल की दोनों टीमों के खिलाड़ियों के नाम, रिकार्ड्स आदि से संबंधित सूचनाएं इकट्ठी कर लेनी चाहिए। इसके अलावा, जिस शहर में मैच हो रहा है उसकी खास विशेषताओं के बारे में भी सूचना इकट्ठी कर लेनी चाहिए और उसे नोट कर लेना चाहिए। खाली वक्त में, जब खेल न चल रहा हो, उसका सार्थक उपयोग किया जा सकता है। इस कार्यक्रम के लिए लंबी-चौड़ी स्क्रिप्ट तो नहीं बनानी पड़ती पर इसमें भी लेखन की आवश्यकता तो पड़ती ही है।

इसके अलावा, कई ऐसे कार्यक्रम हैं जिनके लिए आलेख नहीं तैयार करना पड़ता बल्कि फुटकर नोट्स बनाने पड़ते हैं। मसलन, यदि आप किसी का साक्षात्कार ले रहे हैं तो आपको पूछे जाने वाले प्रश्नों की सूची तैयार करनी होगी। परिसंवाद, संवाद, परिचर्चा, चैट शो, या फोन-इन कार्यक्रम संचालित करना है तो इसकी भी मोटी रूपरेखा तैयार कर लेनी चाहिए ताकि विषय निर्धारित हो सके, बहस को विषयांतर से बचाया जौ सके और मुद्दे पर बहस या 'बातचीत हो सके।

इसी प्रकार, गीत-संगीत के कार्यक्रम में भी 'कम्पेयरिंग' अर्थात् संचालन की ज्यादा भूमिका होती है स्क्रिप्ट की कम। परंतु यदि गीतों -भरी कहानी प्रस्तुत करनी है या गीत संगीत में ज्ञान और सूचना को पिरोना है तो आपको स्क्रिप्ट तैयार करनी पडेगी। छोटी से छोटी उद्घोषणा भी लिखित होनी चाहिए। रेडियो एक बेहद संवेदनशील माध्यम है और यह काफी लोगों को प्रभावित कर सकता है। स्क्रिप्ट लिखित न होने के कारण कभी भूलवश ऐसी बात मुंह से निकल सकती है जो अनपेक्षित हो। इसलिए रेडियो कार्यक्रम के लिए ज्यादा से ज्यादा स्क्रिप्ट का उपयोग करना चाहिए।

बोध प्रश्न - 2

1. रेडिया- वार्ता लेख से किस प्रकार अलग होती है ?
2. रेडियो-समाचार के विभिन्न स्रोतों का उल्लेख कीजिए।
3. मंचित-नाटक और रेडियो-नाटक का प्रमुख अंतर बताइए।
4. किसी समारोह का आखों देखा हाल सुनाने के लिए आप क्या-क्या तैयारियां करेंगे ?

7.5 रेडियो -लेखन के क्षेत्र

शिक्षा, सूचना और मनोरंजन - ये जनसंचार माध्यमों के प्रमुख कार्य माने जाते हैं। हालांकि शिक्षा, सूचना और मनोरंजन को एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। परंतु अध्ययन की सुविधा के लिए हम इसे सूचना, शिक्षा और मनोरंजन की श्रेणी में विभक्त कर रहे हैं। इसके अलावा, इस भाग में श्रोता-आधारित कार्यक्रमों पर भी अलग से विचार किया गया है।

7.5.1 शिक्षा

जन-जन को जागरूक बनाना, शिक्षित करना, ज्ञान का प्रकाश प्रज्वलित करना, जनसंचार-माध्यमों, खासकर रेडियो का विशेष कार्य और दायित्व है। भारत-जैसे विशाल देश में जहां आज भी ज्यादातर लोग गांवों में रहते है रेडियो शिक्षा और ज्ञान-प्रसार का सबसे मजबूत और सार्थक माध्यम है। शिक्षा का तात्पर्य केवल स्कूली और कॉलेजी पाठ्यक्रमबद्ध शिक्षा से नहीं है। रेडियो पर पाठयक्रमबद्ध शैक्षिक कार्यक्रम भी प्रसारित होते हैं परन्तु ज्ञान के व्यापक रूप को प्रसारित करने में रेडियो की विशेष भूमिका है। भारत -जैसे विकासशील देशों में तो इसकी भूमिका और भी बढ़ जाती है। सामयिक विषय, विज्ञान, साहित्य, स्वास्थ्य के बारे में शिक्षित करने में रेडियो प्रमुख भूमिका निभाता है। भारत जैसे विकासशील देशों की यह विडम्बना है कि अधिकांश बच्चे या तो पढ़ाई शुरू ही नहीं करते और शुरू करते हैं तो उसे बीच में ही छोड़ देते हैं। इस कारण अधिकांश बच्चों तक शिक्षा की रोशनी नहीं पहुंच पाती। रेडियो के माध्यम से शिक्षा की यह रोशनी उन बच्चों तक पहुंचा सक्ते हैं। रेडियो पर ज्ञान-विज्ञान से संबंधित गीत-संगीत के कार्यक्रम, वार्ता नाटक आदि प्रसारित किए जा सकते हैं।

रेडियो के लिए शैक्षिक कार्यक्रम की स्क्रिप्ट तैयार करते समय बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। जैसा कि आप जानते हैं कि रेडियो ध्वनि का माध्यम है और इसमें लेखक/वक्ता श्रोता के समक्ष सशरीर उपस्थित नहीं होता। श्रोताओं से वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश आलेख के जरिए की जाती है। ज्ञान और शिक्षा को मनोरंजन की चाशनी में डुबोकर पेश कीजिए। जान लीजिए कि शुष्क ज्ञान का ग्रहणकर्ता कोई नहीं होता। मजदूर, किसान, दिहाड़ी पर काम करने वाले श्रमिक आदि रेडियो खूब सुनते हैं। अगर उन तक शिक्षा और ज्ञान की रोशनी फैलानी है तो 'चलत मुसाफिर मोह लिया रे पिंजड़े वाली मुनिया' का पुट अवश्य डालना होगा। यदि आप कक्षा में दिए जाने वाले व्याख्यान या मंच पर दिए जाने वाले भाषण की तरह अपना आलेख तैयार करेंगे तो आपका कार्यक्रम टांय-टांय फिस्स हो जाएगा। परंतु मनोरंजन का पुट भी इतना ज्यादा नहीं होना चाहिए कि मनोरंजन ही मनोरंजन हो, ज्ञान और शिक्षा उनके नीचे दबकर शहीद हो जाएं। इन दोनों के बीच संतुलन, सामंजस्य और समन्वय होना चाहिए।

7.5.2 सूचना

आज का युग सूचना के विस्फोट का युग है। जनसंचार माध्यमों की तीव्रता ने आज पूरे विश्व को एक 'वैश्विक ग्राम' में बदल दिया है। जिस प्रकार, गांव में एक घर की सूचना एक छोर से. दूसरे छोर तक क्षण-भर में पहुंच जाती है उसी फ्क्रार आज एक स्थान की खबर सैकडों -हजारों मील दूर बैठे

लोगों तक तीव्रता से पहुंच जाती है। सूचना-विस्फोट के इस युग में रेडियो का महत्व, खासकर विकासशील देशों के लिए, काफी बढ़ गया है। कहीं तूफान आने की आशंका हो, बाढ़ आने का खतरा हो, या किसी आपातकालीन स्थिति की सूचना जन-जन तक पहुंचानी है तो रेडियो से सुलभ और सहज साधन कुछ हो ही नहीं सकता है। इस संदर्भ में दो घटनाएं मुझे याद आ रही हैं। कुछ समय पूर्व पहले आंध्र प्रदेश और गुजरात के तटीय क्षेत्रों में तूफान आने की आशंका की घोषणा की गई और बताया गया कि मछुआरे समुद्र में न जाएं। विधानसभा चुनाव के आसपास दिल्ली में एक अफवाह फैली कि बाजार में नमक की किल्लत है और लोग बढ़ी कीमतों पर नमक खरीद रहे हैं। इसका जवाब रात में दिल्ली की तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने दिया कि दिल्ली नमक की किसी प्रकार की किल्ल्त या कमी नहीं है। जनसंचार माध्यमों (खासकर अखबार) के कारण यह खबर सब तक पहुंची थी कि प्याज की तरह नमक भी महंगा बिक रहा है। यह खबर सुनते ही लोग नमक की दुकानों पर टूट पडे और अफरा-तफरी मच गई। इसलिए संचार-माध्यमों को बहुत जिम्मेदारी से अपनी भूमिका निभानी चाहिए।

सूचना दुधारी तलवार है। अगर यह लाभदायक भी हो सकती है और नुकसानदेह भी। इसके अलावा, सूचना किस शैली में और किस प्रकार प्रस्तुत की जा रही है इसका भी बहुत असर पड़ता है। इसलिए आकाशवाणी के समाचार निदेशालय में आचार-संहिता बनाई गई है जिसकी कसौटी पर खरा उतरने के बाद ही कोई सूचना समाचार बनकर किसी तक पहुंच सकती है। इस प्रकार की आचार-संहिताएं सभी जनसंचार-माध्यमों में अपनाई जानी चहिए।

7.5.3 मनोरंजन

शिक्षा और सूचना यदि जनसंचार की आत्मा है तो मनोरंजन उसकी संजीवनी है मनोरंजन ही जनसंचार को लोकप्रिय और लोकरंजक बनाता है। दिन-भर की थकान से लौटे किसान, मजदूर, कारखानों से लौटे कामगार, कार्यालय से लौटे कर्मचारी शाम को घर आते हैं और जब रेडियो उन्हें चटकीले गीत सुनाता है तो उनकी दिन-भर की थकान क्षण-भर में छू-मंतर हो जाती है।

मनोरंजन स्वास्थ्य के लिए भी लाभप्रद है बशर्ते कि वह स्वस्थ हो। स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करना रेडियो का दायित्व और जिम्मेदारी है। मनोरंजन के कार्यक्रमों में गीत-संगीत, नाटक, प्रहसन, चुटकले, अन्ताक्षरी आदि शामिल होते हैं। हालांकि रेडियो का प्रत्येक कार्यक्रम जीवंत होता है परंतु ये कार्यक्रम खास तौर पर लोगों को गुदगुदाते हैं और उनके तनाव-भरे जीवन को सहज और मुक्त करते हैं।

मनोरंजन के कार्यक्रमों की स्क्रिप्ट लिखते समय या किसी कार्यक्रम में मनोरंजन का पुट भरते समय यह ख्याल रखिए कि उसमें भद्दापन या अश्लीलता न आए। चुटकुला सुनाते समय किसी समुदाय-विशेष, धर्म -विशेष या क्षेत्र-विशेष का अपमान न करें। अभी एक फिल्म का इसीलिए विरोध किया गया कि उसमें एक समुदाय-विशेष के बारे में मजाक में कुछ ऐसे शब्द कहे गए हैं जो अपमानजनक हैं। इस प्रकार के मजाक या विनोद के लिए रेडियो पर कोई जगह नहीं है। भारत एक बहु -सांस्कृतिक, बहु- धार्मिक, बहु-सामुदायिक और बहु- क्षेत्रीय देश है। भारत की इस विविधता को ध्यान में रखना चाहिए और प्रयास यह करना चाहिए कि किसी की भावना को ठेस न पहुंचे। इसके अलावा, भारत की सांस्कृतिक परम्परा, राष्ट्रीय गौरव और गरिमा का भी ख्याल रखना चाहिए। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति से ओत-प्रोत मनोरंजन न केवल हमारे बच्चों और युवाओं को अपनी जड़ों से काटता है। बल्कि उन्हें नकलची

बंदर बनाकर रख देता है। इसलिए किसी भी कार्यक्रम की स्क्रिप्ट तैयार करते समय भारतीय परम्परा और संस्कृति तथा राष्ट्रीय गरिमा पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। भारतीय परम्परा और संस्कृति पर बात करते समय इसके बहु- आयामी और बहु रंगी व्यक्तित्व को नहीं भूलना चाहिए वरना इसमें भी विकृति आ जाएगी और इसे गलत रूप में पेश करने का खतरा उत्पन्न हो जाएगा। खुशी की बात है टेलीविजन की तरह रेडियो अभी पश्चिमोन्मुख नहीं हुआ है। अभी भी भारतीय संस्कृति और परम्परा इसका मेरूदंड है। आप भी अपना आलेख लिखते समय इस परम्परा और विरासत को आगे बढ़ाए।

7.5.4 श्रोता-आधारित कार्यक्रम

श्रोता-वर्ग रेडियो के प्राण होते हैं। श्रोता-वर्ग के अभाव में रेडियो का कोई अस्तित्व नहीं है। श्रोता-वर्ग को ध्यान में रखे बिना कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता है। इसके बावजूद कुछ कार्यक्रम खास श्रोता-वर्ग के लिए होते हैं और उनमें उन्हीं श्रोताओं को ध्यान में रखकर कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं। मलसन, बच्चों के लिए कार्यक्रम, महिलाओं के लिए कार्यक्रम, युवाओं के लिए कार्यक्रम, बुजुर्गो के लिए कार्यक्रम, किसानों या श्रमिकों के' लिए कार्यक्रम आदि।

इस प्रकार के कार्यक्रमों के लिए आलेख लिखने से पहले आकाशवाणी के श्रोता- अनुसंधान-एकक से श्रोताओं की रुचि के संबंध में जानकारी ले लेनी चाहिए। यह एकक श्रोताओं की आदतों, रुचियों आदि का अध्ययन और विश्लेषण करता है।

बच्चों के लिए कार्यक्रम तैयार करते समय और उन कार्यक्रमों का आलेख तैयार करते समय बच्चों की उम्र का ध्यान रखना चाहिए। आम तौर पर रेडियो पर 6 वर्ष के बच्चों के लिए और 7 से 10 वर्ष तक के बच्चों के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। उसे 6 वर्ष के बच्चों के लिए लिखे जाने वाले आलेख छोटे होने चाहिए ताकि उन्हें पांच-सात मिनट में सम्पन्न किया जा सके। इसमें नन्हे -मुन्नों के मनोविज्ञान का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। पशु -पक्षियों की कहानियां, छोटी- छोटी कविताएं, गीत आदि बच्चे बहुत पसंद करते हैं। 7 से 10 वर्ष के बच्चे समझदार होने लगते हैं। उनके सोचने-समझने का दायरा बढ़ने लगता है। अत: इसमें आलेख लेखन का दायरा बढ़ जाता है। इसमें ज्ञान-विज्ञान, महापुरुषों की कहानियां, महाभारत-पुराण के कथा-प्रसंग, त्योहारों, भारत के और विश्व के प्रमुख दर्शनीय स्थलों आदि की भी जानकारी दी जा सकती है। बच्चों के लिए आलेख तैयार करने का क्षेत्र व्यापक है और इसमे अपार संभावनाएं है।

किशोरों और युवाओं के लिए भी रेडियो पर कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। सभी रेडियो स्टेशनों से युवाओं के लिए 'युववाणी' तथा अन्य कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं इसमें नाटक, रूपक, वार्ता, क्विज, इंटरव्यू आदि कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। इसमें खेल, विज्ञान, पर्यावरण, इतिहास, संस्कृति, कला, साहित्य आदि विविध विषयों पर आधारित कार्यक्रम बनते हैं। यदि आप युवाओं के लिए आलेख लिखना चाहते हैं तो आपको पहले पता करना होगा कि आज के युवाओं की रुचि क्या है और उनकी रुचियों के अनुरूप कार्यक्रमों को कैसे प्रभावी बनाया जा सकता है। साथ ही साथ उनकी रुचियों और संस्कारों के परिष्कार करने का भी प्रयास करना चाहिए। यह एक चुनौती- भरा कार्य है। आज के इस भाग-दौड़ और जनसंचार माध्यमों (खासकर टेलीविजन) की चकाचौंध से भरी दुनिया को रेडियो की ओर खींचना एक चुनौती है। ग्रामीण युवा तो रेडियो कार्यक्रम सुनते है परन्तु शहरी युवा, खासकर मध्य वर्ग और उच्च वर्ग का युवा समूह रेडियो से कट-सा गया है। उन्हें रेडियो की ओर आकर्षित करने के

लिए एफ.एम. चैनल शुरु किए गए हैं। हालांकि एफ. एम. केवल युवा श्रोताओं को ही संबोधित नहीं है. परन्तु इस वर्ग का इसमें विशेष ख्याल रखा जाता है।

लेखकों को महिलाओं के लिए आलेख लिखने का एक व्यापक क्षेत्र मिलता है। इसमें खान-पान, गर्भावस्था में देखभाल, बच्चों के पालन-पोषण, उपभोक्ता वस्तुओं की जानकारियां, पर्व- त्यौहार, कानूनी जानकारी, नारी अधिकार, कला संस्कृति आदि से सम्बद्ध विषयों पर आलेख तैयार किए जा सकते हैं।

रेडियो स्टेशनों से बुजुर्गो के लिए भी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इनमें बुजुर्गो के स्वास्थ्य की देखभाल, भारतीय संस्कृति और परम्परा में बुजुर्गों के महत्व, समाज में उनकी आवश्यकता और सम्मान, उनसे जुड़ी सरकारी योजनाओं आदि विषयों पर कार्यक्रम तैयार किए जा सकते हैं। अभी हाल में सरकार ने घोषणा की है कि बुजुर्ग माता-पिताओं को अपने साथ रखने वाले लोगों को आय- कर में छूट दी जाएगी। इससे एक अहम सवाल खड़ा होता है कि क्या केवल कर बचाने के लिए माता-पिता को अपने पास रखना कितना उचित है? इसी प्रकार, अनेक ऐसे विषय है जिन पर रेडियो-कार्यक्रम में वार्ता, इंटरव्यू, परिचर्चा, नाटक आदि के जरिए विचार किया जा सकता है।

आज किसान, मजदूर, श्रमिक, ग्रामीण और निम्न आय वर्ग के श्रोता सबसे ज्यादा रेडियो सुनते हैं। इनकी समस्याओं को केन्द्र में रखकर रेडियो पर कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। आपको भी आलेख लिखते समय इनकी आवश्यकताओं, समस्याओं और इनके मनोविज्ञान, स्तर आदि की जानकारी होनी चाहिए। मजदूरों और श्रमिकों के लिए रेडियो मनोरंजन का एक प्रमुख साधन है। इसलिए उनकी रुचि को देखते हुए रेडियो के लिए आलेख तैयार किए जाने चाहिए। इसके साथ- साथ उन्हें शिक्षित बनाने और जागक करने की दिशा में भी प्रयत्न किए जाने चाहिए। किसानों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें खेती-बाड़ी, खाद-बीज-उर्वरक, विपणन आदि की भी पूरी जानकारी दी जानी चाहिए।

7.6 रेडियो के लेखकीय उपकरण

शब्द, ध्वनि, संगीत और मौन रेडियो-लेखन के प्रमुख उपकरण हैं। इन्हीं के जरिए लेखक रेडियो-आलेख तैयार करता है। टेलीविजन में चेहरे के हाव-भाव, अंग संचालन और संवादों के जरिए दर्शकों तक संदेश पहुंचाया जाता है। समाचारपत्र, पत्रिकाओं और अन्य मुद्रित माध्यमों में छपे हुए शब्द सामने होते हैं परंतु रेडियो में बोले हुए शब्द होते हैं, ध्वनियां होती है और संगीत होता है। रेडियो में 'मौन' का भी अपना विशेष महत्व है। आइए, इन पर अलग- अलग विचार करें।

7.6.1 बोले हुए शब्द

रेडियो के लिए तैयार आलेख को लेखक, उद्घोषक, पात्र या कम्पेयर पढ़ता है और उसके बोले हुए शब्द को श्रोता अपने रेडियो सेट पर सुनते हैं। अर्थात् एक लेखक के रूप में आप जो कुछ लिखते हैं वह लिखित रूप में नहीं बल्कि उच्चरित रूप में श्रोताओं तक पहुंचता है। रेडियो से आने वाले शब्द अनिवार्यत: बोले हुए होते हैं। इसलिए आपका लेखन भी बोले हुए शब्द के निकट होना चाहिए लिखित शब्द के निकट नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि आप ऐसे शब्दों का इस्तेमाल करें जिनके उच्चारण में उद्घोषक को कोई मुश्किल न हो। तत्सम और किल्ष्ट शब्दों को त्यागना रेडियो लेखन के लिए अनिवार्य है।

7.6.2 ध्वनि-प्रभाव

शुरू से हम कहते आ रहे हैं कि रेडियो ध्वनि का माध्यम है। रेडियो में ध्वनि का उपयोग जिस रूप में होता है उसे ध्वनि-प्रभाव के नाम से जाना जाता है। रेडियो में ध्वनि प्रभावों के जरिए परिवेश-निर्माण का कार्य किया जाता है। तलवार की खनखनाहट से युद्ध का, चिड़ियों की चहचहाहट से सुबह का, मशीन के शोर से कारखाने का, ट्रैफिक के शोरगुल से रास्ते का। इस प्रकार कई प्रकार की स्थितियों की सूचना दी जा सकती है। रेडियो-नाटक, फीचर, डॉक्युमेंट्री, डॉक्युड्रामा-जैसे कार्यक्रमों के लिए आलेख तैयार करने के लिए ध्वनि-प्रभावों के प्रयोग की जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

7.6.3 संगीत

रेडियो-कार्यक्रमों में संगीत की अहम भूमिका होती है। संगीत के बिना रेडियो फीका, बेजान और स्वादहीन हो जाएगा। संगीत नहीं तो रेडियो नहीं। संगीत ने ही सीलोन रेडियो को लोकप्रिय बनाया। फिर भारत में उसकी तर्ज पर 'विविध भारती' कार्यक्रम आरंभ किया गया। आज के एक सर्वाधिक लोकप्रिय कार्यक्रम एफ.एम. में भी संगीत की ही प्रधानता है। कैसेट पर सुन चुके गाने को भी रेडियो पर सुनने का एक अलग मजा होता है। गीतों भरी कहानी में गीत से ही कहानी बनती है। गीत-संगीत के कार्यक्रम में विभिन्न समस्याओं से लोगों को अवगत कराया जा सकता है, ट्रैफिक की सूचना दी जा सकती है, महामारी की रोकथाम की चर्चा की जा सकती है।

ये तो हुई गीत-संगीत के कार्यक्रम की बात। इसके अलावा, संगीत आरंभ, पृष्ठभूमि, परिवेश, समय-अंतराल आदि से भी जुड़ जाता है। जैसे हवा महल का संगीत/जैसे हवा महल का आरंभिक संगीत बजता है, वैसे ही सब लोग हवा महल सुनने के लिए रेडियो के पास चले आते हैं। इस प्रकार संगीत कई बार कार्यक्रम की पहचान बन जाता है।

रेडियो नाटक लिखने वाले आलेख-लेखकों को तो संगीत के उपयोग की विशेष जानकारी होनी चाहिए। रेडियो-नाटकों में संगीत के जरिए खुशी और गम का माहौल प्रसारित किया जाता है। इसके अलावा, संगीत से पर्दा उठाने-गिराने का काम भी लिया जाता है। मंचीय नाटकों में एक दृश्य समाप्त होने और दूसरा शुरू होने के बीच में पर्दा गिराया ओर उठाया जाता है। ऐसा दृश्य-परिवर्तन के लिए किया जाता है। रेडियो पर प्रसारित होने वाले नाटकों में संगीत के माध्यम से ही दृश्य-परिवर्तन की सूचना दी जाती है।

7.6.4 मौन

ध्वनि का माध्यम होने के बावजूद रेडियो में 'मौन' का विशेष महत्व है। रेडियो पर 'चुप्पी', 'मौन' या 'पॉज' को भी सुना जा सकता है और महसूस किया जा सकता है। रेडियो -नाटक में 'मौन' का सार्थक और सर्जनात्मक प्रयोग किया जाता है। 'स्तब्धता', ' आक्रोश', 'भय' आदि को 'मौन' के जरिए प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।

रेडियो पर प्रसारित होने वाले दो कार्यक्रमों के बीच भी चुप्पी का उपयोग किया जाता है, लेकिन इस चुप्पी का अंतराल क्षणिक होना चाहिए वर्ना इसका निषेधात्मक प्रभाव पड़ेगा और इससे बोरियत पैदा होगी।

हास्य के कार्यक्रमों में हास्य-कथा या चुटकुले के बाद हल्का-सा मौन फिर पृष्ठभूमि से खिलखिलाते स्वर। यहां पर मौन हास्य-व्यंग्य की धारा को और धारदार बना देता है।

बोध प्रश्न - 3

1. रेडियो में ध्वनि-प्रभाव का क्या अर्थ है ?
2. रेडियो में संगीत का उपयोग किन-किन कार्यो के लिए किया जाता है ?
3. रेडियो में मौन से क्या तात्पर्य है और इसका सार्थक उपयोग किस प्रकार किया जाता है?

7.7 रेडियो की प्रस्तुतीकरण- तकनीक

रेडियो के लिए आलेख लिखने के लिए इसकी तकनीकी शब्दावलियों और प्रकृति से परिचित होना लाभकारी सिद्ध होता है। इन तकनीकों को जानना वस्तुत: रेडियो की प्रस्तुतीकरण-तकनीक से ही परिचय प्राप्त करना है। आप इस तकनीक से जितना अधिक परिचित होंगे आपके आलेख में उतना ही परिष्कार आएगा। इस भाग में हम रेडियो में बार-बार प्रयुक्त शब्दावलियों जैसे फेड आउट, फेड इन, क्रॉस फेड, सुपर इम्पोजिंग और अंडर की चर्चा करने जा रहे हैं।

7.7.1 फेड आउट

जब रेडियो से कोई आवाज धीरे- धीरे कम होती हुई लुप्त हो जाती है तो उसे 'फेड आउट' के नाम से जाना जाता है। रेडियो में अक्सर गाना या गीत एक झटके से बंद नहीं होता बल्कि धीरे-धीरे बंद होता है। यह श्रोता की मानसिकता और मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर किया जाता है। इससे मस्तिष्क को झटका नही लगता है। रेडियो -नाटक में दूर जाती आवाज के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

7.7.2 फेड इन

रेडियो पर कार्यक्रम पेश करने वाला प्रस्तुतकर्ता धीरे- धीरे गीत की आवाज तेज करता है जिससे श्रोता के कान पर किसी प्रकार का प्रहार नहीं होता बल्कि ऐसा लगता है कि पृष्ठभूमि से गीत उभरता हुआ सामने आया है। फेड इन की इस तकनीक का रेडियो-नाटक में बढ़िया उपयोग किया जा सकता है। जैसे घोड़ों की टाप और रथ के पहिए की आवाज को उभारने में इस तकनीक का इस्तेमाल किया जा सकता है।

7.7.3 क्रॉस फेड

फेड आउट और फेड इन के बीच जब प्रस्तुतकर्ता कुछ बोलता नहीं और एक गीत फेड आउट करते हुए दूसरा गीत फेड इन कर देता है तो इस प्रक्रिया को क्रॉस फेड कहा जाता है। किसी के आगमन और प्रस्थान को दिखाने के लिए इस विधि का इस्तेमाल किया जा सकता है।

7.7.4 सुपर इम्पोजिंग और अंडर

शब्द, संगीत, ध्वनि का सार्थक उपयोग ही सुपर इम्पोजिंग और अंडर है। इसमें शब्द के ऊपर संगीत, या संगीत के ऊपर शब्द या विभिन्न ध्वनियों के बीच उभरता स्वर सुनाया जाता है। संगीत का टोन कम कर प्रस्तुतकर्ता बीच में अपनी बात कहने लगता है। पृष्ठभूमि में संगीत भी चलता है

और संवाद भी। रेडियो-नाटक, डॉक्युमेंट्री, आखों देखा हाल आदि में इस तकनीक का अक्सर प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी मेले का दृश्यांकन करना है। आप मेले का दृश्यांकन ध्वनि प्रभावों के माध्यम से करेंगे। अब यदि आप कुछ संवाद भी डालना चाहते हैं तो आपको मेले की ध्वनि को पृष्ठभूमि में ले जाना होगा अर्थात् उसकी आवाज कम करनी होगी और संवाद को उभारना होगा। यह सुपर इम्पोजिंग का उदाहरण हुआ। यदि आप फिर संवाद समाप्त कर मेले का ध्वनि-प्रभाव प्रमुख करना चाहते हैं जिससे लगे कि मेला लगा हुआ है तो इस प्रक्रिया को अंडर कहेंगे।

बोध प्रश्न - 4

1. निम्नलिखित शब्दावलियों का अर्थ स्पष्ट करें।
   (क) फेड इन (ख) फेड आउट
   (ख) सुपर इम्पोजिंग
2. रेडियो की प्रस्तुतीकरण-तकनीक पर एक लेख लिखें।
3. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखें
   (अ) युववाणी (ब) महिलाओं के कार्यक्रम
   (स) मनोरंजन कार्यक्रम (द) बच्चों के कार्यक्रम

7.8 रेडियो- लेखन की विशेषताएं

रेडियो पर जो कुछ प्रसारित होता है वह दिखाई नहीं देता बल्कि केवल सुनाई देता है। इसमें बोले हुए शब्दों और ध्वनियों की प्रमुखता होती है। तब सवाल यह उठता है कि यदि रेडियो का मुख्य आधार ध्वनि है तो रेडियो -लेखन की जरूरत क्या है ? बस, बोलकर कार्यक्रम प्रसारित कर लिया जाए! परंतु ऐसा हो नहीं सकता। मनुष्य की स्मृति की अपनी सीमा है। बिना लिखे बोलने से कभी-कभी महत्वपूर्ण मुद्दा छूट जाता है, अनावश्यक बातें निकल सकती हैं और इसमें विषयान्तर का भी खतरा बना रहता है। बिना लिखे हुए बोलने से गलत शब्दों के प्रयोग का भी खतरा बना रहता है। रेडियो-प्रसारण में इसे बिलकुल इजाजत नहीं दी जाती। इसीलिए जो कुछ भी बोला जाता है, उसे लिख लिया जाता है।

7.8.1 रेडियो -लेखन और मुद्रित-लेखन

रेडियो के लिए लेखन और मुद्रण के लिए लेखन में एक मूलभूत अंतर यह है कि रेडियो में जो कुछ बोला जाता है उसे लिखा जाता है। वह सुनने के लिए लिखा जाता है। दूसरी तरफ, पुस्तक आदि का लेखन पढ़ने के लिए किया जाता है। सुनने और पढ़ने के इस फर्क के कारण ही भाषा बदल जाती है, शैली भिन्न प्रकार की हो जाती है।

जब कोई पुस्तक लिखी जाती है या लेख लिखा जाता है तो अक्सर उसमें लिखा होता है 'उपर्युक्त' संदर्भ में यह बात सही लगती है 'अथवा' निम्नलिखित गुणों पर विचार करना जरूरी है'। रेडियो लेखन में 'उपर्युक्त', 'निम्नलिखित', 'निम्नांकित' का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि श्रोता को कुछ ऊपर या नीचे नजर तो आता नहीं। इसी प्रकार, मुद्रित माध्यम में 'यह' और 'वह' सर्वनाम का उपयोग किया जाता है परंतु रेडियो में 'ये ' और 'वो ' का प्रयोग किया जाता है क्योंकि यह बोलचाल की भाषा के निकट है।

मुद्रित-माध्यम में 'क्रमश: ' का प्रयोग किया जाता है। रेडियो-लेखन में 'क्रमश: ' का प्रयोग नहीं करना चाहिए। मसलन, मुद्रित-माध्यम के लिए हम लिख सकते हैं - पटना, लखनऊ, कलकत्ता और बंगलौर क्रमश: बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश की राजधानियां हैं। रेडियो में क्रमश: लगाकर इतना लंबा वाक्य नहीं बनाया जा सकता। जब तक श्रोता बिहार, उत्तर प्रदेश तक पहुंचेगा तब तक वह पटना और लखनऊ को भूल चुका होगा। लिखे हुए को तो फिर से पढ़ा जा सकता है पर सुने हुए को फिर से सुना नहीं जा सकता, जब तक कि उसे फिर से दुहराया न जाए। इसलिए रेडियो पर 'क्रमश: ' लगाकर लंबे वाक्य बनाने की छूट नहीं है।

इसी प्रकार रेडियो पर 'अत: ', 'एवं ', 'तथा:, ' आदि' जैसे शब्दों का प्रयोग उचित नहीं है। 'अंततोगत्वा',' अन्योन्याश्रित', 'द्रष्टव्य', पिष्टपेषण' जैसे तत्सम, क्लिष्ट और बोलने में कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। रेडियो पर पांडित्य-प्रदर्शन के लिए कोई जगह नहीं है।

7.9 लेख-लेखन

यह तो आप जान ही गए है कि श्रव्य-माध्यम होने के कारण रेडियो के लिए लिखना विशिष्ट दक्षता की मांग करता है। आप यह भी जान गए हैं कि रेडियो के लिए आलेख तैयार करते समय माध्यम के रूप में रेडियो, उसकी विशेषताओं और कमियों, श्रोताओं आदि का ध्यान रखना पड़ता है।

7.9.1 विधा का चुनाव

रेडियो के लिए आलेख-लेखन योजनाबद्ध ढंग से करना चाहिए। सबसे पहले तो विधा का चुनाव करना चाहिए। मसलन, आप वार्ता लिखना चाहते हैं या रेडियो -नाटक या रूपक या प्रहसन आदि। विधा का चुनाव करते वक्त आप स्वयं को परखिए कि आपकी उस विधा में पकड़ कैसी है। इसके लिए आप अपने मित्रों को अपने लिखे आलेख 'सुना' सकते हैं।

7.9.2 विषय - वस्तु

विधा और विषय-वस्तु का चुनाव एक-दूसरे से जुड़ा है और पूरक भी है। कभी-कभी लेखक विषय के अनुरूप विधा और कभी विधा के अनुरूप विषय का चुनाव करता है। परंतु विषय का चुनाव करते समय दो बातों का ध्यान रखना जरूरी है -

1. आपकी उस विषय पर पकड़।
2. श्रोता वर्ग की रुचि।

जिस विषय पर आप लिखना चाहते हैं उसकी आपको प्रामाणिक जानकारी होनी चाहिए। तथ्यात्मक जानकारी के लिए आप पुस्तकें पढ़ सकते हैं, लोगों की राय पूछ सकते हैं, घटना-स्थल पर जाकर घटना की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। शोध और खोज से विषय को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने में मदद मिलती है। वार्ता, नाटक, रूपक, डॉक्युमेंट्री, लगभग सभी रेडियो-कार्यक्रमों में शोध की गुंजाइश होती है।

विषय और विधा का चुनाव श्रोताओं की रुचि और पसंद पर आधारित होना चाहिए। इसके लिए भी शोध की आवश्यकता होती है। श्रोता क्या पसंद करते हैं, क्या नापसंद करते हैं - इसकी सूचना वे पत्रों के माध्यम से रेडियो स्टेशनों पर भेजते रहते हैं। 'चिट्ठी-पत्री' कार्यक्रम में उनके कुछ पत्र पढ़े

भी जाते हैं और उनका उत्तर भी दिया जाता है। परंतु इन पत्रों का कार्यक्रम निर्माण और सुधार की दृष्टि से विशेष महत्व है। इसीलिए रेडियो स्टेशनों पर श्रोता अनुसंधान एकांश भी बनाए गए हैं। आप यहां से श्रोता की पसंद और नापसंद का जायजा ले सकते हैं।

श्रोताओं की पसंद और नापसंद का ख्याल रखने के साथ-साथ उनकी रुचि के परिष्कार और संस्कार-निर्माण का कार्य भी सतत रूप से चलते रहना चाहिए। कार्यक्रम तो श्रोता से प्रभावित होने ही चाहिए, पर कार्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए कि श्रोता कार्यक्रम के अनुरूप अपने को ढालने के लिए प्रेरित हो सके। रेडियो में श्रोताओं को प्रभावित करने की अपार संभावनाएं हैं। आपको इन संभावनाओं की खोज कर अपने आलेख को पुष्ट और समृद्ध करना चाहिए।

7.9.3 आलेख का आकार

रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रम समय की सीमा में बंधे होते हैं। इसलिए आपका आलेख भी 'समयबद्ध' होना चाहिए। यानी आपके आलेख का प्रस्तुतीकरण-समय पांच मिनट से लेकर आधे घंटे तक का हो सकता है। आम तौर पर रेडियो पर आधे घंटे से अधिक का एक कार्यक्रम नहीं तैयार किया जाता। समय को शब्द-संख्या में ढाला जा सकता है। आम तौर पर एक मिनट में 150 के आस-पास शब्द बोले जा सकते हैं। वार्ता तैयार करते समय यह हिसाब रखा जा सकता है। नाटक, प्रहसन आदि में संवाद, ध्वनि प्रभावों, संगीत, अंतराल आदि का समय भी नोट कर लेना चाहिए।

7.9.4 आलेख का गठन

रेडियो का आलेख जितना संक्षिप्त हो उतना ही अच्छा है। संक्षिप्त आलेख में एक कसावट होती है जो श्रोता को बांध कर रखती है। श्रोता एक ही कार्यक्रम देर तक नहीं सुन सकता। उसे तो टुकड़ो -टुकड़ों में भांति-भांति के कार्यक्रम चाहिए। उसे एक ऐसे बाग की सैर करानी होती है जहां किस्म-किस्म के फूल अलग-अलग सुगंध बिखेरते हैं।

किसी रेडियो -आलेख का दारोमदार उसके आरंभ पर निर्भर करता है। कार्यक्रम का आकर्षक आरंभ आलेख की सफलता की पहली शर्त है। किसी भी कार्यक्रम के आरंभ से ही यह तय हो जाता है कि श्रोता रेडियो बंद कर देगा या दूसरा स्टेशन लगा देगा।

आकर्षक आरंभ श्रोता में कार्यक्रम सुनने की उत्सुकता जगाता है तो आलेख का प्रवाह उसे कार्यक्रम से बांधकर रखता है। आलेख में प्रवाह लाने के लिए उसमें भाषा की सहजता के साथ- साथ विषय का नयापन और प्रस्तुति का नया अंदाज भी होना चाहिए। इसके अलावा, आलेख में मनोरंजन का पुट भी डालने का प्रयत्न कीजिए। श्रोताओं को हंसाइए, गुदगुदाइए और अपनी बात कहते चलिए। कहने के अन्दाज से गम्भीर से गम्भीर विषय भी रुचि से सुने जाते हैं।

7.9.5 आलेख लिखने की विधि

आलेख लिखने से पहले उससे जुड़ी समस्त जानकारियां जुटा लेनी चाहिए। इसकी चर्चा हम शोध वाले अंश में भी कर चुके हैं। इसके बाद, आलेख का एक रफ ड्राफ्ट तैयार कर लेना चाहिए। इसके बाद, इसका अंतिम प्रारूप तैयार करना चाहिए।

अंतिम प्रारूप ए- 4 आकार के सादे कागज पर तैयार करना चाहिए। आलेख कागज के एक ही तरफ लिखना चाहिए। एक पेज में एक या दो पैराग्राफ लिखना चाहिए। अच्छा हो कि हर पैराग्राफ

नए पेज से शुरू हो। इससे रिकॉर्डिंग में सुविधा होती है। प्रस्तुतकर्ता एक पेज पढ़कर एक ओर रखता जाता है और दूसरा पेज उठाता जाता है। इससे पेज की आवाज माइक्रोफोन नहीं पकड़ता।

7.10 सारांश

इस पाठ में आपने रेडियो-लेखन के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त की। इसमें आपको रेडियो के अर्थ, इतिहास, जनसंचार माध्यम के रुप में रेडियो, संगठन के रुप में रेडियो, रेडियो पर प्रसारित होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों के साथ- साथ रेडियो-लेखन के क्षेत्र, लेखकीय उपकरण, प्रस्तुतीकरण तकनीक, रेडियो-लेखन की विशेषताएं और आलेख-लेखन से परिचित कराया गया है।

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप अब तक यह तो समझ ही गए होगे कि ध्वनि माध्यम के लिए लिखना विशिष्टता की मांग करता है। इस पाठ में हमने रेडियो-लेखन की इसी विशिष्टता से आपको अवगत कराया है आशा है इससे आपको रेडियो- आलेख तैयार करने में मदद मिलेगी।

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. जनसंचार माध्यम के रूप में रेडियो की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
2. रेडियो पर प्रसारित होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों की चर्चा कीजिए।
3. रेडियो के जरिए विभिन्न श्रोता-वर्ग के लिए शिक्षा, सूचना और मनोरंजन के कार्यक्रम किस प्रकार तैयार किए जाते हैं ?
4. रेडियो के लेखकीय उपकरणों पर विचार कीजिए।
5. रेडियो-लेखन और मुद्रित-लेखन का अंतर स्पष्ट कीजिए।
6. रेडियो के लिए आलेख लिखने के लिए आप क्या-क्या तैयारी करेंगे और इसे किस प्रकार प्रस्तुत करना चाहेंगे ?
7. शहरों में बढ़ते प्रदूषण पर एक रेडियो-वार्ता तैयार कीजिए।
8. एक दिन का समाचार-पत्र पढ़िए और उसमें छपे समाचारों के आधार पर रेडियो-समाचार का आलेख तैयार कीजिए।

7.12 उपयोगी पुस्तकें

रेडियो लेखन; मधुकर गंगाधर, बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना

जनसंचार : विविध आयाम, बृजमोहन गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली,

रेडियो वार्ता शिल्प : सिद्धनाथ कुमार, राधाकृष्ण प्रा. लि., नई दिल्ली

हिंदी रेडियो नाटक : जयभगवान गुप्त, मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक

प्रसारण की विविध विधाएं : मुरली मनोहर मंजुल, साहित्य संगम, इलाहाबाद

इकाई 8 उद्घोषणा - लेखन

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 'उद्घोषणा' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ

8.3 पूर्व रूप

8.4 आधुनिक रूप

8.5 उद्घोषणा का लक्ष्य

8.6 तैयारी

8.7 उद्घोषणाओं के विविध रूप

8.8 उद्घोषणाओं की भाषा

8.9 शैली

8.10 लिखना अनिवार्य

8.11 उद्घोषणाएं कैसी हों?

8.12 उद्घोषणाएं लिखना

8.12.1 उद्घोषणाओं का आलेख

8.13 अन्य उद्घोषणाएं

8.14 आकाशवाणी और दूरदर्शन की उद्घोषणाओं में अंतर

8.15 निबन्धात्मक प्रश्न

8.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.17 परिशिष्ठ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

- उद्घोषणा शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ से परिचित हो जाएंगे
- उद्घोषणा के पुराने और नए रूपों की जानकारी पा जाएंगे
- उद्घोषणा के लक्ष्य समझने लगेंगे
- उद्घोषणाओं की भाषा और शैली की विशेषताएं जान जाएंगे
- आकाशवाणी और दूरदर्शन की घोषणाओं का अंतर समझ जाएंगे

8.1 प्रस्तावना

दूरदर्शन को इस देश में आए चालीसवां वर्ष चल रहा है। इन चालीस वर्षो में दूरदर्शन की तकनीक और कार्यक्रमों दोनों की दृष्टि से आशातीत प्रगति हुई है। आज आकाशवाणी और दूरदर्शन धरती के ट्रांसमीटरों से निकलकर उपग्रह-प्रसारण के क्षेत्र में है। देशी और विदेशी उपग्रह चैनलों की प्रतिस्पर्धा के कारण दूरदर्शन और अन्य टीवी. चैनलों के प्रसारण अब लाखों की अपेक्षा करोड़ों और अरबों लोगों

तक पहुंच रहे हैं। प्रसारणों के विस्तृत होते आयामों के परिप्रेक्ष्य में उद्घोषणाओं का स्वरूप भी तेजी से बदल रहा है।

उद्घोषणाओं को लिपिबद्ध कर लेना चाहिए जिससे कि बोलते समय अटकने और भटकने की गुंजाइश न रहे। विषय, प्रसंग और अवसर के अनुकूल न केवल उन्हें लिखा जाना चाहिए वरन् उनका वाचन भी तदनुरूप सुसंगत विधि से किया जाना चाहिये।

8.2 उद्घोषणा शब्द का अर्थ

उद्घोषणा शब्द का क्या अर्थ है ? व्युत्पत्ति के अनुसार उद्घोषणा शब्द 'उत्' उपसर्ग सहित 'धुष' धातु में ल्युट् एवं टाप प्रत्यय लगाकर बना है। 'उत्' उपसर्ग जिन क्रियाओं और संज्ञाओं में लगाया जाता है, उन्हें यह जो अर्थ प्रदान करता है उनमें से हमारे विषय से सम्बन्धित अर्थ है ऊपर, उच्च, अतिशय, फुलाना, बढ़ाना आदि। 'धुष्' धातु का अर्थ है शब्द करना, ऊँचे स्वर से चिल्लाना, सार्वजनिक रूप से घोषणा करना आदि। इस प्रकार उद्घोषणा का व्युत्पत्तिपरक अर्थ हुआ 'ऊँची आवाज में कहना, जोर से बोलकर जताना, मुनादी करना, सार्वजनिक ऐलान आदि।

8.3 पूर्व रूप

उद्घोषकों का पूर्व रूप ढिंढोरची में ढूंढा जा सकता है। दुनिया भर के सभी देशों में अत्यन्त प्राचीन काल से राजाओं द्वारा अपने आदेशों को प्रचारित कराने की परम्परा रही है। इस के लिए ढिंढोरा, जो एक प्रकार का ढोल था, पीटकर पहले लोगों को इकट्ठा किया जाता था और फिर स्वर में उन्हें राजा के आदेश की सूचना दी जाती थी। उसे राजा की घोषणा या मुनादी करना भी कहा जाता था।

8.4 आधुनिक स्वरूप

आज 'उद्घोषणा' का मुख्य अर्थ प्रभावी ढंग से बोल कर (ऊंचे स्वर का स्थान अब लाउडस्पीकर, पब्लिक एड्रेस सिस्टम, रेडियो, टीवी, आदि ने ले लिया है। इसलिए ऊंचे स्वर में बोलने का महत्व स्वत: ही समाप्त हो गया है।) जनसामान्य को या अधिक से अधिक इकट्ठा हुई भीड़ को उनके हित या उनके उपयोग की बातों की जानकारी देना है। आज उद्घोषणाओं का उपयोग अनेक स्थानों पर और अनेक माध्यमों से होता है। इनमें कुछ मुख्य हैं : - रिक्शे / टैक्सी आदि से ऐलान या प्रचार किया जा सकता है तो रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डे, बड़े अस्पताल, बड़े दफ्तर, व्यस्त चौराहे पर उपस्थित जनसमूह को जानकारी या निर्देश दिया जाता है। आकाशवाणी और दूरदर्शन प्रभावशाली संचार माध्यम है। चुनाव के समय, नाटकों सभाओं में, पुरस्कार-वितरण, समारोहों आदि में उद्घोषक आवश्यक जानकारी और सूचनाएं देता है।

जितना बड़ा और जैसा श्रोता या दर्शक-समुदाय होता है उद्घोषणाओं का स्वरूप उसी के अनुरूप होता है। यदि आप किसी कॉलेज के समारोह में या किसी हॉल आदि में आयोजित किसी कार्यक्रम का संचालन करते हुए उद्घोषक की भूमिका निभा रहे है। तो आपकी उद्घोषणाएं उस समारोह में बैठे दर्शक-वृन्द की शिक्षा, संस्कृति, पसन्द और पकड़ के अनुरूप होगी। किसी रेलवे स्टेशन या हवाई अड्डे पर उद्घोषणाएं करते समय आप का श्रोता-समुदाय न केवल आपकी नजरों से परे होता है वरन् सर्वथा भिन्न संघटनों का होता है। इससे भी और आगे आकाशवाणी या दूरदर्शन पर उद्घोषणाएं करते समय

आप हजारों -हजारों कि. मी. दूर देश-विदेश के कोने-कोने में बैठे श्रोता- दर्शक समुदाय को सम्बोधित करते हैं। दूरदर्शन पर दर्शक तो उद्घोषक को देखते है परन्तु उद्घोषक दर्शकों को नहीं देख पाता।

8.5 उद्घोषणा का लक्ष्य

आज आकाशवाणी और दूरदर्शन दोनों पर ही उद्घोषणा का मुख्य लक्ष्य लाखों - करोड़ों श्रोताओं - दर्शकों को कार्यक्रम सम्बन्धी या अन्य प्रकार की सूचनाएं प्रदान करना है। आकाशवाणी और दूरदर्शन दोनों पर ही उद्घोषकों के अनेक रूप सामने आते हैं। कभी वे प्रसारणीय कार्यक्रमों की सूचनाएं देकर दर्शकों को उनकी रुचि के कार्यक्रम देखने का आमंत्रण देते हैं, कभी वे स्वयं विभिन्न कार्यक्रमों का संचालन करते हैं, कभी वे समाचार पढ़ते है, कभी वे रोचक भेंटवार्ताएं करते हैं, कभी प्रश्नोत्तर देते हैं, कभी स्टूडियो से बाहर होने वाली विविध घटनाओं के आखों देखे हाल को या सजीव चित्रों को अपने सुमधुर वाचन के साथ श्रोताओं / दर्शकों के सामने परोसते हैं, कभी वे स्वयं घटनाओं की रिपोर्टिंग करते हैं और कभी आमंत्रित दर्शकों के सामने प्रस्तुत कार्यक्रमों का संचालन करते हैं। अच्छे उद्घोषकों की समाज में बड़ी सम्माननीय एवं सर्वथा स्पृहणीय स्थिति होती है। सभी लोग उन्हें विविध समारोहों में आदरपूर्वक आमंत्रित करते हैं और जहां उद्घोषक जाते हैं वहां उनसे बातचीत का अवसर पा सकने वाले लोग अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

8.6 तैयारी

आप को कॉलेज के समारोह, रेलवे स्टेशन, आकाशवाणी भवन या दूरदर्शन कहीं के लिए भी उद्घोषणाएं करने का अवसर मिला हो, आप नए उद्घोषक हों या काफी मंजे हुए, आपके-लिए उद्घोषणाओं का आलेख लिखने से पूर्व यह सर्वथा आवश्यक है कि आप उस समारोह, आयोजन या कार्यक्रम के पूरे विवरण पता कर लें। जहां तक सम्भव हो सके इन कार्यक्रमों के पूर्वाभ्यास या रिकार्डिंग को अवश्य देखें। आपकी उद्घोषणाओं का सबसे बड़ा और एकमात्र लक्ष्य है श्रोताओं और दर्शकों में अगला कार्यक्रम सुनने / देखने के प्रति उत्सुकता जगाना। इस दृष्टि से अपनी उद्घोषणाओं को आकर्षक बनाने के लिए आपको जो सहायक सामग्री. लिखित या अपेक्षित जानकारी, लगे उसे आयोजकों से पहले अवश्य एकत्र करें।

उद्घोषणाएं लिखने से पूर्व आप अपने श्रोतावर्ग या दर्शकों के संख्यापरक आकार, शिक्षा, संस्कृति, परिवेश और ग्रहण- शक्ति की अधिक से अधिक जानकारी अवश्य प्राप्त करें और अपनी उद्घोषणाओं को सर्वथा उनके अनुरूप ही डालें। आपका जो श्रोता या दर्शक वर्ग है उसका आकार क्या है, उस में आमतौर पर कितने प्रतिशत और किस स्तर तक साक्षर है, उनके रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, परिधान, उस क्षेत्र का पर्यावरण, पेड़-पौधों आदि का ज्ञान उद्घोषणाएं लिखने से पूर्व परमावश्यक है। बेहतर यही होगा कि उद्घोषक उसी श्रोता या दर्शक- क्षेत्र से हो जिससे उसे इन सब का अच्छा ज्ञान हो।

8.7 उदघोषणाओं के विविध रूप

दूरदर्शन और आकाशवाणी दोनों पर ही उद्घोषणाओं के अनेक रूप देखने को मिलते है। उद्घोषणाओं के कुछ प्रमुख रूप इस प्रकार है : -

(1) सातत्य उद्घोषणाएं-किसी प्रसारण-सभा के प्रारंभ मे उस सभा में प्रसारित किए जाने वाल सारे कार्यक्रमों की. सूचनापरक उद्घोषणाएं करना, बीच में कहीं-कही कार्यक्रम के प्रारंभ में उसको पेश करने की उद्घोषणा, कहीं समय बच रहा हो तो आगे या अगले दिन प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों के बारे में श्रोताओं/दर्शकों को आकृष्ट करने वाले कार्यक्रम की उद्घोषणा तथा प्रसारण- सभा के अंत में दर्शकों से विदा लेने वाली उद्घोषणा।

(2) समाचार पढ़ना (विशेष प्रकार की उद्घोषणा)

(3) कार्यक्रमों का संचालन

(4) घटनाओं की रिपोर्टिग

(5) भेंटवार्ता

(6) वाचन करना

(7) विज्ञापनों के लिए उद्घोषणाएं करना

(8) दर्शकों के समक्ष आयोजित कार्यक्रम

(9) साप्ताहिकी, कार्यक्रम प्रोन्नयन कैप्सूल

इस पाठ में हम केवल पहले प्रकार की कुछ उद्घोषणाओं का आलेख लिखने की चर्चा करेंगे।

8.8 उद्घोषणाओं की भाषा

उद्घोषणाओं की भाषा कैसी हो इसका विवेचन करने से पूर्व एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा। 1982 के आस-पास महबूब साहब की एक फिल्म रिलीज हुई 'रजिया'। फिल्म में बहुत भारी लागत लगी थी और उसी हिसाब से यह काफी ऊंचे दामों पर सिनेमा के सर्किटों में बिकी थी। मैं उन दिनों जालंधर में था। वहां जब रिलीज से पहले सिनेमाघर मालिकों आदि के लिए इसका शो हुआ तो अधिकांश लोग एक घंटे के बाद ही हॉल से बाहर आ गए। बाद में यह फिल्म सिनेमा हॉल में दिखाई गई तो बुरी तरह फ्लाप हुई और इसके प्रोड्यूसर और वितरकों को भारी घाटा उठाना पड़ा। कारण क्या था ? इस फिल्म की भाषा फारसी के शब्दों से बोझिल उर्दू थी जो आम सिनेमा दर्शक की समझ से परे थी।

हम चाहे किसी माध्यम के लिए उद्घोषणाओं का आलेख लिख रहे हों हमारा मुख्य उद्देश्य होता है जनसंचार और जनसंचार भी ऐसा कि एक समय में एक ही बार की उद्घोषणा से हजारों, लाखों और करोड़ों लोगों तक सर्वथा सहज परंतु समझ में आने वाले रूप में अपनी बात को पहुंचाना। इस दृष्टि से उद्घोषणाएं चाहे बंद कमरे में या खुले में आयोजित किसी समारोह के कार्यक्रमों की हों और चाहे आकाशवाणी और दूरदर्शन के कार्यक्रमों की हों, उनमें भाषा का बहुत अधिक महत्व है। हमारे यहां दूरदर्शन और आकाशवाणी इन दोनों माध्यमों के दर्शकों - श्रोताओं में एक बहुत बड़ा भाग उन लोगों का है जो सर्वथा निरक्षर है। इन लोगों में किसान, मजदूर, गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोग, गृहणियां छोटे-मोटे व्यापारी, खोमचे वाले और न जाने कितने ही ऐसे वर्गों के लोग होते हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन दोनों का उद्देश्य इन सभी वर्गो तक भी अपने कार्यक्रम पहुंचाना होता है। इसलिए आकाशवाणी और दूरदर्शन इन दोनों ही माध्यमों पर उद्घोषणाओं की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो इन सब लोगों को आसानी से और एकदम समझ में आ जाए। यह भाषा ऐसी होनी चाहिए जो किसी आकाशवाणी या दूरदर्शन-केन्द्र के ग्रहण- क्षेत्र के अधिकांश पढ़े-लिखे और बेपढ़े- लिखे लोग अपने दिन-प्रतिदिन के कामों में बोलचाल में प्रयोग करते हों। इन लोगों तक कोई संदेश केवल बोले हुए शब्दों से ही पहुंचाया

जा सकता है। मुद्रित शब्द यहां सर्वथा प्रभावहीन हैं। ऐसी भाषा में लेखन बड़े अभ्यास से आता है। साहित्य में बी.ए., एम. ए. के छात्रों को साहित्यिक भाषा पर तो पूरा अधिकार होता है परन्तु जन-जन की समझ में आने वाली भाषा में लिखने की दक्षता प्राप्त करने में समय लगता है।

उद्घोषणाओं की भाषा का सरल और सहज बोधगम्य होना उन का सबसे पहला गुण है। भाषा की सरलता बोलने वाले और लिखने वाले दोनों की योग्यता, शिक्षा, संस्कारों आदि पर निर्भर करती है। यदि हमारे अधिसंख्य श्रोता या दर्शक प्रबुद्ध वर्ग के साहित्यिक रुचि वाले हैं और कार्यक्रम भी साहित्य संबंधी है तो यदि हम साहित्यिक भाषा का जो क्लिष्ट शब्दों, नाना अलंकारों आदि से विभूषित हो, प्रयोग करें तो वह विषयानुकूल कहलाएगी परन्तु यदि हमारे श्रोताओं या दर्शकों में काफी संख्या बिना पढ़े-लिखे या थोड़ा पढ़े- लिखे की हो तो हमें अपनी उद्घोषणाओं में भाषा का बड़ी समझदारी और सूझ-बूझ से प्रयोग करना होगा। इस दृष्टि से हमारे श्रोताओं या दर्शकों की दैनिक प्रयोग की भाषा में समीपवर्ती भाषा- क्षेत्रों की भाषाओं के अलावा अंग्रेजी आदि के शब्दों का बहुतायत से प्रयोग होता है तो हमें भी अपनी उद्घोषणाओं की भाषा में उन्हें उपयुक्त स्थान देना होगा। संस्कृतनिष्ठ या शुद्ध हिन्दी भाषा का प्रयोग करने के मोह में हम रेलगाड़ी को लौहपथ-गामिनी नहीं कह सकेंगे। उसके लिए हमें रेलगाड़ी शब्द का ही प्रयोग करना होगा। इसी प्रकार कई वस्तुओं, परिधानों, सब्जियों, तीज-त्यौहारों, खेतीबाड़ी आदि में प्रयोग की जाने वाली दवाओं आदि के नाम प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग पाए जाते हैं। इन सभी नामों के वही स्वरूप हमें अपनी उद्घोषणाओं में अपनाने चाहिए जो उस क्षेत्र-विशेष या श्रोताओं और दर्शकों के वर्ग में बहुतायत से प्रयोग किए जाते हों।

ठीक यही स्थिति किसी भाषा की लोकोक्तियों और मुहावरों की होती है। ऐसा दखा गया है कि अलग-अलग क्षेत्र में लोकोक्तियों और मुहावरों का स्वरूप भी अलग-अलग होता है। हमें अपनी उद्घोषणाओं में लोकोक्तियों और मुहावरों के केवल उन्हीं रूपों का प्रयोग करना चाहिए जो रूप हमारे श्रोतावर्ग या दर्शक-समुदाय में प्रचलित हैं। कई कहावतें किसी एक क्षेत्र-विशेष में अच्छी तरह प्रचलित होती हैं जब कि अन्य क्षेत्रों में उन्हें कोई समझता तक नहीं। हमें अपनी उद्घोषणाओं में केवल उन्हीं कहावतों का उपयोग करना चाहिए जो उस क्षेत्र की हों और वहां के लोगों द्वारा आसानी से समझी जाती हों।

कहने का अभिप्राय यह है कि हमारी उद्घोषणाओं में भाषा के उसी स्वरूप का प्रयोग किया जाना चाहिए जो हमारे श्रोतावर्ग या दर्शक समुदाय में विभिन्न बोलियां बोलने वाले लोगों द्वारा भले ही न बोली जाती हो परन्तु अच्छी प्रकार से समझी जाती हो और दिन-प्रतिदिन के कामकाज में व्यवहार की जाती हो। यह भाषा किताबी भाषा से बिलकुल अलग होती है। इस भाषा में जहां एक ओर आंचलिकता की महक होती है वही क्षेत्र की बोलियों के अनेक शब्द समाहित होते हैं। इस भाषा को भले ही अधिक बोलियां बोलने वाले अच्छी प्रकार बोल न सकें परन्तु उसे समझने में उन्हें रंच -मात्र भी कठिनाई नहीं होती है।

शैली

हम प्रतिदिन न जाने कितने लोगों से बात करते हैं। घर पर मां-बाप, भाई-बहिन, पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि से बात करते हैं, कार्यालय में अधिकारियों और अधीनस्थों से बात करते हैं, कहीं मित्रों से बात करते हैं, सहपाठियों से बात करते हैं और न जाने कितने अपरिचितों से भी बात करते हैं। कभी आपने ध्यान दिया है कि क्या हम इन सबसे एक ही ढंग से बात करते हैं। नहीं, हम हर बार जिस

से बात कर रहे हैं उसके पद, स्थिति आदि के अनुरूप उससे अलग- अलग ढंग से बात करते हैं। क्रोध, हर्ष, शोक, पछतावे इन सबमें हमारी आवाज अलग-अलग रहती है। कभी हम जोर से बोलते हैं कभी धीरे से और कभी धीरे से बोलते हुए भी अपनी उस दृढ़ता का परिचय देते हैं जो सामान्यत ऊंचे बोल कर दर्शाई जाती है।

उद्घोषणाओं या समाचार-वाचन की स्थिति भी ठीक ऐसी ही है। किसी समय हम किस प्रकार के श्रोताओं या दर्शकों को सम्बोधित करने वाले हैं, किस प्रकार के कार्यक्रमों की उद्घोषणाएं करेंगे, हमारे कार्यक्रम के कलाकार कौन होंगे, हम जो समाचार पढ़ेंगे उनकी विषयवस्तु क्या है, किस व्यक्ति से हम भेंटवार्ता करेंगे आदि विभिन्न स्थितियों में हमें भिन्न-भिन्न प्रकार से पूर्णत: सुसंगत ढंग से बोलना होता है। बोलने का यह ढंग अलग- अलग व्यक्तियों का अलग- अलग होता है। इसी को बोलने की शैली या अंदाजेबयां भी कहते हैं। हमारी उद्घोषणाओं का आलेख इस अंदाजे-बयां के सर्वथा अनुरूप ही होना चाहिए.। वाक्यों को बोलने में भावों के अनुरूप उतार-चढ़ाव, शब्दों और वाक्यों में अलग-अलग स्थानों पर बल देकर बोलना, थोड़ी अभिनेयता, सुर में आरोह-अवरोह और फिर इन सबके अनुरूप भाव-भंगिमाएं ये किसी भी उद्घोषक को उसका एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती हैं। जिस प्रकार किन्हीं दो व्यक्तियों की शक्ल में कुछ-न-कुछ अन्तर होता है, आवाज में फर्क होता है, शब्दावाणी अलग-अलग होती है उसी प्रकार हर उद्घोषक को अपनी शैली भी अलग ही बनानी चाहिए। उद्घोषणाओं का आलेख लिखते समय आपके मास्तिष्क में यह स्पष्ट रहना चाहिए कि आप कौन सी उद्घोषणा किस अंदाज में करने जा रहे हैं। आप अपने मार्ग -दर्शन के लिए अच्छे से अच्छे वक्ताओं को सुन सकते हैं, अच्छे से अच्छे उद्घोषकों और समाचार वाचकों को अदाकारी देख-सुन सकते हैं, परन्तु सावधान! आप किसी की नकल जरा भी न करें। अपने विशिष्ट गुणों के आधार पर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास करें जो आपका और सर्वथा आपका हो। अपनी उद्घोषणाओं का आलेख लिखते समय इन सारी बातों का पूरा-पूरा ध्यान रखें।

8.10 उद्घोषणाएं अवश्य लिखी जाएं

उद्घोषणाओं का आलेख अवश्य लिखें। एक बार जब उद्घोषणाएं अच्छी तरह से लिख ली जाती हैं और उद्घोषक उनकी सारी विषय-वस्तु को अच्छी तरह समझ लेते हैं तब उद्घोषणाएं करने का कार्य काफी सुगम हो जाता है। कई अनुभवी उद्घोषक पूरी उद्घोषणाएं लिखने को अधिक महत्व नहीं देते और केवल कुछ बिन्दु लिखकर उदघोषणाएं कर देते हैं। लेकिन ऐसे अवसरों पर अक्सर बड़ी-बड़ी गलतियां होने की संभावना रहती है और अक्सर हो भी जाती हैं। उदघोषणाओं का पूरा आलेख लिखने पर जोर देने के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क यह है कि पहले से आलेख लिखने में हमें सोचने का काफी समय मिल जाता है जो आशु उद्घोषणाएं करने में कभी नहीं मिल पाता है। पूरा आलेख पहले से लिखने का यह अर्थ कदापि नहीं कि आप उसे शब्दशः दोहराए। किसी भी फिल्म या आकाशवाणी-दूरदर्शन के नाटक/ धारावाहिक आदि में कोई भी अभिनेता संवादों की पूरी तरह वह शब्दावली नहीं बोलता जा सवाद -लेखक ने लिखी है। बोलने की रवानगी और शैली के अनुसार उन शब्दावलियों में अभिनेता अनेक परिवर्तन करते हैं, कभी संवादलेखक और निर्देशक की सहमति से तो कभी बिना पूर्व सहमति के। लक्ष्य केवल एक होता है और वह है प्रभावी जनसंचार। किन्तु इससे संवाद पहले से लिखे ही न जाएं ऐसी कोई छूट नहीं मिलती। ठीक यही स्थिति उद्घोषणाओं की है। उद्घोषक चाहे कितने ही अधिक अनुभवी हों

उद्घोषणाओं का आलेख लिखना अनिवार्य है. भले ही उदघोषणाएं करते समय उसमें कितने ही परिवर्तन हो जाए।

8.11 उद्घोषणाएं कैसी हों ?

जनसंचार-माध्यमों पर हमारी उद्घोषणाओं का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे श्रोताओं / दर्शकों में हमारे कार्यक्रम सुनने -देखने के प्रति आकर्षण पैदा हो। जनसंचार-माध्यमों की उद्घोषणाओं की तुलना गृहिणी द्वारा भोजन परोसने की कला से की जा सकती है। कभी-कभी हमारे घरों में बहुत अच्छे-अच्छे व्यंजन बनते हैं, स्वादिष्ट सब्जियां होती हैं साथ में जीभ ललचाने वाले और बहुत-से भोज्य पदार्थ होते हैं। हम सबने अनुभव किया होगा कि यदि सारे स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ भी अच्छी तरह, स्नेहपूर्वक, करीने से न परोसे जाएं तो इन सब पदार्थों का मजा किरकिरा हो जाता है। इसके विपरीत भले ही रसोई में साधारण दाल-चावल, रोटी-बनी हो और उसे गृहिणी स्नेह से खाने वालो की रुचि के अनुकूल ढंग से परोसे तो उन साधारण पदार्थों में खाने का जो मजा आता है वह किसी पांच सितारा होटल के खाने में भी कहां आ सकता है ! ठीक यही स्थिति संचार-माध्यमों के कार्यक्रमों की है। अलग-अलग रूप में वे भले ही कितने ही श्रोताओं और दर्शकों को आकर्षित करने में सक्षम हों, परन्तु इन सारे कार्यक्रमों को यदि अच्छी प्रकार से आकाशवाणी या दूरदर्शन पर प्रस्तुत न किया जाए तो श्रोताओं/ दर्शकों का सारा आनंद समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत यदि हमारे कार्यक्रम साधारण हों, किन्तु प्रस्तुतकर्ता बहुत अच्छे हों जो अपनी नपी-तुली सुरीली आवाज और लच्छेदार भाषा से श्रोताओं या दर्शकों का ध्यान अपने कार्यक्रमों की ओर खींच सकें तो साधारण कार्यक्रमों को देखने के लिए भी हमें अधिक से अधिक श्रोता और दर्शक मिल सकते हैं।

8.12 उद्घोषणाएं लिखना

आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्रों के दिन भर के प्रसारण अलग-अलग प्रसारण-सभाओं में बंटे होते हैं और साधारणत: एक उद्घोषक को किसी एक प्रसारण-सभा की उद्घोषणाएं करने का ही दायित्व सौंपा जाता है। उद्घोषकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रसारण-सभा प्रारंभ होने से कम से कम दो-तीन घंटे पूर्व केन्द्र पर अवश्य पहुंच जाएं उद्घोषकों को केन्द्र पर पहुंचते ही सबसे पहले अपनी प्रसारण-सभा की क्यूशीट ड्यूटी आफिसर से लेनी चाहिए। क्यूशीट किसी प्रसारण-सभा से पहले तैयार की गई उस सभा में प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रमों की सूची होती है, जिसमें कार्यक्रमों के नाम, प्रसारण-समय, अवधि, कलाकार, टेप न., स्टूडियो नं. आदि का पूरा- पूरा विवरण दिया होता है। यह क्यूशीट किसी प्रसारण-सभा में कार्यरत इंजीनियरों, कार्यक्रम- अधिकारियों तथा अन्य सभी कर्मचारियों के लिए दिशा-निर्देशक का काम करती है और समूची प्रसारण-सभा का संचालन इसी क्यूशीट के आधार पर होता है।

दूरदर्शन प्रधानतया एक दृश्य-माध्यम है। विषयवस्तु के दृश्य में सामने दिखाई देने के कारण दूरदर्शन में विवरण स्पष्ट करने वाली उद्घोषणाओं के लिए काफी कम अवसर होता है। जब से विदेशी चैनलों के प्रसारण हमारे देश में आए हैं, उनमें डिब्बाबंद सामग्री (पहले से तैयार की गई फिल्म या टेप) का ही बाहुल्य रहता है। वहां सारी उदघोषणाएं भी पहले से रिकार्ड की हुई ही होती हैं। इनकी देखा-देखी तथा कुछ अन्य विभागीय कारणों से अब दूरदर्शन में भी बहुत कम उद्घोषणाएं सजीव की जाती हैं। इसलिए अब दूरदर्शन में उद्घोषकों की आवश्यकता घटती जा रही हैं। इसी कारण यहां पर दूरदर्शन

की अपेक्षा आकाशवाणी की उद्घोषणाएं लिखना ही सिखाने का प्रयास किया गया है। आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र की एक वास्तविक प्रसारण क्यू- शीट शिक्षार्थियों के दिशा-निर्देश हेतु इस पाठ के साथ संलग्न है।

इस क्यूशीट के अनुसार प्रसारण-सभा में जहां-जहां उद्घोषणाएं की जानी हैं उन्हें रेखांकित कर दिया गया है। सबसे पहले प्रात: 5.55 पर आरम्भिक उद्घोषणा है। इस उद्घोषणा में केन्द्र- पहचान, तिथि, वार, समय, प्रसारण के मीटर आदि का विवरण दिया जाता है। आमतौर पर यह उद्घोषणा इस प्रकार की होती है?

"366.3 मीटर/ अर्थात् 810 किलोहर्ट्ज पर यह आकाशवाणी का दिल्ली केन्द्र है (या हम 36 6.3 मीटर अर्थात् 810 किलोहर्ट्ज पर आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से बोल रहे हैं।) आज बुधवार है शक संवत् 1920 के कार्तिक मास कृष्ण पक्ष की दूसरी तिथि, तद्नुसार 7 अक्टूबर, सन् 1998। सवेरे के 5 बजकर 56 मिनट और 30 सैकण्ड हुए हैं। अब हमारी पहली सभा प्रारम्भ होती है।"

प्रातःकाल की इस सभा की दूसरी उद्घोषणा है 'कार्यक्रम-विवरण' जिसका प्रसारण प्रात: 6.50 पर किया जाना है। इस उद्घोषणा में पूरे दिन प्रसारित किए जाने वाले मुख्य-मुख्य कार्यक्रमों के विवरण इस ढंग से दिए जाएंगे कि जिससे एक ओर तो श्रोताओं को दिनभर के कार्यक्रमों की जानकारी मिल सके और वे इस जानकारी के आधार पर दिनभर में अपने द्वारा सुने जाने वाले कार्यक्रमों की सूची बना सकें। इस प्रकार के कार्यक्रम-विवरणों का श्रोताओं में हमारे कार्यक्रमों में आकर्षण पैदा करने की दृष्टि से विशेष महत्व है।

इस कार्यक्रम-विवरण का आलेख तैयार करने के पूर्व हमें आकाशवाणी के अधिकारियों की सहमति से उन कार्यक्रमों की एक सूची तैयार कर लेनी चाहिए जिनका उल्लेख इस उद्घोषणा में किया जाना है। अब से पहले नित्य के कुछ प्रसारण यथा हिन्दी समाचार प्रात: 7.00, 8.00, 9.00, 10.00 और 11.00 बजे; दोपहर बाद 1.05, 2.10 और 3.05 बजे; शाम 5.00, 6.05 ओर 7.00 बजे ; 8.45, 11.05 और अर्धरात्रि 12.05; शाम 6.10 प्रादेशिक समाचार (हरियाणा) और 7.50 अन्य सभी क्षेत्रों के प्रादेशिक समाचार ; प्रात: 9.00 और शाम 7.30 बजे रोजगार समाचार ; अंग्रेजी समाचार दोपहर 12.00 बजे, इनके अलावा पंजाबी में समाचार दोपहर- बाद 1.40 और उर्दू समाचार दोपहर-बाद 1.50 बजे और रात्रि 9.15 बजे तवसरे के साथ।

मुख्य कार्यक्रम प्रात: 7.30 फोन इन कार्यक्रम : उठिये अच्छे स्वास्थ्य के साथ

प्रात : 8.15, दोपहर 11.05 और रात्रि 9.00 बजे शास्त्रीय संगीत : सिंह बन्धु-गाय,

प्रात : 8.45 सुगम संगीत

प्रात : 10.10, और शाम 5.10 शैक्षिक प्रसारण

प्रात : 11.30 और रात्रि 10.30 शास्त्रीय संगीत : बलजीतसिंह-तार शहनाई-वादन

दोपहर : बहनों का कार्यक्रम

12.45 सुगम संगीत

1.10 आपकी पसंद

2.00 उन्नत कृषि

2.25 एक ही कलाकार

शाम : 5.30 ब्रजमाधुरी

5.50 गढ़वाली संगीत

6.20 ग्राम संसार

7.05 कृषि जगत

7.35 सामयिकी

रात्रि : 8.00 हिन्दीवार्ता

8.30 सुबद्ध संगीत

9.30 चर्चा का विषय है

10.00 साहित्य भारती

11.10 आपकी फरमाइश

इन कार्यक्रमों को छांट कर अब हमें कार्याधिकारी के साथ बैठकर इन कार्यक्रमों का अधिक से अधिक विवरण प्राप्त करना चाहिए और कुछ चुने हुए कार्यक्रमों की रिकार्डिंग भी सुनने का प्रयास करना चाहिए। ये कार्यक्रम-विवरण दो प्रकार से दिए जा सकते हैं और उन्हीं के अनुसार इन उद्घोषणाओं के आलेख भी दो प्रकार से लिखे जा सकते हैं। पहले प्रकार में हम दर्शकों को प्रसारण समय के क्रम में कार्यक्रमों की जानकारी दे सकते हैं। दूसरे प्रकार में हम सारे कार्यक्रमों को कुछ विभागों में बांट लेते हैं और फिर उनके बारे में दर्शकों को बताते हैं। दूसरा प्रकार अधिक समीचीन प्रतीत होता है और हम उसी ढंग से उद्घोषणाओं का आलेख तैयार करेंगे।

यदि हम ध्यान से देखें तो हम इन सभी मुख्य कार्यक्रमों को निम्न विभाग में रख सकते हैं-

1. समाचार
2. सामयिक कार्यक्रम
3. संगीत
   - क. शास्त्रीय - गायन और वादन
   - ख. सुगम संगीत
   - ग. लोक-संगीत
   - घ. फिल्म
4. ग्रामीण श्रोताओं के लिए कार्यक्रम
5. वार्ता एवं साहित्य
6. शैक्षणिक कार्यक्रम
7. सुविधाओं पर कार्यक्रम

अब हम इसी आधार पर कार्यक्रम-विवरण की इन उद्घोषणाओं का आलेख लिखना प्रारम्भ करते है।

8.12.1 उद्घोषणाओं का आलेख

लीजिए, अब सुनिए आज प्रसारित किए जाने वाले कुछ कार्यक्रमों का विवरण। सबसे पहले नित्य प्रसारित किए जाने वाले समाचार बुलेटिनों के समय

हिन्दी समाचार प्रातः सात, आठ, नौ, दस और ग्यारह बजे; दोपहर बाद एक बजकर पांच मिनट पर, दो बजकर दस मिनट पर, और तीन बजकर पांच मिनट पर, शाम पांच बजे, छः बजकर पांच मिनट पर और सात बजे; रात्रि आठ बजकर पैंतालीस मिनट पर, ग्यारह बज कर पांच मिनट पर अर्धरात्रि बारह बजकर पांच मिनट पर।

हिन्दी में ही रोजगार समाचार प्रातः नौ बजकर पांच मिनट और शाम साढ़े सात बजे प्रसारित किए जाएंगे।

हिन्दी में हरियाणा के प्रादेशिक समाचार शाम छः बजकर दस मिनट पर और पूरे क्षेत्र के प्रादेशिक समाचार शाम सात बजकर 50 मिनट पर।

अंग्रेजी समाचारों का प्रसारण समय दोपहर बारह बजे होगा।

पंजाबी समाचार दोपहर बाद एक बजकर चालीस मिनट पर होंगे

उर्दू समाचार दोपहर बाद एक बजकर पचास मिनट पर और रात सवा नौ बजे तवसरे के साथ प्रसारित किए जाएंगे।

रात्रि साढ़े नौ बजे सामयिक विषयों का कार्यक्रम होगा ' 'चर्चा का विषय है' '।

हमारे आज के शास्त्रीय संगीत के कलाकार हैं, सिंह बन्धु और बलजीत सिंह। सिंह बन्धुओं का गायन आप सुन सकेंगे सवेरे सवा आठ बजे, ग्यारह बजकर पांच मिनट पर और रात नौ बजे। बलजीत सिंह का तार शहनाई वादन प्रातः साढ़े ग्यारह बजे और रात साढ़े दस बजे सुना जा सकेगा।

सुगम संगीत के कार्यक्रमों में केन्या चक्रवर्ती आपके लिए कुछ गीत गाएंगी प्रातः पोने नौ बजे। प्रातः साढ़े दस बजे मोहम्मद निजाम व साथियों से गजलें सुनी जा सकेंगी, दोपहर बारह बजकर पैतालीस मिनट पर रीता पांडे के स्वर में सुनिए कुछ गीत और दोपहर बाद दो बजकर पच्चीस मिनट पर आप भूपेन्द्रसिंह का गायन सुन सकेंगे।

लोक संगीत के कार्यक्रमों में बुन्देलखण्डी लोकगीत- दोपहर बारह बजकर पांच मिनट पर, ब्रज माधुरी में राधा शर्मा और विमला गोयल द्वारा गाए गए लोकगीत शाम साढ़े पांच बजे और विनय कुकरेती से गढ़वाली गीत शाम पांच बजकर पचास मिनट पर।

फिल्म संगीत के कार्यक्रम दोपहर बाद पोने तीन बजे और फिर रात्रि ग्यारह बजकर दस मिनट पर आपकी फरमाइश में।

दोपहर सवा बारह बजे ग्रामीण बहनों के कार्यक्रम में डा. अनीता मेहंदीरत्ता से परिवार नियोजन के स्थायी साधनों के बारे में और प्रवीणसिंह के बदलते मौसम में शिशुओं की देखभाल के बारे में बातचीत की जाएगी और लोकगीत प्रसारित किए जाएंगे।

दोपहर बाद दो बजे रामवचन राम मूंगफली की खेती में फसल सुरक्षा के बारे में जानकारी देंगे।

शामः छः बजकर बीस मिनट पर 'ग्राम संसार' कार्यक्रम में एस. एस. शर्मा की वार्ता होगी। " वन्य जीव-जन्तु-संरक्षण : दया और समाज और टेकचन्द लोकगीत सुनाएंगे।

शाम सात बजकर पांच मिनट पर "कृषि जगत्" कार्यक्रम प्रसारित किया जाएगा जिसमें आप डा. एन. एस. इंगले से बातचीत सुनेंगे "कृषक प्रशिक्षण" कब, क्यों और कैसे "? बाजार भाव बताए जाएंगे, लोकगीत होंगे और मौसम की जानकारी दी जाएगी।

रात्रि आठ बजे हमारे हिन्दी वार्ताओं के कार्यक्रम में आज डाक सचिव श्री आर. यू. एस. प्रसाद से भेंटवार्ता प्रसारित की जाएगी जिसका विषय है "हमारी डाक : उपलब्धियाँ", श्री प्रसाद से भेंट कर रहे हैं सुन्दर लाल कुकरेजा।

रात्रि दस बजे हमारा साहित्यिक कार्यक्रम "साहित्य भारती" प्रसारित किया जाएगा।

प्रात: दस बजकर दस मिनट पर और पुन: शाम को पांच बजकर दस मिनट पर शैक्षिक प्रसारण के अन्तर्गत शशि कोचर सातवीं कक्षा के विद्यार्थियों को अंग्रेजी कम्पोजीशन में दशहरा और दीवाली के त्यौहारों के बारे में लिखने का प्रशिक्षण देंगी।

प्रात: सात बजकर पांच मिनट पर रेलवे बुलेटिन होगा। जिसमें दिल्ली क रेलवे स्टेशनों से जाने और यहां आने वाली रेल गाड़ियों के समय, देरी से चलने आदि की जानकारी दी जाएगी।

प्रात: साढ़े सात बजे "फोन इन कार्यक्रम" का आज का विषय है 'उठिये अच्छे स्वास्थ्य के साथ"।

8.13 अन्य उद्घोषणाएं

हिन्दी में रेलवे बुलेटिन की सारी जानकारी रेलवे उपलब्ध कराती है। आकाशवाणी के उद्घोषकों को उन्हें केवल अपने माध्यम और अपने श्रोताओं की अपेक्षाओं के अनुरूप ढालना होता है। प्रात: काल नौ बजकर बीस मिनट, दस बजकर पांच मिनट तथा दोपहर बाद दो बजकर बीस मिनट के कार्यक्रम विवरण का स्वरूप हमारी ऊपर लिखित उद्घोषणाओं के समान ही होगा। केवल इसमें पहले प्रसारित हो चुके कार्यक्रमों को छोड़ दिया जाएगा। शाम चार बजकर पचपन मिनट पर आरम्भिक उद्घोषणा और कार्यक्रम-विवरण को मिला दिया गया है। शाम को प्रसारण सभा की इस प्रारम्भिक उद्घोषणा में दिन, तिथि आदि के विवरण नहीं दिए जाएंगे। इस आरम्भिक उद्घोषणा का स्वरूप इस प्रकार हो सकता है : -

"यह आकाशवाणी दिल्ली है 366.3 मीटर अर्थात् 810 किलो हर्ट्ज पर। समय है शाम के चार बजकर पचपन मिनट और..... सैकण्ड। हमारी शाम की प्रसारण-सभा में आपका स्वागत है। अभी आप कुछ ही देर में सुनेंगे हिन्दी समाचार।....

शाम पांच बजकर पांच मिनट पर श्रोताओं के मतलब की विभिन्न सूचनाएं दी जानी है। इनका आलेख सूचनाओं के अनुरूप होगा।

आकाशवाणी में काफी कार्यक्रमों के पूर्व भी उद्घोषणाएं की जाती है। इन घोषणाओं में अगले कार्यक्रम के कलाकार, विषयवस्तु, राग, बोल, वार्ताकार आदि का परिचय दिया जाता है। दूरदर्शन में ऐसी उदघोषणाएं प्राय: नहीं के बराबर ही होती है।

8.14 आकाशवाणी और दूरदर्शन की उदघोषणाओं में अन्तर

आकाशवाणी केवल शब्दों का माध्यम है जबकि दूरदर्शन रूप और शब्द दोनों का। आकाशवाणी के प्रसारणों में हम शब्दों से अपने बिम्ब बनाते हैं जबकि दूरदर्शन में ये बिम्ब हमें साक्षात् दिखाई देते

हैं। इसीलिए दूरदर्शन की उदघोषणाओं में दृश्य को स्पष्ट करने में सहायक शब्दों का ही उपयोग किया जाता है जो वस्तु सामने दिख रही है इसका वर्णन करने वाले शब्दों का नहीं। इसीलिए आकाशवाणी की उद्घोषणाएं जहां विस्तृत और विवरणात्मक होती है वहां दूरदर्शन की उद्घोषणाएं संक्षिप्त और सारमुक्त।

8.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उद्घोषणा का क्या अभिप्राय है? आकाशवाणी और दूरदर्शन में उदघोषणाओं का क्या महत्व है।

2. उद्घोषणाएं प्रभावी रूप से श्रोताओं / दर्शकों को हमारे कार्यक्रमों के प्रति आकृष्ट कर सकें इसके लिए उनकी भाषा और शैली का स्वरूप कैसा होना चाहिए ?
3. उद्घोषणाओं का आलेख लिखने से पूर्व किन-किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है?
4. उद्घोषणाएं लिखने से पूर्व क्या-क्या तैयारियां की जानी चाहिए ?
5. दूरदर्शन केन्द्र, दिल्ली से प्रसारणीय निम्न कार्यक्रमों की प्रारम्भिक परिचयात्मक घोषणाएं लिखिए-
   (I) प्रात: 5.55 किसी एक दिन की प्रारंभिक उद्घोषणा
   (II) प्रात: 9.30 जिम्बाब्बे की राजधानी हरारे में जिम्बाब्बे और भारत के बीच एक दिवसीय मैच का सीधा प्रसारण
   (III) रात्रि 10.30 संगीत का राष्ट्रीय कार्यक्रम पं. जसराज : शास्त्रीय गायन राग दरबारी
   (IV) रात्रि 8.28
   8.30 पर हिन्दी समाचार
   8.50 संसद समाचार
   6.55 सामयिकी- दिल्ली में मुख्यमंत्री परिवर्तन
   9.00 इंगलिश न्यूज
   9.25 पार्लियामेंट न्यूज की उद्घोषणा

8.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. नमस्कार शांति प्रसाद अग्रवाल ऋतम्भरा प्रकाशन, 1/567, वैशाली, गाजियाबाद-201010 दूरभाष : 774326, 775187
2. The Techanique of T.V. News : IVOR Yorke
   Focal Press, London : 1978
3. The Work of the Television Journalist : Robert Tyrrell
   Focal Press Ltd., London 1972 second Ed. 1981
4. The Technique of Television Announcing : Brucelewis, Focal Press London and New York :1966

8.17 परिशिष्ट

दिल्ली क :366.3 मीबुधवार :दिन .

दिनांक 7.10.98

	प्रातः	प्रसारण पहला	
	5.53	कं आकाशवाणी .रू .प्रतीक धुन :	
डीजो 2 ड़े	5.55	13	वन्दे मातरम् / आरंभिक उद / मंगल ध्वनि
अति जोड़े	6.00	स .2	हिन्दी समाचार
अति हटाएं	6.05	13	वन्दना
	6.30	13	श्री रामचरित मानस से
	6.40	13	विचार बिन्दु महर्षि अरविन्द के विचार :
	6.45	13	कृषि चर्चाबरसीम की बिजाई-
	6.50	13	कार्यक्रम विवरण-हिन्दी
	6.55	13	वृन्दगान :
अति जोड़े	7.00	सं .2	हिन्दी समाचार
अति हटाएं	7.05	13	रेलवे बुलेटिनहिन्दी-
	7.10	13	आज सुबह चन्द्र मोहन
	7.30	16	फोन इन कार्यक्रम :उठिये अच्छे स्वास्थ्य के साथ
	7.55	13	कार्यक्रम विवरण -हिन्दी
अति जोड़े	7.57.30	सं .2	कैपसूल नं .1
अति जोड़े	8.00	सं .2	समाचार प्रभात
अति हटाएं	8.15	13	शास्त्रीय संगीत गायन- सिंह वस्तु :
	8.45	13	सुगम संगीतगीत - केया चक्रवर्ती .
अति जोड़े	9.00	सं .2	हिन्दी समाचार
अति हटाएं	9.05	13	रोजगार समाचार
अति जोड़े	9.10	13	राज्य से चिट्ठी
	9.15	13	विकास यात्रा
	9.20	13	कार्यक्रम विवरणहिन्दी-
अति हटाएं	9.25	13	सभा समापन
	प्रातः	कं / आकाशवाणी प्रतीक धुन 13/ .रू .आरम्भिक उद्घोषणा	
अति जोड़े	10.00	सं.2	हिन्दी समाचार
अति हटाएं	10.05	13	कार्यक्रम विवरण - हिन्दी
	10.10	13	शैक्षिक प्रसारण सातवीं कक्षा के लिए - फेस्टिवल दशहरा) अंग्रेजी कम्पोजिशन शशि कोचर (और दीवाली
	10.30	13	सुगम संगीत निजाम व साथी .मो :

			)कव्वाली(
अति जोड़े	11.00	सं .2	हिन्दी समाचार
अति हटाएं	11.05	13	शास्त्रीय संगीत सिंह ब :न्धुगायन-
	11.30	13	शास्त्रीय संगीत तार -बलजीतसिंह : शहनाई वादन
<u>दोपहर</u>			
अति जोड़े	12.00	सं .1	अंग्रेजी समाचार
अति हटाएं	12.05	13	लोक माधुरीबुन्देल खंडी-
	12.15	13	ग्रामीण बहनों का कार्यक्रम :
			(1) बातचीत परिवार नियोजन के स्थाई - साधन
			-डा अनीता मेहदीरता .
			)2) लोकगीत
			(3) बातचीतबदलते मौसम में शिशुओं की- देखभालप्रवीणसिंह -
	12.45	13	सुगम संगीत :-रीता पांडेगीत-
	दिल्ली क :3663 मीबुधवार :दिन .		
	दिनांक 7.10.98		
			<u>प्रसारण। जारी-</u>
अति जोडे	1.05	सं .2	हिन्दी समाचार
अति हटाएं	1.10	13	आप की पसन्द
अति जोड़े	1.40	सं .2	पंजाबी समाचार
	1.50	सं .2	उर्दू समाचार
अति हटाऐं	2.00	13	उन्नत कृषि मूंगफली फसल की सुरक्षा। रामवचनराम
अति जोड़े	2.10	सं .2	<u>हिन्दी समाचार</u>
	2.20	13	कार्यक्रम विवरणहिन्दी-
अति हटाएं	2.25	13	एक ही कलाकारभूपेन्द्रसिंह-
	2.45	13	फिल्म संगीत :
	3.00	13	देशगान
अति जोड़े	3.05	सं .2	हिन्दी समाचार
अति हटाये	3.10	13	मौसम संबंधी सूचना और सभासमापन-
	दिल्ली क :366.3 मीदिन .: बुधवार		
	दिनांक 7.10.98		

	सांय	प्रसारण ॥ जारी -	
	4.53	कं: आकाशवाणी प्रतीक धुन .रू .	
	4.55	13	आरम्भिक उद्/कार्यक्रम विवरणहिन्दी-
अति जोड़े	5.00	सं .2	हिन्दी समाचार
अति हटाएं	5.05	13	सूचनाएं
	5.10	13	शैक्षिक प्रसारण का पुनफिल्म/प्रसारण : संगीत
	5.30	13	ब्रज माधुरी लोक रस मंजरी गायक स्वर - राधा शर्मा, विमला गोयल
	5.50	13	गढ़वाली संगीतवीना कुकरेती :
अति जोडे	6.05	सं .2	हिन्दी समाचार
अति हटाएं	6.10	रिले 13/	प्रादेशिक समाचार (हरियाणा)
	6.20	13	ग्राम संसारवन्य जीवजन्तु संरक्षण-, दया और समाज.एस-एसशर्मा . लोकगीतटेकचन्द-
अति जोड़ें	7.00	सं .2	हिन्दी समाचार
	दिल्ली क	:366बुधवार :दिन .मी 03 दिनांक 7.10.98	
		सांय प्रसारण।। जारी-	
अति जोड़ें	7.05	13	कृषि जगत बाजार भाव :, बातचीतकृषक : प्रशिक्षणकब क्यों और कैसे, लोकगीत -डा. एनइंगले कल के कृषि कार्यक्रम .एस . और मौसम
	7.30	13	रोजगार समाचार
अति जोड़े	7.35	13	सामयिकी
	7.45	13	कार्यक्रम विवरणहिन्दी-
अति हटाएं	7.50	13	प्रादेशिक समाचार
	8.00	13	हिन्दी वार्ता हमारी डाक उपलब्धियां :श्री आर यू. एसप्रसाद ., डाक सचिव भेटवार्तासुन्दरलाल कुकरेजा-
अति हटाएं	8.10	13	वाद्य वृन्द
अति जोड़े	8.20	13	समाचार दर्शन
अति हटाए			
अति जोड़ें	8.30	13	सुबद्ध संगीत

अति जोडे	8.45	सं .2	हिन्दी समाचार
डी व 2			
अति हटाएं	9.00	13	शास्त्रीय संगीत सिंह :बन्धुगायन-

दिल्ली क :366.3 मीबुधवार : दिन .

दिनांक 7.10.98

	<u>सांय</u>	<u>प्रसारण ।।।-</u>	
	9.16	सं .2	उर्दू समाचार और तबसरा :
अति जोड़े	9.30	13	चर्चा का विषय है -
अति जोड़े	10-00	13	साहित्य भारती
अति हटाएं	10.30	13	शास्त्रीय संगीततार -बलजीत सिंह-वादन-शहनाई
	11.00	13	कार्यक्रम विवरणदूसरे दिन का-
अति जोडे	11.05	सं .2	हिन्दी समाचार
अति हटाये	11.10	13	आपकी फरमाइश-
अति जोडे	12.05	सं .2	हिन्दी समाचार
अति हटाएं	12.10	13	<u>मौसम संबंधी सूचना और सभासमापन -</u>

इकाई 9 दूरदर्शन से सीधा प्रसारण

9.0 इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 प्रसारण की प्रक्रिया

9.4 सीधा प्रसारण

9.5 भारत में दूरदर्शन का पदार्पण

9.6 दूरदर्शन के प्रारम्भिक सीधे प्रसारण

9.7 एशियाड 1982

9.8 सी.एन.एन. का धमाका

9.9 बहिःप्रसारण केन्द्र या एक सचल दूरदर्शन केन्द्र

9.9.1 दृश्य-प्रस्तुतीकरण पैनल

9.9.2 ध्वनि-नियन्त्रण पैनल

9.9.3 सूक्ष्म तरंग की डिश

9.9.4 बहि:प्रसारण वाहन के प्रमुख कर्मी

9.10 उपग्रहों के माध्यमं से सीधे प्रसारण

9.10.1 विश्व में समाचार उपग्रहों का प्रारम्भ

9.10.2 भारत के संचार उपग्रह

9.11 एक महत्वपूर्ण सीधा प्रसारण

9.12 वास्तविक सीधा प्रसारण

9.13 आधुनिक परिदृश्य

9.14 सारांश

9.15 संक्षिप्त शब्दावली

9.16 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- अत्यंत लोकप्रिय और सब से प्रभावशाली जन-संचार माध्यम टेलीविजन पर सीधे प्रसारण का अर्थ जान जाएंगे,
- सीधे प्रसारणों की प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे
- दूरदर्शन के प्रमुख सीधे प्रसारणों का संक्षिप्त इतिहास जान जाएंगे
- सीधे प्रसारण में बहि:प्रसारण वाहन की भूमिका समझ जाएंगे।
- सीधे प्रसारण को सार्वभौमिक बनाने में उपग्रहों की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे

9.2 प्रस्तावना

'दूरदर्शन से सीधा प्रसारण' इन चार शब्दों ने आज विश्व के समाचार परिदृश्य को सर्वथा बदल कर रख दिया है। पिछले कुछ वर्षो में दूरदर्शन अब तक के सभी संचार माध्यमों में सर्वाधिक शक्तिशाली रूप में उभर कर सामने आया है। दूरदर्शन को सबसे अधिक विश्वसनीयता उसके सीधे प्रसारणों से प्राप्त होती है। इसका एक सबसे बड़ा कारण है और वह यह कि सीधे सजीव प्रसारित हो रहे कार्यक्रम में किसी प्रकार की काट-छांट के लिए कोई अवकाश नहीं रहता। अमरीका आदि जैसे विकसित देशों में इसीलिए चुनावों के दौरान विपक्षी प्रत्याशियों के बीच बहसें सीधी और सजीव ही प्रसारित की जाती है और विश्वसनीय होती हैं। इसी प्रकार सीधे प्रसारित किए जा रहे खेलों में जो रोमांच रहता है वह किसी रिकार्ड किए गए कार्यक्रम के प्रसारण में कहां से आ सकता है ? विश्व के सभी देशों में टेलीविजन के प्रारंभिक काल से ही सीधे प्रसारणों को देखने वाले दर्शकों की संख्या टेलीविजन के रिकार्ड के लिए हुए कार्यक्रमों या फिल्मों से कहीं अधिक रही है।

इस प्रसंग में एक घटना याद आती है। सन् 1953 में मेरा हाई स्कूल परीक्षा का परिणाम जिस दिन समाचार-पत्र में आया सम्भवत: वह पहली जून का दिन था। उसी समाचार-पत्र के पहले पृष्ठ का सबसे मुख्य समाचार था ' तेनजिंग और हिलेरी माउण्ट एवरेस्ट पर पहुँचे '। तेनजिंग और हिलेरी ने 29 मई को विश्व को सबसे ऊंचे और अति दुर्गम पर्वत शिखर माउण्ट एवरेस्ट पर चढ़ने में सफलता प्राप्त की थी। उस समय ऐसा रोमांचकारी समाचार भारतवासियों और विश्व को तीन दिन बाद मिल सका। आज दृश्य और श्रव्य माध्यमों ने बहुत प्रगति कर ली है और अब इस प्रकार के समाचारों का दृश्यात्मक चित्रों के साथ घटना के अधिक से अधिक एक-दो घंटे के अन्दर विश्व के सब लोगों तक पहुंच जाना बड़ी सामान्यसी बात हो गई है।

9.3 प्रसारण की प्रक्रिया

दूरदर्शन से सीधा प्रसारण' का अभिप्राय समझने से पहले दूरदर्शन से प्रसारण की प्रक्रिया और उसके प्रमुख उपादानों के बारे में जानना आवश्यक है। किसी भी दूरदर्शन केन्द्र की सारी गतिविधियां मुख्य रूप से तीन स्थानों से संचालित होती हैं। ये स्थान हैं स्टूडियो, नियन्त्रण-कक्ष और ट्रांसमीटर। किसी दूरदर्शन केन्द्र की सारी गतिविधियों का केन्द्र स्टूडियो होता है। यहीं सारे कार्यक्रमों की रिकॉर्डिंग की जाती है और यहीं से विभिन्न कार्यक्रमों, उद्घोषणाओं, समाचारों आदि का रिकॉर्ड किए हुए रूप में या सजीव रूप में प्रसारण किया जाता है। स्टूडियो में कार्यक्रमों की रिकॉर्डिंग या प्रसारण करने के लिए कैमरों और माइक्रोफोनों का उपयोग किया जाता है। बाहर के अधिकांश कलाकारों, वार्ताकारों आदि की गति स्टूडियो तक ही सीमित रहती है। स्टूडियो के अन्दर की सारी रिकॉर्डिंगों और वहां से किए जाने वाले सारे प्रसारणों का तकनीकी रूप से संचालन नियन्त्रण कक्ष से किया जाता है। स्टूडियो से जहां कार्यक्रम का सारा कला पक्ष उपलब्ध होता है वहां कार्यक्रमों को रिकार्ड करने या प्रसारण करने का सारा तकनीकी संचालन नियन्त्रण कक्ष से किया जाता है। नियन्त्रण कक्ष में एक वीडियो पैनल होता है जिस पर बहुत से स्विच और फेडर आदि लगे होते हैं। इन स्विचों और फेडरों के द्वारा किसी भी कार्यक्रम की रिकॉर्डिंग या प्रसारण के समय अलग- अलग कैमरों, वीडियो टेप रिकॉर्डरों, टेलीसिने, पेण्टबॉक्स आदि सभीस्रोतों से आने वाले दृश्यचित्रों का नियंत्रण किया जाता है। इस पैनल के एक ओर बहुत से मॉनीटर लगे होते हैं जिनमें विभिन्न स्रोतों से आने वाले दृश्यचित्रों को सामने बैठे

कार्यक्रम-निर्देशक, तकनीकी-निर्देशक- आदि देख कर कार्यक्रमों का प्रस्तुतीकरण करते हैं। कार्यक्रम-प्रस्तुतीकरण की इस विधा को तुरत सम्पादन (Instantediting) कहते हैं। इसके विपरीत फिल्म-निर्माण की प्रक्रिया में पहले सारी शूटिंग कर ली जाती है और फिर फुर्सत में बैठकर उसका सम्पादन किया जाता है। ध्वनि-नियन्त्रण पैनल, टेलीसिने, वीडियो टेप रिकॉर्डर आदि भी नियन्त्रण-कक्ष के ही भाग होते हैं। स्टूडियो के कैमरों और माइक्रोफोनों से नियन्त्रण-कक्ष में लाए गए चित्र एवं ध्वनि-संकेत विविध संशोधनों, परिवर्धनों आदि के बाद जमीन के अन्दर बिछाए गए केबिलों या बेतार द्वारा या सूक्ष्म तरंग (Micro Wave) द्वारा अनेक किलोमीटर दूर स्थित ट्रांसमीटर अर्थात् प्रसारण केन्द्र की ओर भेजे जाते हैं। प्रसारण केन्द्र से विधुतरंगों के रूप वाले ये चित्र एवं ध्वनि-संकेत अन्तरिक्ष में छितरा दिए जाते हैं जिसे प्रसारण करना कहते हैं।

9.4 सीधा प्रसारण

किसी दूरदर्शन-केंद्र से जो कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं उनमें कुछ कार्यक्रम उसी समय दूरदर्शन के स्टूडियो में उपस्थित कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किए जा रहे होते हैं। ऐसे प्रसारण सजीव (LIVE) प्रसारण कहलाते हैं। आम तौर पर उदघोषणाएं, समाचार, संसद्समाचार, विशेष प्रदर्शन आदि सजीव प्रसारित किए जाते हैं। अनेक अन्य कार्यक्रम पहले से दूरदर्शन के स्टूडियो में रिकॉर्ड किए गए होते हैं। संगीत के कार्यक्रम, नाटक धारावाहिक, विशेष दर्शकों के कार्यक्रम, परिचर्चाएं, पत्रिकाएं आदि अधिकांशत: पहले से दूरदर्शन के स्टूडियो में रिकॉर्ड किए गए कार्यक्रम होते हैं। इनके अलावा फिल्मों, फिल्म के अंशों, अन्य संस्थानों से प्राप्त फिल्मों तथा विज्ञापनों आदि की सामग्री होती है कई अन्य प्रसारण समारोह-स्थलों या खेल के मैदानों आदि से सीधे और उसी समय किए जाते हैं जिन्हें सीधा प्रसारण कहते हैं। क्रिकेट, हॉकी, फुटबाल, वॉलीबाल आदि के मैच, शपथ ग्रहण समारोह, रथयात्रा, फिल्म समारोह का उद्घाटन, संसद की कार्यवाही आदि सीधे प्रसारणों के कुछ उदाहरण हैं। चूंकि ये सीधे प्रसारण घटनाओं के घटित होने के साथ-साथ ही घटना-स्थल या समारोह-स्थल से सीधे प्रसारित किए जाते हैं इसलिए इन्हें 'सजीव सीधा प्रसारण' या मात्र 'सीधा प्रसारण' भी कहा जाता है। विदेशों में होने वाले अनेक खेलों या अन्य समारोहों के जो हमारे देश के समय के अनुसार रात्रि के असुविधाजनक घंटों में होते हैं सीधे प्रसारण उस समय रिकॉर्ड करके बाद में दर्शकों के अनुकूल समय पर सीधे प्रसारणों की भांति ही दिखाए जाते हैं। ऐसे प्रसारणों को 'बाद में दिखाए जाने वाले सजीव प्रसारण' (Deferred Live Telecast) कहते हैं।

संस्कृत की एक उक्ति है 'प्रत्यक्ष किं प्रमाणम्'। 'प्रत्यक्ष' का अर्थ है 'आखों के सामने'। पूरी उक्ति का अर्थ है कि जो हमने स्वयं अपनी आखों के सामने घटित होते देखा है उसके लिए और किसी प्रमाण की क्या आवश्यकता है। न्याय के मामले में भी चश्मदीद गवाह अन्य सभी गवाहों से ऊपर होता है। दूरदर्शन के सीधे प्रसारण अपने सभी दर्शकों को ऐसे ही चश्मदीद गवाह बनाते हैं।

विश्व में टेलीविजन के प्रादुर्भाव के समय से ही उस पर सीधे प्रसारण होते रहे हैं। किसी बड़ी घटना को हम घटते समय ही देख सकें मानवजाति की इस अदम्य ललक ने टेलीविजन से सीधे प्रसारणों की दिशा में वैज्ञानिकों को निरन्तर आगे बढ़ते रहने को प्रोत्साहित किया। 2 अक्टूबर 1925 को टेलीविजन के आविष्कारक जॉन लोगी बेयर्ड (John Logie Baird) ने पहली बार एक गुड्डे के चेहरे के पहचाने जा सकने योग्य नाक-नक्शा प्रसारित करने में सफलता प्राप्त की। इसके बाद दस वर्ष से

भी अधिक समय तक बेयर्ड तथा अन्य कुछ वैज्ञानिकों के प्रयोगात्मक टीवी प्रसारण चलते रहे। सोमवार, 2 नवम्बर, 1936 को ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन के तत्वावधान में विश्व की पहली नियमित टेलीविजन सेवा अस्तित्व में आई। 12 मई, 1937 को सम्राट जॉर्ज पृष्ठ और महारानी एलिजाबेथ का सिंहासनारोहण हुआ। मात्र 6 महीने पहले शुरू हुई बीबी.सी का यह पहला बड़ा बहिःप्रसारण था। बी.बी.सी. का यह प्रयास पूर्णतः सफल रहा। यह पहला अवसर था जब बीबीसी. का टेलीविजन नियंत्रण वाहन (Television Control Van) जनता के सामने आया। सिंहासनारोहण के चित्र लेने के लिए हाइड पार्क के कोने में तीन कैमरे लगाए गए। टीवी सेट निर्माताओं और विक्रेताओं के अनुमान के अनुसार 100 किलोमीटर की परिधि में रहने वाले लगभग 50,000 दर्शकों द्वारा इस समारोह का प्रसारण देखा गया। बीबीसी का खेलकूद पत्रिका का कार्यक्रम पहली मई, 1937 को प्रारंभ हुआ था। सिंहासनारोहण के बाद से इस कार्यक्रम में लन्दन और उसके आसपास होने वाले खेलकूद के मैचों और अन्य मुकाबलों को खेल के मैदान से ही दिखाया जाने लगा।

इंग्लैड की भांति विश्व के सभी भागों में टेलीविजन के प्रारंभिक दिनों से ही सीधे प्रसारणों को प्रमुख और महत्वपूर्ण स्थान मिलता रहा है।

9.5 भारत में दूरदर्शन का पदार्पण

शुक्रवार 15 सितम्बर, 1959 को आकाशवाणी के तत्वावधान में दिल्ली में दूरदर्शन प्रयोगात्मक आधार पर प्रारम्भ किया गया। भारत में दूरदर्शन का यह पदार्पण सीधे प्रसारण के माध्यम से हुआ। दूरदर्शन के उदघाटन का कार्यक्रम विज्ञान भवन में आयोजित किया गया था और उद्घोषणाओं सहित अन्य कार्यक्रमों के प्रसारण का प्रबन्ध आकाशवाणी भवन के पांचवे तल पर आनन-फानन में जैसे- तैसे तैयार किये गए स्टूडियो में किया गया था। आकाशवाणी भवन और विज्ञान भवन की सीधी दूरी लगभग डेढ़-दो किलोमीटर है। उस समय दूरदर्शन के पास कैमरों सहित सभी उपकरण बस नाममात्र को ही थे। दूरदर्शन के इस उद्घाटनात्मक प्रसारण के लिए आकाशवाणी भवन और विज्ञान भवन को सूक्ष्मतरंग (Micro Wave) द्वारा जोड़ा गया था।

उस दिन विज्ञान भवन में बड़ी चहल-पहल थी। दूरदर्शन सेवा के उद्घाटन से काफी पहले ही हाल खचाखच भर गया था। हाल के अन्दर दोनों ओर कुछ टेलीविजन सेट लगे हुए थे जो इन भावी दर्शकों के अतीव कुतूहल के केन्द्र बन रहे थे।

प्रसारण का समय हुआ। आकाशवाणी के ए आई आर प्रतीक चिह्न के नीचे दूरदर्शन लिख कर दूरदर्शन का प्रतीक चिहन बनाया गया और इसे स्टूडियो से दिखाते हुए आकाशवाणी की ही संकेत ध्वनि बजाई गई और इसके तुरन्त बाद प्रतिभा पुरी ने आकाशवाणी भवन स्थित स्टूडियो से उद्घोषणा की 'आज दिल्ली टेलीविजन का शुभारम्भ हो रहा है...।" इसके उपरान्त विज्ञान भवन में राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसादजी ने इस सेवा का विधिवत् उद्घाटन किया। उस दिन के कार्यक्रमों में भवानीप्रसाद मिश्र ने कविता पाठ किया "स्वर को मिल गई छवि", पंकज मलिक ने गीत सुनाए और राजस्थान के कलाकारों ने कठपुतलियों का एक कार्यक्रम किया। ये सारे कार्यक्रम विज्ञान भवन से सीधे ही प्रसारित किए गए। दूरदर्शन के प्रारंभिक दिनों में रिकॉर्डिग आदि की कोई व्यवस्था नहीं थी और सारे कार्यक्रम सीधे सजीव ही प्रसारित होते थे।

9.6 दूरदर्शन के प्रारंभिक सीधे प्रसारण

26 जनवरी, 1960 को दूरदर्शन ने राजपथ से गणतंत्र-दिवस परेड का सीधा प्रसारण किया। इसके बाद 15 अगस्त को लाल किले से स्वतंत्रता-दिवस के कार्यक्रम का सीधा प्रसारण किया गया। फिर तो इन दोनों समारोहों का प्रतिवर्ष सीधा प्रसारण ही किया जाने लगा। 1965 में दूरदर्शन की यह प्रयोगात्मक सेवा नियमित हो गई। सीधे सजीव प्रसारण में यद्यपि झंझटें काफी होती थीं तथापि क्षेत्र से कार्यक्रमों को सीधा दिखाने का रोमांच कुछ अनोखा ही था। धीरे- धीर दूरदर्शन ने खेल के मैदानों में प्रवेश किया और उसके ये प्रसारण भी काफी लोकप्रिय हुए। दूरदर्शन ने 1966 में दिल्ली के फीरोजशाह कोटला मैदान से भारत-वेस्ट इंडीज क्रिकेट टैस्ट मैच के रूप में किसी खेलकूद का सबसे पहला सीधा प्रसारण किया। उसके बाद तो फिर फुटबॉल, हॉकी आदि के महत्वपूर्ण टूर्नामेंटों के पहले केवल फाइनल मैच और फिर सेमी फाइनल मैच भी दूरदर्शन पर सीधे प्रसारित किए जाने लगे। 1969 में मानव ने चन्द्रमा पर पग धरे। इस कार्यक्रम को दूरदर्शन विश्व के अन्य अनेक टीवी संगठनों की तरह सीधे सजीव प्रसारित नहीं कर सका क्योंकि उस समय तक उसके पास दूर के टीवी संकेत पकड़ सकने वाले उपकरण न थे तथापि थोड़े समय बाद अमरीका से प्राप्त रिकॉर्डिंगों को लेकर जो कार्यक्रम प्रसारित किया गया वह किसी भी सीधे प्रसारण से कम रोमांचकारी न था।

सन् 1972 में भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की रजत जयन्ती मनाई गई। इस अवसर पर 14 - 15 अगस्त की मध्य रात्रि को संसद के केन्द्रीय कक्ष में सम्पन्न हुए अर्धरात्रि समारोह का सीधा प्रसारण किया गया जो संसद भवन से टेलीविजन का पहला सीधा प्रसारण था। 2 अक्टूबर, 1972 को जब बम्बई दूरदर्शन केन्द्र का उद्घाटन हुआ तो उद्घाटन के सारे कार्यक्रम बम्बई टीवी स्टेशन के पास स्थित जेवियर कालिज से सीधे प्रसारित किए गए। नवम्बर-दिसम्बर, 1972 में दिल्ली के प्रगति मैदान में आयोजित तीसरे एशियाई व्यापार मेले के मैदान में ही एक टेलीविजन और ध्वनि स्टूडियो स्थापित किया गया। इस स्टूडियो को दूरदर्शन केन्द्र से सम्बद्ध करके मेले की अनेक गतिविधियां सीधे प्रसारित की गईं। 29 सितम्बर, 1973 को दूरदर्शन केन्द्र, अमृतसर के उद्घाटन के सारे कार्यक्रम जी टी रोड पर स्थित खालसा कालिज से सीधे प्रसारित किये गए। 1 अगस्त, 1975 से 31 जुलाई, 1976 के बीच उपग्रह प्रशिक्षणात्मक टेलीविजन का जो प्रयोग किया गया उसके दौरान भी अनेक शिक्षात्मक प्रसारण सीधे और सजीव किए गए।

बोध प्रश्न - 1

1. सीधे प्रसारण की प्रक्रिया स्पष्ट करें।
2. दूरदर्शन के उद्घाटन-समारोह का परिचय दीजिए।
3. स्वतंत्रता प्राप्ति की रजत जयंती दूरदर्शन ने कब और कैसे मनाई?

9.7 एशियाड 1982

इस प्रकार सीधे प्रसारणों के क्षेत्र में अर्जित भारतीय दूरदर्शन के अनुभव को ध्यान में रखते हुए ही 1976 में सम्पन्न हुई एशियाई खेल महासंघ की बैठक में 1982 के एशियाई खेल भारत में आयोजित करने का फैसला किया गया और इन खेलों के प्रसारणों का सारा दायित्व दूरदर्शन के कंधों पर ही आया। दूरदर्शन ने इन खेलों के प्रसारणों के रूप में उस समय तक की सबसे बड़ी चुनौती का सामना किया। एशियाई खेल 19 नवम्बर से प्रारम्भ हुए एशियाई खेलों की विभिन्न प्रतिस्पर्धाएं

राजधानी के 19 स्टेडियमों में तथा जयपुर और बम्बई में आयोजित की गई थीं जिनमें लगभग 5000 खिलाड़ियों ने भाग लिया।

विभिन्न स्टेडियमों से इन खेलों के सीधे प्रसारण करने अथवा रिकॉर्डिंग करने के लिए विदेशों से आयातित रंगीन प्रसारण करने वाले चार बहिःप्रसारण वाहन, श्याम-श्वेत चित्रों वाले पहले से विद्यमान 5 बहि:प्रसारण वाहन, 20 ई एन जी एकक, 16 सम्पादन मशीनें तथा 9 दृश्य एकत्र करने वाले अन्य संयन्त्र विभिन्न स्थानों पर इस कार्य में लगाए गए। देश भर के दूरदर्शन केन्द्रों के लगभग 900 दूरदर्शन कर्मचारियों ने इस भव्य खेल आयोजन के सम्बन्ध में विभिन्न कार्यक्रम तैयार किए।

एशिया खेलों की ये प्रतियोगिताएं कहीं जमीन पर हो रही थीं, कहीं पानी के अन्दर, कहीं खुले मैदान में हो रही थीं तो कहीं रोशनियों से जगमगाते बड़े-बड़े अन्दरूनी स्टेडियमों में। कहीं इन प्रतियोगिताओं का सीधा प्रसारण हो रहा था तो कहीं बाद में प्रसारण के लिए इनकी रिकॉर्डिंग की जा रही थी और कहीं इनको सिर्फ झलकियां दिखाने के उद्देश्य से रिकॉर्ड किया जा रहा था। इन सब के साथ ही विश्व के दूसरे देशों को इन खेलों को दिखाने के लिए इनके अन्तर्राष्ट्रीय सम्पादकीय अंश बनाए जा रहे थे। वास्तव में यह दूरदर्शन के लिए बड़ा रोमांचक समय था। काफी-काफी दूरी पर स्थित स्थानों से एक के बाद एक, और कई बार एक साथ इतने सारे सीधे प्रसारण करने का दूरदर्शन का यह पहला अवसर था।

9.8 सी एन एन का धमाका

तब से आज तक की यात्रा में टेलीविजन से सीधे प्रसारण की विधा ने विश्व में बहुत प्रगति की है। सीधे सजीव प्रसारण के क्षेत्र में अब तक का सबसे बड़ा धमाका सन् 1991 में उस समय हुआ जब अमरीका के सी एन एन ने ईराक-ईरान, युद्ध को युद्ध-क्षेत्र से सीधे ही विश्व के करोड़ों टीवी सेटों पर दिखाया। ये प्रसारण इतने प्रभावी रहे कि इराक के जिन राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने युद्ध के आरंभ में अमरीका द्वारा ईराक पर आक्रमण के दृश्य विश्व को दिखाने के उद्देश्य से सी एन एन को अपने कैमरे तथा अन्य उपकरण ईराक के युद्धक्षेत्र में लाने की इजाजत दी थी उन्होंने ही मात्र 10 - 12 दिन बाद सी एन एन का सारा सरंजाम ईराक की सीमाओं से बाहर फिंकवा दिया।

भारत में विदेशी उपग्रह प्रसारणों का प्रारम्भ सी एन एन के इन प्रसारणों से ही हुआ। सी एन एन के ये प्रसारण तो कुछ -समय बाद ही समाप्त हो गए परन्तु इनसे कुछ महीनों बाद ही एशियासैट उपग्रह के माध्यम से होने वाले स्टार के प्रसारणों को देखे जाने के लिए आधार तैयार हो गया।

9.9 बहि:प्रसारण वाहन या एक सचल दूरदर्शन केन्द्र

दूरदर्शन से सीधे प्रसारण के लिए एक बहिःप्रसारण वाहन या जिसे दूरदर्शन की भाषा में ओ बी वैन (Outside Broadcast Van) कहते हैं का उपयोग किया जाता है। यह बहि:प्रसारण वाहन एक चलता-फिरता ऐसा दूरदर्शन केंद्र होता है जिसके कैमरे और माइक्रोफोन मैदान में या समारोह- स्थल पर रहते हैं और निर्देशक का पैनल, टेप-रिकार्डर आदि गाड़ी के अन्दर होते हैं। इस वाहन प्रसारण के ऊपर एक सूक्ष्म तरंग डिश लगी होती है जिसका सीधा संबंध केन्द्र के नियंत्रण-कक्ष से होता है। आज इस व्यवस्था में और भी प्रगति हुई है और जहां समारोह-स्थल या खेल का मैदान दूरदर्शन केंद्र से सैकड़ों किलोमीटर दूर होता है वहां बहि:प्रसारण वाहन के साथ ही उपग्रह को सीधे कार्यक्रम भेजने वाली गाड़ी ट्रैक्ट की सहायता से समारोह-स्थल से उपग्रह तक सीधा संपर्क हो जाता है और फिर दूरदर्शन केंद्र के

नियंत्रण-कक्ष तथा उपग्रह के बीच में आए बिना ही समारोह-स्थल से सीधा प्रसारण चलता रहता है। आज अधिकांश बड़े -बड़े मैचों आदि के सीधे प्रसारण इसी विधि से किए जाते हैं।

9.9.1 दृश्य-प्रस्तुतीकरण पैनल

किसी बहिःप्रसारण वाहन में ड्राइवर के केबिन के ठीक पीछे दृश्य प्रस्तुतीकरण पैनल (Video Production Panel) होता है। इस पैनल पर सामने की ओर कुछ टीवी मॉनीटर और एक टेलीविजन सेट लगा होता है। ये मॉनीटर दो या तीन पंक्तियों में ऊपर-नीचे तरतीब से फिट होते हैं। हर मॉनीटर एक-एक कैमरे से सम्बद्ध होता है। एक मॉनीटर पर कैरेक्टर जनरेटर के लेख आते रहते हैं और एक-दो अन्य मॉनीटर अन्य स्रोतों से लिए जाने वाले चित्रों को दिखाते रहते हैं। इस प्रकार किसी बहिःप्रसारण वाहन में मॉनीटरों की संख्या उस बहिःप्रसारण वाहन पर उपयोग में लाए जाने वाले कैमरों की संख्या से दो या तीन अधिक होती है। मॉनीटरों की इन्हीं पंक्तियों में लगे एक मॉनीटर पर वे चित्र दिखाई देते रहते हैं जो अंतिम रूप से प्रसारण के लिए भेजे जा रहे होते हैं। इनके साथ ही इन्हीं मॉनीटरों के बीच में एक टेलीविजन सेट भी होता है जिस पर निरंतर प्रसारित हो रहे चित्र आते रहते हैं।

इन मॉनीटरों के नीचे के मेज-जैसे लम्बे पटल पर किसी दूरदर्शन केन्द्र के नियन्त्रण कक्ष की भांति ही अनेक स्विच और फेडर होते हैं जिनसे तकनीकी-निर्देशक कार्यक्रम-निर्देशक के निरंतर मिलते निर्देशों के अनुसार विभिन्न कैमरों तथा अन्य दृश्य-स्रोतों से प्राप्त हो रहे चित्रों में से चुने हुए चित्र को प्रसारण के लिए कम, अधिक या पूरी तीव्रता के साथ देता रहता है। कैरेक्टर जनरेटर इस पैनल के एक ओर अथवा पैनल के पीछे की ओर लगा रहता है। पैनल के दूसरी ओर अर्थात् मॉनीटरों के ठीक सामने की ओर चार या पांच कुर्सियां होती है। इनमें से एक पर सीधे प्रसारण का उस समय का निर्देशक या प्रस्तुतकर्ता बैठता है, एक पर तकनीकी-निर्देशक बैठता है, एक पर प्रस्तुतीकरण-सहायक बैठता है और चौथी कुर्सी पर अभियांत्रिकी-सहायक बैठता है। पैनल के सामने यदि पांचवीं कुर्सी के लिए स्थान हो तो उस पर या तो कैरेक्टर-जनरेटर का संचालक बैठता है या सारे प्रसारण का प्रभारी अधिकारी आसीन होता है। वैसे अधिकांश बड़े बहि:प्रसारण वाहनों में कैरेक्टर-जनरेटर के संचालन का स्थान पैनल से थोड़ा पीछे को होता है।

9.9.2 ध्वनि-नियन्त्रण पैनल

दृश्य-प्रस्तुतीकरण पैनल के ठीक पीछे ध्वनि-नियंत्रण पैनल (Audio control panel) होता है जिस पर बैठा अकेला ध्वनि-अभियंता सामने लगे मॉनीटरों को देखते हुए हाथ से अपने सामने की मेज के विभिन्न फेडरों से विभिन्न स्रोतों से प्राप्त हो रही ध्वनियों को समसंतुलित करता रहता है। ध्वनि-नियन्त्रण पैनल के पास ही कैमरा कंट्रोल यूनिट होता है जिस पर बैठे हुए अभियंता महोदय विभिन्न कैमरों तथा विभिन्न अन्य दृश्य स्रोतों से आ रहे चित्रों को चित्रात्मकता, रंग, परस्पर विरोधिता (contrast) आदि भिन्न-भिन्न दृष्टियों से एक समान स्वर पर बनाए रखते हैं। ध्वनि- नियंत्रण पैनल के पीछे या अलग-अलग वीडियो टेप रिकॉर्डरो के लिए स्थान होता है। एक बहिःप्रसारण वाहन में तीन-चार तक वीडियो टेप रिकॉर्डर होते हैं। इन टेप रिकार्डरों पर जहां सारे बहि:प्रसारण की रिकॉर्डिंग की जाती है वही इनमें से एक या दो से पुनःप्रसारण (Playback) भी दिखाया जाता है। इसके अलावा अन्य अनेक तकनीकी उपकरण भी बहिःप्रसारण वाहन में यथास्थान लगे होते हैं।

9.9.3 सूक्ष्म तरंग की डिश

बहि:प्रसारण वाहन के ऊपर छत पर सूक्ष्म तरंग (Micro Wave) की डिश लगी होती है जिसका सीधा सम्बन्ध अनेक किलोमीटर दूर स्थित दूरदर्शन केन्द्र के उस मुख्य नियन्त्रण-कक्ष या ट्रांसमीटर-कक्ष से होता है जहां से इन ध्वनि-सहित चित्रों को प्रसारण हेतु ट्रांसमीटर या उपग्रह को भेजा जाता है। यदि बहि :प्रसारण वाहन के पास ही ट्रैक्ट उपलब्ध हो तो ये सध्वनि चित्र बहि:प्रसारण वाहन से जुड़े केबिल के माध्यम से ट्रैक्ट में आ जाते हैं और वहां से सीधे उपग्रह को भेज दिए जाते हैं।

9.9.4 बहि:प्रसारण वाहन के प्रमुख कर्मी

दूरदर्शन के महत्वपूर्ण सीधे प्रसारणों में स्टूडियो से बाहर काम कर रहे बहि:प्रसारण वाहन पर कुल मिला कर 60 - 70 लोगों का दल काम करता है। इनमें कुछ प्रमुख लोग इस प्रकार होते हैं : -

कार्यक्रम प्रभारी अधिकारी	1
अभियान्त्रिकी प्रभारी अधिकारी	1
प्रस्तुतकर्ता	3 या 2
प्रस्तुतीकरण सहायक-	4
कैमरामैन	8
दृश्य परिकल्पक)Scenic Disigner(	1
लेखन कलाकार या कैरेक्टर जनरेटर आपरेटर	2
मंच सहायक/ बढ़ई / पेण्टर	10
सहायक केन्द्र अभियन्ता -	3 या 2
सहायक अभियन्ता	6
अभियांत्रिकी सहायक	10
अन्य	10

साधारण बहि:प्रसारणों में 25 - 30 आदमियों से भी काम चल जाता है।

9.10 उपग्रहों के माध्यम से सीधे प्रसारण

विश्व के किसी भी कोने से संपूर्ण विश्व में टेलीविजन के सीधे प्रसारणों को सम्भव बनाने में संचार उपग्रहों का अपूर्व योगदान रहा है। किसी एक संचार उपग्रह से सम्पूर्ण पृथ्वी के लगभग एक-तिहाई भाग से सीधा सम्पर्क किया जा सकता है। समान दूरियों पर स्थापित तीन संचार उपग्रहों की श्रृंखला से सम्पूर्ण धरातल के किसी भी भाग से संकेत ग्रहण करके उन्हें सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए या धरती के किसी भी भाग के लिए प्रसारित किया जा सकता है। आज विश्व में सम्पूर्ण धरती से संपर्क रखने वाली अनेक संचार उपग्रह व्यवस्थाएं काम कर रही हैं। 1991 के बाद से भारत की धरती पर विदेशी प्रसारणों का जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ वह आज ऐसे संचार उपग्रहों और संचार उपग्रह व्यवस्थाओं से ही चल रहा है। भारतीय दूरदर्शन की अन्तर्राष्ट्रीय सेवा पी ए एस- 4 नामक उपग्रह के माध्यम से चलाई जा रही है जो विश्व की एक बड़ी और अत्याधुनिक संचार उपग्रह श्रृंखला का एक उपग्रह है।

9.10.1 विश्व में संचार उपग्रहों का प्रारम्भ

4 अक्टूबर, 1957 को तत्कालीन सोवियत संघ द्वारा छोड़े गए स्पूतिनक नामक कृत्रिम उपग्रह से उपग्रह युग का प्रारम्भ हुआ। इस उपग्रह का कुल भार था 83 किलोग्राम और उस पर दो रेडियो ट्रांसमीटर तथा अन्य यंत्र थे। सन् 1958 में कुछ ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने आर्थर सी क्लार्क के कथन की सत्यता परखने के लिए चन्द्रमा के माध्यम से कुछ प्रयोग किए। उन्होंने चन्द्रमा को कुछ रेडियो संकेत भेजे जो 2.6 सैकण्ड के बाद चन्द्रमा से प्रतिध्वनित होकर अमरीका की एक प्रयोगशाला में ग्रहण किये गये। सन् 1960 में संयुक्त राज्य अमरीका की नासा (National Aeronautics and Space Administration) ने अपना संचार-उपग्रह (Communication Satellite) या कॉमसैट कार्यक्रम प्रारम्भ किया और इसके अन्तर्गत ईको - 1 (Echo-1) नामक उपग्रह छोड़ा जो अल्युमिनियमयुक्त प्लास्टिक से बने लगभग 30 मीटर लम्बाई के गुब्बारे जैसा था। इस उपग्रह से उत्तरी अमरीका के एक छोर से दूसरे छोर पर एक भू-केन्द्र से दूसरे भू-केन्द्र तक तथा अटलांटिक महासागर के ऊपर रेडियो संकेत भेजे गए। 10 जुलाई, 1962 को सही अर्थो में पहला संचार था, उन्हें प्रवर्धित करता उपग्रह टेलस्टार-प्रथम (Telstar-1) छोड़ा गया। यह एक भूकेन्द्र से संकेत ग्रहण करता था और दूसरे भूकेन्द्र की ओर प्रेषित (beam) कर देता था। इस उपग्रह के द्वारा पहली बार उत्तरी अमरीका और यूरोप के मध्य टेलीविजन चित्रों का प्रसारण किया गया।

अगस्त, 1964 में नासा ने प्रशान्त महासागर में भूमध्य रेखा के ऊपर भूस्थिर कक्षा में संचार उपग्रह सिन्कॉम- 3 (Syncom-3) स्थापित किया जो ऐसे ठीक समय पर क्रियाशील हुआ कि उसके द्वारा उस वर्ष जापान की राजधानी टोकियो में हो रहे ओलिंपिक खेलों के उद्घाटन-समारोह का सीधा टेलीविजन प्रसारण करना सम्भव हुआ। भू -स्थिर कक्षा में होने के कारण इस उपग्रह का धरती पर सं. रा. अमरीका और इण्टेलसैट (Intelsat) के अन्य देशों में स्थित भू -केन्द्रों से निरन्तर सम्बन्ध बना रहता था।

9.10.2 भारत के संचार उपग्रह

भारत में एक युवा प्रतिभाशाली वैज्ञानिक डा. विक्रम साराभाई के प्रयत्नों से सन् 1962 में अन्तरिक्ष अनुसंधान के लिए भारतीय राष्ट्रीय समिति बनाई गई। डा. विक्रम साराभाई ने ही भारत की ओर से नासा के साथ उपग्रह उपयोग के समझौते पर हस्ताक्षर किए। भारत का पहला उपग्रह भू केन्द्र सन. 1971 में पुणे में स्थापित हुआ। नासा से किए गए समझौते के अन्तर्गत भारत को 1 अगस्त 1975 से 31 जुलाई 1976 तक एक वर्ष के लिए उपग्रह प्रशिक्षणात्मक दूरदर्शन परीक्षण (Satellite instructional Television Experiment) करने के लिए ए टी एस- 6 (ATS-6) नामक उपग्रह दिया गया। इस उपग्रह का अनुमानित कार्यकाल दो वर्ष था तथा इस पर लगभग 200 करोड़ रुपये की लागत आई थी। विश्व के किसी भी देश में राष्ट्रीय विकास के लिए यह अब तक का सबसे बड़ा प्रयोग रहा है। राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों के बीस जिलों में फैले 2,300 गाँवों तक उपग्रह के माध्यम से सीधे प्रसारण की तकनीक से शिक्षा और विकास के उद्देश्यों के लिए यह एक सर्वथा अनूठा प्रयास था।

भारत सरकार ने सन् 1975 मे निर्णय लिया कि भारत के संचार सजाल mein उपग्रहों का उपयोग किया जाएगा। इस निर्णय के अनुसार भारतीय उपग्रह (Indian Satellite or INSAT) की व्यवस्था पर विचार प्रारम्भ हुआ। भारत का पहला इन्सैट - 1 उपग्रह इन्सैट - 1 ए (INSAT-IA) 10 अप्रैल, 1982 को अमरीका के केप कैनेवरल (Cape Canaveral) नामक प्रमोचन स्थल से डेल्टा-3910 रॉकेट द्वारा छोड़ा गया। इस उपग्रह के ठीक प्रकार से काम करने में शुरू से ही कठिनाइयां आई। इस उपग्रह के माध्यम से दूरदर्शन ने 15 अगस्त, 1982 को देश भर में 20 प्रसारण केन्द्रों द्वारा दिल्ली के लाल किले से स्वतन्त्रता दिवस समारोह तथा प्रधान मंत्री के भाषण का सीधा प्रसारण किया और उसी दिन से अपने राष्ट्रीय कार्यक्रमों के प्रसारण प्रारम्भ किए, परन्तु फिर 4 सितम्बर को उपग्रह की कार्यप्रणाली में कई बाधाएं एक साथ उत्पन्न हो गई और उनसे रॉकेट पर उपलब्ध सारे नोदक समाप्त हो जाने से इसे 6 सितम्बर को निष्क्रिय कर दिया गया।

इन्सैट- 1 शृंखला का दूसरा उपग्रह इन्सैट- 1 बी सितम्बर 1963 में अमरीका की अन्तरिक्ष शटल चैलेंजर (Challenger) की एस टी एस- 8 उड़ान के दौरान अन्तरिक्ष में छोड़ा गया। अक्तूबर के अंत में इसका आकाशवाणी और दूरदर्शन के प्रसारणों तथा अन्य संचार कार्यों के लिए उपयोग किया जाने लगा। इन्सैट- 1 सी उपग्रहों की अभिकल्पन आयु (design life) कम से कम सात वर्ष रखी गई थी। इन्सैट- 1 उपग्रह 1 जुलाई, 1988 को फ्रांस के एरिएन (Ariane) उपग्रह प्रमोचक रॉकेट की उड़ान न. 34 पर सवार होकर अंतरिक्ष में अपनी निर्धारित कक्षा में पहुंचा, परन्तु इसकी ऊर्जा- व्यवस्था में गड़बड़ी आ जाने से यह अपनी पूरी क्षमता से काम न कर सका और इसलिए इसे नवम्बर, 1989 में पूरी तरह छोड़ देना पड़ा। इन्सैट- 1 डी जून 1990 -में अमरीका के केनेडी अन्तरिक्ष केन्द्र (Kennedy Space Centre) से डेल्टा 4925 रॉकेट द्वारा प्रमोचित किया गया। यह उपग्रह 17 जुलाई, 1990 से सक्रिय हुआ। इस उपग्रह के माध्यम से दूरदर्शन के कार्यक्रमों के प्रसारण 1998 के सितम्बर- अक्तूबर बर मास तक चलते रहे हैं।

पूरी तरह भारत में बनाए गए सबसे पहले बहु-उद्देश्यीय भू-तुल्यकाली 1906 कि. ग्रा. भार वाले उपग्रह इन्सैट- 2 ए को 10 जुलाई, 1992 को फ्रांस के एरिएन नामक प्रमोचक रॉकेट द्वारा फ्रेंच गुयाना (French Guiana) के क्वोरू (Kuorou) नामक द्वीप से सफलतापूर्वक छोड़ा गया जो 31 जुलाई को अपनी निर्धारित कक्षा में पहुँच गया। विभिन्न परीक्षणों के बाद 6 अगस्त, 1992 से इसे प्रचालनात्मक उपयोग में लगा दिया गया। इन्सैट 2 सी विश्व के आधुनिकतम संचार उपकरणों से सज्जित उपग्रह है और इस पर पहली बार एस बैण्ड के साथ-साथ के यू बैण्ड में प्रसारण का भी प्रावधान रखा गया है। इन पंक्तियों के लेखक को बंगलौर यात्रा के दौरान 8 अगस्त, 1995 को इसरो उपग्रह केन्द्र (ISAC) देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस समय वहां इन्सैट- 2 सी उपग्रह के निर्माण का कार्य अन्तिम चरणों में चलता देखकर मैं तो जैसे रोमांचित ही हो उठा था। उस उपग्रह को 7 दिसम्बर, 1995 को अन्तरिक्ष में प्रमोचित किया गया और यह जनवरी 1996 में क्रियाशील हुआ। इन्सैट- 2 डी के नष्ट हो जाने के बाद दूरदर्शन ने अरबसैट से एक संचार उपग्रह खरीदा है जिसे इन्सैट- 2 डी-टी नाम दिया गया है। आजकल दूरदर्शन के प्रसारण इंसैट- 2 बी, इन्सैट- 2 सी और इन्सैट- 2 डी-टी के माध्यम से चल रहे हैं।

9.11 एक महत्त्वपूर्ण सीधा प्रसारण

सन् 1993 में दूरदर्शन ने आठ कैमरों वाला बहि:प्रसारण वाहन खरीदा था। यह बहिःप्रसारण वाहन अभी भी दूरदर्शन का आधुनिकतम बहि:प्रसारण वाहन है। इन पंक्तियों के लेखक को इस बहि:प्रसारण वाहन के उद्घाटनात्मक सीधे प्रसारण के रूप में 15 अगस्त को लाल किले पर प्रधान-मंत्री द्वारा ध्वज फहराने और राष्ट्र को सम्बोधन के सीधे प्रसारण को प्रस्तुत करने और उस सारे प्रसारण का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करके दूरदर्शन से सीधे प्रसारण को व्यावहारिक रूप में समझाने का प्रयास कर रहा हूं।

सन् 1993 के अप्रैल माह के प्रारम्भ में मैं दूरदर्शन महानिदेशालय से दूरदर्शन के दिल्ली केन्द्र पर भेजा गया था। यह वह समय था जब दूरदर्शन के दिल्ली केन्द्र से अधिसंख्य पुराने और वरिष्ठ कार्यक्रम अधिकारियों को स्थानान्तरित कर सर्वथा नए लोगों को दिल्ली केन्द्र पर लाया गया था। मई आते - आते 15 अगस्त के लाल किले से सीधे प्रसारण की तैयारियां प्रारम्भ हो गईं। सबसे पहले इस प्रसारण के लिए जिन की ड्यूटी लगनी थी उनकी खोज की गई। महानिदेशालय में और हमारे केन्द्र में कई ओर से यह विचार उभरा कि ऐसे महत्व के प्रसारणों के लिए पुराने और अनुभवी महारथियों को ही दूसरे केंद्रों से लाया जाए। यह विचार जब मेरे सामने आया तो मैने कहा कि हमारे केन्द्र पर इस समय जो अधिकारी और प्रस्तुतकर्ता आदि उपलब्ध है हम उन्हीं के सहयोग से ऐसी चुनौतियों का सामना करेंगे। कार्यक्रम पक्ष की ओर से मैंने स्वयं इस प्रसारण के प्रभारी अधिकारी का कार्यभार संभाला। मैं इससे पहले लखनऊ में इन्दिरा गांधी हॉकी और जयपुर में डेविस कप टूर्नामेंटों आदि के सीधे प्रसारण कर चुका था। नए से नए लोगों के साथ बड़े से बड़े कामों को निपटाना मेरे स्वभाव में आ चुका था। नई चुनौतियों का सामना करने में मुझे अपूर्व आनंद आता था।

उस समय दिल्ली केन्द्र पर एक भी प्रस्तुतकर्ता ऐसा न था जिसने इससे पूर्व इतने महत्वपूर्ण सीधे प्रसारण का सजीव प्रस्तुतीकरण किया हो। इसी समय पता लगा कि 15 अगस्त से पूर्व ही दूरदर्शन को आठ कैमरों वाला एक विशाल बहि:प्रसारण वाहन मिलने वाला है और 15 अगस्त के सीधे प्रसारण में उसका पहली बार प्रयोग किया जाएगा। इससे पहले दूरदर्शन में केवल चार कैमरों से सबद्ध बहिःप्रसारण वाहन ही थे जिनमें एक रेडियो कैमरा अलग से उपयोग कर लिया जाता था। आठ कैमरों वाले इस बहि:प्रसारण वाहन के उद्घाटनात्मक उपयोग से यह महत्वपूर्ण प्रसारण और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया था परन्तु इससे मैं तनिक भी विचलित न हुआ।

गोवर्धन शर्मा और अजमेर सिंहशोकर 1980 - 83 के बीच मेरे साथ जालन्धर में काम कर चुके थे और दूरदर्शन के अच्छे कार्यक्रम प्रस्तुतकर्ता भी थे। इस समय तक गोवर्धन शर्मा सहायक केन्द्र निदेशक बन गए थे और शोकर प्रस्तुतकर्ता थे। मैंने इन दोनों को बुलाया। बताया कि 15 अगस्त के सीधे प्रसारण के प्रस्तुतीकरण में मेरे साथ काम करना है। यद्यपि इन दोनों ने भी इससे पहले ऐसा महत्वपूर्ण कोई दूसरा प्रसारण नहीं किया था तथापि दोनों ने 'हां' कर दी। इस प्रकार हम तीन प्रस्तुतकर्ताओं का दल बन गया।

प्रमुख कार्यक्रमकर्मियों का चयन हो जाने पर अन्य कार्यक्रम-कर्मचारियों का चयन अधिक कठिन नहीं था। अभियांत्रिकी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सूची अभियन्त्रण विभाग से आनी थी। खैर, इस प्रसारण के विभिन्न मोर्चे संभालने वालों की पूरी सूची तैयार हो गई और समय पर रक्षा मन्त्रालय को पास आदि जारी करने के लिए भेज दी गई।

इसके साथ ही साथ एक ओर रक्षा-मन्त्रालय में बैठकों का सिलसिला शुरू हुआ तो दूसरी ओर अपने विभिन्न सहकर्मियों और रक्षा मन्त्रालय के अधिकारियो के साथ मैं कई बार लाल किले गया। लाल किले में मैंने बहि:प्रसारण वाहन के खड़े होने के स्थान और कैमरे लगाने की स्थितियों का बारीकी से अध्ययन किया और अपने कार्यक्रम एवं अभियांत्रिकी दोनों पक्ष के सहकर्मियों के साथ विभिन्न वैकल्पिक संभावनाओं पर विचार-विमर्श किया। दो-तीन बार लाल किले जाने के बाद ये सारी स्थितियां निश्चित हो गई।

प्रत्येक सीधे प्रसारण में मुख्य कार्यक्रम को दर्शकों के सामने परोसने के लिए कुछ वाचक होते हैं। मैंने इस सीधे प्रसारण के लिए चार वाचक निश्चित किए, दो हिन्दी के लिए और दो अंग्रेजी के लिए।

प्रसारण-तिथि से एक सप्ताह पूर्व से सारी व्यवस्थाओं के पूर्वाभ्यास शुरू हुए। जो लोग कभी लाल किले की प्राचीर से प्रधानमन्त्री द्वारा ध्वजारोहण आमने-सामने नहीं देख सके हैं उनकी जानकारी के लिए यहां पर उस समारोह का थोड़े शब्दों में वर्णन करना संदर्भ की मांग है। दिल्ली में लाल किले के ठीक सामने चांदनी चौक है। लाल किला लाल पत्थर से बना है और उसके कई दरवाजे हैं। लाल किले के चांदनी चौक के सामने वाले मुख्य दरवाजे के ऊपर एक बड़ा सा खुला स्थान है जिस पर प्रधानमंत्री एक ऊंचे पाइप के ऊपर लगे ध्वज को फहराते हैं और वहीं से उसके बाद अपना भाषण देते हैं। लाल किले के ऊपर के इस खुले स्थान पर कोई दो-ढाई सौ अतिविशिष्ट व्यक्तियों के कुर्सियों पर बैठ सकने लायक पर्याप्त स्थान है। लाल किले के नीचे विशाल मैदान में परेड करने वाले सैनिकों, विशिष्ट व्यक्तियों तथा अन्य आमंत्रित व्यक्तियों के बैठने का स्थान होता है। लाल किले आने से पूर्व प्रधानमन्त्री मार्ग में राजघाट पर महात्मा गांधी की, शान्तिवन पर जवाहरलाल नेहरू की और विजयघाट पर लालबहादुर शास्त्री की समाधियों पर अपनी पुष्पांजलि समर्पित करते हैं। लाल किले पहुंचने पर प्रधानमन्त्री सबसे पहले सेना के तीनों अंगों को सलामी लेते हैं और फिर लिफ्ट से लाल किले की' प्राचीर पर पहुंचते हैं। प्राचीर पर वह पहले ध्वजारोहण करते हैं और फिर वहीं समीप ही बने बुलेटप्रूफ शीशे के केबिन में खड़े होकर वहां से देश की जनता को सम्बोधित करते हैं।

प्रसारण-तिथि से दो दिन पूर्व रात्रि में हमारा बहि:प्रसारण वाहन दूरदर्शन केन्द्र से लाल किले में अपने नियत स्थान पर पहुंच गया। हमारा बहि:प्रसारण वाहन लाल किले की प्राचीर से कोई सौ मीटर पीछे बाई ओर के एक मैदान में खड़ा किया गया था। दिन में कैमरों को यथास्थान फिट किया गया। इससे पूर्व हमारे दृश्य-अभिकल्पक के निर्देशन में हमारे बढ़इयों, मंच-सहायकों आदि ने कैमरों के स्थान पर आवश्यक सभी प्रबन्ध कर दिए थे। हमारे इस प्रसारण में छ: कैमरों का उपयोग किया गया। इनमें दो कैमरे लाल किले के सामने के मैदान में लोहे के ऐंगलों पर दो काफी ऊंचे मंच बना कर उन पर रखे गए थे और दो प्राचीर पर प्रधानमंत्री के सामने तथा कोण से चित्र लेने के लिए रखे गए थे। एक कैमरा लाल किले की प्राचीर से भी ऊपर बिगुल-वादकों के स्थान के आस-पास से चांदनी चौक, जामा मस्जिद तथा मैदान में बैठे दर्शकों के चित्र लेने के लिए नियत किया गया था और एक अन्य कैमरा थोड़ी दूर से प्राचीर पर बैठे विशिष्ट व्यक्तियों एवं प्रधानमंत्री के चित्र लेने के लिए नियत किया गया था।

प्रसारण-तिथि से एक दिन पूर्व सारे समारोह का लगभग पूरा-पूरा पूर्वाभ्यास किया गया जिसमें डमी प्रधानमन्त्री के साथ हमारे कैमरा एवं प्रस्तुतीकरण दल ने भी अपनी सारी गतिविधियों का अभ्यास किया।

9.12 वास्तविक सीधा प्रसारण

प्रसारण के दिन सभी लोगों के साथ यहाँ प्रात: साढ़े तीन-चार बजे ही दूरदर्शन की गाड़ियां पहुंच गईं। पहले सारे अधिकारी / कर्मचारी दूरदर्शन केन्द्र पर ही एकत्र हुए और फिर वहां से पांच बजे के आसपास लाल किले अपनी- अपनी ड्यूटियों पर पहुँच गए। लाल किले पहुँचने पर मैंने पहले तो यह सुनिश्चित किया कि हमारे सब साथी आ गए हैं और कहीं कोई पीछे छूट तो नहीं गया है। ओ बी वैन में घुसने से पहले बहि:प्रसारण वाहन के उद्घाटन के प्रतीक स्वरूप नारियल फोड़ा गया और सब लोगों को मेरी ओर से लड्डू-बर्फी बांटे गए जो मेरे इस अत्याधुनिक बहि:प्रसारण वाहन से सबसे पहली बार प्रभारी के रूप में प्रस्तुतीकरण करने की खुशी में थे। हम सब लोग भोर में काफी जल्दी उठे थे इसलिए इसके साथ ही सबको चाय और नाश्ता भी कराया गया।

इसके उपरान्त हम में से जिनका बहि:प्रसारण वाहन में काम था वह बहि:प्रसारण वाहन के अन्दर घुसे और हर किसी ने अपना- अपना मोर्चा संभाल लिया। हमारे जो इंजीनियर साथी थे वह तो अपने सारे उपकरणों आदि के काम करने की जांच करने में जुट गए और हमारे कार्यक्रम पक्ष के लोग अलग- अलग कैमरों की स्थितियों को अन्तिम रूप से जांचने और उनसे मिल रहे शॉटों को ठीक कराने आदि में लग गए।

मैं वैन से बाहर आया। निकट ही वाचकों के लिए बूथ बनाया गया था। मैंने वाचकों से पूछा कि सब कुछ ठीक-ठाक है ? उनसे सकारात्मक उत्तर पाकर मैंने उनका वाचन- आलेख देखने को मांगा। एक-दो छोटे-मोटे सुझाव दिए ओर कहीं-कहीं मामूली से संशोधन किए।

इस प्रकार बहि:प्रसारण वाहन के अन्दर और बाहर सारी स्थितियों को पूरी तरह नियंत्रण में देखने के बाद मैं लाल किले की प्राचीर पर पहुंचा और वहां से मैंने अपनी सारी कैमरा-स्थितियों का जायजा लिया। सभी स्थितियों पर हमारे सारे कैमरामैन, ट्रॉलीमैन आदि पहुंच चुके थे और वे अपने कैमरों से इधर-उधर के दृश्यों को देखते हुए उनकी सब प्रकार से जांच आदि कर रहे थे।

थोड़ी देर प्राचीर पर रहने के बाद मैं वापस बहि:प्रसारण वाहन के अन्दर आ गया और प्रस्तुतकर्ता की अपनी कुर्सी पर बैठ गया। पास की कुर्सियों पर एक ओर तकनीकी निर्देशक बैठे थे और दूसरी ओर मेरा प्रस्तुतीकरण सहायक। दो अन्य कुर्सियों में से एक पर थोड़ी देर बाद गोवर्धन शर्मा बैठ गए और दूसरी पर एक अभियन्त्रण सहायक। मैंने माइक ऑन कर अपने कैमरामैनों और दल के अन्य सभी सदस्यों का इस प्रसारण के लिए आने पर स्वागत किया और इसके बाद सभी सदस्यों को एक बार फिर बताया कि हम प्रसारण किस प्रकार शुरु करेंगे और फिर आगे किस प्रकार के दृश्य आएंगे, कहाँ किस प्रकार की ध्वनि आएगी और कहीं किस प्रकार के ध्वनि- प्रभाव आदि का उपयोग किया जाना है। इसके बाद मैंने सभी कैमरामैनों को अलग-अलग यह बताया कि उन्हें कब-कब किस-किस प्रकार के शॉट देने हैं।

अब मैंने सबसे कहा कि आइए प्रसारण की बैठक' कर लें। इस पर बहि:प्रसारण वाहन के विभिन्न बिन्दुओं यथा ध्वनि-नियंत्रण पैनल, कैरेक्टर जरेटर, वी टी आर और क्षेत्र में काम कर रहे अधिकांश प्रमुख कर्मी बहि:प्रसारण वाहन में मेरे इर्द-गिर्द जिसको जहां जगह मिली वहां खड़े हो गए। मेरे

प्रस्तुतीकरण-सहायक ने पहले से तैयार क्यूशीट की प्रतियां सबको वितरित कीं। जब लोगों ने अपनी-अपनी प्रतियों को पढ़ लिया तो मैंने क्यू- शीट की एक-एक मद पढ़नी शुरू की और साथ ही साथ सबको यह समझाने लगा कि पूरा प्रसारण किस-किस बिन्दु पर किस प्रकार चलेगा। इस बीच जिसे जो बात पूछनी होती थी वह पूछ लेता था। क्यू- शीट का पढ़ना पूरा होने पर और सबकी शंकाओं आदि का समाधान होने के बाद सभी अपने-अपने कामों में लग गए और मैंने अपना ध्यान सामने लगे मॉनीटरों पर केंद्रित किया।

इन सारी गतिविधियों के बीच समय अपनी गति से सरकता जा रहा था और अब पौने सात बजने जा रहे थे। सीधा प्रसारण शुरू होने का समय था सात बज कर पाँच मिनट। अभी स्टूडियो से देशभक्ति के गीत चल रहे थे। हम सब लोगों ने एक बार फिर अपनी सारी स्थितियों, उपकरणों की कार्यवाही आदि की जांच की, विभिन्न बिन्दुओं पर विचार-विमर्श किया और उधर घड़ी की सुई प्रसारण-समय की ओर बढ़ती रही। लगभग सात बजे सभी को सावधान किया गया और सभी लोग पूर्णत: दत्तचित्त होकर सात पांच होने की प्रतीक्षा करने लगे। सात बज कर चार मिनट पर स्टूडियो के इस सीधे प्रसारण के बारे में उद्घोषणा हुई और पांच मिनट से कोई दस सैकंड पूर्व हमारे नियंत्रण-पैनल पर एक छोटी बत्ती जल उठी जो इस बात का निर्देश थी कि अब आप अपने यहां से सीधा प्रसारण प्रारंभ करें। स्टूडियो से आ रही उद्घोषणा के फेड आउट होते ही टेलीविजन के स्क्रीन पर हमारे क्षेत्र का वह विहंगम दृश्य उभरा जिसे हमने लाल किले की प्राचीर से भी ऊपर काम कर रहे कैमरे से पहले ही केंद्र के नियंत्रण-कक्ष को दे रखा था।

हमारे छोर से प्रसारण प्रारंभ होते ही हमने अपने पैनल से लाल किले के ऊपर, सामने के और दाएं, बाएं के शॉट एक निश्चित और सुसंगत क्रम में टेलीविजन पर प्रसारण के लिए भेजने शुरू कर दिए और दूसरी ओर अपने वाचकों को उपयुक्त वाचन प्रारंभ करने का निर्देश भी दे दिया। तभी प्रधानमंत्री द्वारा श्रद्धांजलि प्रदान करने की रिकॉर्डिंगें प्राप्त होने लगी जिन्हें हमने बारी-बारी से उचित वाचनों के साथ दिखाना शुरू कर दिया। अभी विजयघाट की रिकॉर्डिंग चल भी न पाई थी कि पता चला कि प्रधानमंत्री महोदय कुछ ही क्षणों में लाल किले पहुंचने वाले हैं। कैमरों की पकड़ में प्रधानमंत्री के आते ही हमने उनके दृश्य प्रसारित करने शुरू कर दिए और उधर वाचन भी तदनुरूप ही चलने लगा।

प्रधानमंत्री ने पहले सेना के तीनों अंगों की सलामी ली और उसके बाद वह प्राचीर की ओर रवाना हुए। पता नहीं लिपट खराब हो गई अथवा सुरक्षा कारणों से प्रधानमंत्री सीढ़ियों से चढ़ कर प्राचीर पर आए। चूंकि प्रधानमंत्री को सीढ़ियों से ऊपर आने में कुछ समय लगा सो हमने इस अवधि में विजयघाट की रिकार्डिंग चला दी। लाल किले की प्राचीर पर रक्षामंत्री एवं उनके सहयोगियों द्वारा स्वागत किए जाने के बाद प्रधानमंत्री झंडा फहराने के स्थान पर आ गए और उन्होंने कुछ ही क्षणों में तिरंगा फहरा दिया। इसके बाद वह तुरंत बुलेट-प्रूफ शीशे के केबिन में चले गए और राष्ट्र को संबोधित करने लगे।

---

1. दूरदर्शन से जब किसी कार्यक्रम का प्रस्तुतीकरण हो रहा होता है तब कम से कम 20- 25 प्रसारणकर्मी अलग-अलग बिन्दुओं पर काम कर रहे होते हैं। सीधे प्रसारण के समय यह संख्या और भी अधिक हो जाती है। कार्यक्रम निर्देशक इन सब का नेता होता है जो क्षण प्रति क्षण दल के सभी सदस्यों को अलग-अलग प्रकार के निर्देश देता रहता है। कार्यक्रम-निर्देशक के इन निर्देशों को दल के सभी सदस्यों तक समान रूप से और सारे समय पहुँचाते रहने के लिए दृश्य-नियन्त्रण पैनल पर एक माइक का प्रावधान रहता है। नियन्त्रण-कक्ष से अलग-अलग बिन्दुओं पर स्पीकर और क्षेत्र या स्टूडियो में काम कर रहे कैमरामैनों, मच-प्रबंधकों आदि के पास हैंडसैट रहते हैं, जिनसे वे निर्देशक के इन निर्देशों को निरन्तर ग्रहण करते रहते हैं और उनके अनुसार ही शॉट, ध्वनि, दृश्य आदि देते रहते हैं।

सारा प्रसारण लगभग डेढ़ घंटे चला। इस बीच मैंने प्रस्तुतीकरण कम और सब ओर की निगरानी अधिक की। प्रभारी के नाते मेरा मुख्य काम था निर्बाध प्रसारण सुनिश्चित करना। कार्यक्रम के अंत में उन सब प्रसारणकर्मियों के नामों के आलेख दिखाए जिन्होंने इस प्रसारण को सफल बनाने के लिए कम से कम पिछले पन्द्रह दिनों से अपने दिन-रात एक कर दिये थे सबसे अन्त में मेरे नाम का आलेख आया। प्रसारण की समाप्ति लाल किले पर फहराते हुए ध्वज के ऊपर 'दूरदर्शन प्रस्तुति' के आलेख के साथ हुई। मात्र संयोग ही नहीं वरन् मेरा सौभाग्य भी कहिए कि मुझे अपने सारे दल के सभी सदस्य बड़े जानकार मिले थे और वे सब समूचे प्रसारण के दौरान बड़ी मुस्तैदी से अपने नियत-अनियत कामों को करते रहे। कहीं किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं आई। सबने पूरी तरह मिल-बांट कर किया और इसी का यह सत्परिणाम था कि सारा प्रसारण पूरी तरह निर्बाध सम्पन्न हुआ।

9.13 आधुनिक परिदृश्य

कठिन से कठिन स्थानों से कम से कम समय में टीवी समाचार उपलब्ध कराने और सीधे सजीव प्रसारणों को संभव बनाने में तकनीकी उपकरणों को निरन्तर छोटा और कम से कम भार का करते रहने के प्रयासों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। लगभग 15 - 20 वर्ष पूर्व जब से उपग्रहों के माध्यम से टी वी समाचारों के सध्वनि चित्र एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने का सिलसिला शुरू हुआ है इलैक्ट्रॉनिक एवं उपग्रह वैज्ञानिक इस प्रक्रिया में उपयोग किए जाने वाले विविध उपकरणों का आकार और भार घटाने के प्रयासों में लगे रहे हैं। इन वैज्ञानिकों के इन प्रयासों का ही यह सुफल है कि आज के उपग्रह समाचार वाहनों में ऐसे छोटे-छोटे बहुत से अलग किए जा सकने वाले एंटेना, संबंधित उपकरण, कैमरे आदि होते हैं जिन्हें बहुत सुगमता से हवाई जहाज से एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाया जा सकता है। ऐसी व्यवस्था को पलाई अवे (Fly Away) व्यवस्था कहते हैं।

उपग्रहों के माध्यम से सीधे प्रसारण में सबसे मुख्य है उपग्रह को धरती से दृश्य-श्रव्य संकेत भेजने वाली डिश जो अब से कुछ वर्षों पूर्व तक सी बैण्ड के प्रसारणों में कम से कम आठ-नौ मीटर व्यास के आकार की हुआ करती थी। इतने बड़े आकार की डिशें अधिकांशत: किसी एक स्थान पर अचल ही प्रतिष्ठापित की जाती थी। इन डिशों को सचल बनाने के लिए प्रारम्भ में ट्रैक्ट वाहनों के स्थान का उपयोग किया गया जो एक प्रकार के बड़े ट्रक थे। अधिक शक्ति वाले उपग्रहों, सी बैण्ड के स्थान पर के यू बैण्ड के उपयोग, एनॉलॉग प्रसारण की अपेक्षा अंकीय संपीडित (Digitally compressed) संकेतों के उपयोग तथा निर्माणोत्तर (Post Production) के लिए छोटे से छोटे एवं हल्के से हल्के वी सी आरों एवं अन्य उपकरणों के विकास ने आज टी वी से सीधे प्रसारण को अत्यन्त सुगम बना दिया है।

आज डिश का आकार घटते -घटते मात्र एक-डेढ मीटर व्यास तक आ गया है और अब उपग्रह समाचार संग्रहण वाहनों (Satellite News Gathering Vehicles) में ऐसे छोटे-छोटे बहुत-से अलग-अलग किए जा सकने वाले एण्टेनाट संबंधित उपकरण, कैमरे आदि होते हैं जिन्हें मात्र 8 - 10 पेटियों में बन्द करके काफी छोटे वायुयान से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया सकता

2. दूरदर्शन में किसी भी कार्यक्रम के वास्तविक प्रस्तुतीकरण से कोई एक-डेढ़ घटे पूर्व दृश्य-नियंत्रण पैनल पर प्रस्तुतीकरण या प्रसारण के लिए काम कर रहे दल के सभी सदस्यों की एक बैठक होती है जिसमें कार्यक्रम-निर्देशक, तकनीकी-निर्देशक, प्रस्तुतीकरण-सहायक आदि पैनल की कुर्सियों पर बैठ जाते हैं और दल के सभी सदस्य पैनल के इर्द-गिर्द जिसे जहां स्थान मिल जाए खड़े रहते हैं। इस बैठक में सबसे पहले पूरे कार्यक्रम या पूरी प्रसारण-सभा की क्यू-शीट की प्रतियां सबको वितरित की जाती हैं और फिर प्रस्तुतकर्ता स्वयं या उसका प्रस्तुतीकरण सहायक क्यू-शीट को विस्तार से सबको समझाते हुए और सबको, किसको कब, कहां क्या करना है यह अच्छी तरह बताते हुए क्यूशीट की एक-एक मद को पढ़ता है। इससे सभी लोगों को अपने-अपने द्वारा किए जाने वाले कार्यों का भली प्रकार पता चल जाता है। किसी भी कार्यक्रम के निर्बाध प्रस्तुतीकरण या किसी प्रसारण सभा के सभी कार्यक्रमों के निर्बाध प्रसारण के लिए इस प्रकार की बैठक सर्वथा अपरिहार्य है।

है। धरती पर डिश सहित इन सारे उपकरणों को मात्र एक-डेढ़ टन भार की क्षमता के ट्रक से आसानी से इधर-उधर ले जाया जा सकता है। इन सारे उपकरणों को आपस में एक-दूसरे से सम्बद्ध करना भी अब इतना सुगम और कम समय-सापेक्ष हो गया है कि किसी भी स्थान पर पहुंचने के मात्र आधे घंटे के भीतर वहां से सीधे प्रसारण प्रारम्भ किए जा सकते हैं।

भारत में अब इन नवीनतम प्रणालियों का उपयोग होने लगा है। चुनावों की विभिन्न गतिविधियों एंव चुनाव परिणामों के समाचार एकत्र करने और उनके सीधे प्रसारणों के लिए दूरदर्शन एवं भारत में कार्यरत अन्य देशी-विदेशी टी वी संस्थान ऐसी प्रणालियों का अब काफी उपयोग कर रहे हैं।

खेलों के सीधे प्रसारण के धंधे में अरबों डालर का व्यापार होता है। क्रिकेट वर्ल्ड कप 99 का प्रसारण अधिकार खरीदने वाली कम्पनियों में से जो दूरदर्शन को सबसे अधिक रकम देगी उसे दूरदर्शन की मार्फत भारत में कार्यक्रम प्रसारण की अनुमति मिलेगी। यह राशि करोड़ों रुपये में होगी। मूल प्रसारण कंपनी ने विज्ञापनों से खुद भी करोड़ों कमाएगी।

बोध प्रश्न - 2

1. बहि:प्रसारण वाहन (आउटसाइड ब्राडकास्ट वैन) की उपयोगिता बताएं।
2. उपग्रहों के माध्यम से सीधे प्रसारण की विधि समझाएं।
3. महत्वपूर्ण आयोजनों के सीधे प्रसारण के लिए क्या-क्या तैयारियां अपेक्षित हैं?

9.14 सारांश

टेलीविजन पर पहले से तैयार कार्यक्रमों की रिकार्डिग स्टूडियो में आयोजित सजीव कार्यक्रम और घटना-स्थल से कार्यक्रमों का सीधा प्रसारण होता है। पहली नियमित सेवा नवम्बर 1936 में बीबीसी ने आरंभ की। इसके तुरन्त बाद सीधे प्रसारणों का सिलसिला आरंभ हो गया 1 मई 1937 में सिंहासनारोहण का सीधा प्रसारण हुआ जिसे 100 किलो मीटर की परिधि में देखा गया। वैज्ञानिक और तकनीकी उन्नति की बदौलत उपग्रहों के माध्यम से सीधे प्रसारण घटनास्थल से दुनियां के हर कोने में पहुंचाए जा सकते हैं।

1982 में एशियाड खेलों के प्रसारण की तैयारी के बाद भारत ने प्रसारण के हर क्षेत्र में प्रगति की है। भारतीय संचार उपग्रह आकाश में कार्यरत हैं। दूरदर्शन के कार्यक्रम इनसैट-2 बी, इनसैट- 2 सी और इनसैट-2 डी-टी के माध्यम से चल रहे हैं भारत में प्रसारण की नवीनतम प्रणालियों का उपयोग होने लगा है।

खेलों का सीधा प्रसारण विज्ञापनदाताओं को इतना आकर्षित करने लगा है कि प्रसारण अधिकार पाने के लिए टेलीविजन कंपनियों में जबर्दस्त होड़ मचती है।

9.15 संक्षिप्त शब्दावली

ई एन जी एकक-अंग्रेजी में इसका पूरा रूप है (Electronic News Gathering Unit.) भारत में इस प्रकार के एककों का आगमन सन् 1982 में दूरदर्शन के रंगीन होने के कुछ समय बाद हुआ। इस एकक में एक सचल कैमरा और एक वीडियो कैसेट रिकॉर्डर होता है। इस प्रकार के एककों के द्वारा दूरदर्शन के बाहर के दृश्यों, समाचारों आदि की रिकॉर्डिंग की जाती है।

उपग्रह समाचार संग्रहण वाहन- इस समय विश्व में घटना स्थल से समाचारों का संग्रह और उन्हें विश्व के विभिन्न समाचार संग्रहण केन्द्रों में पहुंचाने के लिए उपग्रह समाचार संग्रहण वाहन (Satellite News Gathering Vehicles) का व्यापक पैमाने पर उपयोग हो रहा है। ये उपग्रह समाचार संग्रहण वाहन आम तौर पर 5 कैमरों की प्रस्तुति क्षमता वाले होते हैं और इनमें निर्माणोत्तर (Post-production), अक्षरांक जनक (Character Generator), ग्राफिक व्यवस्था, समाचार रिकॉर्ड करने के लिए छोटे से मंच आदि की पूरी-पूरी व्यवस्था रहती है। इन सब उपकरणों से समाचार बना कर उन्हें इन वाहनों द्वारा अपनी छत पर लगे लगभग 5 मीटर व्यास के आकार के डिश एंटेना द्वारा सीधे उपग्रहों को भेज दिया जाता है। ये उपग्रह समाचार संग्रहण वाहन बहुत कुछ दूरदर्शन के पास इस समय उपलब्ध बहिःप्रसारण वाहनों -जैसे ही होते हैं अलबत्ता इनमें घटना स्थल से ही उपग्रह को सीधे उन सारे समाचारों को ऊर्ध्वसम्पर्क (Uplink) करने के लिए एंटेना और उससे संबन्धित उपकरण लगे होते हैं।

क्रियाशील-संचार उपग्रह धरती से लगभग 36,000 किलोमीटर दूर एक वृत्ताकार कक्षा में लगभग 11,000 किलोमीटर प्रति घंटे की गति से धरती का एक चक्कर ठीक उतने ही समय में पूरा करता है जितने समय में धरती अपनी धुरी पर पूरी तरह घूम जाती है। किसी उपग्रह को धरती से अंतरिक्ष की इस कक्षा में स्थापित करने का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि ऊपर गए और दाएं को मुड़ गए और कक्षा में घूमना शुरू। प्रमोचन एक बहुत ही महंगा और अत्यन्त पेचीदा संचालन है। उपग्रह को भूस्थिर कक्षा में स्थापित करने से पहले एक मध्यवर्ती स्थानांतर कक्षा में रखना होता है। यह कक्षा दीर्घवृत्ताकार होती है। धरती से भेजे जाने वाले विभिन्न आदेशों आदि से नियन्त्रित और संशोधित होकर जब प्रमोचन के कुछ दिन बाद उपग्रह अपनी भूस्थिर कक्षा में पहुंच जाता है और उस स्थिति में जब उसके सही स्थिति में होने की सभी प्रकार से जांच कर ली जाती है तभी किसी उपग्रह को क्रियाशील या Critical घोषित किया जाता है। इसके बाद ही उपग्रह का संचार तथा अन्य कार्यो के लिए नियमित उपयोग शुरू किया जाता है।

ट्रैक्ट (Tract)-अंग्रेजी में इसका पूरा रूप है (Trasportable Remote Area Communication Terminal) अर्थात् दूरदराज के इलाकों से संचार-व्यवस्था उपलब्ध कराने के लिए सचल स्थान। ट्रैक्ट एक बड़ा ट्रक होता है जिस पर उपग्रह को संकेत भेजने वाली डिश और अन्य संबंधित उपकरण लगे होते हैं। उपग्रह को संकेत भेजने वाली इसी डिश से उपग्रह से संकेत ,प्राप्त भी किए जा सकते हैं। इस वाहन को किसी भी अन्य ट्रक की भांति एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सकता है।

भू केन्द्र-धरती से उपग्रह तक संकेत भेजने और उपग्रह के संकेत धरती पर प्राप्त करने के लिए धरती पर जिस स्थान पर डिशें तथा अन्य संबद्ध उपकरण आदि लगाए जाते हैं उस स्थान को भूकेन्द्र कहते हैं।

सी एन एन अर्थात् केबिल न्यूज नेटवर्क-यह अमरीका के टेड बर्नर के स्वामित्व वाली एक संस्था है जिसका गठन मुख्य रूप से अमरीका के केबिल संजालों को समाचार उपलब्ध कराने के लिए किया गया था। आज यह संस्था कई उपग्रह सेवाएं भी चला रही है।

सी जी अर्थात् कैरेक्टर जनरेटर (Character Generator)- यह एक सामान्य कम्प्यूटर जैसा ही होता है जिसका संबंध टेलीविजन के इलैक्ट्रोनिक संजाल से कर दिया जाता है। इसका उपयोग

टेलीविजन के कार्यक्रमों के लिए लेखन तथा अन्य दृश्यात्मक सामग्री बनाने के लिए और उन्हें उन कार्यक्रम में समाविष्ट करने के लिए किया जाता है।

सूक्ष्म तरंग डिश दूरदर्शन से बाहर क्षेत्र में काम कर रहे बहि:प्रसारण वाहन द्वारा पैदा किए जा रहे सध्वनि दृश्य संकेतों को प्रसारण हेतु दूरदर्शन केन्द्र के नियन्त्रण कक्ष तक अथवा सीधे ट्रांसमीटर तक ले जाने के लिए आम तौर पर सूक्ष्म तरंग का सहारा लिया जाता रहा है। संकेतों को सूक्ष्म तरंग के माध्यम से भेजने के लिए बहि:प्रसारण वाहन के ऊपर और दूरदर्शन केन्द्र या ट्रांसमीटर के भवन के ऊपर दो सूक्ष्म तरंग डिशें एक सीध में बिलकुल एक-दूसरी के सामने लगाई जाती हैं। ये डिशें एक निश्चित दूरी तक ही काम कर पाती हैं और दूरी अधिक हो जाने पर बीच में और डिशें लगानी पड़ती हैं।

9.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. दूरदर्शन के प्रमुख सीधे सजीव प्रसारणों का वर्णन कीजिए।
2. टेलीविजन के सीधे प्रसारणों में संचार उपग्रहों का क्या योगदान रहा है?
3. सीधे प्रसारण में बहि:प्रसारण वाहन की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
4. सीधे प्रसारण के लिए क्या-क्या तैयारियां अपेक्षित होती हैं?
5. दूरदर्शन से सीधे प्रसारण में वाचकों और उपग्रहों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

NOTES

NOTES

विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की सूची

	पाठ्यक्रम का नाम	अवधि
1.	स्नातक उपाधि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
2.	भोजन एवं पोषण में सर्टिफिकेट	6 माह
3.	कम्प्यूटर ज्ञान एवं प्रशिक्षण का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
4.	सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटिंग	6 माह
5.	पंचायती राज प्रोजेक्ट में प्रमाण-पत्र	6 माह
6.	संस्कृति एवं पर्यटन में प्रमाण-पत्र	6 माह
7.	महिलाओं में वैद्यानिक बोध में प्रमाण-पत्र	6 माह
8.	राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति में प्रमाण-पत्र	6 माह
9.	बी.ए.एफ./बी.सी.एफ. (त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम)	1 वर्ष
10.	एम.ए.(अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, हिन्दी)	2 वर्ष
11.	एम.बी.ए.	3 वर्ष
12.	पी.जी.डी.एच.आर.एम.	1 वर्ष
13.	पी.जी.डी.एफ.एम.	1 वर्ष
14.	पी.जी.डी.एम.एम.	1 वर्ष
15.	पी.जी.डी.एल.एल.	1 वर्ष
16.	टी.एच.एम.	1 वर्ष
17.	डी.एन.एच.ई.	1 वर्ष
18.	डी.सी.ओ.	1 वर्ष
19.	डी.एल.एस.	1 वर्ष
20.	डी.सी.सी.टी.	18 माह
21.	बी.जे.(एम.सी.)	1 वर्ष
22.	एम.जे.(एम.सी.)	2 वर्ष
23.	बी.लिब.	1 वर्ष
24.	पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा	1 वर्ष
25.	बी.एड.	2 वर्ष
26.	पी.एच.डी.	3 वर्ष
27.	पी.जी.डी.ई.एस.डी.	1 वर्ष



पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन 3

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम. जे. एम. सी. - 1

जनसंचार माध्यमों
के लिए लेखन

पत्रकारिता एवं जनसंचार
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन - 3

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

* **डॉ. राधावल्लभ व्यास**
कुलपति
कोटा खुला विश्वविद्यालय
कोटा
(अध्यक्ष समिति)

* **प्रो. ए.के. बनर्जी**
पूर्व-अध्यक्ष
पत्रकारिता विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

* **डॉ. ए. डबल्यू. खान**
कुलपति
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

* **प्रो. जे.एस. यादव**
निदेशक
भारतीय जनसंचार संस्थान
नई दिल्ली

* **राधेश्याम शर्मा**
पूर्व-महानिदेशक
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
विश्वविद्यालय, भोपाल(म. प्र.)

* **डॉ. भंवर सुराणा**
ब्यूरो चीफ/ विशेष संवाददाता
दैनिक हिंदुस्तान
जयपुर

* **डॉ. ओ.पी. केजरीवाल**
महानिदेशक, महानिदेशालय आकाशवाणी
नई दिल्ली

* **डॉ. रमेश जैन**
अध्यक्ष-जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक

डॉ. रमेश जैन- अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ-संपादक एवं भाषा-संपादक

पाठ-संपादक
जितेन्द्र गुप्ता
वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक
नई दिल्ली

भाषा-संपादक
डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार
जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)एम.के. घड़ोलिया
निदेशक(अकादमिक)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन - अप्रैल 2012

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित ।

एम. जे. एम. सी. -1

जनसंचार -माध्यमों के लिए लेखन

पाठ्यक्रम - प्रथम
खण्ड 3 -

3

इकाई 10 विभिन्न मुद्रित-माध्यमों के लिए विज्ञापन- लेखन	8–24
इकाई 11 इलाक्ट्राय माध्यमों के लिए विज्ञापन- लेखन	25–49
इकाई 12 भैंटवार्ता-लेखन	50–73
इकाई 13 संस्मरण-लेखन	74–87

पाठ लेखक

1. डॉ.विजय कुलश्रेष्ठ
सहआचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

2. श्याम माथुर
उप संपादक
राजस्थान पत्रिका
जयपुर

3. डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार
जयपुर

4. रामकुमार
पत्रकार, लेखक
कोटा

5. हमीदुल्ला
हिन्दी नाटककार
जयपुर

6. डॉ. रीतारानी पालीवाल
रीडर, हिन्दी विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

7. डॉ. सुरेन्द्र विक्रम
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग
क्रिश्चियन डिग्री कॉलेज, लखनऊ(उ.प्र.)

8. डॉ. राधामोहन श्रीवास्तव
अध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग
बड़हलगंज, गोरखपुर(उत्तर प्रदेश)

9. डॉ. कैलाश पपने
विशेष संवाददाता
दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली

10. सुभाष सेतिया
संपादक 'आजकल'
प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
पटियाला हाउस, नई दिल्ली

11. डॉ.लक्ष्मीकांत दाधीच
प्राध्यापक, वनस्पति शास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय कोटा

12. दीनानाथ दुबे
पत्रकार, लेखक
कोटा

13. राधेश्याम तिवारी
जनसंचारकर्मी एवं लेखक
जयपुर

14. श्रीमती सुषमा जगमोहन
संध्या टाइम्स
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

15. सत सोनी
संपादक- संध्या टाइम्स
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

16. डॉ. रमेश जैन
अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

17. डॉ. हेमन्त जोशी
प्राध्यापक- पत्रकारिता विभाग
भारतीय जनसंचार संस्थान
नई दिल्ली

18. रामेश्वर मिश्र
वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक
नई दिल्ली

19. डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ
रीडर-हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

20. जयदेव शर्मा
प्रभारी- दैनिक नवज्योति
कोटा

खंड एवं इकाई परिचय

प्रस्तुत तीसरे खंड में चार इकाइयां समिलित की गई हैं - 1. विभिन्न मुद्रित- माध्यमों के लिए विज्ञापन-लेखन, 2. इलैक्ट्राय-माध्यम के लिए विज्ञापन - लेखन, 3. भेंटवार्ता-लेखन तथा 4. संस्मरण- लेखन।

पहली इकाई (इकाई -10) में जनसंचार-माध्यम के स्वरूप की चर्चा करते हुए विज्ञापन्माध्यम के रूप में प्रकाश डाला गया हैं। विज्ञापन- एजेंसी के कार्यों औरविज्ञापन की लेखन-कला के विषय में बताया गया हैं। विज्ञापन संबंधी कानूनों की भी चर्चा की गई हैं।

दूसरी इकाई (इकाई सं. 11) में इलाक्ट्राय- माध्यमों का परंपरागत-माध्यमों पर प्रभाव बताते हुए रेडियों लेखन्कला पर प्रकाश डाला गया हैं। विभिन्न ध्वनियों और उनके प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए रेडियो-विज्ञापन के स्वरूप, तत्व और उसकी विशेषताओं की चर्चा की गई हैं। रेडियों-विज्ञापन-लेखन की तैयारी कैसे करें, इस पर प्रकाश डाला गया हैं। टेलीविजन-विज्ञापन पर भी अपेक्षित चर्चा की गई हैं।

तीसरी इकाई (इकाई सं. 12) में भेटवार्ता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसके इतिहास पर प्रकाश डाला गया हैं। हिन्दी के अलावा अंग्रेजी, संस्कृत , बांग्ला, गुजराती तथा मलयालम भाषाओं के साक्षात्कारों की भी चर्चा की गई हैं। पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन-आकाशवाणी के लिए साक्षात्कार कैसे लें, इस पर भी प्रकाश डाला गया हैं।

चौथी इकाई (इकाई सं.13) में संस्मरण के स्वरूप और उसके वर्गीकरण पर प्रकाश डाला गया हैं। उसका इतिहास प्रस्तुत करते हुए विभिन्न संस्मरण्लेखकों की विशेषताओं को बताया गया हैं। संस्मरण कैसे लिखे, इस पर भी विस्तार से चर्चा की गई हैं। विभिन्न संस्मरण-रचनाओं की महत्वपूर्ण सूची भी समाविष्ट की गई हैं।

सभी इकाईयों का सारांश देते हुए उनमें प्रस्तुत विशेष शब्दावली को स्पष्ट किया गया हैं। उपयोगी पुस्तकों की चर्चा कराते हुए बोध प्रश्नों तथा निबंधात्मक प्रश्नों का समावेश किया गया हैं।इस प्रकार सभी इकाइयों को पठनीय और उपयोगी बनाया गया हैं। पूर्ण विश्वास हें की शिक्षार्थीगण इनसे अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

इसके पूर्व आप खंड 2 में नाटक-लेखन, रेडियों के लिए, उद्घोषणा-लेखन और दूरदर्शन से सीधा प्रसारण पर विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं।

इकाई 10 विभिन्न-मुद्रित माध्यमों के लिए विज्ञापन-लेखन

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.1.1 संचार और जनसंचार

10.1.2 जनसंचार-माध्यम का स्वरूप

10.1.3 संचार-माध्यम और आधुनिक समाज

10.2 विज्ञापन और संचार-माध्यम

10.2.1 विज्ञापन और विज्ञापन-माध्यम

10.2.2 विज्ञापन-माध्यम का रूप

10.3 जनसंचार-माध्यम के रूप

10.4 विज्ञापन-माध्यम के विविध स्तर

10.4.1 विज्ञापन हेतु माध्यम-चयन

10.4.2 विज्ञापन-माध्यम का महत्व

10.5 विज्ञापन: संस्था का छवि-निर्माता

10.5.1 विज्ञापन की आवश्यकता

10.5.2 विज्ञापन-एजेंसी की सेवाएं

10.6 मुद्रित-माध्यम के लिए विज्ञापन की लेखन-कला

10.6.1 शीर्षक (हैडिंग)

10.6.2 शीर्षक-लेखन के रूप

10.6.3 उपशीर्षक (सब हैडिंग)

10.6.4 कायाकथ्य (बॉडी कॉपी)

10.6.5 उपसंहार

10.6.6 विज्ञापन-सज्जा (ले आउट) और चित्र

10.6.7 ट्रेड मार्क

10.7 विज्ञापन-कॉपी-लेखन की अनिवार्यताएँ एवं संहिता

10.7.1 कॉपी-लेखन की अनिवार्यताएं

10.7.2 विज्ञापन संबंधी कतिपय कानून

10.7.3 भारतीय विज्ञापनों के लिए आचार-संहिता

10.8 सारांश

10.9 उपयोगी पुस्तकें

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 उद्देश्य

अब तक आप जनसंचार-माध्यम और उसके लिए विविध स्तरों पर लिखे जाने की प्रक्रिया परिचय प्राप्त कर चुके हैं । अब तक आधुनिक जनसंचार माध्यमों के विषय में और उनके लिए जाने के संबंध में विशेषताओं का ज्ञान आपको हो चुका है । इस इकाई में आप जान सकेंगे:-

- जनसंचार माध्यमों की जीवन में उपयोगिता क्या है?
- विज्ञापन क्या होता है और उसके प्रकारों का रूप क्या है?
- विज्ञापन जनसंचार माध्यमों विशेषकर मुद्रित-माध्यम में किस रूप में प्रयुक्त होते हैं?
- जनसंचार-माध्यमों में विज्ञापन-लेखन कैसे होता है तथा उसकी विशेषताएं क्या होती हैं?

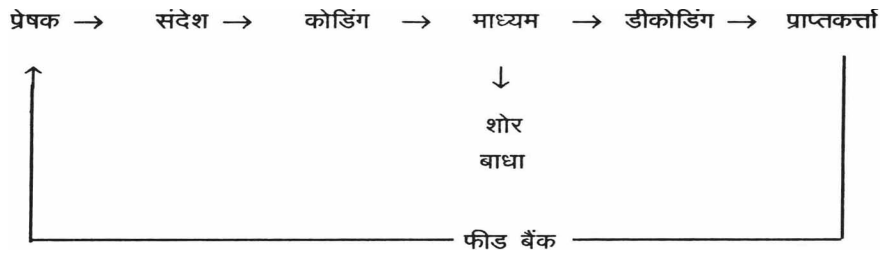
10.1 प्रस्तावना

10.1.1 संचार और जनसंचार

संचार का अर्थ सूचना, विचार या दृष्टिकोण को दूसरे तक पहुंचाना तथा दूसरे की प्रतिक्रिया जान लेना है । संचार को तीन रूपों में देखा जा सकता है-प्रथम रूप 'अन्तर्वैयक्तिक संचार' है, जिसमें एक व्यक्ति कहता है और दूसरा व्यक्ति तत्काल ही उसका उत्तर देता है । द्वितीय रूप 'समूह संचार' है, जिसमें एक व्यक्ति एक समूह को सम्बोधित करता है और उस समूह की प्रतिक्रिया जानकर आगे कार्य करता है या बढ़ता है । तृतीय रूप विशाल जन समूह या जन समुदाय का होता है जिसे सम्बोधित करने के लिए व्यक्ति स्वयं सक्षम नहीं होता, अपितु किसी माध्यम की आवश्यकता होती है । इस प्रक्रिया में मुद्रण, इलॉक्ट्राय, प्रदर्शनी, विज्ञापन तथा लोक-माध्यम काम में आते हैं । संचार या जन संचार की प्रक्रिया में प्रेषक, संदेश, माध्यम और प्राप्तकर्ता (लक्ष्य) होते हैं । इस स्थिति में प्रेषक किसी जानकारी को प्राप्तकर्ता के पास भेजना चाहता है तो क्या संदेश वह दे, कैसे इसे बनाये ताकि प्राप्तकर्ता उसी रूप में उसे समझ सके । इसी संचार की प्रक्रिया का दूसरा रूप है - फीड बैक । इसमें प्राप्तकर्त्ता संदेश या जानकारी के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है और उसका पता सन्देश भेजने वाले को हो जाता है ।

10.1.2 जनसंचार माध्यम का स्वरूप

जनसंचार (मास कम्यूनिकेशन) में यांत्रिक माध्यम ही सुगम होता है तथा यह संस्थागत प्रक्रिया ही है । लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनसंचार-माध्यमों की भूमिका और भी अधिक बढ़ गई है । जनसंचार-माध्यम अपने-अपने क्षेत्र में विशेष तकनीक और कार्यविधि से संचालित होते हैं, पर मूलतः वे संचार की क्रिया-प्रतिक्रिया के नैसर्गिक कार्य-संचालन से भिन्न नहीं रहते हैं । इस सम्बन्ध में माध्यम की उपयोगिता का महत्वपूर्ण पक्ष स्वयं उभरता है, यथा-



वस्तुत: जनसंचार में 'शोर या बाधा' मूल गन्तव्य हो प्राप्त कर्ता तक पहुंचने देने में रुकावट बन सकती है, परन्तु आज यह सच है कि कोई भी व्यक्ति सीधे ही जनसंचार के माध्यमों से इतना प्रभावित नहीं हो सकता जितनी उक्त चित्र में अपेक्षा के साथ 'शोर या बाधा' की चिन्ता प्रकट की गई है, क्योंकि व्यक्ति के पास सन्तुष्टि के लिए कई माध्यम उपलब्ध होते हैं ।

10.1.3 संचार-माध्यम और आधुनिक समाज

संचार-माध्यमों का परिचय हो जाने के पश्चात आधुनिक समाज में उसकी भूमिका देखना भी उचित होगा । 'सूचना ही शक्ति' मानी जाती है क्योंकि जो व्यक्ति, संस्था या देश जानकारियां रखता है उसी के हाथ शक्ति भी होती है । सूचना का व्यापक अर्थ में प्रयोग अभीष्ट है तो वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में आधुनिक समाज की सत्ता भी कम व्यापक या महत्वपूर्ण नहीं है ।

भारतीय समाज विभिन्न जातियों, वर्गों, संप्रदायों, संस्कृतियों का एक समुच्चय है जो मूलत: "अनेकता में एकता" का परिचायक भी है । संचार-माध्यम इस अनेकता-प्रधान समाज में अपनी सकारात्मक भूमिका निभाता है । कहा जा सकता है कि आज का संचार-तंत्र तमाम लोगों के मस्तिष्कों को नियंत्रित करने का एक सफल अस्त्र है क्योंकि यदि सूचनाएँ सही ढंग से सही समय पर पहुंचने दी जाए तो एक सुदृढ़ लोकतांत्रिक समाज की संरचना के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है ।

वर्तमान सन्दर्भ में आधुनिक समाज को भी व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए यह कहना उचित होगा कि हम उस समाज की सक्रिय भागीदारी से इस समाज को अलग करके देख सकते हैं, जो आज भी देश के आन्तरिक दूरस्थ क्षेत्रों में परंपरागत माध्यमों में विश्वास रखता है । आधुनिकता की लहर से लगभग अछूते ये परंपरागत माध्यम पुरानी परंपराओं एवं लोक-विश्वासों से जुड़े रहते हैं

कला और संस्कृति की दृष्टि से अपनी मौलिकता बनाए रखते हैं । इसके विपरीत आधुनिक समाज में परंपराओं का मिश्रित स्वरूप और संस्कृतियों का मिश्रण तथा व्यावहारिक समता-भाव ही सामाजिक सामंजस्य का स्वरूप धारण करता है ।

10.2 विज्ञापन और संचार-माध्यम

10.2.1 विज्ञापन और विज्ञापन-माध्यम

विज्ञापन शब्द यौगिक है । दो शब्दों के योग से बना है- विज्ञापन । 'वि' उपसर्ग है और उसका अर्थ होता है 'विशेष' । 'ज्ञापन' शब्द का अर्थ है- सूचना या ज्ञान देना । इसका मिश्रित अर्थ सामान्य रूप में 'किसी वस्तु या तथ्य की विशेष जानकारी देना' स्वीकार किया गया है । यद्यपि इसका पाश्चात्य भाषीय पर्याय लैटिन भाषी 'एडवर्टर' से ग्रहण किया गया 'एडवर्टाइजिंग' है, जिसका अर्थ उस भाषा में

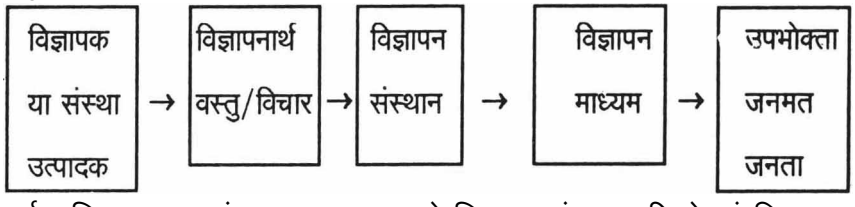
'टू टर्न टू' यानी 'किसी ओर मुडना' है । दूसरे शब्दों में कहें तो किसी के प्रति या किसी ओर आकर्षित होना या किसी को आकर्षित करना ही इसका अर्थ है ।

भारतीय विद्वान गोपाल सरकार के अनुसार - "विज्ञापन एक प्रकार से जनसम्प्रेषण के निमित्त किराये पर लिया गया साधन या वाहन है, जो वांछित सूचना के प्रति लोगों की रुचि और प्रतिक्रिया आदि को विज्ञापन की इच्छानुसार उत्पन्न या विकसित करता है । "सुरेश कुमार की मान्यता है- "विज्ञापन किसी समुदाय विशेष के लोगों को सम्बोधित करने का ऐसा अंग है जो उन्हें वस्तुओं की खरीददारी के लिए प्रेरित करता है या किसी वस्तु या सेवा की उपलब्धता बताता है या उसकी साख बढ़ाता है ।" प्रतुल अथइया (विज्ञापन माध्यम और प्रचार, 1990) के अनुसार- "विज्ञापन एक ऐसी समग्र गतिविधि है, जिसका उद्देश्य अपने व्यय पर किसी वस्तु या विचार, नीति या सेवा के विषय में सामान्य जन तक जानकारी पहुंचाना है ताकि उसे अपनी ओर आकर्षित कर उसका वांछित रूप से सहयोग लिया जा सके । डी. विजय कुलश्रेष्ठ की मान्यता है कि "विज्ञापन प्रचार का ऐसा साधन है जो बिना किसी राजनीति, धार्मिक या साम्प्रदायिक ख्वाब के जनता या उपभोक्ता में अपने लिए आवश्यकता या रुझान उत्पन्न करता है तथा अपनी उत्तमता और उपयोगिता की बाते दुहराकर उपभोक्ता की क्रय-सामर्थ्य का विकास करता है ।"

इस प्रकार यह सत्य है कि "विज्ञापन समाज के विभिन्न वर्गो, श्रेणियां एवं भिन्न मानसिकताओं के लिए ऐसा विशेष आधार बनता है जो किसी उत्पाद, विचार या वस्तु अथवा विषय की जानकारी देकर, तद्विषयक उपयोगिता और जागरूकता उत्पन्न कर तदनुरूप जनमानस (मास) तैयार करता है ।"

10.2.2 विज्ञापन-माध्यम का रूप

जनसंचार के अंग रूप में विज्ञापन ऐसा माध्यम है जिसका मुख्य उद्देश्य या लक्ष्य अपने ग्राहक, उपभोक्ता या लक्षित समाज या वर्ग का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर, उनमें विशेष रुचि, अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कर क्रय-इच्छा और आवश्यकता जगाना है तथा अपने अनुकूल जनमत बनाना या अपने पक्ष का समर्थन प्रदान करना है । इसके लिए विज्ञापन या उत्पादक या संस्था नियोजक किसी विज्ञापन-संस्थान या विज्ञापनकर्ता की सेवाएं लेता है और निर्धारित शुल्क पर विज्ञापन-संस्थान या कर्ता या उचित माध्यम की सेवाएं अर्जित करता है । इसका स्पष्टत: अर्थ यह है कि आरंभ से अन्त तक विज्ञापन-माध्यम जनसंचार का ऐसा माध्यम है जो अपने लक्ष्य (जनसमुदाय) तक पहुंचने के लिए हर स्तर पर समुचित सेवाएं क्रय करता है:-



अर्थात् विज्ञापक या संस्था या उत्पादक ने विज्ञापन-संस्थान की सेवाएं किराए पर ली और उचित मूल्य पर विज्ञापन-माध्यम (समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन या अन्य माध्यम) किराये पर लेकर

वांछित विज्ञापन प्रसारित कराया और पाठक/श्रोता/उपभोक्ता/जनता तक पहुंचा कर जनमत निर्धारण किया है।

उक्त स्थिति में विज्ञापनार्थ जिस माध्यम-विशेष को आधार बनाया जाता है उसके अनुसार ही विज्ञापन-संस्थान को विज्ञापन सामग्री तैयार करनी होती है । इसके लिए वह विज्ञापन से उचित सेवा-शुल्क प्राप्त करता है और विज्ञापक की इच्छा के अनुसार जिस माध्यम का चयन करता है, उसकी सेवाएं भी निर्धारित शुल्क चुकाकर अपने लिए उचित समय और उचित स्थान क्रय करता हैं।

इस प्रकार विज्ञापन प्रचार का श्रेष्ठ उपकरण है जो दोनों पक्षों द्वारा निर्धारित धनराशि या शुल्क पर संस्थागत रूप में क्रियाशील रहकर जनमत या लोक-छवि निर्धारण या निर्माण में सहयोग करता है । इस स्थिति में "विज्ञापन एक विशेष प्रकार की लेखन कला है जो एक विशेष रणनीति अपनाकर उपभोक्ता या जनता तक सन्देश पहुंचानेमें समर्थ होती है, जिसमें माध्यम का अलग से उपयोग किया जाता है और उसके लिए अलग से सृजनात्मक (क्रिएटिव) रचना बनाता है ।"

बोध प्रश्न -1

1. जनसंचार-माध्यम का स्वरूप स्पष्ट कीजिए
2. जनसंचार- माध्यम और आधुनिक समाज का सम्बन्ध बताइए ।
3. संचार-माध्यमों में विज्ञापन का महत्व बताइए
4. विज्ञापन-माध्यम क्या है?

10.3 जनसंचार- माध्यम के रूप

जनसंचार (मास कम्यूनिकेशन) माध्यम के विविध रूपों की चर्चा डा. विजय कुलश्रेष्ठ (विज्ञापन : सिद्धान्त और प्रयोग : 1995) में निम्नलिखित रूप में की है : -

1. मुद्रित माध्यम -
   - (क) दैनिक समाचार-पत्र
   - (ख) नियतकालिक पत्र-पत्रिकाएं
     - (1) साप्ताहिक
     - (2) पाक्षिक
     - (3) मासिक
     - (4) द्विमासिक
     - (5) त्रैमासिक
     - (6) वार्षिक
   - (ग) अनियतकालिक पत्रिकाएं
     - (1) लघु पत्रिकाएं
     - (2) स्मारिकाएं
2. इलॉक्ट्राय माध्यम
   - (क) आकाशवाणी
   - (ख) दूरदर्शन
   - (ग) फिल्म

(घ) अन्य

(1) वीडीओ

(2) न्यूजट्रैक

3. शब्द माध्यम

(क) भाषण (ख)अभिभाषण

(ग) वार्ता (घ) परिचर्चा

(च) संगोष्ठी पत्र

4. जनसम्पर्क माध्यम

(क) शासकीय

(ख) अशासकीय

(ग) निजी संस्थान

5. परम्परागत माध्यम

(क) लोकोत्सव

(ख) सन्देशात्मक

(ग) प्रतीकात्मक

6. प्रचार माध्यम

(क) प्रदर्शनी

(ख) बिक्री (सेल)

(ग) बाजार मेला

7. विज्ञापन-माध्यम

उपर्युक्त जनसंचार माध्यम प्रचार के सर्वोत्तम साधन है फिर भी प्रचार-माध्यम की चर्चा अलग से की गई है क्योंकि प्रचार-माध्यम के रूप में प्रचारकर्ताओं को व्यक्तिग सम्पर्क के साथ सन्देश-प्रेषण के निमित्त मुद्रित पाठ (प्रिण्ट मीडिया), फिल्म (इलॉक्ट्राय मीडिया), शिविर आयोजन, कार्यकर्ता-सम्मेलन के अतिरिक्त प्रेस कान्फ्रेन्स (जनसम्पर्क मीडिया) अपनाने होते हैं।

आज विज्ञापन भी अपने आप में स्वतंत्र जनसंचार-माध्यम है जो निर्धारित सेवा शुल्क लेकर दूसरों के कार्यों का दूसरों के लिए संचालन करता है तथा उन दूसरों से भी सेवा-शुल्क प्राप्त करता है।

10.4 विज्ञापन-माध्यम के विविध स्तर

विज्ञापन-माध्यम के निम्नलिखित स्तर होते हैं :

(1) विज्ञापन-माध्यम - चयन

(2) विज्ञापन-माध्यम का महत्व

10.4.1 विज्ञापन हेतु माध्यम-चयन

विज्ञापन अपने आप में ऐसा जनसंचार-माध्यम है जिसमें विविध माध्यमों का चयन सामान्य रूप से हो जाता है । यही कारण है कि प्रचार हेतु जनसंचार माध्यम का चयन करते समय विज्ञापन की आवश्यकता होती है और उसके अनुरूप अपना बजट या वित्तीय व्यवस्था भी ध्यान में रखनी होती है । विज्ञापन का चयन विशेषता के आधार पर होता है । इसमें दो राय नहीं हो सकती कि विज्ञापनदाता

अपने सामान्य विज्ञापन देने के लिए जिस माध्यम का उपयोग करना चाहता है, उसके लिए उसे अपना वित्तीय आयोजन ध्यान में रखना होगा । यह भी उतना ही सत्य है कि किसी अभीष्ट कार्य के लिए सभी विज्ञापन-माध्यमों की प्रभावोत्पादकता समान नहीं होती है ।

विज्ञापक के लिए कौन सा विज्ञापन माध्यम उसकी वित्तीय आयोजना के अन्तर्गत उपयुक्त रहेगा, कोई भी परिचित विज्ञापक एजेंसी तय करा देती है क्योंकि विज्ञापक के साथ बंकर किस उपभोक्ता या जनसमुदाय तक विज्ञापक के जाने की अपेक्षा है, उनका आय वर्ग क्या है, शैक्षिक स्तर क्या है- यह सब विज्ञापन से पूर्व निश्चित कराने में सहायक होते हैं । विज्ञापक के लिए यह चयन विषयक प्रारम्भिक सीढ़ी विज्ञापन एजेन्सी पार करा देती हैं, क्योंकि उसके पास विज्ञापन के माध्यम के रूप में विविध वित्तीय प्रावधानों के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रमुख माध्यम उपलब्ध रहते हैं : -

(1) प्रेस विज्ञापन

1. समाचार-पत्र 2. पत्रिकाएं

(2) रेडियो

(3) दूरदर्शन

(4) अन्य

(क) वाहन विज्ञापन (ख) नियोजन साइन विज्ञापन

(ग) कम्प्यूटर विज्ञापन (घ) बाह्य विज्ञापन

10.4.2 विज्ञापन-माध्यम का महत्व

विज्ञापन माध्यमों में समाचार-पत्र एवं पत्रिका ऐसे माध्यम हैं, जिनमें शब्द और मुद्रण-माध्यम अपनी विशेषता चरितार्थ करता है । शब्द, जिसका प्रयोग सामान्य रूप से शिक्षित और अशिक्षित सभी लोग प्रयोग करते हैं, विज्ञापन निर्माता के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण और अर्थपूर्ण होता है क्योंकि समाचारपत्र-पत्रिका में वह मुद्रित रूप में पाठक के सामने आता है । यथा -

-"जब सर्द हवा सताए

- - - - - - - - -ही याद आए ।''

- " शान से चलाएं

और पैसे भी बचाएं ।"

लेकिन रेडियो पर मानव वाणी की मधुरता और सौम्यता का प्रभाव ही सन्देश को अधिक ग्राह्य बनाता है -

- - बहू ध्यान रहे ।

- - हां, मांजी ।

- - डाबर लाल तेल - - बच्चों का तेल

इसी प्रकार टेलीविजन पर दृश्य एवं श्रव्य दोनों के अनुरूप सन्देश-रचना और दृश्य-विधान (विजुअल) प्रस्तुत करना होता है ।

- - जब वही क्वालिटी, वही काम, कम दामों में मिले

तो मैं इसे क्यों लूं?

-- मान गए?

- - किसे?

- - आपका कथन और निरमा सुपर ।

अब विज्ञापन-माध्यम की महत्ता कहीं भी कम नहीं की जा सकती है । उक्त सभी प्रकार के विज्ञापनों में सबसे महत्वपूर्ण वैचारिक सामग्री युक्त सन्देश या अपील अथवा निवेदन ऐसे प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है जो पाठक, श्रोता अथवा उपभोक्ता अथवा लक्षित समुदायों को आकर्षित करता है, मन में प्रविष्ट होता है तथा उनकी इच्छाशक्ति बढ़ाता है ।

10.5 विज्ञापन : संस्था का छवि-निर्माता

10.5.1 विज्ञापन की आवश्यकता

विज्ञापन का माध्यम कोई भी हो, उसकी प्रमुख प्रक्रिया अनुबन्धीय संस्था की छवि का निर्माण करना है क्योंकि संस्था किसी उत्पाद, वस्तु, नीति या विचार को श्रोता, पाठक या जनसमुदाय तक प्रसारित करना चाहती है और उसके लिए जब वह विज्ञापन संस्थान को अनुबन्ध देती है और उसके लिए वांछित एवं निर्धारित सेवा- शुल्क देती है तो विज्ञापन-संस्थान का यह कर्तव्य है कि अनुबन्धीय संस्था के लिए समाचार-पत्र दूरदर्शन या रेडियो अथवा जो भी विज्ञापन-माध्यम प्रयोजनीय हो उसके अन्तर्गत स्थान और समय क्रय करे तथा अपने विज्ञापन-कौशल से अपनी उक्त संस्था की छवि-निर्माण करे । यथा

पहला स्वर	-	चाय दीजिए ।
दूसरा स्वर	-	इन्हें चाय देना कोई-सी ।
पहला स्वर	-	कोई-सी नहीं - - - चाय- - - -
दूसरा स्वर	-	चाय का क्या है, दूध डालो, पत्ती डालो- - - -
पहला स्वर	-	पीओ तो जानो

यानी किसी विशेष चाय की बात कही जा रही है और उसके उत्पादक संस्थान की छवि-निर्मित की जा रही है ।

10.5.2 विज्ञापन-एजेन्सी की सेवाएं

उत्पादक संस्थान, विज्ञापन अथवा निर्माता अपनी विज्ञापन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विज्ञापन-एजेन्सी की सेवाएं क्रय करते हैं । उसका कारण यह है कि विज्ञापन-एजेंसियां जितना अच्छा कार्य करती है उतना अच्छा कार्य कर सकना उनके अपने विज्ञापन विभाग के लिए सम्भव नहीं है । इस सम्बन्ध में दूरदर्शन, रेडियो तथा रंगीन पत्रिका के लिए विज्ञापन निर्माण का कौशल और प्रतिभा व्यावसायिक विज्ञापन-एजेंसी के पास उपलब्ध होती है और वे अच्छे से अच्छा तथा विज्ञापक या उत्पादक के बजट के अनुरूप 'इलॉक्ट्राय माध्यम पर प्रसारित' होने वाला विज्ञापन तैयार कर सकती है । यह उसकी नियमित कार्यकारी सेवा का सामान्य कार्य है । तभी मुद्रण माध्यमों के लिए सामान्य स्तर पर विज्ञापन तैयार कराने के कार्य किसी भी व्यवसायिक संस्थान का विज्ञापन विभाग कर सकता है । लेकिन दूसरे और विशेषकर इलॉक्ट्राय और प्रदर्शनी माध्यमों के प्रभावी विज्ञापनों के लिए उन्हें विज्ञापन-एजेन्सियो की सेवाओं के निमित्त अनुबन्ध पर आमंत्रित करना होता है । तभी विज्ञापन विशेष

आकर्षक और अपूर्व हो सकते है और उनका प्रभाव दर्शकों, श्रोताओं और पाठकों पर गहरा हो सकता है ।

विज्ञापन एजेन्सी की सेवाएं क्रय करते समय या अनुबन्ध करते समय विज्ञापक या उत्पादक अथवा निर्माता को यह देख लेना भी आवश्यक होता है कि विज्ञापन एजेन्सी की स्थिति कैसी है तथा उसके विज्ञापन-अभियान कैसे रहे हैं? हो सकता है कि विज्ञापन-एजेन्सी नाम के लिए छोटी हो पर विज्ञापन-अभियान के लिए उसकी साख अच्छी हो । इस संबंध में ध्यान देने योग्य यही है कि एजेन्सी स्थानीय हो ताकि सुगमता से यथासमय सम्पर्क किया जा सके । लेकिन यह भी ध्यान देना होगा कि कहीं आपकी प्रतिस्पर्धा में खड़ी कम्पनी का कार्य वह नहीं कर रही हो ।

विज्ञापन-एजेन्सी की सेवाएं क्रय करते समय यह भी देखना आवश्यक है कि उसकी सर्जनात्मक क्षमता क्या है और उसके पास कैसे कॉपीराइटर है? उसका परिचय एजेन्सी द्वारा पूर्व में किए गए अनुबन्धों के परिणाम के रूप में उसके एलबम से प्राप्त किए जा सकते हैं । जितनी अच्छी सोच और कल्पना के कॉपी-लेखक एजेन्सी में होंगे, उतनी ही मौलिकता और कल्पनाशीलता एजेन्सी द्वारा प्रयुक्त नारों (स्लोगन्स) के माध्यम से सामने प्रकट हो जाती है । इसके साथ ही किन कम्पनियों के लिए विज्ञापन-निर्माण का कार्य वह एजेन्सी करती रही है या कर रही है, यह जान लेना भी बहुत आवश्यक है अन्यथा अनुबन्ध के बाद वांछित सुविधाओं के अभाव में एजेन्सी अच्छे परिणाम दे सकने में सक्षम नहीं हो सकती है ।

बोध प्रश्न - 2

1. संचार-माध्यमों के विविध रूपों पर प्रकाश डालिए ।
2. संचार-माध्यमों में विज्ञापन- माध्यम का महत्व बताइए ।
3. विज्ञापन को संस्थान का छवि-निर्माता क्यों कहा जाता है?
4. विज्ञापन-एजेन्सी की सेवाएं प्राप्त करते समय क्या देखना चाहिए?

10.6 मुद्रित-माध्यम के लिए विज्ञापन की लेखन-कला

अनुबन्ध पर विज्ञापन तैयार करने वाली विज्ञापन-एजेंसी के कार्य का मूल्यांकन उसके पिछले कार्य से किया जाता है । अनुबन्धीय संस्थान के लिए कार्य करते हुए पहले किसी विज्ञापन के निमित्त किया गया विज्ञापन-एजेन्सी का लेखन उसके व्यावसायिक विकास के लिए आधार बनता है । सामान्य रूप से किसी भी विज्ञापन-एजेंसी को विज्ञापन के लिए अनुबन्धित किया जाने पर विज्ञापन की तैयारी के लिए क्रमश : शीर्षक-लेखन या नारा-लेखन (स्लोगन), विज्ञापन-कथ्य (कापी) और विज्ञापन-सज्जा (ले आउट) तैयार करना होता है ।

जनसंचार के विविध माध्यमों में से समाचार-पत्र या पत्रिका के लिए लेखन-कला के सन्दर्भ में विज्ञापन के लिए प्रारम्भिक तैयारी प्राय: निम्नलिखित रूप में की जाती है :

(1) शीर्षक

(2) उपशीर्षक

(3) विज्ञापन कॉपी (कथ्य)

(4) उपसंहार

(5) विज्ञापन सज्जा (ले आउट)

(6) ट्रेड मार्क

10.6.1 शीर्षक (हैडिग)

विज्ञापन में सबसे महत्वपूर्ण कार्य किसी भी विज्ञापन का उचित शीर्षक होता है । काँपी लेखक को विज्ञापन का प्रथम प्रारूप (ड्राफ्ट) तैयार करते समय यह ध्यान रखना होता है कि जो भी शीर्षक लिखा जाए वह उपभोक्ता, पाठक अथवा लक्ष्यवर्ग का ध्यान आकर्षित कर सके । शीर्षक के बिना किसी विज्ञापन की सज्जा या. 'ले आउट' की कल्पना नही की जा सकती है । शीर्षक एक पंक्ति या एक वाक्यांश हो सकता है और उसे उत्तम कहा जा सकता है लेकिन कभी आवश्यकतानुसार वह दो पंक्तियों का भी हो सकता है। यह शीर्षक ही विज्ञापन में बड़े या बोल्ड अक्षरों में होने के कारण सबसे पहले पाठक का ध्यान आकर्षित करता है ।

10.6.2 शीर्षक-लेखन के रूप

शीर्षक-लेखन के लिए कुछ निर्देशात्मक शीर्ष पंक्तियां निम्नरूपेण प्रस्तुत हैं -

(1) ध्यानाकर्षणीय	(1) जिस्म और जान जिस्म सिर्फ जिस्म है पर
	(2) सेहत से भरा विग सिप आपको रखे दस कदम आगे
(2) स्मरणीय	(1) आयोडेक्स मलिए काम पर चलिए
	(2) सरदर्द हटाए मुस्कान जगाए
(3) विश्वसनीयता	(1) ये हाथ जीवन बीमा के हैं ये हाथ सुरक्षा के प्रतीक हैं ।
	(2) नकली साबित करने वालों को एक हजार रुपये का नकद इनाम
(4) सुझाव	(1) लाइफ़बांय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है
	(2) गर्मी की थकान मिटाता है रूह आफजा
(5) कौतूहल	(1) चेहरे की लालिमा गुलाब शरमाए देखे जबजब - दर्पणझूम झूम जाए-
	(2) सदा छुपाया वह रूप बनकर झलक आया

अशोक महाजन ने शीर्षकसामग्री के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में-लेखन को विषय-

(1) परिचयात्मक शीर्ष :	चेतक सीमेन्ट -
	- जे .के .टायर
	- डाबर आवला केश तेल
	- मॉडर्न सुटिंग्स
(2) दावा करने वाली शीर्ष पंक्तियाँ	(1) भारत में सबसे ज्यादा बिकने वाला कुरलआन - गद्देकुरल आन तकिए

	(2) देश में सबसे ज्यादा बिकने वाला फ्रिज केल्वीनेटर
(3) समाचारपरक शीर्ष पंक्तियाँ	(1) नया रूप नयी खुशबू
	(2) शान सफर-ए-फाइनेन्स धमाका 175 राजदूत ---
(4) लाभप्रेरक शीर्ष पंक्तियाँ पंक्तियाँ	(1) 5प्रतिशत छूट 0
	(2) नया ई-65 एक हाईटेक जैन सेट 0जो आपके रूपयों का अधिकतम मूल्य देता है।
(5) प्रश्नात्मक शीर्ष पंक्तियाँ	(1) क्या आप थकावट महसूस करती हैं?
	(2) क्या आपकी बेटी बीस साल बाद भी आपको इतना ही चाहेगी?
(6) आदेशात्मक शीर्ष पंक्तियाँ	(1) ले आइए अपना गोदरेज स्टोरवेल
	(2) जल्दी कीजिए कमाइए %30
(7) उत्सुकतामय शीर्ष पंक्तियाँ	(1) बोतल में आम माजा है नाम
	(2) हर नारी का होता है एक सपना गार्डन

10.6.3 उपशीर्षक (सब-हैडिग)

विज्ञापन में मात्र शीर्षक-लेखन से ही काम नही चलता है, इसलिए कॉपी-राइटर इस बात पर विशेष ध्यान देता है कि शीर्ष पंक्ति में जो कहा जा चुका है, उसके बाद भी उपभोक्ता को कुछ और भी अवगत कराया जाये । यह उपशीर्षक वास्तव में शीर्षक और काया कथ्य (बॉडी कॉपी) के मध्य सेतु या पुल का कार्य करता है । शीर्षक पढ़ने के उपरान्त पाठक या उपभोक्ता के मन में उठने वाले प्रश्नों का उत्तर उपशीर्षक में निहित होता है तथा इन्हीं उत्तरों के विस्तार में जाने के लिए उसे विज्ञापन के कायाकथ्य या कथा वस्तु को पढ़ने के लिए तत्पर होना पड़ता है । इस प्रकार उपशीर्षक या सब हैडिंग के 'सच के द्वार की चौखट' कहा जाता है । यथा -

(1) ---------- (शीर्षक)
आप बस इतना करें कि अपने
ईसी टीवी का आर्डर आज ही दे देवें

(2) ----------

(शीर्षक)

(2) ----------

(शीर्षक)
हर कप ताजा, हर कप स्वाद

(3) ----------
(शीर्षक)

नया नवेला लक्स रंग रूप के लिए
मेरी पहली और आखिरी पसंद

-रेखा

10.6.4 कायाकथ्य (बॉडी कॉपी)

किसी भी विज्ञापन-लेखन के निमित्त कॉपी -लेखक शीर्षक एवं उपशीर्षक लिखने के उपरांत विज्ञापक या उत्पादक दारा विज्ञापनार्थ दी जाने वाली वस्तु या उत्पाद या विषय के सम्बन्ध में विस्तार से बताने, समझाने तथा प्रभावित करने के लिए कायाकथ्य का प्रयोग करता है । शीर्षक, उपशीर्षक से वह पाठक या उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करता है और कायाकथ्य के द्वारा उसमें इच्छा शक्ति और क्रयशक्ति जगाता है ।

कायाकथ्य के लिए कॉपी -लेखक शब्दों और वाक्यों का प्रयोग वस्तु, उत्पाद या विचार की विशेषताओं या गुणों का उल्लेख विज्ञापन के अनुरूप कम या अधिक आकार में प्रस्तुत कर उपभोक्ता की संतुष्टि के विवरण हेतु करता है और उसकी खरीद के पक्ष में उसके आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं तार्किक तथ्य प्रस्तुत करता है । शीर्षक-उपशीर्षक में किए गये दावे का प्रमाण प्रस्तुत ही किया जाता है ।

कायाकथ्य या बॉडी में वस्तु या उत्पादक की बिक्री के सम्बन्ध में शीर्षक-उपशीर्षक के आधार पर जो कहा गया था, उसे गहरी पकड़ के साथ पाठक की समस्त जिज्ञासाओं की सम्भावनाओं की पूर्ति के उपरान्त उसे क्रय-प्रेरणा देने का समग्र प्रयास किया जाता है । उपभोक्ता या पाठक को आसानी से पढ़ने हेतु कायाकथ्य को अलग-अलग भागों में बांटकर रखा जाता है जिसके ऊपरी भाग या अनुच्छेद को 'क्रास हैड' कहा जाता है । 'क्रास हैड' में शीर्षक में व्यक्त किए गए विचार को ही विकसित किया जाता है । फिर आगे की सामग्री या अन्य अनुच्छेद अथवा अनुच्छेदों को ग्राहकीय लाभ, उत्पादक की विशेषताओं, मूल्यों की तुलना, दावों और तर्कों, परीक्षणों का उल्लेख किया जाता है । गारण्टी या 'ट्रायल ऑफर' का उल्लेख या कूपन की उपलब्धता का भी संकेत किया जाता है । यथा-

- - - - - - - - - - - - - - - - - शीर्षक

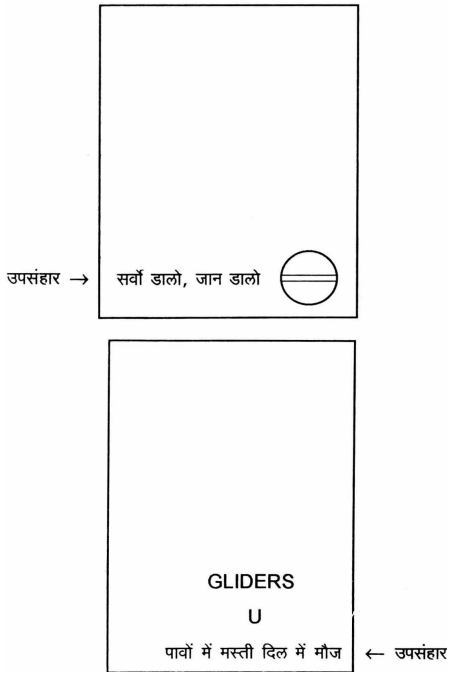
- - - - - - - - - - - - - - - - - - (उपशीर्षक)

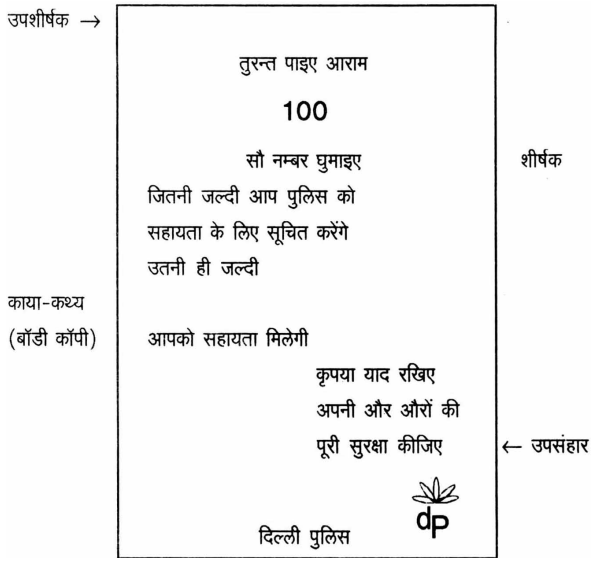
कायाकथ्य

जो टैक्नोलोजी आप चाहें, वहीं पाए
पर्सनल डायरेक्टरी, सुपर जूम, डिजिनेट
यूरोस्टाइल और साथ ही अन्य ऐसी
खूबियां जो छोटे-मोटे ब्राण्डों मे शायद
ही देखने को मिले
ये सब पाइए अब मन चाही कीमत पर
ओनीडा-20 टेक्नोवैल्यू-एस

10.6.5 उपसंहार

विज्ञापन में उपसंहार या 'बेसलाइन' का महत्व कम नहीं है । कॉपी-लेखक विज्ञापन के अंतिम चरण में काया-कथ्य समाप्त करते समय प्रेरणादायक वाक्य-रचना से विज्ञापन का सार प्रस्तुत करता है । लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि उपसंहार वाक्य या बेसलाइन से प्रत्येक विज्ञापन समाप्त किया । सामान्यत: उपसंहार वाक्य एक बार लिखा जाता है और किसी विज्ञापक या उत्पादक संस्था विज्ञापन में भी उसे दुहरा दिया जाता है । रेडियस के प्रबन्धक जमील गुजरेज का कहना है कि "लिम्का पेय का पन्द्रह वर्षों से प्रयुक्त उपसंहार या बेस लाइन 'नींबू जल सा मजेदार पेय' निरन्तर प्रचलित है ।" यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं ।





इस विज्ञापन में कॉपी-लेखक ने सभी अंगों का कॉपी-लेखन किया है, इसमें मात्र विज्ञापन सज्जा है, चित्रात्मक या इलस्ट्रेड सामग्री का अभाव है । खाली सफेद भाग भी विज्ञापन के आकर्षण का कारण होता है तथा पाठक की दृष्टि जाती है । इस विज्ञापन में ट्रेड मार्क के रूप में पांच पंक्तियों के पुष्प के नीचे डीपी लिखा गया है, फिर लिखा गया है दिल्ली पुलिस ।

10.6.6 विज्ञापन-सज्जा (ले -आउट) और चित्र

विज्ञापन के कॉपी-लेखक दारा उपर्युक्त ढंग से कॉपी-लेखन का निर्णय और स्थान निर्धारित करने के उपरान्त विज्ञापन-सज्जा हेतु चित्रादि का संयोजन करना होता है और उसके लिए उसे अपनी संस्था के कला-निर्देशक को सुझाव और परामर्श देकर चित्र प्राप्त करने होते हैं । ऐसे चित्र किसी कलाकार से बनवाए जा सकते हैं तो किसी मॉडल को लेकर भी तैयार कराए जा सकते हैं । यद्यपि प्रथम प्रारूप में केवल उसका संकेत भर होता है । दूसरे प्रारूप में किसी भी पुराने चित्र का 'रफ प्रिन्ट' लगाकर संकेत भर देकर स्वीकृति प्राप्त कर ली जाती है और विज्ञापक से तीसरे कॉपी-प्रूफ की स्वीकृति वास्तविक और अन्तिम रूप से विज्ञापित किए जाने चित्र या मॉडल के छायाचित्र के साथ प्राप्त की जाती है ।

विज्ञापन में चित्र और छायाचित्रों की उपयोगिता निर्विवाद है, क्योंकि चित्र या छायाचित्र विज्ञापन को आकर्षक बनाते हैं तथा विज्ञापन को एक दृश्य-भाषा (विजुअल लैंग्वेज) देते हैं । कॉपी-लेखक किसी उत्पाद-विशेष के साथ किसी विशेष छायाचित्र का बार-बार प्रयोग इसलिए करता है कि उत्पाद की प्रामाणिकता पुष्ट होती है और पाठकों की स्मृति का स्पर्श करना भी विज्ञापन का कार्य है । विज्ञापन में चित्र का आकार विज्ञापन के कायाकथ्य के संतुलन के रूप में ही निर्धारित किया जाता है ।

विज्ञापनों में चित्र एवं छायाचित्रों की प्राथमिकता क्या है- इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह विज्ञापन-कॉपी की अपनी आवश्यकता होती है कि वह कलाकार का रेखांकन ही विज्ञापन सामग्री की सार्थकता सिद्ध करे या फिर किसी मॉडल युवती या बालक अथवा 'ही मैन' पुरुष अथवा किसी वृद्ध का छायाचित्र अधिक सार्थक होगा । यह अलग-अलग स्थितियां में अपने ढंग से तथा विज्ञापक या उत्पादक के बजट के अनुसार भी निर्धारित क्या जाता है । आज अधिसंख्य विज्ञापनों में नारी का चित्रण हो रहा है और अब विज्ञापन की मार बच्चों या शिशुओं तक आ पहुंची है ।

10.6.7 ट्रेड मार्क

सभी विज्ञापनों में ट्रेडमार्क या संस्थान का पहचान-चिह्न लगाया जाता है । विज्ञापन के स्वरूप में परिवर्तन होता है, परन्तु उसके ट्रेडमार्कसे उपभोकता तुरन्त पहचान लेता है ।का डालडा का 'खजूर पत्ता', टायर कम्पनी का एम. आर. एफ., निरमा का नृत्य-मुद्रा में बालिका आदि ऐसे ही ट्रेडमार्क के उदाहरण हैं ।

ट्रेड मार्क वस्तुत: उत्पादक या विज्ञापन या निर्माता कम्पनी की अपनी पहचान और प्रतिष्ठा की अलग पहचान बनाता है । ट्रेड मार्क का पंजीयन करा लिया जाता है तथा किसी कम्पनी की अपनी सम्पत्ति होता है । इसी प्रकार लोगो (logo) में कम्पनी का नाम इस ढंग या शैली से बनाया या तैयार किया जाता है, जो कम्पनी के चरित्र एवं कार्यकलाप या उसके उद्देश्य से मिलता-जुलता होता है । ट्रेड मार्क या ट्रेड नाम अथवा ब्रांड नाम भी होते हैं - बाटा, टाटा, बिरला, जे.के. एच.एम. टी. इसके साथ

ही नामपरक- अशोक मसाले, रामदेव मसाले, एस्कोर्ट ट्रैक्टर्स, महेन्द्रा ट्रैक्टर्स, एटलस साइकिल, हीरोपुक मोपेड, लखानी चप्पल ।

ट्रेडमार्क या ब्रांड नाम के लिए आवश्यक होता है कि वह वस्तु के चरित्र या विशेषताओं से मिलता- जुलता हो तथा उसका नाम या उल्लेख होते ही उसकी विश्वसनीयता का अनुभव हो । ट्रेड नाम कभी दूसरे की काँपी नहीं किये जा सकते ।

10.7 विज्ञापन काँपी- लेखन की अनिवार्यताएं एवं संहिता

10.7.1 काँपी-लेखन की अनिवार्यताएं

काँपी-लेखक को विज्ञापन-काँपी निर्माण. करते हुए निम्नलिखित अनिवार्यताओं का ध्यान रखना आवश्यक होता है ताकि उपभोक्ता को

(1) यह सूचना मिल सके कि विज्ञापित वस्तु कहां मिल सकेगी?
(2) आश्वस्त हो सके कि उत्पादन उसके लिए लाभप्रद सिद्ध होगा ।
(3) विज्ञापन अपनी रुचि और विचार के अनुरूप लगे ।
(4) उत्पाद क्रय करने की इच्छा या चाह अनुभव करने लगे ।
(5) विज्ञापन सहज और बोधगम्य लगे, दावे पर अविश्वास न हो ।
(6) विज्ञापन का प्रत्येक वाक्य एवं शब्द रुचि के अनुकूल प्रतीत हो ।
(7) विज्ञापन की भाषा अपने परिवेश की प्रतीक लगे ।
(8) विज्ञापन का मूल कथ्य या वस्तु उसे सन्तुष्टि की गारण्टी देता हो ।
(9) विज्ञापन परस्परिक एवं साम्प्रदायिक सौमनस्य पर स्वाभाविक प्रभाव उत्पन्न करे ।
(10) प्रतिस्पर्धी वस्तुओं के अवगुणों के उल्लेख के स्थान पर अपने गुण वैशिष्टय तक विज्ञापन अपने उत्पाद की श्रेष्टता सिद्ध करता हो ।

निस्संदेह काँपी-लेखक के दारा चयनित भाषा, शब्द और वाक्यांश तथा चित्रात्मक विन्यास और इसमें प्रयुक्त टाइपोग्राफी के निर्देश ही विज्ञापन को अधिक आकर्षक, मनोरम और ग्राह्य बना सकते हैं । इसी में काँपी-लेखक की सफलता निहित होती है ।

10.7.2 विज्ञापन संबंधी कतिपय कानून

विज्ञापन-लेखक भी उपभोक्ता समाज का एक अंग है और पारिवारिक इकाई है । उसे विज्ञापन-लेखन में ईमानदारी पूर्ण सन्देश में निहित सत्यता, कथन की विश्वसनीयता, उपभोक्ता की सन्तुष्टि तथा विज्ञापन के किए गए वादे की अनुकूलता का ध्यान रखना आवश्यक होता है क्योंकि वह एक दायित्वपूर्ण पद पर कार्यरत है तथा जिस संस्था में कार्यरत है, उसकी प्रतिष्ठा का सम्पादक है ।

विज्ञापन-लेखक को विज्ञापन पर लागू होने वाले निम्नलिखित भारतीय कानूनों का ध्यान रखना आवश्यक होता है : -

1. प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम
2. ड्रग्स ऐक्ट, 1940 एवं ड्रग्ज (कन्ट्रोल) ऐक्ट 1950
3. एम्बलम्बसू एण्ड नेम्स (प्रिवेंशन आफे इम्प्रॉपर यूज) ऐक्ट, 1950

4. जिनेवा सम्मेलन कार्यान्विति अधिनियम
5. इण्डियन मर्केण्डाइज मार्क ऐक्ट
6. रिप्रजेण्टेशन ऑफ पीपुल्स ऐक्ट, 1951
7. ट्रेडमार्क्स ऐक्ट और प्राइज कम्पिटीशन ऐक्ट, 1955
8. कॉपीराइट एक्ट एवं सिनेमेटोग्राफी ऐक्ट, 1965
9. मानहानि कानून और प्रेस अधिनियम ।

10.7.3 भारतीय विज्ञापनों के लिए आचार-संहिता

भारतीय विज्ञापन परिषद् ने विज्ञापन सम्बन्धी आदर्श आचार संहिता प्रस्तुत की है जिसका पालन कॉपी-लेखक के लिए अनिवार्य है : -

1. विज्ञापनों का डिजाइन इस प्रकार तैयार किया जाये कि देश के कानूनों के अनुकूल तो हो ही, साथ ही नैतिक, सौन्दर्यपरक तथा धार्मिक संवेदनाओं के भी अनुरूप हो ।
2. ऐसे विज्ञापनों को, जिनसे मानहानि या असम्मान की भावना प्रदर्शित होने की सम्भावना हो अनुमति नहीं देनी चाहिए ।
3. आम जनता के अंधविश्वासों का लाभ लेकर निजी स्वार्थपूर्ति के लिए विज्ञापनों का प्रकाशन नहीं क्यिा जाना चाहिए ।
4. विज्ञापन में सतही एवं सत्य को तोड़-मरोड़ कर तथा गुमराह करने वाले तथ्यों पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए । झूठे वक्तव्यों द्वारा उपभोक्ताओं को गुमराह नहीं किया जाना चाहिए ।
5. विज्ञापनों में ऐसे अतिरिक्त दावे नहीं हों, जिनसे जनता के मध्य निश्चित रूप से निराशा पनपे।
6. विज्ञापन इस प्रकार नहीं किए गए हों जिनसे उपभोक्ताओं के मन में एक ही वस्तु, जो दो अलग-अलग निर्माताओं ने निर्मित की है, के मध्य किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो ।
7. विज्ञापनों में वस्तुओं की योग्यता के आधार पर जनता का स्वभाव अथवा विश्वास उत्पन्न करने का प्रयास हो । अन्य प्रतिस्पर्धा वाली वस्तुओं या कम्पनियों से प्रत्यक्ष तुलना की अनुमति किसी परिस्थिति में ना दी जाये ।
8. अश्लील, मद्दी, उत्तेजक, घृणास्पद तथा आक्रामक विषयवस्तु को विज्ञापनों से दूर रखना उचित है ।
9. दी गई राशि को पुन: भुगतान का आश्वासन विज्ञापन में नहीं देना चाहिए ।
10. विज्ञापनों अथवा ट्रेड मार्क्स में सरकारी संस्थाओं के अतिरिक्त राष्ट्रीय चिह्नों का प्रयोग कानूनन वर्जित है ।
11. बिना अनुमति के महात्मा गांधी, भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति व प्रधानमंत्री के चित्रों का प्रयोग वर्जित है । यह नियम उन पुस्तकों, फिल्मों या अन्य वस्तुओं पर लागू नहीं होता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विज्ञापक और विज्ञापन-संस्थानों को किसी भी विज्ञापन के जारी करते या तैयार करते समय आचार-संहिता का पालन इस प्रकार करना आवश्यक है जिससे लोकहित सुरक्षित रहे ।

बोध प्रश्न - 3

1. विज्ञापन की लेखन-कला की तैयारी कैसे और क्यों की जाती है ।
2. विज्ञापन-लेखन में शीर्षक का क्या महत्व है और उसके विविध रूप बताइए ।
3. विज्ञापन में कायाकथ्य (बॉडी कॉपी) की महत्ता बताइए और यह भी बताइए कि उसकी आवश्यकता क्यों होती है?
4. विज्ञापन-लेखन विषयक निदर्शनात्मक अनिवार्यताओं का उल्लेख कीजिए ।

10.8 सारांश

हम यहां पढ़ बुके हैं कि जनसंचार-माध्यमों में विज्ञापन और विज्ञापन-माध्यम का महत्व है क्योकि विज्ञापन उपभोक्ता या पाठक का ध्यानाकर्षण करके विज्ञापित वस्तु के क्रय की इच्छा-शक्ति-वृद्धि करता है इसके लिए मुद्रित माध्यम या समाचारपत्र के विज्ञापनों के लिए कॉपी-लेखन के विविध छपों का अध्ययन करते हुए उसमें शीर्षक उपशीर्षक कायाकथ्य (बॉडी कॉपी), उपसंहार, ट्रेडमार्क आदि की विस्तार से चर्चा की जा चुकी है । अन्त में कॉपी-लेखन सम्बन्धी अनिवार्यताओं और आचार-संहिता का उल्लेख भी किया गया है ।

10.9 उपयोगी पुस्तकें

अशोक महाजन : विज्ञापन, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

विजय कुलश्रेष्ठ : विज्ञापन-सिद्धान्त और प्रयोग, माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर

विजय कुलश्रेष्ठ : जनसम्पर्क प्रचार और विज्ञापन, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर

गुलाब कोठारी : विज्ञापन

एके. हटवाल : विज्ञापनकला, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

विजय कुलश्रेष्ठ एवं प्रतुल अथइया : विज्ञापन माध्यम एवं प्रचार

सुरेश कुमार : विज्ञापन में हिन्दी भाषा

रामचन्द्र तिवारी : विज्ञापन-व्यवसाय एवं कला, आलेख प्रकाशन

जी.एम.रेगे : एडवटाइजिग आर्ट एण्ट आइडियाज, आशुतोष प्रकाशन, बम्बई

आशा पाण्डेय : हिन्दी विज्ञापनों की भाषा, ब्लेकी एडसन पब्लिशर्स प्रा.लि., दिल्ली

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. विज्ञापन क्या होता है? उसका स्वरूप विधिवत् समझाइए ।
2. विज्ञापन कितने प्रकार के होते हैं? विस्तार से बताइए ।
3. विज्ञापन में कॉपी-लेखक का क्या महत्व है?
4. कायाकथ्य का विज्ञापन में क्या उपभोग है?
5. बच्चों के लिए उपयोगी एक खाद्य-वस्तु का विज्ञापन तैयार कीजिए ।
6. विज्ञापन-कानूनों पर प्रकाश डालिए ।
7. 'विज्ञापन का महत्व' पर निबंध लिखिए ।

इकाई 11 इलाक्ट्राय-माध्यमों के लिए विज्ञापन -

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.1.1 इलाक्ट्राय-माध्यमों का परंपरागत माध्यमों पर प्रभाव

11.1.2 परंपरागत-माध्यम

11.2 रेडियो श्रव्य तथा दृश्यहीन-माध्यम

11.2.1 रेडियो श्रव्य-माध्यम

11.2.2 रेडियो दृश्यहीन-माध्यम

11.3 रेडियो-लेखन के लिए अपेक्षाएं

11.3.1 जनसंचार-माध्यम के रूप में रेडियो

11.3.2 कल्पना-शक्ति की महत्ता

11.3.3 श्रौताओं पर पकड़

11.3.4 आर्मड चेयर श्रोता

11.4 रेडियो-लेखन के उपकरण

11.4.1 शब्द

11.4.2 ध्वनि-प्रभाव

11.4.2.1 क्रिया-ध्वनि

11.4.2.2 स्थल-ध्वनि

11.4.2.3 प्रतीक-ध्वनि

11.4.2.4 ध्वनि-प्रभाव विषयक निर्देश

11.4.2.5 संगीत

11.5 रेडियो-लेखन:विशेष कला

11.5.1 रेडियो की भाषा

11.5.1.1 रेडियो भाषा-प्रयोग संबंधी निर्देशन

11.5.2 आकर्षक आरंभ

11.5.3 विषय-सामग्री की नूतनता

11.5.4 संक्षिप्तता

11.6 रेडियो-विज्ञापन एवं विज्ञापन माध्यम

11.6.1 रेडियो-विज्ञापन

11.6.1.1 रेडियो-विज्ञापन की विशेषताएं

11.6.2 प्रेस माध्यमी विज्ञापन

11.6.3 टेलीविजन विज्ञापन

11.7 रेडियो विज्ञापन-लेखन की तैयारी
11.7.1 गहन अध्ययनशीलता
11.7.2 तकनीक सम्बन्धी रुचि
11.7.3 शब्द-भंडार की बहुलता
11.7.4 उपभोक्ता का मनोविज्ञान
11.7.5 उत्पाद और उत्पादक का ज्ञान
11.8 रेडियो-विज्ञापन के अनिवार्य तत्व
11.8.1 संक्षिप्तता
11.8.2 नाटकीयता
11.8.3 भाषागत सरलता
11.8.4 रोचकता
11.8.5 विश्वसनीयता
11.9 रेडियो-विज्ञापन का स्वरूप
11.9.1 सामान्य वाचन
11.9.2 नाटकीय
11.9.3 जिंगल्स या गीतात्मक विज्ञापन
11.10 रेडियो-विज्ञापन संबंधी आचार संहिता
11.11 टेलीविजन के लिए विज्ञापन-लेखन
11.11.1 टेलीविजन का विकास
11.11.2 टेलीविजन: विज्ञापन का माध्यम
11.11.3 विज्ञापन-प्रसारण और प्रायोजित कार्यक्रम
11.12 टेलीविजन-विज्ञापन की आवश्यकताएं
11.12.1संक्षिप्त और सारगर्भित अपील या सन्देश
11.12.2 क्षिप्रगतियुक्त उत्पाद प्रदर्शन
11.12.3 गुणवत्ता का अपेक्षित सक्षम उल्लेख
11.12.4 सार्थक दृश्यविधान या 'विजुअल' प्रस्तुति
11.13 टेलीविज्ञापन का स्वरूप
11.13.1 ध्वनि-मिश्रण
11.13.2 दृश्य मिश्रण
11.13.3 जिंगल्स
11.13.4 टेली-विज्ञापन के प्रकार
11.13.5 टेलीकास्ट प्रविधि
11.14 टेली-विज्ञापन और नारी
11.15 सारांश

11.16 उपयोगी पुस्तकें
11.17 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 उद्देश्य

गत इकाई में मुद्रित-माध्यम समाचारपत्र के लिए विज्ञापन-लेखन के सम्बन्ध में आप पढ़ चुके हैं और यह भी जान चुके हैं विज्ञापन-लेखन की कला विशेष है, वह सामान्य फीचर या समाचार-लेखन नहीं है । इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि -

- रेडियो एक दृश्यहीन श्रव्य-माध्यम है और इसमें श्रोता की कल्पना-शक्ति का उपयोग ही अपनी महत्ता रखता है ।
- श्रव्य-माध्यम के रूप में रेडियो की महत्ता का परिचय मिल सकेगा ।
- विज्ञापन रेडियो-माध्यम पर सफलतापूर्वक कार्यरत है ।
- टेलीविजन श्रव्य दृश्य माध्यम है और विज्ञापन की विशिष्ट उपयोगिता सिद्ध करता है ।
- इन दोनों माध्यमों के लिए विज्ञापन-लेखन की तकनीक भी अपनी विशेषता लिए हुए हैं ।

11.1 प्रस्तावना

11.1.1 इलाक्ट्राय माध्यमों का परंपरागत-माध्यमों पर प्रभाव

हमारे देश में राष्ट्र की स्वतंत्रता के पश्चात् आधी शताब्दी बीतने पर परंपरागत माध्यमों का प्रचलन समाप्त नहीं हुआ है । आज भी दूरस्थ ग्रामीण समाज में परंपरागत-माध्यम जीवन का अंग बने हुए हैं । राजस्थान के एक दूरस्थ आदिवासी क्षेत्र में फिल्म यूनिट अपने कुछ 'शासन' फिल्म ने गई । जब यूनिट वाले अपनी यूनिट के तामझाम के साथ वहां पहुंचे तो गांव के लोग अजनबी लोगों मोटर वाहनों में बैठकर रिफ्लैक्टर्स, कैमरा, इलैकट्रिक्वैन साउण्डवैन के साथ पहुंचने पर, गांव छोड़ कर जंगल में चले गए । यूनिटवालों ने गांव के चौराहे पर देवरे पर नगाड़ा रखा देखा । उस यूनिट में किसी ने सुन रखा था कि गांवों में सूचना देने के लिए नगाड़ा बजाए जाने की प्रथा है तो नगाड़ा बजा दिया गया । अब क्या था सारा गांव और आसपास के लोग खतरे का संकेत पाकर एकत्र हो गये और फिल्म यूनिट वालों को घेर लिया । अब सारा मामला यूनिट वालों के सामने स्पष्ट हुआ तो सभी ने क्षमा याचना की पर उस गांव में शूटिंग कर पाने की सारी संभावनाएं समाप्त हो गई थी । यह इस बात का उल्लेख करने का निमित्त भर है कि परंपरागत-माध्यम आज "संचार- माध्यम है।

विकासशील भारत उपमहाद्वीप में इलाक्ट्राय-माध्यम का विकास हुआ है । इनमें से रेडियो टेलीविजन दोनों ही प्रमुखत: शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित माध्यम हैं, पर परंपरागत माध्यमों को प्रभावित अवश्य करते जा रहे हैं ।

11.1.2 परंपरागत-माध्यम

परंपरागत-माध्यम किसी समाज की परंपराओं से जुड़े होते हैं । ये परंपरागत माध्यम आज भी लोगों की आशाओं, आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने के साधन हैं । आधुनिक समाज में जन-संचार-माध्यमों ने लोक कथाओं, लोकगीतों तथा लोक परंपराओं को प्रभावित किया है । अन्य संचार-माध्यमों में से इलाक्ट्राय माध्यम के अन्तर्गत रेडियो एवं टेलीविजन सब से सशक्त माध्यम है ।

इलाक्ट्राय-माध्यमों का एक बड़ा गुण यह भी है कि ये बहुत जल्दी किसी घटना की जानकारी दे सकते हैं।

इलाक्ट्राय-माध्यम काफी जटिल है । संचार-माध्यमों की बढ़ती भूमिका में वर्तमान वैज्ञानिक युग में रेडियो, टेलिविजन ने बहुत व्यापक रूप में प्रभावित किया है । रेडियो पर विज्ञापनों की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है । रेडियो दृश्यहीन माध्यम है और टेलीविजन श्रव्यदृश्य-माध्यम है और इनके लिए विज्ञापन-लेखन बहुत महत्वपूर्ण है ।

11.2 रेडियो श्रव्य तथा दृश्यहीन माध्यम

11.2.1 रेडियो श्रव्य-माध्यम

रेडियो जनसंचार का ऐसा माध्यम है जो मूलत: आवाज की दुनिया कहा जाता है । वह तत्क्षण और तत्काल सन्देश प्रसारित करने में सक्षम है । उसकी विशेषता यह भी है कि अपने श्रोताओं को साथ लेकर चलता है और श्रोता आवाज तो सुनते हैं परन्तु साथ ही अपनी कल्पना-शक्ति का प्रयोग भी करते हैं । इसी कल्पना-शक्ति के सहारे श्रोता दृश्य जुटाता है । अत: कहा जा सकता है कि श्रोता सुनता है और सुनते समय वह कल्पना में तद्विषयक दृश्य अनुभव कर रहा होता है ।

11.2.2 रेडियो दृश्यहीन माध्यम

रेडियो जनसंचार का दृश्यहीन माध्यम है, जिसमें सन्देश सुना जाता है, देखा नही जा सकता। इसलिए इसे 'ब्लाइंड बॉक्स' कहा जाता है । अत: स्वर ही इस माध्यम में महत्व रखता है यानी कि यह ध्वनि पर ही आश्रित रहता है पर यह ध्वनि क्षणिक होती है । तभी जो भी उच्चरित शब्द होता है और उच्चरित होते ही अपना अस्तित्व शून्य कर जाता है । मुद्रित शब्द को पुन: दृष्टि में लिया जा सकता है, पढ़ा जा सकता है उससे दृश्य निर्मित होता देखा जा सकता है लेकिन रेडियो पर उच्चरित शब्द की ध्वनि उच्चरित होते ही अस्तित्व मिटा देती है, पर उच्चरित होते ही वह श्रोता के मानस में चित्र-निर्माण करती जाती है ।

11.3 रेडियो-लेखन के लिए अपेक्षाएं

11.3.1 जनसंचार-माध्यम के रूप में रेडियो

रेडियो वह दृश्यहीन माध्यम है जिसमें सन्देश प्रसारित करने और ग्रहण करने के मध्य कोई दूरी नहीं होती क्योंकि ध्वनि के कान में पड़ते ही ध्वनि के अनुरूप कान के माध्यम से ही देख भी लिया जाता है । बस, सन्देश भेजने वाले को कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है । श्रव्यता के कारण रेडियो के लिए सन्देश विशिष्ट रूप में डालना होता है और प्रयुक्त शब्द तथा भाषा सरल एवं स्पष्ट रखनी होती है । अत: रेडियो -लेखक के लिए यह बाध्यता होती है कि ध्वनि के माध्यम से दृश्य पैदा करे । इस स्थिति में रेडियो के प्रस्तुतकर्ता या प्रोड्यूसर की भूमिका भी विशेष होती है । लेकिन रेडियो लेखक को रेडियो लेखन की अपेक्षाओं से भलीभांति परिचित होना चाहिए ।

11.3.2 कल्पना-शक्ति की महत्ता

रेडियो को दृश्यहीन या 'ब्लाइण्ड बॉक्स' कहा जाता है तो इसका अर्थ स्पष्ट है कि उसके लिए लिखा गया सन्देश श्रोता देख नहीं सकता, श्रोता कल्पना में ही दृश्य की कल्पना कर लेता है । श्रोताओं की कल्पना शक्ति का आधार लेकर ही रेडियो-लेखक ऐसा आलेख तैयार करता है जो शब्द ध्वनि सुनते ही श्रोताओं की कल्पना-शक्ति को उद्‌बुद्ध करता है । आलेख तैयार करते समय रेडियो-लेखक को यह ध्यान रखना होगा कि उसे शब्द, ध्वनि, संगीत और मौन का आश्रय लेकर श्रोता को बांधना है और काल्पनिक संसार की रचना करके अपना सन्देश ग्रहण कराना है ।

11.3.3 श्रोताओं पर पकड़

रेडियो-लेखक को अपने आलेख में शब्द एवं भाषा का ऐसा सशक्त प्रयोग करना है जो श्रोताओं को अपने से जोड़ सके । आलेख का आरम्भ इतना रोचक होना चाहिए कि श्रोता भी कार्यक्रम के साथ बंध जाए । रेडियो-कार्यक्रम सुनने वाले को भी यह आभास होता है कि कार्यक्रम-प्रस्तुतकर्ता उसी से बात कर रहा है । इस प्रकार रेडियो लेखक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह अपने श्रोताओं पर पकड़ रखता है ।

11.3.4 आर्म्ड चेयर श्रोता

रेडियो के लिए लेखक लिखने से पहले ही यह भलीभांति जानता है कि उसका पाठक नहीं वह श्रोता है जो अपने आवास में आर्म्डचेयर श्रोता है अथवा अपने शयनकक्ष में गर्म लिहाफ में बिस्तर पर अधलेटा है या डाइनिंग टेबल पर डिनर ले रहा है अथवा वह कभी किचन, बाथरूम और स्टडी रूम में भी सुन सकता है । इसलिए श्रोता को बांधे रखने के लिए भाषा के सरल एवं सहज रूप का प्रयोग करता है।

बोध प्रश्न- 1

1. रेडियो को 'ब्लाइंड बॉक्स' क्यों कहा गया है?
2. रेडियो जनसंचार का सर्वश्रेष्ठ माध्यम क्यों है?
3. रेडियो-लेखन के लिए क्या अपेक्षाएं होती है?

11.4 रेडियो लेखन के उपकरण

रेडियो-आलेख तैयार करते समय रेडियो-माध्यम की आवश्यकताएं बिलकुल भिन्न हैं । पुस्तक लिखते समय मुद्रित शब्द पाठक के सामने जाते हैं लेकिन इलाक्ट्राय माध्यम के लिए कार्यक्रम या आलेख तैयार करते समय वह कुछ उपकरणों को अपनाता है, जो निम्नलिखित हैं -

1. शब्द, 2.ध्वनि प्रभाव, 3.संगीत

11.4.1 शब्द

शब्द का मुद्रित रूप भी होता है और श्रव्य भी । संचार में भी जब हम अंतर्वैयक्तिक (इंटर पर्सनल) संचार का अध्ययन करते हैं, तब भी शब्द ही वह माध्यम बनता है जो पारस्परिक संवाद को मुखर करता है । वास्तव में पुस्तक में लिखित या मुद्रित शब्द अर्थ देते हैं, पर रेडियो-माध्यम पर

बोले जाने वाले शब्द जीवन्त होते हैं । अत: वे अर्थ व्याप्ति की अधिक सम्भावनाओं रखते हैं, पर यह नहीं भूला जा सकता कि बोला हुआ शब्द अल्पजीवी होता है, बोलते ही उसका अस्तित्व मिट जाता है । मुद्रित शब्द का अस्तित्व सदैव बना रहता है । शब्द की अर्थ-व्याप्ति की महत्ता समझते हुए रेडियो -लेखक उनका भाषा में इस प्रकार प्रयोग करता है कि वे अभिप्रेत अर्थ संप्रेषित कर श्रोता को आलेख के अनुसार कल्पना-चित्र प्रस्तुत कर सकें हैं ।

11.4.2 ध्वनि-प्रभाव

रेडियो में ध्वनि-प्रभाव के माध्यम से दृश्य उत्पन्न किया जा सकता है । रेडियो-लेखक ध्वनि-प्रभावों के उपयोग की तकनीक का ध्यान रखकर सामान्य प्रभाव से किसी पूरे दृश्य या वातावरण का निर्माण कर लेता है । इसके लिए आलेख-लेखक निश्चित ही श्रोता की कल्पना-शक्ति का उपयोग करता है । ध्वनि-प्रभाव तीन प्रकार के होते हैं-

11.4.2.1 क्रिया-ध्वनि (एक्शन साउंड)

रेडियो में ध्वनि से किसी क्रिया का बोध होता है, उसे ही क्रिया-ध्वनि कहते हैं । ध्वनि-विशेष से श्रोता समझ जाता है कि दरवाजे पर घंटी बजने का अर्थ है कि किसी के आगमन की सूचना । ध्वनि के माध्यम से मनोभावों का भी पता चल जाता है । जैसे पहले जूतों की जोरदार ठक्-ठक् के बाद उसका हल्की ध्वनि का अर्थ है कोई बाहर जा रहा है ।

11.4.2.2 स्थल ध्वनि (सैटिंग साउंड)

जो ध्वनि स्थल या वातावरण-विशेष बोध कराती है उसे स्थल-ध्वनि कहते हैं जैसे 'चायवाला', 'समोसे गर्म समोसे', 'पान, बीड़ी, सिगरेट' की ध्वनियां रेलवे प्लेटफार्म का संकेत देती है । स्थल, ध्वनि का प्रयोग किसी दृश्य में पार्श्व-ध्वनि के रूप में भी किया जा सकता है । स्थल-ध्वनि का प्रयोग किसी दृश्य या स्थिति में, एक विशेष प्रकार का मूड बनाने में भी किया जा सकता है । कोयल की कुहू-कुहू, पक्षियों के डैनों की ध्वनियां किसी पार्क का आभास करा देती हैं ।

11.4.2.3 प्रतीक-ध्वनि

आलेख तैयार करते समय लेखक किसी क्रिया-विशेष या घटना-विशेष से जुड़ी हुई ध्वनियों का प्रयोग करके श्रोताओं के मस्तिष्क में विशेष प्रकार के प्रभाव उत्पन्न कर सकता है । लेकिन अनावश्यक रूप से ध्वनि-प्रभावों का प्रयोग आलेख-लेखक को नहीं करना चाहिए ।

11.4.2.4 ध्वनि-प्रभाव विषयक निर्देश

रेडियो, माध्यम के लिए आलेख-लेखक ध्वनि-प्रभावों का प्रयोग निम्नलिखित स्थितियों में करना उचित होता है -

1. किसी दृश्य में किसी स्थिति-विशेष को स्पष्ट करने के लिए
2. किसी दृश्य की वास्तविकता या प्रामाणिकता में वृद्धि के लिए
3. वातावरण या मूड उभारने के लिए

किसी भी आलेख में ध्वनि-प्रभावों का स्पष्ट विवरण दिया जाना चाहिए ताकि प्रस्तुत करते समय किसी प्रकार की परेशानी न हो ।

11.4.2.5 संगीत

रेडियो-कार्यक्रमों में संगीत का विशेष महत्व है । रेडियो के लिए आलेख तैयार करते समय लेखक को संगीत का प्रयोग वातावरण सृष्टि, स्थिति में नाटकीयता उत्पन्न करने, पात्रों की मनोस्थिति स्पष्ट करने या भावपूर्ण वातावरण के लिए करना चाहिए । स्थिति-विशेष के लिए आलेख मे यह निर्देश भी आवश्यक होता है किस गीत की भिन्न गतियों का उल्लेख किया जा सकता था मद, तीव्र, हर्ष सूचक, विषाद-सूचक, दृश्य-परिवर्तन सूचक, आरंभिक, समापन-संगीत आदि ।

11.5 रेडियो-लेखन विशेष कला

रेडियो-आलेख तैयार करना एक विशेष प्रविधि और कला है । रेडियो-लेखन के लिए कुछ विशेषताओं का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है -

1. रेडियो की भाषा
2. आकर्षक आरंभ
3. विषय सामग्री की नूतनता
4. संक्षिप्तता

11.5.1 रेडियो की भाषा

रेडियो की भाषा सामान्य लेखन की भाषा नहीं है । वह श्रव्य-माध्यम (ऑडियो मीडिया) की ऐसी भाषा है जो दृश्यहीनता की क्षतिपूर्ति करती है या 'अन्धे बक्से' का मन्तव्य समझाती है तथा श्रोता के मस्तिष्क में दृश्य-प्रभाव अथवा कल्पना जगाने की क्षमता रखती है।

रेडियो के लिए लेखन करते हुए लेखक को मुद्रित्माध्यम के लेखन-अभ्यास से भिन्न अपने ही प्रयुक्त विविध वाक्यांशों को छोड़ना होता है । रेडियो की भाषा में निम्नांकित वाक्यांशों की वर्जना होती है-

- 'उपर्युक्त विधियों का प्रयोग करके'....
- 'अब निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करना है'....
- 'जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है'.....
- 'विगत दशक में'.....

उक्त वाक्यांशों में उपर्युक्त निम्नलिखित, ऊपर, विगत उसके श्रोता को कहां दृष्टिगत होंगे क्योंकि वह पाठक नहीं होता।

11.5.1.1 रेडियो-भाषा प्रयोग सम्बन्धी निर्देशन

रेडियो की भाषा पुस्तकीय नहीं व्यावहारिक या प्रचलित शब्दावली युक्त हो तो ठीक है अन्यथा शब्दकोश के अर्थ खोजने और दुबारा विचार करने का अवकाश श्रोता को कहां मिलता है । उच्चरित शब्द तुरन्त कल्पना में एक चित्र सृष्टि करके श्रोता से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है ।

अस्तु रेडियो के लिए भाषा प्रयोग की दृष्टि लेखक को ध्यान रखना आवश्यक है कि -

1. वाक्य छोटे-छोटे हों ।
2. शब्द-चयन सरल एवं प्रचलित भाषा से किया जाए ।

3. कोई भी शब्द या वाक्य दुहराने का अवसर रेडियो पर नहीं होता है अत: वाक्य सुस्पष्ट हो ।
4. कम से कम शब्दों में अधिक आशय व्यंजित हो ।
5. ऐसे शब्द-प्रयोग से बचना चाहिए जो समस्वरता-परक हो, यथा सभी सभ्य समय पर आए । गुजरात में सभ्य का अर्थ सदस्य है, पर राजस्थान में सभ्य का प्रयोग सदस्यों के लिए नहीं होता तो श्रोता को 'सभ्य' भी समय-जैसा उच्चरित प्रतीत होगा ।
6. श्रोता और उसकी श्रवण-क्षमता के आधार पर शब्द एवं मुहावरे का चयन किया जाना उपयुक्त है।

11.5.2 आकर्षक आरंभ

जनसंचार का माध्यम कोई भी हो, उसके लिए लेखन का सर्वसामान्य और प्रमुख नियम आकर्षक आरंभ है ही, परन्तु रेडियो के लिए तो इसे और भी अधिक अनिवार्य और अपरिहार्य कहा जा सकता है क्योंकि रेडियो श्रव्य माध्यम है । लेखक जब तक रोचक एवं आकर्षक ढंग से आरंभ नहीं करेगा तब तक श्रोता रुचि ही नहीं लेगा । यदि आरंभ अच्छा या आकर्षक नहीं होगा तो श्रोता की श्रवण-शक्ति पर लेखक का प्रभुत्व स्थापित नहीं हो पाएगा । आकर्षक आरंभ द्वारा ही लेखक श्रोता के मस्तिष्क को क्रियाशील बनाकर अपने विषय के अनुकूल बनाता है ।

श्रोता किसी भी रेडियो-कार्यक्रम को तभी सुनता है जब उसका आरंभ उसे रुचिकर और आकर्षक प्रतीत होता है अन्यथा वह बैण्ड बदल देता है या रेडियो ही बन्द कर देता है ।

11.5.3 विषय-सामग्री की नूतनता

रेडियो-लेखक के लिए यह आवश्यक होता है कि श्रोता-मंडल जो प्राय: रेडियो सुनता ही है तो उसके लिए बासी विषय और बासी सामग्री कभी भी श्रव्य नहीं होगी । ऐसा विषय या सन्दर्भ आते ही वह रेडियो बंद करने के लिए बाध्य हो जाएगा । ऐसी स्थिति में पहले तो कार्यक्रम-अधिकारी या प्रोड्यूसर को ही विषय-चयन करते समय यह देखना आवश्यक होता है कि विषय में नूतनता है या नहीं तो दूसरे स्तर पर रेडियो-लेखक के लिए यह पहली आवश्यकता है कि वह कभी भी विषय को उठाते समय नवीनता या नूतनता लेकर तथ्य श्रोता के समक्ष लाए क्योंकि श्रोता सदैव ही नूतन जानकारियां चाहता है । इतिहास या पुरातत्व की नूतन तथ्यपरक सूचनाएँ नवीन व्याख्याएं, विज्ञान की नूतन उपलब्धियां, दैनदिन जीवन में प्रयोग में आनेवाली वस्तुओं में नूतन प्रयोग या नूतन उपकरणों की सुविधाओं के सम्बन्ध में वह जानकारियों की अपेक्षा करता है।

11.5.4 संक्षिप्तता

रेडियो ऐसा जनसंचार-माध्यम है जिस पर एक निश्चित अवधि मे अपने विचार प्रकट करने की व्यवस्था करनी होती है । रेडियो-लेखक को यह भली प्रकार विदित होता है कि वह सभागार में अपने विचार व्यक्त नहीं कर रहा है जिसमें सामने बैठे श्रोता शिष्टाचारवश शालीन बने रह कर सभागार से बाहर नही जाएंगे । उनका श्रोता रेडियो बंद कर देगा तथा कभी केन्द्र-निदेशक को लिख भी सकता है क्योंकि एक लम्बा कार्यक्रम सुनने का वह आदी नहीं होता है ।

किसी भी कार्यक्रम से प्रमावशाली और अधिक ग्राह्य बनाने के लिए आवश्यक है वह संक्षिप्त हो। इस संक्षिप्तता का, एक प्रमाण रेडियो से प्रसारित विज्ञापन के स्तर पर देखा जा सकता है कि

जो विज्ञापन दस से तीस सैकण्ड की अवधि में अपना संदेश दे जाते हैं, वे बच्चों की जिह्वा पर चढ़ जाते हैं । इसीलिए रेडियो-लेखक के लिए यह आवश्यक है कि अनावश्यक शब्द, दोहराव या आलंकारिक भाषा या लम्बी भूमिका से वह बचे ।

बोध प्रश्न - 2

1. रेडियो लेखन के क्या-क्या उपकरण माने जाते हैं?
2. रेडियो में ध्वनि का महत्व क्या है और वह कितने प्रकार की होती है?
3. रेडियो-लेखन को विशेष कला क्यों माना जाता है?
4. रेडियो-लेखन में भाषा प्रयोग सम्बन्धी सावधानियां बताइए ।

11.6 रेडियो-विज्ञापन एवं अन्य विज्ञापन-माध्यम

11.6.1 रेडियो-विज्ञापन

विविध भारती कार्यक्रम के अन्तर्गत रेडियो-विज्ञापन-सेवा आरम्भ की गई थी । अब सभी कार्यक्रम जो विविध भारतीय सेवा के अन्तर्गत प्रसारित होते हैं, उनके आरंभ और समापन पर ही नहीं मध्य में भी विज्ञापन दिए जाते हैं । आज स्थिति यह है कि रेडियो-विज्ञापन रेडियो के प्राइमरी चैनल पर भी प्रसारित होते हैं । संचार-विशेषज्ञों के अनुसार रेडियो-विज्ञापन में वे सभी दृश्य एवं मौखिक संदेश सम्मिलित रहते हैं जो पत्र-पत्रिकाओं, फिल्मों टेलीविजन पर विज्ञापित किए जाते हैं । यद्यपि रेडियो पर प्रसारित विज्ञापन प्रेस या टेलीविजन माध्यम से कहीं उपादेय माने जाते हैं ।

11.6.1.1 रेडियो-विज्ञापन की विशेषताएं

रेडियो-विज्ञापन की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है-

1. यह एक श्रव्य-माध्यम है, इसमें विज्ञापन सुना जाता है, पढा या देखा नहीं जा सकता ।
2. इस माध्यम पर समय की महत्ता है । अत: विज्ञापन कम से कम समय में तैयार किया जाता है। 10 से 15 सैकण्ड के विज्ञापन अधिक प्रभावी होते हैं ।
3. इस में संगीत तथा ध्वनि-प्रभावों का उपयोग कर विज्ञापन को और अधिक प्रेषणीय बनाया जाता है ।
4. रेडियो-विज्ञापन स्वयं श्रोताओं तक पहुंचता है ।
5. कम से कम समय में बिना किसी ओर ध्यान दिए रेडियो-विज्ञापन सुना जा सकता है ।
6. इस विज्ञापन को शिक्षित, अशिक्षित, बच्चे, बूढ़े सभी सुन सकते हैं ।
7. इसे चलते-फिरते, कमरे से बाहर या रसोई घर में कार्य करते हुए कही भी सुना जा सकता है ।
8. इसमें जिंगल्स तैयार हो सकते हैं ।
9. इसमें नाटकीयता रहती है ।

11.6.2 प्रेस माध्यमी विज्ञापन

प्रेस (समाचारपत्र)-विज्ञापन में रेडियो-विज्ञापन से भिन्नता मिलती है

1. प्रेस-विज्ञापन में स्थान की महत्ता होती है ।

2. यह शब्द का मुद्रित-माध्यम होता है
3. इसमें कार्टून या चित्र अथवा छायाचित्र का प्रयोग संभव है ।
4. प्रेस-विज्ञापन श्रोताओं के स्थान पर अपने पाठकों तक पहुंचता है या पहुंचना पड़ता है ।
5. प्रेस-विज्ञापन को पढने के लिए ध्यान देने और समय की आवश्यकता होती है ।
6. प्रेस-विज्ञापन शिक्षित समुदाय तक सीमित है क्योंकि शिक्षित समुदाय ही पढ़ सकता है ।
7. प्रेस-विज्ञापन को भविष्य के लिए सुरक्षित रखा जा सक्ता है ।
8. ब्यौरे वार जानकारी दी जा सकती है- वितरकों, प्रमुख विक्रेताओं की सूची, पते, टेलीफोन नंबर आदि ।

11.6.3 टेलिविजिन-विज्ञापन

रेडियो की भांति टेलीविजन भी इलाक्ट्राय-माध्यम है । रेडियो जहां श्रव्य-माध्यम भर है, वहीं टेलीविजन श्रव्य-दृश्य-माध्यम है जिसे 'बुद्धू बक्सा' या 'इडियट बॉक्स' कहा जाता है । भारत में टेलीविजन का आगमन यों 1959 में हो गया था, पर सन् 1982 के एशियाड खेलों के समय से इसका तीव्र विकास हुआ है । अब दूरदर्शन का व्यावसायिक (कामर्शियल) चैनल भी आरंभ हो चुका है तथा यह विज्ञापनों के लिए महत्वपूर्ण विधा है । टेलीविजन पर विज्ञापनों की विशेषता रेडियो-विज्ञापन से भिन्न होती है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि -

1. टेलीविजन श्रव्य एवं दृश्य-माध्यम है ।
2. इसे बैठकर ध्यानपूर्वक देखना आवश्यक है ।
3. टेलीविजन-विज्ञापन में दृश्य ही प्रमुख होते हैं जब कि रेडियो में श्रव्य-संदेश ही रहता है ।
4. 4. टेलीविजन-विज्ञापन में संगीत और ध्वनि-प्रयोग होता है । रेडियो में भी यह प्रयोग मिलता है ।
5. टेलीविजन में श्रव्य एवं दृश्य होने के कारण जिंगल्स तैयार हो सकते हैं ।
6. रेडियो-विज्ञापन की भांति टेलीविजन विज्ञापन में भी समय का महत्व होता है ।
7. टेलीविजन-विज्ञापन रेडियो और प्रेस-विज्ञापनों की अपेक्षा काफी महंगा सौदा है ।

11.7 रेडियो-विज्ञापन-लेखन की तैयारी

रेडियो-विज्ञापन-लेखन अपने आप में कला है और इस क्षेत्र में सामान्य विज्ञापन-लेखन से भिन्न प्रक्रिया का ध्यान रखना आवश्यक होता है क्योंकि श्रव्य-माध्यम होने के कारण रेडियो-विज्ञापन के प्रस्तुतीकरण तथा प्रविधि (तकनीक) का समुचित ज्ञान भी आवश्यक होता है । रेडियो-विज्ञापन-लेखन के निमित्त तैयारी निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर की जा सकती है -

1. गहन अध्ययनशीलता
2. तकनीक सम्बन्धी रुचि
3. शब्द-भंडार की बहुलता
4. उपभोक्ता का मनोविज्ञान
5. उत्पाद और उत्पादक का ज्ञान

11.7.1 गहन अध्ययनशीलता

रेडियो हेतु विज्ञापन-लेखन के लिए विज्ञापन की विशेषताओं और इलाक्ट्राय-माध्यम में विज्ञापन के उपयोग सम्बन्धी ज्ञान की ही जानकारियों से काम नहीं चलता है, बल्कि इसके विशिष्ट माध्यम रेडियो की श्रव्यता और तत्सम्बन्धी प्रविधि का पूरा ज्ञान भी होना आवश्यक है । इसके साथ ही यह ज्ञान भी गहन अध्ययन का परिणाम ही है कि कितनी अवधि का विज्ञापन किन समयों पर सस्ती से सस्ती दरों से अधिक श्रोताओं तक पहुंचाया जा सकता है क्योंकि समय की गणना से रेडियो विज्ञापन प्रसारण के लिए मुख्यत: सात सैकंड से तीस सैकंड की अवधि में तैयार विज्ञापन ही स्वीकार किए जाते हैं । रेडियो पर प्रसारित विज्ञापनों के स्पॉट, प्रायोजित कार्यक्रम या प्रायोजित गीत पर आधारित विज्ञापन के रूपों का अध्ययन विज्ञापन-लेखक को गहराई से करना चाहिए ।

11.7.2 तकनीक सम्बन्धी रुचि

रेडियो के निमित्त विज्ञापन-लेखन के लिए लेखक में यह रुचि भी होनी आवश्यक है कि वह प्रसारित विज्ञापनों को ध्यान पूर्वक सुने और इन विज्ञापनों की प्रविधि या तकनीक का पूरा-पूरा-ज्ञान रखे । वास्तविकता यह है कि इस क्षेत्र में व्यावहारिक स्तर पर बहुत कुछ योग्यता तकनीक सम्बन्धी रुचि का विस्तार करके बढ़ाई जा सकती है क्योंकि देखने-सुनने और वैसा ही कुछ कर डालने में रुचि जाग जाने पर रेडियो-लेखन के क्षेत्र में पर्याप्त तकनीक का विस्तार किया जा सकता है।

इसमें शक नहीं कि रेडियो के लिए विज्ञापन लिखना एक कठिन कला है, पर तद्विषयक तकनीक या प्रविधि जान लेने की रुचि का विस्तार कर लेने पर किसी भी रेडियो-विज्ञापन के लेखक में व्यापक क्षमताओं का समावेश हो सकता है ।

11.7.3 शब्द-भण्डार की बहुलता

रेडियो हेतु विज्ञापन लेखन में अन्य गुणों के रहते हुए विज्ञापन लेखक के शब्दभंडार की बहुलता आवश्यक है क्योंकि विज्ञापन में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का ज्ञान और उसका उचित प्रयोग विज्ञापन लेखन में गहरी समझ उत्पन्न करता है । पर्यायवाची शब्दों में किस शब्द की अर्थ-व्याप्ति कहां तक है, यह जान लेना रेडियो-लेखक के लिए बहुत महत्वपूर्ण है । उदाहरणार्थ-

- मजेदार खाने का दारोमदार रखते हैं रामदेव मसाले
- लजीज खाने का दारोमदार रखते हैं रामदेव मसाले
- स्वादिष्ट खाने का दारोमदार रखते हैं रामदेव मसाले

उक्त तीनों वाक्य एक ही भाव व्यक्त करते हैं, पर मजेदार से कहीं अधिक लजीज शब्द उपयुक्त प्रतीत होता है । अत: लजीज शब्द का प्रयोग रेडियो-विज्ञापन में अधिक सार्थक है ।

इसी प्रकार अन्य विज्ञापन-लेखन में भी शब्दों की उपयुक्तता देखी जा सकती है-

– स्वास्थ्य है वहां
  लाइफबाय है जहां
– तंदुरुस्ती है वहां
  लाइफबाय है जहां

उक्त 'नारा' लेखन में 'स्वास्थ्य' और ' तंदुरुस्ती' एक दूसरे के पर्याय है, परन्तु इसमें सर्वाधिक प्रिय और कर्णश्रवण के लिए ' तंदुरुस्ती' अधिक उपयुक्त शब्द है । इसलिए यह अपेक्षा की जाती है कि रेडियो के विज्ञापन-लेखक या कॉपी-राइटर का शब्द भंडार काफी व्यापक होना चाहिए ।

11.7.4 उपभोक्ता का मनोविज्ञान

रेडियो के निमित्त विज्ञापन-लेखन के लिए उपभोक्ता के मनोविज्ञान का अध्ययन करना बहुत आवश्यक होता है क्योंकि किसी विज्ञापन के प्रसारण पर उपभोक्ता की प्रतिक्रिया या फीड बैंक ही उत्पाद की क्रय शक्ति के रूप में सामने आता है और इस प्रकार से उत्पादक या निर्माता का रेडियो जैसा इलाक्ट्राय-माध्यम चयन किया जाना सार्थक होता है । कभी-कभी विज्ञापन-लेखक या कॉपी-राइटर विज्ञापन में प्रतिस्पर्धात्मक मनोविज्ञान का आश्रय लेबर श्रोताओं को आकर्षित करता है । एक धुलाई के साबुन के रेडियो-विज्ञापन में -

- अरे साब, आपकी कमीज के सामने दही की सफेदी क्या चीज है । इसी प्रकार एक अन्य विज्ञापन-प्रसारण में
- भला उसकी कमीज मेरी कमीज से सफेद कैसे?
- किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया से सुपर रिन की चमकारज्यादा सफेद
- बाकी सभी चमकारों से अलग है।

निश्चित ही श्रोताओं को आकर्षित करते हैं ।

11.7.5 उत्पाद और उत्पादक का ज्ञान

रेडियो के निमित्त जिस उत्पाद का विज्ञापन प्रसारणार्थ तैयार किया जाए उसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी ही विज्ञापन-लेखक को नहीं करनी होती अपितु उत्पाद एवं उत्पादक की प्रतिष्ठा का ज्ञान भी होना आवश्यक है । उत्पाद और उत्पादक की जानकारी इतनी गहन हो कि उसका उल्लेख उपभोक्ताओं में विश्वसनीयता जगा सके । किसी नए और अप्रतिष्ठित उत्पाद और उत्पादक के नाम का प्रयोग विज्ञापन लेखन में शायद इतना उपयोगी नहीं जितना स्कूटर के विज्ञापन के लिए बजाज का नाम यथा-

'बजाज!
हमेशा आपको पसन्द का
ख्याल रखते हैं ।

उत्पाद किस उपभोक्ता वर्ग के लिए उपयोगी होगा इसका ज्ञान भी होना आवश्यक है क्योंकि उसी से उत्पाद का नाम प्रसारित होता है, यथा-

'सूटिंग' का विज्ञापन केवल पुरुषों के लिए
'जॉनसन बेबी पाउडर' का विज्ञापन केवल बच्चों के लिए तथा
'नेलपालिश' का विज्ञापन केवल महिला-वर्ग के लिए ही होता है ।

11.8 रेडियो-विज्ञापन के अनिवार्य तत्व

रेडियो को श्रव्य-माध्यम के रूप में स्वीकार किया जा चुका है । उसके प्रसारण में शब्द, ध्वनि एवं संगीत का मिश्रित स्वरूप मिलता है । अन्य प्रसारणों से अलग जब विज्ञापन के प्रसारण के विषय

में विचार किया। जाता है तो रेडियो विज्ञापन-लेखन को एक कठिन कला-विधा के रूप में स्वीकार किया गया है । ऐसी स्थिति में विज्ञापन-लेखन के लिए लेखक को शब्द-चयन तथा वाक्य संरचना, दृश्यों की कल्पना तथा उनके नियोजन पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

विज्ञापन लेखक को यह जान लेना बहुत ही महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य है कि विज्ञापन के निम्नलिखित तत्व होते हैं ।

1. संक्षिप्तता
2. नाटकीयता
3. भाषागत सरलता
4. रोचकता
5. विश्वसनीयता

11.8.1 संक्षिप्तता

रेडियो पर समय की सीमा-रेखा निर्धारित होती है और उसी के अनुरूप अपने ग्राहक संस्थान के लिए रेडियो पर समय क्रय कर लिया जाता है तो उसके अनुरूप ही विज्ञापन का विवरण तैयार किया जाता है । इस दृष्टि से विज्ञापन का संक्षिप्त आकार रखना ही अधिक उपयुक्त है ।

11.8.2 नाटकीयता

रेडियो-विज्ञापन श्रव्य होता है । इसलिए वातावरण सृष्टि या दृश्य-कल्पना के लिए विज्ञापन-लेखक या कॉपी-राइटर को वाक्यों के नाटकीय प्रयोग की आवश्यकता होती है । यथा -

पहला स्वर - चाय देना भाई साहब!

दूसरा स्वर - इन्हें चाय देना कोई-सी ।

पहला स्वर - कोई नहीं, - - - - - - -चाय ही ।

दूसरा स्वर - चाय का क्या है बस, पानी उबाला, दूध डाला और कोई सी पत्ती....

पहला स्वर - पीओ तो जानो ।

इस प्रकार नाटकीय स्थिति से कॉपी-राइटर चाय-विशेष के प्रति आकर्षण एवं इच्छाशक्ति बढ़ाने का कार्य करता है।

11.8.3 भाषागत सरलता

रेडियो अव्य-माध्यम है । इसलिये उसके निमित्त विज्ञापन तैयार करते समय लेखक या कॉपी-राइटर को सावधानी रखनी पड़ती है क्योंकि श्रोता-मंडल में सभी प्रकार के शिक्षित एवं अशिक्षित-श्रोता होते हैं । अत: विज्ञापन की भाषा में जटिल शब्द शब्द-चयन और साहित्यिक शब्दों के स्थान पर प्रचलित शब्दावली, लघुवाक्य-रचना की सहजता और सरलता ही उपयुक्त होती है जिससे उच्चरित शब्द का तात्कालिक प्रभाव श्रोता ग्रहण करता है।

11.8.4 रोचकता

रेडियो पर प्रसारित किए जाने वाले विज्ञापन में कॉपी-राइटर को ऐसी शब्दावली का चयन करना पड़ता है जो कथन की संक्षिप्तता में भी रोचक हो । यदि रोचक शब्दयुक्त विज्ञापन होगा तो श्रोता उस पर ध्यान केन्द्रित करेगा अन्यथा ध्यान नहीं देगा । इसके निमित्त आवश्यक है कि व्यर्थ विवरण

को स्थान न देकर उपयुक्त शब्दों एवं काव्यात्मक वाक्य रचना का प्रयोग करके विज्ञापन में रोचकता बनाए राखी जा सकती है।

11.8.5 विश्वसनीयता

रेडियो में शब्द क्षणजीवी होता है और एक बार उच्चरित शब्द का पुन: प्रयोग संभव नहीं होता। अत: रेडियो-विज्ञापन में शब्दों और वाक्यों का प्रयोग इस सावधानी से करना अत्यन्त आवश्यक है कि वह कथन में किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे । शब्द-विन्यास और कथन की उपयुक्तता ही श्रोता के विश्वास का आधार होती है । अत: अभिधात्मक कथन ही उपयुक्त होते हैं । रेडियो विज्ञापन के लिए लक्षणापरक या व्यंजनापरक शब्द-चयन अपेक्षित नहीं है, उसमें विश्वसनीयता को क्षति पहुंचने की सम्भावना रहती है।

11.9 रेडियो- विज्ञापन का स्वरूप

रेडियो पर प्रसारणार्थ विज्ञापनों को प्रस्तुतीकरण के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। यद्यपि यह वर्गीकरण ध्वनि पर आधारित ही होता है और ध्वनि में भाषा, ध्वनि एवं संगीत तत्व विद्यमान रहते हैं । प्रस्तुतीकरण के आधार पर विज्ञापन का स्वरूप निम्नांकित रूप में देखा जा सकता है -

1. सामान्य वाचन 2.नाटकीय
3. जिंगल्स या गीतात्मक

11.9.1 सामान्य वाचन

रेडियो-विज्ञापन के इस स्वरूप के लिए कॉपी-लेखक के समक्ष यह स्पष्ट होता है कि प्रसारण हेतु विज्ञापन एक-दो स्वरों स्त्री-पुरुष स्वर के रूप में पड़े जाने की पद्धति में लिखा जाता है । यथा-

पुरुष : न किसी बात का डर न कोई घोटाला
स्त्री : जब दरवाजे पंर लटका हो 'हरीसन ताला'
पुरुष : हरीसन लोहे का ताला
स्त्री : हरीसन पीतल का ताला
पुरुष : हर जरूरत के लिए खरीदिए
स्त्री : हरीसन ताला

11.9.2 नाटकीय

नाटकीय रेडियो-विज्ञापन के लेखन में संवाद-शैली अपनाकर दृश्य-निर्माण क्यिा जाता है । श्रोता को शाब्दिक स्तर पर यह कल्पना होती है कि वह एक दृश्य देखे रहा है-

पुरुष : बस, बस भाभी बहुत खा लिया !
स्त्री : कहां, तीनचार रोटियां तो ही खाई हैं-
पुरुष : थोड़े चावल लूंगा
स्त्री : लो न लल्ला, कितने सफेद हैं, बासमती हैं 1
पुरुष : भाभी (हंसते-हंसते), बासमती हों या साबरमती

: आपकी सफेद साड़ी के आगे इनकी क्या सफेदी।

स्त्री : सो तो है । सुपर रिन का (गर्व से)कमाल है।

पुरुष : सुपर रिन?

स्त्री : जरासा रिन-

(ध्वनि(प्रभाव-

उच्च स्वर : सुपर पावर रिन

: सफेदी की चमकार ज्यादा

(ध्वनि(प्रभाव-

11.9.3 जिंगल्स या गीतात्मक विज्ञापन

रेडियो-विज्ञापन लेखक या कॉपी-राइटर जहां ध्वनि प्रभावों में ध्वनि और संगीत की महत्ता पर आश्वस्त रहता है वही विज्ञापन लेखन करते समय वह प्राय: गीतात्मक ध्वनि-समायोजन करता है। जिंगल्स रचना में एक रेडियो, विज्ञापन-

(I) आ के साबुन से नहाए
कमल - सा खिल जाए

(II) सर दर्द हो या दांत का दर्द
सरदी हो या पीठ का दर्द
एनासिन लो ऐनासिन

(III) हमारे साथ आया
चार बूंदों वाला
नया उजाला

बोध प्रश्न - 3

1. रेडियो-विज्ञापन की विशेषताएं बताइए ।
2. रेडियो-विज्ञापन लेखन की तैयारी आप कैसे करेंगे?
3. रडियो- विज्ञापन के अनिवार्य तत्व क्या हैं?
4. रेडियो-विज्ञापन में जिगंल्स का महत्व क्यों हैं?

11.10 रेडियो-विज्ञापन संबधी आचार- संहिता

विज्ञापन का संसार सीमित नहीं है । उसने जनसंचार के सभी माध्यमों पर अपना आधिपत्य जमा रखा है । ऐसी स्थिति इलाक्ट्राय-माध्यम पर अपना दखल या कब्जा कहां छोड़ सकता है । इलाक्ट्राय-माध्यम में रेडियो श्रव्य-माध्यम की विशेषता लिए हुए है तो उस पर प्रसारित किए जाने वाले विज्ञापनों के लेखन के सम्बन्ध आचार-संहिता का पालन करना भी रेडियो विज्ञापन-लेखक के लिए अपरिहार्य है ।

भारत में रेडियो के व्यापारिक चैनल के लिए निर्धारित आचार-संहिता निम्नलिखित रूप में है-

1. रंगभेद, जाति, वर्ग-भेद इत्यादि को प्रोत्साहित नहीं करना है तथा ऐसे किसी शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए जिससे राष्ट्रीय भावना को क्षति पहुंचे ।
2. संविधान के नियम और प्रावधान के विरुद्ध किसी शब्द और वाक्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
3. जुर्म और हिंसा तथा अव्यवस्था को बढ़ावा देने वाले शब्दों से बचना चाहिए ।
4. ऐसे शब्दों और वाक्यों से भी बचना चाहिए जिनमें हिंसा या जुर्म जाहिर होता हो ।
5. ऐसे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग नहीं किया जाए जो भारत के मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध हो ।
6. किसी व्यक्तिगत आक्षेप या किसी राष्ट्रीय नेता अथवा राज्य के गणमान्य व्यक्तियों के विरुद्ध अपशब्द या मानहानि से बचना चाहिए ।
7. राष्ट्रीय प्रतीक के सम्मान को क्षति पहुंचाने वाले शब्दों से भी बचना चाहिए ।
8. बीड़ी, सिगरेट और तम्बाकू जैसे उत्पादों को भी रेडियो-विज्ञापनों में कोई स्थान नहीं दिया जाना चाहिए ।
9. शुद्ध सोने और आभूषण के विज्ञापन भी भारतीय रेडियो पर स्वीकार्य नहीं हैं ।

अत: विज्ञापन तैयार करते समय कॉपी-लेखक को आचार-संहिता के उक्त बिन्दुओं का विशेष ध्यान रखना इसलिए आवश्यक है कि विज्ञापन संस्थान की छवि पर आचार-संहिता की अवहेलना का लांछन न आए न व्यक्तिश: कॉपी-लेखक को भी इस संदर्भ में दोषी समझा जा सके । वे दोनों ही रेडियो और राष्ट्र के लिए अहितकारक कहे जाएंगे । अत: विज्ञापन एजेंसियों और कॉपी-लेखकों को आचार-संहिता पर ध्यान केन्द्रित करके ही विज्ञापन तैयार करना उचित है ।

11.11 टेलीविजन के लिए विज्ञापन-लेखन

11.11.1 टेलीविजन का विकास

इलॉक्ट्राय-माध्यमों में टेलीविजन का विकास रेडियो-माध्यम से भिन्न रहा है । ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो भारत में टेलीविजन मात्र चालीस वर्ष पूर्व आया है और इसका विकास भारतीय स्तर के माध्यम के रूप में नहीं हुआ, अपितु यह एक आयातित माध्यम ही बना रहा है । कालक्रम में देखा जाए तो बी.बी.सी. (लंदन) ने टेलीविजन सेवा सन् 1936 में आरम्भ कर दी थी और हमारे यहां सन् 1959 में आरम्भ हुई है, लेकिन इसका आरंभिक विकास एवं प्रयोग सामाजिक शिक्षण तक ही सीमित रहा था । टेलीविजन को स्वतंत्र माध्यम के रूप में संचालित करने की सिफारिश यद्यपि सन् 1976 में की गई थी लेकिन उसकी अपनी पहचान बनना आरम्भ नहीं हुआ । पीसी. जोशी समिति ने 1984 में एक मूल्यांकन प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसके अनुसार टेलीविजन के सात केन्द्रों पर फीचर फिल्मों, विदेशी फिल्मों, विज्ञापन, समाचार, खेल और नाटक के प्रसारण को अधिक समय दिया जाने लगा । स्कूली कार्यक्रमों एवं ग्रामीण विकास के सामुदायिक दर्शक भी घटने आरंभ हो गए थे और व्यक्तियों (इंडिविजुअल्स) की पहुंच सुनिश्चित हो गई थी।

टेलीविजन विकास में साइट (सैटेलाइट इंन्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरीमेण्ट) का महत्वपूर्ण प्रयोग रहा है, जिसमें टेलीविजन के व्यावसायिक मनोरंजन के स्तर पर अमेरिका के नेशनल एरोनोटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) के साथ भारत सरकार का समझौता हुआ था । भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने इस प्रायोजना के अंतर्गत 'सीधे पिक्चर पड़ने वाला एंटेना' तैयार किया।

साइट की तकनीकी सुविधाओं से जीवन्त सीधे प्रसारण होने लगे । साइट एक वर्ष के समझौते के अन्तर्गत कार्यरत रह सका तथा भारतीय परिप्रेक्ष्य में वह असफल भी माना गया । इसरो द्वारा स्वविकसित सैटेलाइट को फोर्ड एयरोस्पेस एण्ड कम्यूनीकेशन कारपोरेशन के सहयोग से बनाया, जिसे 'इनसैट-1 ए, कहा गया तथा इसे अप्रैल 1982 में प्रक्षेपित किया गया, लेकिन दो माह बाद ही वह उपयोगी हो सका । फिर समस्याओं के कारण 'इनसैट-1 बी का प्रक्षेपण हुआ तथा इसे डक्तार विभाग के सैटेलाइट 'एपल' से जोडा गया । सन् 1966 में इनसैट- 1 सी भी प्रक्षेपित किया गया ।

11.11.2 टेलीविजन:विज्ञापन का माध्यम

जन संचार के इलाक्ट्राय-माध्यम के रूप में टेलीविजन एक अच्छा विज्ञापन-माध्यम बन गया है । पश्चिम में ही नहीं, भारत में भी टेलीविजन की विज्ञापन-सेवा के वाणिज्यीकरण ने 'विज्ञापन एवं उपभोक्ता संस्कृति' को जन्म दिया है । टेलीविजन पर देश में सन् 1982 से व्यावसायिक स्तर पर प्रायोजित कार्यक्रमों के आरंभ से विज्ञापनों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाने लगा । पी. सी. जोशी समिति का निष्कर्ष रहा है कि 'विदेशी धारावाहिकों समेत विदेशी जीवन पद्धति विज्ञापनों दारा चमकाए गए विलास-उपकरणों को दिखाकर जनोन्मुख की जगह सरकारोन्मुख बनाकर या शहरी संपन्न मध्य-वर्गोन्मुख बनाकर भारतीयों ने भी यह साबित कर दिया कि वे भी उसी रास्ते पर इस माध्यम को ले जाएंगे, जिस पर विश्व के अधिकांश निर्गुट राष्ट्र चल रहे हैं ।'

11.11.3 विज्ञापन-प्रसारण और प्रायोजित-कार्यक्रम

विज्ञापन-प्रसारण के रूप में टेलीविजन का व्यावसायिक उपयोग आरंभ हुआ । आरंभ में फिल्म और चित्रहार के आगे -पीछे ही विज्ञापनों का प्रसारण होता था । व्यावसायिक हितो ने भी इलाक्ट्राय के टेलीविज़न-माध्यम का महत्व समझ लिया था कि यह माध्यम शयनकक्ष तक प्रविष्ट हो चुका है। अत: व्यावसायिक संस्थान ऐसे कार्यक्रमों का ही विज्ञापन देते थे जिन्हें अधिक से अधिक लोग पसंद करते हों । दूसरी ओर आज टेलीविजन व्यावसायिक विज्ञापनों पर ही निर्भर है ।

जोशी समिति के प्रतिवेदन में टेलीविजन-विज्ञापन के लिए नई विज्ञापन संहिता तैयार करने की सिफारिश की गई है । इसमें से कुछ संहिता विषयक सन्दर्भ में यह कहा गया है कि विज्ञापनों के प्रसारण से पूर्व यह सावधानीपूर्वक छानबीन होनी चाहिए कि विज्ञापनदाता संस्थान गलत दावे पेश न करे।

इसमें शक नहीं कि टेलीविजन-जैसा इलाक्ट्राय-माध्यम विज्ञापन के निमित्त सर्वाधिक सार्थक और भारी प्रतिक्रियामूलक (फीडबैंक बेस) होता है क्योंकि आज विज्ञापन प्रत्येक वर्ग, लिंग और आयु संवर्ग के लिए प्रसारित होते है । अधिसंख्य व्यावसायिक सस्थान मनोरंजन युक्त कार्यक्रमों या सीरियल्स के लिये प्रायोजना कार्य करके अपने एकाधिकार परक विज्ञापन प्रसारण का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं । अनेक बार कार्यक्रम के प्रायोजक सामूहिक रूप में एकत्र होते हैं । उसका लाभ यह रहता है कि कार्यक्रम के आरंभ, मध्य और अन्त तक सभी के विज्ञापन क्रमबद्ध रूप से प्रसारित हो जाते हैं । अच्छी धनराशि व्यय करके भी टेलीविजन विज्ञापनदाता हानि में नहीं रहते हैं क्योंकि उपभोक्ता का एक वर्ग ही नहीं अपितु इस विज्ञापन संस्कृति में घर के सभी सदस्यों की इच्छाएं जगाने तथा विज्ञापित वस्तु की क्रय-इच्छा तीव्र कराने में विज्ञापन बड़ी सक्रिय एवं सार्थक भूमिका निभाते हैं।

11.12 टेलीविजन-विज्ञापन की आवश्यकताएं

टेलीविजन जनसंचार-माध्यमों में इलाक्ट्राय वर्ग का ऐसा व्याप्ति परक (कवरेज) माध्यम है। वह सभी आयुवर्ग को एक साथ प्रभावित करता है । यदि खाने सम्बन्धी शौक से संबंधित बालक-बालिकाओं की खाद्य सामग्री है तो बच्चों में वस्तु या उत्पाद के विषय में जिज्ञासा और इच्छा-शक्ति जगाने का कार्य विज्ञापन करते हैं और माता-पिता में उस वस्तु या उत्पाद को क्रय करने की इच्छा उत्पन्न करते हैं क्योंकि टेलीविजन दृश्य माध्यम है, बच्चे और उनके माता-पिता विज्ञापन में प्रसारित अपील और वस्तु की गुणवत्ता की घोषणा के साथ ही दृश्य में जीवन्त बालक-बालिकाओं को वस्तु पाकर प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए देखते हैं । 'मेडीकेयर' जैसी जूं मारक दवा के विज्ञापन का दृश्य या पढ़ते समय झुंझलाते बच्चे का दृश्य अथवा स्कूल से लौटकर 'भूख लगी है मम्मी' कहलाने के साथ नूडल्स परोसने का दृश्य माता-पिता या बड़ों में उस उत्पाद की क्रय-इच्छा की अभिवृद्धि करते हैं । टेलीविजन विज्ञापन की परिव्याप्ति घर में कोलाहल, प्रतिक्रिया, वस्तु के लिए मांग की निरंतरता और अपेक्षा उत्पन्न करने की बाध्यता दिखाता है जबकि मुद्रित माध्यम (समाचार पत्र) का विज्ञापन शांत, पठनीय और विस्मृत हो जाने की स्थिति पैदा करता है । दूसरे शब्दों में वह विज्ञापन समाचार और समाचार-पत्र के बासी हो जाने के साथ ही दृष्टि से ओझल हो जाता है । रेडियो पर ऐसा ही विज्ञापन सुनने के पश्चात् पुन: सुनने का अवसर आने तक के अन्तराल में व्यक्ति या श्रोता को अन्य कार्यों की व्यस्तता का अवसर देकर सुना होकर भी अनसुना सिद्ध कर सकता है । श्रव्यता और दृश्यता लिए हुए टेलीविजन विज्ञापन अधिक ध्यानाकर्षित ही नहीं करते अपितु प्रायोजित कार्यक्रमों के साथ प्रसारण सुविधा के कारण नैरन्तर्य भी रखते है । ऐसी स्थिति में श्रोता और उपभोक्ता की प्रतिक्रिया या फीडबैक विज्ञापनदाता की अपेक्षाओं के अधिक निकट होता है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर टेलीविजन विज्ञापन की निम्नलिखित विज्ञापन परक आवश्यकताओं का उल्लेख किया जा सकता है -

1. संक्षिप्त और सारगर्भित अपील या सन्देश
2. क्षिप्रगतियुक्त उत्पाद-प्रदर्शन
3. गुणवत्ता का अपेक्षित सक्षम उल्लेख
4. सार्थक दृश्य-विधान या विजुअल-प्रस्तुति

11.12.1संक्षिप्त और सारगर्भित अपील या सन्देश

टेलीविजन विज्ञापन के लिए एक तीव्र गतिमान माध्यम है और 'स्थिरता' उसका गुण नहीं है, जबकि दृश्य मानता गुण है पर गतिशील होना ही उसकी परिणति है । अत : विज्ञापन हेतु कॉपी-लेखक को यह ध्यान देने की अनिवार्यता हो जाती है कि वह श्रोता या उपभोक्ताओं से जो अपील करता है या सन्देश देता है, वह संक्षिप्त तो हो ही, पर सारगर्भित भी हो क्योंकि माध्यम की तीव्र गतिशीलता में दीर्घ, और वैविध्यपूर्ण संवाद-प्रेषण की सुविधा नहीं होती है । यद्यपि कॉपी-लेखक को टेलीविजन-विज्ञापन हेतु अपील तैयार करते समय प्राथमिकता के आधार पर वस्तुनिष्ठ अपील का क्रम निम्नलिखित रूप में रखना होता है -

प्राथमिकता का स्तर

प्रथम - उपभोक्ता सम्बन्धी अपील या सन्देश

1. उपभोक्ता सेवा पर जोर
2. आर्थिक बचत सम्बन्धी
3. समय की बचत सम्बन्धी
4. उपभोक्ता उत्थान सम्बन्धी
5. भय से सावधानी सम्बन्धी

द्वितीय- उत्पाद या सेवा सम्बन्धी अपील या संदेश

(क) उत्पाद या सेवा के गुण सम्बन्धी

(ख) उत्पाद की प्रतिस्पर्धा सम्बन्धी

(ग) उत्पाद के मूल्य सम्बन्धी

(घ) उत्पाद की लोकप्रियता सम्बन्धी

(ङ) उत्पाद की गुणवत्ता-वृद्धि सम्बन्धी

11.12.2 क्षिप्त गतियुक्त उत्पाद-प्रदर्शन

टेलीविजन-माध्यम जितना तीव्रगतियुक्त है विज्ञापन के कॉपी-लेखक को भी, जिस उत्पाद का उल्लेख विज्ञापन में निहित है, उसका दृश्य रूप में प्रदर्शन भी उतनी ही तीव्र या क्षिप्र गति से करना अपरिहार्य है अन्यथा अपील और वस्तु-प्रदर्शन के मध्य रह गए किसी भी अन्तराल के कारण अपेक्षित परिणाम अच्छी राशि व्यय करने के उपरान्त भी धूमिल हो जाएंगे । टेलीविजन समाचार-वाचक और विजुअल प्रस्तुति के मध्य कई बार अन्तराल देखा जाता है । विज्ञापन और वस्तु-प्रदर्शन के मध्य किसी भी अन्तराल या व्यवधान की अपेक्षा नहीं की जा सकती । अत: विज्ञापन लेखक को ऐसे विजुअल की व्यवस्था अनिवार्य रूप से अपील के साथ करनी होती है, जिसमें तत्सबन्धी वस्तु प्रदर्शित हो ताकि अपील के साथ वस्तु का तारतम्य दर्शक पा सके ।

11.12.3 गुणवत्ता का अपेक्षित सक्षम स्थ्येख

टेलीविजन के निमित्त कॉपी-लेखन करते समय लेखक को उत्पाद की गुणवत्ता के निमित्त एक निर्धारित समयावधि में संक्षिप्त किन्तु ऐसा सक्षम उल्लेख करना अपेक्षित हो जाता है कि श्रोता-दर्शक एक बार में ही अपील में उल्लेखित उत्पाद की गुणवत्ता का परिचय पा सकें । यथा-

(1) "लोग- - - - - - -अपनाते हैं
क्योंकि
- - - - - - - - - - - - - -पर भरोसा है ज्यादा ।

(2) "सफलता और शक्ति के लिए वर्षों से
----------को ही
अपनाते हैं लोग ।"

(3) "सात साल पहले अव्वल
आज भी अव्वल ।"

11.12.4 सार्थक दृश्य-विधान या 'विजुअल' प्रस्तुति

टेलीविजन-विज्ञापन की क्षिप्र गति के कारण जो दृश्य-विधान या 'विजुअल' प्रस्तुत किया जाना है, उसकी सार्थकता इसी रूप में सिद्ध होती है कि अपील या सन्देश के साथ वस्तु या उत्पाद का प्रदर्शन गुणवत्ता के उल्लेख के साथ तद्विषयक दृश्य विधान सीनेरियो के विजुअल के साथ हो । इसके लिए कॉपी-लेखक से अधिक दायित्व विज्ञापन तैयार करने वाली संस्था के कला-निदेशक का है । परन्तु यह कहना अन्यथा नहीं होगा कि कॉपी-लेखक और कला-निदेशक की जब तक बैठक संपन्न नहीं होगी तब तक इस लक्ष्य तक पहुंचना सम्भव नहीं है क्योंकि इन दोनों का निर्णय 'डोपशीट' के साथ कैमरामैन के पास जाता है । सार्थक दृश्य विधान का निर्माण करता तो कैमरा मैन है और उसके लिए उसकी बैठक भी टेली-विज्ञापन-लेखक एवं कला-निर्देशक के साथ होती है और उस अन्तिम निर्णय का उल्लेख डोपशीट पर किया जाता है कि कैमरामैन प्रत्येक शॉट की प्रकृति लोंग शॉट, मिडिल शॉट और क्लोजअप शॉट, शॉट की लम्बाई संबंधित घटनाक्रम का उल्लेख करता है ।

कॉपी-लेखक के मन्तव्य को कला-निर्देशक किस रूप में जीवन्त (लाइव) बना सकता है, यह तो दोनों तय करते ही है, परन्तु कैमरामैन उसके तकनीकी पक्ष या प्राविधिक संरचना पक्ष के साथ सार्थक दृश्य-विधान की सृष्टि करता है । इसलिए तीनों के निष्कर्ष की ही एक सार्थक परिणति विज्ञापन में आती है, पर टेलीविज्ञापन-लेखक को कॉपी लेखन करते समय कल्पना में इस को भी प्रोजेक्ट कर लेना होता है।

11.13 टेली-विज्ञापन का स्वरूप

टेली-विज्ञापन का स्वरूप उसके प्रसारण की विशिष्टता एवं गति के आधार पर ही निर्भर करती है क्योंकि रेडियो पर जहां ध्वनि की ही महत्ता-स्वरूप निर्धारण के लिए महत्त्वपूर्ण थी वही टेली-विज्ञापन के लिए ध्वनि एवं दृश्य का मिश्रित रूप ही प्रसारित होता है । इसलिए टेली-विज्ञापन का स्वरूप निम्नलिखित रूप में निर्धारित क्या जा सकता है -

1. ध्वनि-मिश्रण
2. दृश्य-मिश्रण
3. जिंगल्स

11.13.1 ध्वनि-मिश्रण

टेली-विज्ञापन में अपील या सन्देश-लेखन के साथ-साथ ध्वनि-मिश्रण का प्रभावी रूप विद्यमान होता है क्योंकि कॉपी-लेखक अपनी अपील के साथ पार्श्वध्वनियों का उसी प्रकार प्रयोग कर लेता है जैसा रेडियो विज्ञापन में निहित है । इस प्रकार की ध्वनि मिश्रित रूप में प्रतीक-ध्वनि और संगीत-ध्वनि अधिक प्रभावित करने वाली होती हैं । जैसे-

- पक्षियों या काबूतरों के जमीन से पंख फड़फड़ाते हुए उड़ने की ध्वनि के साथ ही
- हल्के गीतात्मक कथन
- वाहनों (मोटर कारों) के प्रस्थान होने की घुर्र-घुर्र की ध्वनि
- पुन: संदेश परक कथन
- हल्का संगीत भरा वाद्ययुक्त स्वर उभरना

11.13.2 दृश्य-मिश्रण

टेलीविज्ञापन की सार्थकता उत्पाद के दृश्य की उपस्थिति के साथ ही अन्य विविध दृश्यों मिश्रण करने के लिए बाध्यता में होती है । एक साबुन का विज्ञापन प्रस्तुत करने के लिए

- संगीतमय स्तर के साथ नारी मॉडल का बिकनी पहने हुए दृश्य
- ----- साबुन का तीव्र या क्षिप्र गति से प्रदर्शन
- मॉडल के गिरती जल धारा में एरोबिक स्टाइल मैं स्नान का दृश्य
- पुन: झाग के ढेर से उभरता हुआ--------साबुन केक
- फिर अपील

एक अन्य टेली-विज्ञापन का दृश्य मिश्रण-

- स्कूली छात्राओं का मिलन-दृश्य, वार्तालाप में हल्की-सी छेड़-छाड़
- अरे तेरे पिंपल
- अब कहो-----

फिर घर में उपस्थिति दृश्य

- यह तो रोज की बात है
- ----------
- कीटाणु
- कीटाणु ?

फिर उत्पाद का प्रदर्शन

- उत्पाद की गुणवत्ता के साथ उसके प्रयोग का दृश्य

पुन : स्कूल का दृश्य

- वही सहेलियां
- अब कहो
- तेरे पिंपल - - - - -? - - - - - - - - -एं - - - - - - - - -
- आई डोण्ट- - - - - - -

इस प्रकार के दृश्य-मिश्रण की क्षिप्रता उत्पाद के गुणों को प्रसारित करने तथा अपील की सार्थकता सिद्ध करती है ।

11.13.3 जिंगल्स

टेलीविज्ञापन पठनीय नहीं, दृश्यात्मक एवं श्रवणीय होते हैं और टेलीमीडिया की अपेक्षा के अनुरूप कॉपी-लेखक काव्यात्मक सन्देश या अपील तैयार करते हैं....

- दिल है छोटा - सा

छोटी-सी आशा - - - - - - -

अन्य स्तर पर

दूध - सी सफेदी - - - - - - - से आए

रंग बिरंगे कपड़े निखारे

थोड़ा-सा पाउडर

झाग बहुत सारा
घर-भर की पसंद
वाशिंग पाउडर निरमा
अथवा-
वीको वज्रदन्ती
वीको वज्रदन्ती
आयुर्वेदिक जड़ी बूटियों - - - -

11.13.4 टेली-विज्ञापन के प्रकार

टेली-विज्ञापन के स्वरूप के साथ विज्ञापन का प्रसारण किस प्रकार किया जाता है, यह भी देखना उचित होगा । सामान्यत: विज्ञापनों का प्रसारण निम्न प्रकार से किया जाता है-

(क) समय विज्ञापन (ख) सौजन्य विज्ञापन

(ग) प्रायोजित विज्ञापन (घ) मिश्रित व्यावसायिक विज्ञापन

प्रथम टेलीविज्ञापन को स्पॉट विज्ञापन भी कहा जाता है । इस प्रकार के विज्ञापन में उत्पाद या वस्तु के गुण, मूल्य तथा अन्य आवश्यक जानकारी दी जाती है । जबकि द्‌वितीय वर्ग के सौजन्य या कर्टसी टेलीविज्ञापन के लिए उत्पादक किसी राष्ट्रीय या अन्तरराष्ट्रीय कार्यक्रम अथवा फिल्म या किसी धारावाहिक के मध्य पन्द्रह, बीस या तीस सैकण्ड की अवधि के लिए टेलीकास्ट समय क्रय कर लेता है और उक्त अवधि में उत्पाद विषयक गुण एवं उपादेयता की सूचना उपभोक्ताओं तक संप्रेषित कर देता है । तृतीय वर्ग के लिए उत्पादक किसी भी कार्यक्रम-विशेष को प्रायोजित करने का अधिकार क्रय करता है और कार्यक्रम-विशेष के आरंभ और अन्त के साथ मध्य में भी-कई बार प्रायोजक का नामोच्चार किया जाता है और उसके उत्पादक का विज्ञापन भी यथावसर दृश्य विधान परक रूप में प्रस्तुत किया जाता है । चतुर्थ वर्ग में टेलीविज्ञापन में निमित्त एक निश्चित अवधि के लिए समय क्रय किया जाता है और उक्त अवधि में विविध जिंगल्स और दृश्य विधान के आधार पर व्यावसायिक सन्देश दिया जाता है, कभी कभी यह सन्देश कार्टून्स के माध्यम से या कपुतली कार्यक्रम के विजुअल्स के माध्यम से दिया जाता है।

11.13.5 टेलीकास्ट की प्रविधि

टेली-विज्ञापन के टेलीकास्ट या प्रसारण की विशेष प्रविधि होती है । उसका स्वरूप निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है ।

अप्रस्तुतीकरण-	:	उद्‌घोषक या उद्‌घोषिका या दोनों के सम्मिलित स्वरों और उपस्थिती में उल्लेख ।
आनाटकीकरण-	:	विज्ञापित वस्तु या उत्पाद के सम्बन्ध में संदेश का कथात्मक रूपान्तरण नाटय रूपमें
इप्रदर्शन-उत्पाद-	:	उचित समय में सन्दर्भगत वस्तु का मूल रूप में प्रदर्शन
ई-स्लाइडप्रदर्शन-	:	स्थिर या स्टिल पोस्टरीकृत ट्रांस्परेन्सी संहित उद्‌घोषणा
उजिंगल्स संयोजन-	:	वस्तुप्रदर्शन या तत्सम्बन्धी जिगंल्स का एकल गायन या -

समूह गायन

ऊ संगीत-प्रयोग : टेलीविज्ञापन में दृश्यमिश्रण के साथ आरम्भ से अन्त तक - संगीतप्रभावों का प्रयोग

बोध प्रश्न- 4

1. टेलीविज्ञापन की आवश्यकताएं क्या है स्पष्ट कीजिए ।
2. टेलीविजन विज्ञापन का कैसा माध्यम है और क्यों? स्पष्ट कीजिए ।
3. टेलीविज्ञापन में अपील का अर्थ और उसकी उपयोगिता बताइए ।
4. सार्थक दृश्यविधान (विजुअल) की आवश्यकता टेली विज्ञापन में क्यों होती है?
5. टेली विज्ञापन में डोपशीट का प्रयोग क्यों आवश्यक है, स्पष्ट कीजिए 1

11.14 टेली- विज्ञापन और नारी

टेली-विज्ञापन में नारी मॉडल का प्रयोग अनुचित नहीं है, पर अनावश्यक और आवश्यक दोनों रूप टेली-विज्ञापनों में नारी-देह का प्रचुर प्रयोग हो रहा है । इसके पीछे तर्क यह दिया जाता है कि इससे विज्ञापन अधिक आकर्षक हो जाता है । दूसरा तर्क यह है कि परिवार की आवश्यकताओं की खरीददारी का दायित्व भी तो नारी पर ही होता है । विज्ञापन क्षेत्र में कार्यरत संस्थाएं किस सीमा तक नारी-देह का प्रयोग विज्ञापनों में करती हैं, इसका प्रामाणिक ज्ञान इससे ही हो जाता है कि बीड़ी, सिगरेट, रिक्शाटायर, ट्रैक्टर, स्प्रिंकलर जैसे उत्पादों के साथ भी महिलाओं की मांसल और अर्ध-नग्न देह (मॉडल) का प्रयोग किया जाता है।

टेली-विज्ञापन में नारी-देह के इस्तेमाल का चलन बढ़ गया है । विज्ञापन दाताओं की धारणा है कि नारी की उपात्यात का आकर्षण उत्पाद में भी रच-बस जाता है । लेकिन मनोवैज्ञानिक स्तर पर देखा जाए तो यह शॉक ट्रीटमेंट उपभोक्ता के लिए क्यों आवश्यक है - यह समझ पाना मुश्किल है । टेलीविज्ञापन पर नारी को अत्यधिक सस्ती और भोग्या तथा प्रदर्शन की वस्तु बना दिया गया है । कहीं-कहीं नारी-देह अश्लीलता के स्तर तक प्रस्तुत की जाती है । कुछ समय पूर्व एक जूता कम्पनी के लिए स्त्री-पुरुष नितांत नग्नावस्था में प्रस्तुत किये गए, बस जूता विशेष कम्पनी के पहने हुए थे । मॉडल भी किस सीमा तक समझौता करते हैं, यह भी विचारणीय है । यह व्यावसायिक संस्कृति का कमाल है जो नैतिकता की चिंता नहीं करती । टेली-विज्ञापनों में आचार-संहिता का पालन करना अनिवार्य है। पी. सी. जोशी ने नई विज्ञापन-संहिता तैयार किए जाने पर बल दिया है ।

'अश्लीलता' का प्रश्न व्यापक चिन्तन की अपेक्षा करता है, पर सहज रूप में हेमचन्द सूरि ने बहुत ही सटीक कहा है कि जो लज्जाजनक, पीड़ाजनक व अमंगलकारी है, वह अश्लील है । पर आज यह धारणा हमारे समाज के मानदण्डों पर कितनी खरी है, यह देखना भी आवश्यक है । कुछ लोगों का तर्क है कि खजुराहो ओर कोणार्क के भित्तिचित्र अश्लील नहीं तो विज्ञापनों पर क्यों आपत्ति हो । इसका उत्तर है कि ये मंदिर या कलाचित्र दिन बुलाए मेहमान की तरह हमारे घरों में, समूचे परिवार के बीच शोर मचाते नहीं आते । जहां तक टेलीविज्ञापनों का सम्बन्ध है, वहां कामुकता-भरे फिल्मी दृश्यों एवं पाश्चात्य फिल्मों से उपकृत नारी की कायिक वासनात्मक प्रस्तुति तथा आक्रामक मांसलता का उपयोग उत्पाद के प्रति रुझान तथा बिक्री बढ़ाने के लिए किया जाना उचित नहीं है क्योंकि परिवार

में छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, युवक-युवतियां, भाई-बहिन सभी एकसाथ ही टेलीविजन देखते हैं । मर्यादा की लक्ष्मण-रेखा बना लेना उचित ही होगा ।

11.15 सारांश

रेडियो श्रव्य-माध्यम है । उसके लिए लेखन विशिष्ट तकनीक से किया जाता है । रेडियो का जब से वाणिज्यिक (कामर्शियल) उपयोग जाने लगा है तब से विज्ञापन-प्रसारण भी आवश्यक हो गए हैं विज्ञापन प्रसारणार्थ तैयार करने की विधि में तथा मुद्रित-माध्यम की विधि में पर्याप्त अन्तर है।

रेडियो के लिए विज्ञापन लिखने के लिए काँपी-लेखक को अच्छी तैयारी करनी पड़ती है उसे विषयवस्तु या विज्ञापित किए जाने वाले उत्पाद की गुणवत्ता आदि की पूरी जानकारी तथा तत्संबंधी शब्दावली उपभोक्ता का मनोविज्ञान के साथ- साथ उत्पाद और उत्पादक के सम्बन्ध में भी पूरी जानकारी प्राप्त करनी होती है । क्योकि रेडियो-विज्ञापन के अनिवार्य तत्वों- संक्षिप्तता नाटकीयता, भाषागत सरलता, रोचकता, विश्वसनीयता के आधार पर ही रेडियो-विज्ञापन के विविध स्वरूपों के अनुरूप वांछित रूप में विज्ञापन लिखा जा सकता है।

विज्ञापन- लेखक के लिए रेडियो-विज्ञापन विषयक आचार-संहिता पर भी विशेष ध्यान रखना होता है । लेकिन इसके साथ ही जहां टेली विज्ञापन टेलीविजन जैसे इलॉक्ट्राय-माध्यम के कारण परिवारों के शयन-कक्ष में प्रविष्ट है, वही के ड्रांइग रुम डायनिंग रुम या सिटिंग रुप में भी आधिपत्य जमाए बैठे हैं । इससे टेलीविज्ञापन लेखन के स्वरूप को भी आप समझ सकते हैं।

टेलीविजन पर विज्ञापन का सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक व्यय साध्य होता है । उसका मूल्य प्रायोजित कार्यक्रमों के मध्य समाचार प्रसारण के प्राइमटाइम के अनुसार बढ़ता रहता है । यह निश्चित है कि जनसंचार माध्यमों में इलॉक्ट्राय वर्ग में जितना प्रमुख आज टेलीविजन माध्यम है, उस पर उतना ही व्यय साध्य और अपनी सार्थकता सिद्ध करने वाला तथा विज्ञापित वस्तु की क्रयशीलता बढ़ाने में टेली-विज्ञापन सहायक है।

प्रस्तुत पाठ में जहां टेलीविजन पर विज्ञापन की आवश्यकता का विवेचन किया गया है तो टेली-विज्ञापनों में प्रेषित अपील या सन्देश: उत्पाद-प्रदर्शन गुणवत्ता का उल्लेख किए जाने के साथ तत्सम्बन्धी उत्कृष्ट दृश्य-विधान या 'विजुअल' की प्रस्तुति की चर्चा भी की गई है । टेलीविज्ञापनों में नारी देह और उसकी मांसलता तथा नारी सौन्दर्य के दुरुपयोग का उल्लेख करते हुए तत्सम्बन्धी पी.सी जोशी समिति द्वारा प्रस्तावित नई आचार संहिता अपनाए जाने का भी संकेत कर इस इकाई को पूर्वता प्रदान की गई है।

11.16 उपयोगी पुस्तकें

रामचन्द्र तिवारी	:	विज्ञापनव्यवसाय एवं कला :, आलेख प्रकाशन, दिल्ली
प्रवीण दीक्षित	:	जनमाध्यम और पत्रकारिता, सहयोगी साहित्य प्रकाशन कानपुर उ. प्र
विजय कुलश्रेष्ठ	:	जनसम्पर्क, प्रचार एवं विज्ञापन, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान

विजय कुलश्रेष्ठ	:	विज्ञापनसिद्धान्त और प्रयोग :, माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर
मधुकर गंगाधर एके हटवाल .	:	रेडियो लेखन, बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना
जीरेगे .एम .	:	विज्ञापन कला, राजस्थान ग्रंथ अकादमी, जयपुर)राज (.
सुरेश कुमार	:	एडवरटाइजिंगआर्ट एण्ड आइडियाज-, आशुतोश
आर.जी . लाउसन	:	प्रकाशन, बम्बई
राल्फ हेरिश एण्ड आर्थर सेल्डॉन	:	हिन्दी इन एडवरटाइजिंग, बाहरी प्रकाशन, दिल्ली
विजय कुलश्रेष्ठ एवं प्रतुल अथइया	:	एडवरटाइजिंग लॉ, मैक्डोनल्ड एण्ड इकान्स
एचलूथरा .आर .	:	एडवर्टाइजिंग इन फ्री सोसाइटी
रामचन्द्र तिवारी	:	विज्ञापन माध्यम और प्रचार, पंचशील
प्रवीण दीक्षित	:	प्रकाशन, जयपुर (.राज)
विजय कुलश्रेष्ठ	:	इंडियन ब्रॉडकास्टिंग
पीचटर्जी .सी .	:	ब्रॉडकास्टिंग इण्डिया
रॉबर्ट एल .हिल्लियार्ड	:	राइटिंग फार टेलिविजन एंड रेडियो
पीजोशी समिति .सी .	:	जोशी आयोग का प्रतिवेदन

11.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इलाक्ट्रय-माध्यम के लिए विज्ञापन-लेखन की क्यों आवश्यकता होती है - अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।
2. रेडियो-लेखन के उपकरणों की चर्चा करते हुए रेडियो-विज्ञापन की विशेषता स्पष्ट कीजिए
3. क्षेत्रीय रेडियो पर विविध भारती कार्यक्रम किसी साबुन, किसी वस्त्रालय और स्थानीय खाद्य उत्पाद के तीन विज्ञापन लिखिए तथा उनमें जिंगल्स का प्रयोग क्यों आवश्यक है- बताइये।
4. रेडियो पर ध्वनि का महत्व और टेलीविज्ञापन में ध्वनि मिश्रण की आवश्यकता पर अपना मत दीजिए।
5. रेडियो-विज्ञापन की आचार, संहिता तथा टेलीविज्ञापन पर आचार संहिता की आवश्यकता का परिचय दीजिए।
6. प्रायोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत किन्हीं तीन उत्पादों के विज्ञापन का स्वरूप वर्णित कीजिए। आवश्यक जिंगल्स का भी उल्लेख करें।

इकाई 12 भेंटवार्ता-लेखन

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 साक्षात्कार जनसंचार का अनिवार्य अंग

12.3 भेंटवार्ता: अर्थ और स्वरूप

- 12.3.1 कोशकारों की दृष्टि में
- 12.3.2 समीक्षकों की दृष्टि में
- 12.3.3 साक्षात्कारकर्ताओं की दृष्टि में
- 12.3.4 निष्कर्ष

12.4 भेंटवार्ता का उद्भव और विकास

- 12.4.1 हिन्दी में
- 12.4.2 अंग्रेजी में
- 12.4.3 संस्कृत में
- 12.4.4 अन्य भाषाओं में
  - 12.4.4.1 बांग्ला में साक्षात्कार
  - 12.4.4.2 गुजराती में साक्षात्कार
  - 12.4.4.3 मलयालम में साक्षात्कार

12.5 भेंटवार्ता-लेखन

- 12.5.1 प्रिन्ट मीडिया (पुस्तक, पत्र-पत्रिका) के लिए
  - 12.5.1.1 शीर्षक
  - 12.5.1.2 भाषा-शैली
  - 12.5.1.3 व्यक्तित्व-चित्रण
  - 12.5.1.4 देशकाल और वातावरण
  - 12.5.1.5 पात्र की भाव-भंगिमाओं का अंकन
  - 12.5.1.6 टिप्पणी
  - 12.5.1.7 परिशिष्ट
  - 12.5.1.8 प्रभाव
- 12.5.2 इलाक्ट्राय माध्यमों (दूरदर्शन-आकाशवाणी) के लिए

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- भेंटवार्ता के अर्थ और स्वरूप के बारे में जान सकेंगे ।
- विभिन्न कोशकारों, समीक्षकों और भेंटवार्ताकारों के विचारों का मनन करके निष्कर्ष
- भेंटवार्ता के उद्भव और विकास-क्रम से अवगत हो सकेंगे ।
- भेंटवार्ता- लेखन, महत्व, भविष्य के विषय में जानकारी दे सकेंगे ।
- भेंटवार्ता- लेखन के विषय में प्रश्नों का निर्माण कर सकेंगे ।
- भेंटवार्ता- लेखन का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
- आप एक कुशल, सफल और योग्य साक्षात्कार-कर्ता बन सकेंगे ।

12.1 प्रस्तावना

जिज्ञासा मानव की सहज वृत्ति है । एक ओर वह बाह्य सृष्टि के विषय में जानने को उत्सुक रहता है तो दूसरी ओर अन्य मानव के अन्तर्जगत के विषय में भी सब कुछ जान लेना चाहता है, उसके अनुभवों का लाभ उठाने की आकांक्षा मन में रहती है । इसके साथ ही हर व्यक्ति में अपने अन्तर्जगत को उद्घाटित कर देने की सहज प्रवृत्ति विद्यमान है । बाह्य जगत को देखकर, उसमें विचरण कर, मन पर पड़े प्रभाव का वह प्रकटीकरण कर देना चाहता है । संचित विभिन्न अनुभवों, ज्ञान तथा स्फुरणाओं को अभिव्यक्त कर देने में वह संतोष और आनंद की अनुभूति करता है । दूसरों के साथ वैचारिक आदान-प्रदान से उसे तृप्ति मिलती है । जिज्ञासा और अभिव्यक्ति एक दूसरे की पूरक हैं । मानव ने परस्पर-रंजन, दूसरों को जानने और स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक क्रिया-कलापों तथा दूसरे साधनों का अवलम्बन लिया है । काव्य और कलाओं की सृष्टि का भी मूल यही है।

काव्य को दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्य, गद्य-काव्य और पद्य-काव्य इन दो वर्गों में विभक्त किया जाता है । दृश्य-काव्य में नाटक वर्ग की रचनाओं को स्थान दिया गया है तथा श्रव्य-काव्य में शेष विधाओं की रचनाओं को । कविता पद्य-साहित्य और अन्य विधाएं सामान्यत: गद्य-साहित्य के अन्तर्गत आती हैं । काव्य में गद्य का अत्यधिक महत्व है । कविता की कसौटी गद्य को माना गया है- गद्य कविता निकष वदन्ति । कीथ ने तो यहां तक कहा है, "जो भाव पद्य में नहीं लिख सकते, वही गद्य में लिखते हैं ।' यही कारण है कि कविता को छोड़कर प्राय: सभी विधाएं गद्य में ही लिखी जाती हैं । नाटक, निबन्ध, आलोचना, कहानी, उपन्यास आदि गद्य की बहु प्रचलित विधाएं हैं । परन्तु पिछले कतिपय दशकों से जो अन्य विधाएं विकसित हुई हैं उनमें रिपोर्ताज, संस्मरण, रेखाचित्र पत्र आदि के साथ-साथ 'साक्षात्कार' का नाम उल्लेखनीय है । साक्षात्कार गद्य की एक नवविकसित, स्वतंत्र और महत्वपूर्ण विधा है।

पिछले कुछ दशकों से एक नूतन विधा विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में विकसित होती रही है, जो कि एक जिज्ञासु व्यक्ति के लिए दूसरों के विषय में जानकारी प्राप्त करने का एक सफल माध्यम भी है । इसमें जिज्ञासु व्यक्ति किसी विशिष्ट साहित्यिक, नेता, समाजसेवी, कलाकार अथवा अन्य व्यक्ति से स्वयं भेंट करके प्रश्न, वार्ता आदि करता हुआ उसके व्यक्तित्व, जीवन, कृतित्व, विचारों, परिवेश आदि के विषय में सीधे जानकारी प्राप्त करता है । इस जानकारी से दूसरों

को भी अवगत कराने की भावना अन्तर्निहित रहती है । इस विधा का नाम 'साक्षात्कार' अथवा 'इंटरव्यू' है जिसे 'भेंटवार्ता', बातचीत आदि नामों से भी जाना जाता है।

12.2 साक्षात्कार जनसंचार का अनिवार्य अंग

"साक्षात्कार जनसंचार (पत्रकारिता, आकाशवाणी दूरदर्शन आदि) का अनिवार्य अंग है । कोई भी पत्रकार साक्षात्कार की कला को जाने बिना अपूर्ण है । इसके बिना वह कुशल और सफल पत्रकार नहीं बन सकता । पत्रकारिता-क्षेत्र में वह संवाददाता, प्रतिनिधि, उप-सम्पादक, सह-सम्पादक अथवा मुख्य सम्पादक किसी भी रूप में कार्य करे, साक्षात्कार का सम्यक् ज्ञान उसके लिए अपरिहार्य है । पत्रकारों ने ही नहीं, बड़ी संख्या में लेखकों तथा दूरदर्शन-आकाशवाणी के प्रतिनिधियों ने भी इसे निःसंकोच अपनाया है । यद्यपि भारत में प्राचीन काल से ही संवाद, शंका-समाधान, प्रश्नोत्तर की परम्परा पाई जाती है, परन्तु वर्तमान रूप में यह विधा पाश्चात्य पत्रकारिता से बन-संवर कर आई है । साक्षात्कार को अंग्रेजी भाषा में 'इंटरव्यू ' कहा जाता है । इसके हिन्दी-पर्यायों में भेंटवार्ता, बातचीत, मुलाकात, भेंट, अन्तरंग, भेंटवार्ता, वार्तालाप, संवाद आदि भी प्रचलित हैं । इस विधा के लिए कुछ व्यक्तियों ने साक्षात् वार्ता, समक्ष भेंट, समक्षकार, अन्तर्वीक्षा, अन्तव्यूह, विशेष परिचर्चा, प्रत्यक्ष समीक्षण, समक्ष भेंट, साक्षात् वार्तालाप, प्रत्यक्षालाप समालाप, अभिमुख संवाद, संवार्ता, साहित्यिक वार्ता आदि हिन्दी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है । इस विधा के लिए कुछ साक्षात्कारकर्ता मूल अंग्रेजी शब्द 'इंटरव्यू' का ही प्रयोग करते हैं ।

कोई भी बातचीत तभी साक्षात्कार कहलाती है, जबकि वह जनसाधारण के ज्ञानार्थ किसी पत्र-पत्रिका में प्रकाशित या आकाशवाणी-दूरदर्शन पर प्रसारित की जाती है अथवा इसी उद्देश्य से वार्तालाप किया जाता है । निजी वार्तालाप अथवा शंका-समाधान साक्षात्कार विधा के अन्तर्गत नहीं आते । इसी प्रकार किसी शोधकार्य के सिलसिले में की गई बातचीतें, यदि उनका उद्देश्य सार्वजनिक प्रकाशन-प्रसारण नहीं है, इस विधा के अन्तर्गत नहीं जाती हैं ।

12.3 भेंटवार्ता : अर्थ एवं स्वरूप

विभिन्न कोशकारों, समीक्षकों तथा साक्षात्कारकर्ताओं (इंटरव्यूकारों) ने अपने-अपने दृष्टिकोण से 'भेंटवार्ता' को परिभाषित किया है, इसके अर्थ और स्वरूप को स्पष्ट किया है ।

12.3.1 कोशकारों की दृष्टि में

'आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' (लन्दन) में किसी बिन्दु-विशेष को लेकर औपचारिक विचार-विनिमय हेतु प्रत्यक्ष भेंट करने, परस्पर मिलने या विमर्श करने, किसी पत्र-प्रतिनिधि द्वारा प्रकाशन हेतु वक्तव्य लेने के लिए किसी से भेंट करने को 'साक्षात्कार' की संज्ञा दी गई है । 'दि रैंडम हाउस डिक्शनरी आफ दि इंगलिश लैंग्वेज' (न्यूयार्क) में साक्षात्कार उस वार्ता अथवा भेंट को कहा गया है, जिसमें लेखक अथवा संवाददाता किसी व्यक्ति अथवा किन्हीं व्यक्तियों से प्रश्न पूछकर किसी समाचारपत्र में प्रकाशन अथवा टेलीविजन पर प्रसारण हेतु सामग्री एकत्र करता है । डा. श्यामसुन्दरदास

द्वारा संपादित 'हिन्दी शब्द-सागर' मे साक्षात्कार का अर्थ 'व्यक्तियों का आपस में मिलना, भेंट, मुलाकात, साक्षात् वार्तालाप, आपस में विचारों का आदान-प्रदान' बताया गया है।

12.3.2 समीक्षकों की दृष्टि में

प्रमुख आलोचक डा. ओमप्रकाश सिंहल लिखते हैं - "साहित्य, संगीत, कला, क्रीड़ा, राजनीति, पत्रकारिता आदि विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी महत्वपूर्ण हस्तियों से साक्षात्कार करके उनके वैयक्तिक जीवन, कार्य-क्षेत्र, रचना-प्रक्रिया तथा जीवन और जगत से जुड़े विभिन्न प्रश्नों पर हुई बेलाग बातचीत को नमक-मिर्च लगाए बिना यथातथ्य रूप में पाठक-पाठिकाओं तक पहुंचाने के कारण 'भेंटवार्ता' आज दुनिया भर में एक महत्वपूर्ण विधा बन गई है । दुनिया की दूसरी भाषाओं के समान हिन्दी में भी भेंटवार्ता लेने और उन्हें प्रकाशित-प्रसारित करने की सुदृढ़ परपरा बन गई है।"

डा. नगेंद्र ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में साक्षात्कार की परिभाषा देते हुए लिखा है- "इंटरव्यू से अभिप्राय उस रचना से है जिसमें लेखक व्यक्ति-विशेष के साथ साक्षात्कार करने के बाद प्राय: किसी निश्चित प्रश्न माला के आधार पर उसके व्यक्तित्व एव कृतित्व के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करता है और फिर अपने मन पर पड़े प्रभाव को लिपिबद्ध कर डालता है ।" डॉ. सत्येंद्र के अनुसार - "इंटरव्यू या भेंट में किसी व्यक्ति से मिलकर किसी विशेष दृष्टि से प्रश्न पूछे जाते हैं । इसमें इंटरव्यू-लेखक जीवन का पुट देता है और उत्तरों के द्वारा आन्तरिक स्वरूप का विशेष अध्ययन भी हो जाता है ।" डॉ. चन्द्रभान रावत के शब्दों में - "बहुत से लोग यह मानते हैं कि प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सामग्री तथा इंटरव्यू से प्राप्त सामग्री में अंतर नहीं, किन्तु प्रश्नावली की अपनी सीमाएं हैं, प्रश्नावली इंटरव्यू नहीं हो सकती ।" डॉ. हरिवंशराय बच्चन लिखते हैं - "इंटरव्यू का ध्येय है पढने वाला यह अनुभव करे कि जैसे वह कवि-विशेष से मिल आया है, उसके पास हो आया है । उसे सूंघ आया है, उसे गले लगा आया है ।" डॉ. भगतसिंह का कथन है- "जीवनी-साहित्य का नवीनतम रूप साक्षात्कार (इंटरव्यू) है । जिस प्रकार 'संस्मरण' और 'डायरी' आत्मकथा के रूप में, उसी प्रकार जीवनी-रूप के साथ इंटरव्यू का सीधा सम्बन्ध है । जीवनी में ऐतिहासिक शैली में लिखा गया लेखक द्वारा अन्य व्यक्ति के जीवन का विश्लेषण प्राप्त किया जाता है । इंटरव्यू में भी अन्य किसी व्यक्ति के चरित्र का विश्लेषण किया जाता है, परन्तु शैली की भिन्नता इसे नया रूप प्रदान करती है । वस्तुत: इंटरव्यू संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी और नाटकीय शैली का संमिश्रण है । इसमें लेखक जिस व्यक्ति का चरित्र चित्रित करता है उससे स्वयं मिलता है, परस्पर वार्ता-विनिमय के द्वारा उसके चरित्र की विशेषताओं के अनुसंधान का प्रयत्न करता है । संवादों के समावेश से इसमें नाटकीयता उभरने लगती है । नाटक के दो पात्रों के समान दोनों अपने-अपने व्यक्तित्व, योग्यता आदि के अनुरूप वार्ता करते हैं । इंटरव्यू में मुख्यत: एक पात्र की वार्ता का महत्व होता है । लेखक का इसमें स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता । इसका उपयोग वह केवल चरित्र के विश्लेषण में करता है । लेखक जब कोई प्रश्न वर्ण्य-चरित्र के सम्मुख प्रस्तुत करता है तब वह जो उत्तर देता है उसी का महत्व होता है । इंटरव्यू का वार्तालाप किसी सुसंबद्ध घटनामाला के विकास-क्रम को गति प्रदान करने वाला नहीं होता । एक निश्चित प्रश्न का एक निश्चित उत्तर होता है, परन्तु बीच-बीच में लेखक अपनी प्रतिक्रिया का भी वर्णन करने लगता है, जिससे इसमें औपन्यासिक विश्लेषणात्मक शैली का समावेश भी होता रहता है । इंटरव्यू में आलोचना का रूप भी मिलता है ।

लेखक की विश्लेषणात्मक उक्तियों में आलोचक की दृष्टि झांकती प्रतीत होती है । अत: जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, नाटक, उपन्यास, आलोचना आदि सभी साहित्यिक रूपों की विशेषताओं को लेकर इंटरव्यू विकसित होता है ।"

डॉ. रामचन्द्र तिवारी के अनुसार, 'इंटरव्यू में कला, साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र की महान और मान्य विभूतियों से मिलकर किन्हीं प्रश्नों के सन्दर्भ में उनके विचार या दृष्टिकोण जानने और उन्हें उसी शैली, भाषा और भंगिमा में व्यक्त करने की चेष्टा की जाती है । मिलने वाला सुविधा की दृष्टि से कुछ प्रश्न तैयार कर लेता है और क्रमश उन प्रश्नों के उत्तर के रूप में वह उस विख्यात, विशिष्ट, अनुभवी और महान व्यक्ति के विचार जान लेने की चेष्टा करता है ।" डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त ने साक्षात्कार में व्यक्ति-चर्चा का स्थान मुख्य माना है । वे लिखते हैं - "प्रत्यक्ष-वार्ता में व्यक्ति की चर्चा को महत्व दिया जाता है । लेखक के रूप में वार्ता के समय जो विचार-भावनाएं उठी, जो उसकी धारणा बनी, जो भी वार्ता हुई उसी का विवरण उसमें दिया जाता है । साक्षात् वार्ता में वार्ता के माध्यम से लेखक चरित्र-चित्रण करता है उसकी विशेषताओं को सही रूप में प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और चित्रित करता है । उसमें एक पात्र की वार्ता का वर्णन रहता है । वार्ता में लेखक का स्वतंत्र महत्व न होगा, वह अपना चित्रण उसमें न करेगा । प्रश्नोत्तरों को ही उसमें महत्व दिया जाएगा । भले ही लेखक बीच-बीच में अपनी प्रतिक्रियाओं को भी स्थान दे दे । उसमें हमें आलोचनात्मक-तत्व भी मिलेंगे।"

डॉ. रामगोपालसिंह चौहान के भी विचार यहां उल्लेखनीय हैं, "स्वतंत्रता के पश्चात् इंटरव्यू विधा का मौलिक रूप से विकास हुआ है । पाश्चात्य देशों में इंटरव्यू की शैली काफी प्रचलित है और मनोरंजक भी मानी जाती है । इंटरव्यू के माध्यम से लेखक किसी के जीवन की उन स्थितियों, विशेषताओं और स्वभावों तथा कार्यो का उद्घाटन करता है, जो साधारणत: अनजाने बने रहते हैं 1 इंटरव्यू सामाजिक जीवन, राजनीतिक अथवा साहित्यिक जीवन के उन व्यक्तियों का लिया जाता है, जो महत्वपूर्ण हों और जनता जिनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में अधिक से अधिक जानने की इच्छा रखती है । इंटरव्यू कुछ निश्चित प्रश्नों के आधार पर होता है और साथ ही उसे साहित्यिक लालित्य प्रदान करने के लिए इंटरव्यू के समय आलम्बन (औब्जेक्ट) की मनःस्थिति को उभारने के निमित्त, उसके व्यक्तित्व को सचित्र सजीवता प्रदान करने हेतु वातावरण का चित्रण भी होता है और आलंबन से मिलकर इंटरव्यूकार के मन पर पड़े प्रभावों का चित्रण भी । इस प्रकार इंटरव्यू में रेखाचित्र और संस्मरण की शैलियों का समावेश भी हो जाता है । लेकिन न वह रेखाचित्र होता है और न वह संस्मरण । व्यक्ति सामाजिक रूप में कोई बात कहता है या लिखता है तो वह सचेत हो जाता है । वार्तालाप के दौरान वह सामान्य मानव के समान स्थितियों पर विचार करता है । इंटरव्यू के माध्यम से व्यक्ति के निजी जीवन और विचारों की सहज स्थिति का चित्रण कर देता है । इंटरव्यू तो एक पूर्व-निश्चित आधार पर कुछ विशेष निश्चित प्रश्नों को लेकर विधिवत किया जाता है । उसमें पत्रकारिता की शैली की विशेषता भी होती है । लेकिन साहित्यिक इंटरव्यू को पत्रकारिता के इंटरव्यू से जो चीज अलग करती है, वह है- उसकी भाषा-शैली का साहित्यिक लालित्य, उसकी कलात्मकता । साहित्यिक इंटरव्यू का एक साहित्यिक मूल्य होता है।"

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार, 'इंटरव्यू उस रचना को कहते हैं, जिसमें लेखक किसी व्यक्ति-विशेष से प्रथम भेंट में अनुभव होने वाली उसके सम्बन्ध में अपनी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को, अपनी पूर्व-धारणाओं और आस्थाओं एवं रुचियों से रंजित कर सरस, भावपूर्ण ढंग से व्यंजना-प्रधान शैली में बंधे हुए शब्दों में व्यक्त करता है ।' आगे चलकर तो डा. त्रिगुणायत इंटरव्यू को संस्मरण ही घोषित कर देते हैं - "संस्मरण की भांति जीवनीपरक साहित्य का यह भी एक नवीनतम रूप है, बल्कि यह भी एक संस्मरण ही है । संस्मरण और साक्षात्-वार्ता में केवल इतना अन्तर है कि संस्मरण व्यक्ति, वस्तु, घटना सबका होता है । उससे लेखक का व्याख्यागत सम्बन्ध चाहे स्थापित हुआ हो, या वह न हुआ हो, किन्तु इंटरव्यू केवल किसी व्यक्ति का ही चित्रण करता है । इंटरव्यू के लिए यह भी आवश्यक है कि लेखक का अभीप्सित व्यक्ति से संपर्क भी स्थापित हो और उसकी बातचीत भी हुई हो।"

डॉ. शंकरदेव अवतरे तो गद्य की अनेक विधाओं को ही निबन्ध के परिवार के सदस्यों के रूप में मान बैठे हैं - "निबन्ध-साहित्य के परिवार के बड़े-छोटे अनेक प्रयोग हैं जो इस दृष्टि से उसके परिवार में आते हैं कि उनमें किसी न किसी प्रकार से वैयक्तिक बातों का उच्छलित रूप रहता है जो कि निबन्ध की परिभाषा का मुख्य व्यवच्छेदक तत्व है । आकार की दृष्टि से यह चाहे बढ़कर प्रबन्ध बन जाए या घटकर रेखाचित्र बन जाए पर निबन्ध-साहित्य की-सी आत्मीयता इनमें मिलती है । जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी,पत्र, यात्रा, मृगया, रिपोर्ताज, अनुवीक्षा (इंटरव्यू), गद्य- गीत, लघु-कथा, गल्प, हास्य-व्यंग्य आदि अनेक प्रकारों में इसे देखा जाता है।

डा. विश्वनाथ शुक्ल इंटरव्यू को एक नवीन, सर्वमान्य और उपयोगी विधा मानते हैं, "एक साहित्यिक विधा के रूप में इंटरव्यू हिन्दी के लिए रेखाचित्र, संस्मरण आदि की अपेक्षा नई वस्तु है। अपने आधुनिक रूप और अर्थ में रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि के समान इंटरव्यू की साहित्यिक विधा भी हिन्दी-साहित्य को पश्चिम की देन है, जैसा कि अंग्रेजी शब्द 'इंटरव्यू' से पता लगता है । हिन्दी की भांति अब प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में पर्याप्त इंटरव्यू-साहित्य निर्मित हो चुका है और साहित्य-शास्त्रियों ने इसे एक महत्वपूर्ण, मनोरंजक एव उपयोगी साहित्य-विधा के रूप में प्रतिष्ठा और स्वीकृति प्रदान कर दी है । हिन्दी-साहित्य के समीक्षकों एवं अनुसंधाताओ ने अब इस विधा के क्रमिक विकास एवं स्वरूप-लक्षण पर विचार करना भी प्रारंभ कर दिया है । इंटरव्यू शब्द से आज एक ऐसी विशिष्ट कोटि की साहित्यिक विधा का बोध होता है, जिसमें एक जिज्ञासु व्यक्ति जीवन के किसी क्षेत्र में विद्यमान अन्य किसी व्यक्ति (विशेषकर प्रख्यात और महत्वपूर्ण व्यक्ति) से प्रत्यक्ष मिलकर उसके बारे में सीधे-सीधे जानकारी प्राप्त करता है ।"

डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का अभिमत है- 'इंटरव्यू का अभिप्रेत वास्तविकता का उद्घाटन है । जिस व्यक्ति का इंटरव्यू लेना है, उसी के शब्दों में उसकी उपलब्धियों का विश्लेषण और मूल्यांकन प्रस्तुत करना लेखक का लक्ष्य होता है । अत: जाहिर है कि यथार्थ के उद्घाटन की भावना इंटरव्यू के जन्म का कारण है । 'इंटरव्यू का शाब्दिक अर्थ यदि 'अन्तर्दर्शन' माना जाए तो इसका वास्तविक लक्ष्य प्रकट हो जाता है । इंटरव्यू का अभिप्रेत आन्तरिक विश्लेषण है । उसमें स्थूल वर्णन से अधिक गोपनीय तथ्यों के उद्घाटन की प्रवृत्ति होती है- इंटरव्यू में संस्मरण और रेखाचित्र के तत्व घुल-मिल जाते हैं । वास्तविक इंटरव्यू में तो ऐसा नितान्त स्वाभाविक है । इंटरव्यू-लेखक दारा बातचीत के दौरान

जिस व्यक्ति का इंटरव्यू लिया जाता है, उसका स्वभाव, रहन-सहन और व्यक्तिगत जीवन के अनेक प्रसंग भी उद्घाटित हो जाते हैं । किन्तु इंटरव्यू में आन्तरिक विश्लेषण, विचारों के विवेचन और सोद्देश्यता का जो आग्रह होता है, संस्मरण और रेखाचित्रों में प्राप्त नहीं होता है।"

प्रो. विष्णुकांत शास्त्री के अनुसार - "इंटरव्यू को मैं पत्रकारिता का अंग मानता हूं जो कभी-कभी अपनी विशिष्ट शैली और विषयगत साहित्यिकता के कारण साहित्य की परिधि के अन्तर्गत बीएचआई माना जाना जा सकता हैं।"

सत्यकाम वर्मा के शब्दों में - "समाचारपत्र-संपादन में इंटरव्यू का अत्यधिक महत्व है । किसी भी विषय पर व्यक्ति के विचार जानने का सीधा तरीका है 'प्रत्यक्ष समीक्षण' (साक्षात्कार) । इससे व्यक्ति के अन्तर्मानस का निरीक्षण शीघ्र हो जाता है । इसका बाहरी चरित्रांकन से सीधा सम्बन्ध नहीं है । संस्मरण में बाहरी जीवन की झांकी अधिक रहती है । इस दृष्टि से यह उससे भिन्न है । आजकल इसे भी साहित्यिक विधा के रूप में परिणत कर दिया गया है । काल्पनिक 'इंटरव्यू' या परीक्षण भी लिखे जाने लगे हैं । इस प्रकार के इंटरव्यू मृत व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी प्रकाशित किए जा रहे हैं । इसमें लेखक का अपना व्यक्तित्व अप्रत्यक्ष रूप में ही झलकता है।"

डा. नन्दकिशोर त्रिखा के अनुसार - "भेंटवार्ता या समालाप समाचार-संकलन का आवश्यक अंग ही नहीं है बल्कि इसके बगैर अधिकांश समाचार, सरकारी वक्तव्य, भाषण, सार्वजनिक घोषणाएं, विज्ञप्तियां और औपचारिक आयोजनों के तथ्य विवरण मात्र होते हैं । इन सबकी खबरें स्वभावतः एकपक्षीय या एकांगी होती हैं । इनमे 'क्यों' और 'कैसे' पूछने की गुंजाइश नहीं होती, जबकि क्यों और कैसे का उत्तर ही खबरों की जान होता है । 'क्यों' और 'कैसे' सवाल इन्हीं के जरिए पूछे जा सकते हैं । सामान्य रूप में इंटरव्यू को बहुत सरल विधा के रूप में माना जाता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि साक्षात्कार अथवा भेंटवार्ता बहुत कठिन है । साक्षात्काक्रर्ता को जिस व्यक्ति से भेंट करके चर्चा करनी होती है उससे बहुत-सी कही-अनकही बातों का सत्य उगलवाना पड़ता है । यह भेंटवार्ता का सबसे दुखद और कठोर कार्य है । साक्षात्कारकर्ता को सम्बन्धित व्यक्ति के रचनात्मक पक्ष की जितनी अधिक और पुष्ट जानकारी होगी वह इस विधा में उतना ही सफल माना जाएगा ।"

12.3.3 साक्षात्कारकर्ताओं की दृष्टि में

प्रमुख साक्षात्कारकर्ता डा. पद्मसिंह शर्मा कमलेश का कथन है - "इंटरव्यू देने वाला व्यक्ति अपनी योग्यताओं को स्वयं व्यक्त करता है और यह इंटरव्यू लेने वाले पर निर्भर है कि वह इंटरव्यू देने वाले को अपना विश्वासपात्र बनाकर उससे जो चाहे सो निकलवा ले । यह बड़ा कठिन कार्य है जो श्रद्धा, परिश्रम तथा बुद्धिमत्ता पर निर्भर करता है ।" डी. कमलेश ने इंटरव्यू तथा 'इंप्रेशन' (प्रभाव) को पृथक् मानते हुए उनके अंतर को इस प्रकार स्पष्ट किया है - " कुछ लोग ऐसे भी हैं जो 'इंटरव्यू और 'इंप्रेशन' को एक समझते हैं, लेकिन यह भूल है । 'इंप्रेशन' और 'इंटरव्यू दो भिन्न वस्तुएं हैं । इंटरव्यू का अर्थ है, आप जो पूछें उसका उत्तर लिखें और इंटरव्यू देने वाले की स्वीकृति की मुहर भी उस उत्तर पर पड़े । 'इंप्रेशन' का अर्थ है कि आप पर किसी के व्यक्तित्व का भला या बुरा जो प्रभाव पड़ा है, उसे आप ज्यों का त्यों व्यक्त कर दें । इन दोनों को एक-दूसरे का पर्यायवाची समझना ठीक नहीं। इसका अभिप्राय नहीं कि इंप्रेशन का नितांत बहिष्कार होना चाहिए । नहीं, रोचकता के लिए इंटरव्यू

लेने वाला इंटरव्यू देने वाले की परिस्थिति, उसकी भाव-भंगिमा और उसके व्यवहारों से कुछ उपयोगी निष्कर्ष निकाल सकता है । पर वे निष्कर्ष भी ऐसे हों जिनसे इंटरव्यू देने वाले के स्वभाव की किसी विशेषता का पता चलता हो और जिन्हें वह भी स्वीकार करता हो।"

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर साक्षात्कार को एक 'युद्ध-कार्य' ही मानते हैं - "इंटरव्यू के द्वारा हम सामने वाले के अन्तर में एक व्यूह-रचना करते हैं । मतलब यह कि दूसरा उसे न बचा सके, जो हम उससे पाना चाहते हैं । यह एक तरह का युद्ध है और इंटरव्यू हमारी रणनीति, स्ट्रेटेजी, ब्यूह-रचना है । यह भी होता है कि सामने वाला हमसे कुछ भी छिपाना नहीं चाहता, पर उसकी स्मृति में न जाने क्या-क्या छिपा हुआ है, जो इस समय उसे याद नहीं । इस प्रकार सामने वाले को प्रेरणा देना भी अंतर-व्यूह (इंटरव्यू) का अंग है । सबसे आवश्यक बात यह है, जिसमें इंटरव्यू की सफलता होती है कि सामने वाला जो नहीं कहना चाहता वह भी हम उससे कहला लेते हैं । अंतर- व्यूह के द्वारा इसके लिए प्रश्न को इस सादगी से पूछते हैं कि सामने वाला चौंकता नहीं कि उससे कोई खास बात पूछी जा रही है और वह सादगी से जवाब दे देता है या कम से कम ऐसा संकेत मिल जाता है जिससे हम किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं । इस प्रकार इंटरव्यू में मित्र की प्रेरणा भी है, जासूस की चालाकी भी और विषय के ज्ञान की विद्वत्ता भी, क्योंकि ऐसा न हो तो हम उपयुक्त प्रेरक प्रश्न ही नहीं पूछ सकते।"

इंटरव्यूकार वीरेन्द्रकुमार गुप्त के अनुसार - "इंटरव्यू आज विविध प्रेरणाओं के वश होकर लिए जाते हैं । जिज्ञासा एवं तत्वान्वेषण, पत्रकारिता की सामग्री जुटाने की इच्छा तथा किसी को रंग देने की ललक, ये ही प्रेरणाएं इंटरव्यू के प्रकारों एव स्वरूपों का निर्धारण करती है । इंटरव्यू में दो व्यक्तियों की रगड़ व टकराहट हो तभी सर्वोत्तम रहता है । प्रश्नकर्ता का निर्जीव, खुशामदी होना अथवा उत्तरदाता का अहंकारी, स्वगोपी होना घातक होगा । दोनों व्यक्तियों में अन्त: व्यथा हो तो दोनों संभोग का रस पाते हैं, दोनों ही देते हैं. दोनों को ही मिलता है।"

पत्रकार अक्षयकुमार जैन के शब्दों में - "इंटरव्यू अथवा भेंटवार्ता पत्रकारिता और साहित्य में एक महत्वपूर्ण विधा है । यह कथा से भी अधिक सरस और इतिहास से भी अधिक सत्य होता है ।"

आलोचक और प्रमुख इंटरव्यूकार डॉ. रणवीर रांग्रा के शब्दों में, 'यह विधा साहित्य और मनोविज्ञान का संगम है क्योंकि इसमें साहित्यकार के कृतित्व और व्यक्तित्व दोनों से एक साथ सामना होता है ।" लक्ष्मीकांत जैन के अनुसार "इंटरव्यू का अर्थ अन्तर्दर्शन ही तो है ।" डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी का मत है, "इंटरव्यू को मैं बहुत उपयोगी मानता हूँ । वार्तालाप करने से व्यक्ति के मन के अंदर की बात बाहर आ जाती है जो कि अन्य साधनों से संभव नहीं है ।" राजेन्द्र यादव इंटरव्यू को 'समग्र व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का माध्यम' मानते है । मनोहर श्याम जोशी का मत है कि " इंटरव्यू में पहले विचारों को अधिक महत्व दिया जाता था, अब व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाने लगा है ।"

डा. कमलकिशोर गोयनका लिखते हैं - "अपने समय के किसी मनस्वी, मनीषी, साहित्यकार, चिंतक, कलाकार अथवा राजनेता के संपूर्ण अन्तबाह्य व्यक्तित्व को प्रश्नों एव जिज्ञासाओं के माध्यम से समझने तथा जानने की चेष्टा का अनुष्ठान, एक प्रश्न-यज्ञ ही है । इस अनुष्ठान में साधक जिज्ञासु को समर्पित भाव से चरित्र-नायक के जीवन एवं उसके कृतित्व में गहरे तक उतरना होता है. उसके जीवन के तनावों, संघर्षों, असफलताओं एव उपलब्धियों को जानना होता है तथा उन बिन्दुओं एवं प्रश्नों को

चरित्र-नायक के सम्मुख रखना होता है जिनके उत्तर से उसके व्यक्तित्व एव कृतित्व को और अधिक स्पष्टता तथा प्राथमिकता के साथ उद्‌घाटित किया जा सके । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जिज्ञासु को, असमय में अपने प्रश्नों में एक युद्ध-जैसी व्यूह-रचना करनी होती है । हिन्दी में इस प्रकार के जिज्ञासा-समाधान के लिए इंटरव्यू, भेंटवार्ता, साक्षात्कार, बातचीत, पत्र-प्रश्नोत्तर, अंतरव्यूह, परिप्रश्न आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु मेरे विचार में यह एक ऐसा संवाद है जो एक जिज्ञासु और विचारक अथवा गुरु एव शिष्य के बीच होता है। ऐसे संवाद में जिज्ञासु के मन में श्रद्धा का होना आवश्यक है, क्योंकि जिसे अपने विचारों और मान्यताओं की सत्यता का दंभ हो, वह दूसरों के सम्मुख न तो जिज्ञासु के रूप में आएगा न उसके विचारों को समझने का ही प्रयत्न करेगा । सत्य क्या है, यह कहना ऋषियो के काल से ही कठिन रहा है और आज भी सत्य को जानने का दावा कोई अज्ञानी ही करेगा । अत: यह माना जाय कि सत्य का स्वरूप विभिन्न पक्षों के अपने-अपने सत्य के समन्वित रूप से जाना जा सकता है, तब दो या दो से अधिक व्यक्तियों का संवाद हमें, चाहे पूर्ण सत्य के निकट न भी हो, सत्य के निकट अवश्य ही ले जा सकता है । इंटरव्यू एक सशक्त विधा है और आज तो वह सर्वाधिक पसन्द की जाने वाली विधा है । कोई अखबार, पत्रिका ऐसी नहीं जिसमें इंटरव्यू न छपता हो।"

इंटरव्यू को डा. हरदयाल 'जीवन और विचारों का परिचायक'. डा. रामप्रकाश 'पत्रकारिता से सम्बद्ध विधा' और डा. बाबूराव देसाई 'प्रश्नोत्तर शैली की विशिष्ट विधा' मानते है ।

12.3.4 निष्कर्ष

साक्षात्कार पत्रकारिता का तो अनिवार्य अंग है ही, साहित्य-क्षेत्र में भी एक प्रतिष्ठित विधा के रूप में अपना स्थान बना चुका है । इसके अलावा दूरदशन-आकाशवाणी, इंटरनेट आदि का भी इस विधा से जुड़ाव है । उपरोक्त परिभाषाओं और विचारों पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं - (1) साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता तथा साक्षात्कार-पात्र अथवा नायक ये दो पक्ष होते हैं, जिनमें भेंट आवश्यक है । (2) नायक के निजी जीवन किसी बिन्दु-विशेष अथवा अनेक बिन्दुओं पर उसके विचार जानने का प्रयास होता है । (3) साक्षात्कार दारा संकलित सामग्री का उपयोग किसी पत्र पत्रिका, पुस्तक में प्रकाशन अथवा आकाशवाणी-दूरदर्शन, इंटरनेट पर प्रसारण हेतु किया जाता है । यदि साक्षात्कार का उद्देश्य सार्वजनिक प्रकाशन-प्रसारण नहीं है तो वह मात्र वार्तालाप बनकर रह जायेगा । (4) विचारों आदि को जानने के लिए प्रश्नों का सहारा लिया जाता है।

जहाँ तक भेंट का प्रश्न है, किसी भी साक्षात्कार के लिए यह आवश्यक है कि साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार-पात्र से प्रत्यक्ष भेंट और वार्ता करे । परन्तु कुछ व्यक्तियों ने टेलीफोन पर साक्षात्कार लिए हैं, कुछ ने पत्र द्‌वारा प्रश्न पूछकर उनसे प्राप्त उत्तरों को जोड़कर भी साक्षात्कार प्रस्तुत किये हैं । अनेक व्यक्तियों ने काल्पनिक साक्षात्कार भी लिखे हैं । फोन-वार्ता तथा पत्र-इंटरव्यू में भी प्रश्नोत्तरों का आदान-प्रदान होता है । काल्पनिक साक्षात्कार में भी भेंट-वार्ता, काल्पनिक ही सही, होती है । सामान्य भेंट या वार्तालाप साक्षात्कार नहीं है । साक्षात्कार को प्रस्तुत करते समय प्राय: लेखक साक्षात्कार-पात्र की भाव-भंगिमाओं, वातावरण, उसके कृतित्व आदि का भी अंकन कर देते हैं, जबकि पत्रकार प्राय: स्थानाभाव के कारण साक्षात्कार को प्रश्नोत्तर-रूप में ही प्रस्तुत करते हैं । अन्य बातों का या तो उन्हें

अवकाश नहीं होता अथवा वे इनकी आवश्यकता नहीं समझते । आजकल पत्र-पत्रिकाओं में इसी प्रकार के साक्षात्कार अधिक छप रहे हैं । आरंभ में लोगों की यह धारणा थी कि किसी बड़े साहित्यकार, पत्रकार. कलाकार अथवा राजनेता आदि का ही साक्षात्कार लिया जाना चाहिये, परन्तु बाद में साधारण व्यक्तियों के भी साक्षात्कार लिए जाने लगे । इसकी सफलता साक्षात्कारकर्ता की कुशलता, साक्षात्कार-पात्र के सहयोग तथा दोनों के सामंजस्य पर निर्भर होती है । साक्षात्कार तैयारी करके, अथवा कभी-कमी बिना तैयारी के भी, लिए जाते हैं । पत्रकारों को प्राय: तुरंत-फुरत साक्षात्कार लेने पड़ जाते हैं । कुछ लोग नायक के हाव-भाव और देशकाल आदि का चित्रण करते हैं, जबकि बहुत से व्यक्ति साक्षात्कार को मात्र प्रश्नोत्तर के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं।

किसी समाचार-पत्र अथवा पत्रिका के संवाददाता तथा साहित्यिक जिज्ञासु के संवाद में सबसे बड़ा अन्तर यही होता है कि संवाददाता जहां तात्कालिक प्रतिक्रिया से सन्तुष्ट हो जाता है, वहां साहित्यिक जिज्ञासु अपने श्रद्धाभाव के आधार पर समाधानकर्ता को चुनता है और अपनी जिज्ञासाओं का समाधान चाहता है । संवाददाता के पास अपना कोई चुनाव नहीं होता, चाहे हत्यारा हो या डाकू, नेता हो या अभिनेता, उग्रवादी हो या अहिंसावादी, उसे अपने अखबार के लिए सभी का इंटरव्यू लेना होता है, परन्तु साहित्यिक जिज्ञासु बड़े सोच-विचार के साथ अपने चरित्र-नायक का चुनाव करता है । इस चुनाव में उसकी रुचि, उसकी समझ, उसकी विचारधारा, उसका अध्ययन, उसकी जिज्ञासु प्रवृत्ति, साहित्य संसार के प्रति उसकी चिन्ता आदि अनेक वृत्तियां काम कर रही होती है । साक्षात्कार-कर्ता चाहे कितना भी बड़ा आदमी हो, साक्षात्कार में वह नायक और उसकी अभिव्यक्ति को पूरा महत्व देता है तथा स्वयं साक्षात्कार का माध्यम होता है । यदि वह स्वयं ही बोलता रहे, नायक को अभिव्यक्ति का पूरा अवसर न दे तो साक्षात्कार की भावना पूर्ण नहीं होती । वह अपने विचार प्रकट कर सकता है, बहस भी कर सकता है पर वह नायक पर हावी नहीं हो सकता । परन्तु कोरा शिष्य-भाव भी साक्षात्कार को सफल नहीं बना सकता । वास्तव में साक्षात्कार में दोनों के वार्तालाप का महत्व है परन्तु उसका उद्देश्य साक्षात्कार-पात्र की अभिव्यक्ति ही होता है । साक्षात्कार-नायक चाहे कोई महापुरुष हो अथवा कोई साधारण या निम्न समझा जाने वाला पात्र, उसकी अभिव्यक्ति का विशेष महत्व है । वैसे साक्षात्कार का सूत्रधार साक्षात्कारकर्ता ही होता है।

बोध- प्रश्न- 1

1. भेंटवार्ता (साक्षात्कार) किसे कहते हैं?
2. आपको किस समीक्षक/इंटरव्यूकार की परिभाषा (भेंटवार्ता की) अच्छी लगी? सकारण बताइए।
3. 'साक्षात्कार जनसंचार का अनिवार्य अंग है ' इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

12.4 भेंटवार्ता का उद्भव और विकास

भेंटवार्ता जनसंचार की एक प्रमुख विधा है । इसके उद्भव और विकास स विभक्त भाषाओं में अलग- अलग इतिहास है ।

12.4.1 हिन्दी में

हिन्दी में इस विधा के प्रवर्तन का श्रेय डा. नगेन्द्र (हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रथम संस्करण) ने विख्यात पत्रकार प. बनारसीदास चतुर्वेदी को दिया और 'विशाल भारत' के सितम्बर, 1931 के अंक

में प्रकाशित उनकी रचना 'रत्नाकरजी से बातचीत' को हिन्दी की पहली भेंटवार्ता माना । डा. विश्वनाथ शुक्ल आदि विद्वानों ने भी इसी प्रकार का अभिमत प्रकट किया । परन्तु डा. रामगोपाल सिंह चौहान और क्षेमचन्द्र सुमन ने इस विधा के प्रवर्तन का श्रेय डा. पदमसिंह शर्मा कमलेश को देते हुए 1952 में प्रकाशित उनके साक्षात्कार-संग्रह 'मैं इनसे मिला' (दो भाग) की रचनाओं को हिन्दी की आरंभिक भेंट वार्ताएं घोषित किया । परन्तु डा. विष्णु पंकज ने शोधकार्य करके 'उसने कहा था' प्रसिद्ध कहानी के लेखक और पत्रकार प. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को भेंटवार्ता विधा का प्रवर्तक सिद्ध किया है और मासिक ' समालोचक' के सितम्बर, 1905 के अंक में प्रकाशित उनकी रचना 'संगीत की धुन: एक संवाद' को हिन्दी की पहली भेंटवार्ता माना है । गुलेरीजी ने इसमें महान संगीतज्ञ प. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर से लिया साक्षात्कार प्रस्तुत किया है।

गुलेरीजी 'समालोचक' के अघोषित संपादक थे । किसी कारणवश उनका नाम संपादक के रूप नहीं छपता था । यह हिन्दी की पहली विशुद्ध भेंटवार्ता है । इसमें भेंटवार्ता के सारे तत्व मिलते हैं, जबकि बनारासीदासजी की रचना 'रत्नाकरजी से बातचीत' विशुद्ध रूप में भेंटवार्ता नहीं है । यह संस्मरण, रेखाचित्र और निबन्ध का मिलाजुला रूप है । इसमें निबन्धात्मक लम्बे वर्णन हैं, संस्मरणात्मक बातचीत है पर यह साक्षात्कारात्मक नहीं है । इसमें नायक से बात निकलवाने का प्रयास नहीं है, जो कि भेंटवार्ता का प्रमुख तत्व है । यह चीज गुलेरीजी की भेंटवार्ता में मिलती है।

प. बनारसीदास चतुर्वेदी ने 1920 से ही साक्षात्कार लेने शुरू कर दिए थे । उन्होंने महात्मा गांधी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आचार्य पदमसिंह शर्मा तथा देश-विदेश के अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के साक्षात्कार लिए । पत्रकार-लेखक प. श्रीराम शर्मा ने अनेक देश-विदेशी व्यक्तियों से भेंटवार्ता की । 1938 में श्री प्रभाकर माचवे द्वारा संपादित 'जैनेन्द्र के विचार' पुस्तक निकली, जिसमें कथाकार-विचारक जैनेन्द्रकुमार ने विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दिए हैं । माचवेजी ने प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से भेंटवार्ता की जो ' वीणा' (अक्टूबर, 1939) में प्रकाशित हुई । 1941 में डा. सत्येन्द्र के संपादन में 'साधना' (मार्च-अप्रैल) का 'परिचयाक' निकला । इसमें भदंत आनंद कौशल्यायन (जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा), महादेवी वर्मा (चिरंजीलाल एकाकी द्वारा) तथा जैनेन्द्रकुमार (नन्दकुमार कोहली द्वारा) के उल्लेखनीय साक्षात्कार छपे । श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया के अनुसार पांचवें दशक में बेनीमाधव शर्मा की पुस्तक 'कविदर्शन' निकली, जिसमें हरिऔध, मैथिलीशरण, रामचन्द्र शुक्ल, सनेही आदि से की गई भेंटवार्ताएं हैं । यह पुस्तक उपलब्ध नहीं है ।

डा. रामचरण महेन्द्र ने हरिभाऊ उपाध्याय (हिमालय, दिसम्बर, 47), निराला, चतुरसेन, रामकुमार वर्मा, अश्क आदि के साक्षात्कार प्रस्तुत किए । सन् 1947 में 'हंस' के दिसम्बर अंक में नरोत्तम नागर दारा लिया गया महाकवि निराला का विचारोत्तेजक साक्षात्कार 'अपने ही घर में सरस्वती का अपमान' प्रकाशित हुआ, जिसमें राजनेताओं को साहित्यकारों से श्रेष्ठतर बताए जाने की आलोचना की गई थी। 'नई धारा' में तो 'हम इनसे मिले' एक स्थायी स्तम्भ ही आरंभ कर दिया गया था । सन् 1952 का वर्ष भेंटवार्ता के इतिहास में महत्वपूर्ण माना जाएगा । इस वर्ष डा. पद्मसिंह शर्मा कमलेश का भेंटवार्ता संग्रह 'मैं इनसे मिला' (दो भाग) प्रकाशित हुआ, जिसमें अनेक साहित्यिक के साक्षात्कार थे । भेंटवार्ता विधा के विकास की दृष्टि से ये साक्षात्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । सन् 1954 में देवेन्द्र 'सत्यार्थी की पुस्तक 'कला के हस्ताक्षर' निकली, जिसमें मुंशी प्रेमचन्द और वल्लतोल से सम्बद्ध रचनाएं

साक्षात्कार हैं । कवि दिनकर ने नृत्यांगना रुक्मिणी देवी। से भेंटवार्ता की जो उनकी पुस्तक 'वटपीपल' में संकलित है । कैलाश कल्पित के दो साक्षात्कार-संग्रह 'साहित्य के साथी' (1957) और 'साहित्य साधिकाएँ' (1962) निकले । नरेन्द्र की पुस्तक 'ये और वे' में रवीन्द्र, प्रसाद और महादेवी से सम्बद्ध तीन साक्षात्कार नरेन्द्र से लिए गए है।

सन् 1962 में विश्व का सबसे बड़ा साक्षात्कार 'समय और हम' प्रकाशित हुआ (डिमाई आकार के 648 पृष्ठ) । इसमें वीरेन्द्रकुमार गुप्त ने नरेन्द्र से बातचीत की है । 'प्रस्तुत प्रश्न' पुस्तक में भी नरेन्द्र से भेंटवार्ता है । साठोत्तरी में व्यक्ति और विषय में नवीनता, विविधता आई । साधारण और निम्न समझे जाने वाले पात्रों के भी साक्षात्कार लिए जाने लगे। विष्णु प्रभाकर और यशपाल जैन ने अनेक देशी-विदेशी व्यक्तियों से भेंटवार्ताएं की जो उनकी पुस्तकों में छपीं । सन् 1968 में डा. रणवीर रांग्रा का पहला साक्षात्कार-संग्रह 'सृजन की मनोभूमि' प्रकाशित हुआ । इसमें अनेक साहित्यिकों के स्तरीय और विचारात्मक साक्षात्कार हैं ।

सन् 1971 में पत्रकार अक्षयकुमार जैन की पुस्तक 'याद रही मुलाकातें' सामने आई, जिसमें अनेक देशी-विदेशी हस्तियों से की गई तेज तर्रार भेंटवार्ताएं हैं । रामावतार द्वारा नरेन्द्र का लिया एक विशाल साक्षात्कार (डिमाई आकार से 578 पृष्ठ) 'समय समस्या और सिद्धान्त' शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ । इसमें भेंटवार्ताकार ने विभिन्न विषयों पर विस्तृत वार्तालाप किया है । विश्व के सबसे बड़े साक्षात्कार (वीरेन्द्र द्वारा नरेन्द्र का) के पश्चात् सम्भवतः यह दूसरी सबसे बड़ी भेंटवार्ता है । विष्णुकान्त शास्त्री की पुस्तक 'बांगलादेश के सन्दर्भ में' भेंटवार्ता विधा की एक उल्लेखनीय कृति है । इसमें शेख मुजीब के परिवार के सदस्यों, अनेक बुद्धिजीवियों, सेनानायकों की भेंटवार्ताएं है । इन पर संस्मरण और रिपोर्ताज विधाओं का भी पर्याप्त प्रभाव है । सतीशकुमार की पुस्तकों 'आदमी दर आदमी' (1974) और 'बातचीत' (1975) में विश्व के अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के साक्षात्कार हैं । केशवचन्द्र वर्मा ने 'शार्टकट की संस्कृति' तथा 'अफलातूनों का शहर' पुस्तकों में विभिन्न क्षेत्रों के अनेक प्रमुख लोगों के साक्षात्कार प्रस्तुत किए हैं । सन् 1978 में डा. रणवीर रांग्रा का दूसरा साक्षात्कार- संग्रह 'साहित्यिक साक्षात्कार' प्रकाशित हुआ, जिसमें हिन्दी के उन्तीस शीर्षस्थ साहित्यकारों के इकतालीस साक्षात्कार है, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

सन् 1981 में पत्रकार कन्हैयालाल नन्दन का उल्लेखनीय साक्षात्कार संग्रह 'अंतरंग' प्रकाशित हुआ। सन् 1983 में अक्षयकुमार जैन की भेंटवार्ताओं का संकलन 'शिखरों की छाह में' निकला । अक्षयजी की कई अन्य पुस्तकों में भी साक्षात्कार सम्मिलित हैं । इसी वर्ष आशारानी व्होरा की भेंटवार्ताओं का संग्रह 'मैं इनसे मिली' छपा, जिसका दूसरा भाग 1985 में निकला । सन् 1984 में जगदीश वोरा का उल्लेखनीय साक्षात्कार-संग्रह 'साक्षात्कार' शीर्षक से प्रकाशित हुआ । इसमें हिन्दी के तथा हिन्दीतर लेखकों-वैज्ञानिकों के अतिरिक्त अनेक विदेशी हस्तियों से की गई भेंटवार्ताएं भी सम्मिलित हैं । सन् 1984 में साक्षात्कार-विधा पर पहला शोधग्रन्थ 'हिन्दी इंटरव्यू: उद्भव और विकास' (डा. विष्णु पंकज) प्रकाशित हुआ । सन् 1985 में डा. विष्णु पंकज द्वारा संपादित 'चिरस्मरणीय भेंटवार्ताएं' छपी । 'सोच-समझ' (श्रीकान्त जोशी, 1985) में नई कविता पर अनेक बातचीते हैं । इसी वर्ष 'शीराजा' का साक्षात्कार अंक निकला । 'मधु-माधवी' के 'आलोचना अंक' में भी अनेक साक्षात्कार छपे । डा. कर्णसिंह

चौहान की पुस्तक 'साक्षात्कार' में डा. रामविलास शर्मा से की गई अनेक भेंटवार्ताएं हैं । 'कथन-उपकथन' महेश दर्पण का भेंटवार्ता- संकलन है, जिसमें अनेक साहित्यिकों से बातचीत है । 1986 में प्रकाशित 'नवरंग' (डा. विष्णु पंकज) में अनेक भेंटवार्ताएं हैं । डा. माज़दा असद के दो साक्षात्कार-संग्रह 'मेरी मुलाकातें' तथा 'इंटरव्यू' प्रकाशित हुए । सन्1987 में कैलाश कल्पित का साक्षात्कार-संग्रह 'साहित्यकारों के संग' प्रकाशित हुआ, जिसमें उनके पूर्व में प्रकाशित साक्षात्कारों का संकलन है । इसी वर्ष रतीलाल शाहीन का महत्वपूर्ण भेंटवार्ता-संग्रह 'मुलाकातें' छपा । डा. सुरेन्द्र तिवारी के साक्षात्कार-संग्रह 'कथारंग में' कहानी पर भेंटवार्ताएं हैं।

सन् 1988 में 'भारतीय साहित्यकारों के साक्षात्कार' (डा. रणवीर रांग्रा) प्रकाशित हुआ । इसमें सोलह भाषाओं के पचास विशिष्ट साहित्यकारों के साक्षात्कार हैं । 'अपरोक्ष' (अज्ञेय), पूर्वग्रह, साहित्य-विनोद, कला विनोद (अशोक वाजपेयी) में अनेक उल्लेखनीय भेंटवार्ताएं हैं । 'जिन्दगी और मौत के दस्तावेज' (राजेन्द्र अवस्थी) के अंतिम खंड में अनेक लोगों के साक्षात्कार संकलित हैं । 'संस्कृति, साहित्य और समय '(रत्ना लाहिड़ी) तथा अमृता प्रीतम की 'सात मुसाफिर', 'सात सवाल' और 'तीसरी आंख' में बहुत्सी विचारोत्तेजक भेंटवार्ताएं हैं । 'लेखक की जमीन' में गोविन्द मिश्र द्वारा लिए गए अनेक साक्षात्कार हैं । विपिन हांडा ने दूरदर्शन पर आमने-सामने' कार्यक्रम बनाकर अनेक हस्तियों के साक्षात्कार प्रस्तुत किए हैं । सन् 1991 मे कई उल्लेखनीय साक्षात्कार-संग्रह निकले हैं । डा. रणवीर रांग्रा का साक्षात्कार संग्रह 'हिन्दी साहित्यकारों के साक्षात्कार' इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय है । 'मितवाघर' (पद्मा सचदेव) 'दीवानखाना' के बाद पदमाजी का दूसरा साक्षात्कार- संग्रह है । 'आमने-सामने' (क्षेमचन्द्र सुमन) मे सुमनजी के लिए गए अशोक लव, आनन्द शर्मा, डा. इंद्र सेंगर, डा. त्रिलोकीनाथ व्रजबाल, डा. विष्णु पंकज, शिवकुमार गोयल, शैवाल सत्यार्थी आदि के साक्षात्कार हैं । इनके अलावा 'सत्यार्थी के साथ-साथ' (डा. ओमप्रकाश सिंहल), 'बातों-बातों में' (मनोहर श्याम जोशी), 'अमृत-मंथन' (अमृतलाल नागर से साक्षात्कार, प. शरद नागर व आनन्द त्रिपाठी) ''बीसवीं शती के अंधेरे में' (श्रीकांत वर्मा) आदि में अत्यन्त महत्वपूर्ण भेंटवार्ताए हैं । सन् 1994 में नन्दभारद्वाज का उल्लेखनीय भेंटवार्ता-संग्रह 'संवाद निरन्तर' प्रकाशित हुआ, जिसमें अनेक साहित्यिकों, पत्रकार, क्रान्तिकारी, कोशकार आदि के प्रभावी और स्तरीय साक्षात्कार हैं, जो कि विचारात्मक है । सन् 1994 में साक्षात्कार विधा के विवेचन से सम्बद्ध ग्रन्थ 'जनसंचार की विधा साक्षात्कार' (डा. विष्णु पंकज) प्रकाशित हुआ । सन्1995 में प्रकाशित डा. सुनीता शास्त्री के भेंटवार्ता-संग्रह 'पत्रकारिता और पत्रकार-एक संवाद' में अनेक पत्रकारों के विचारात्मक साक्षात्कार हैं । 'हम कहें आप कहो' (उपेन्द्रनाथ अश्क) में अनेक भेंटवार्ताएं हैं।

सन् 1996 में प्रकाशित 'व्यंग्यशिल्पी लतीफ घोंघी' में उनसे लिए गए कई साक्षात्कार हैं । इसी वर्ष डा. बाबूराव देसाई की पुस्तक 'हिन्दी इन्टरव्यू विधा-शास्त्र और इतिहास' तथा 'इंटरव्यू विधा और विविधा' निकली, जिनमें अनेक भेंटवार्ताएं भी हैं । 'रेणु से भेंट' (भारत वायावर), 'हिन्दी के प्रतिनिधि साहित्यकारों के साक्षात्कार' (डा. अशोक लव), 'पत्रकारिता के पहलू' (राजकिशोर) में भी उल्लेखनीय साक्षात्कार प्रक्राशित हुए हैं।

सन. 1997 में प्रमुख इंटरव्यूकार डा. रणवीर रांग्रा का नवीन भेंटवार्ता-संकलन 'भारतीय लेखिकाओं के साक्षात्कार' छपा, जिसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशनाधीन है । इसमें विभिन्न भाषाओं

की विशिष्ट लेखिकाओं से की गई विचारात्मक भेंटवार्ताएं हैं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । डा. रांग्रा का कथन है - "इन भेंटवार्ताओं में मेरा मूल लक्ष्य कृतिकार के सृजन-क्षणों की झांकी पाना है, तर्कजाल फैलाकर उन्हें बहस में उलझाना नहीं, बल्कि मैं सचेष्ट रहा हूँ कि चर्चा कोरी तार्किकता से बची रहे। अनुभव से मैं शीघ्र ही जान गया था कि तर्क-बुद्धि चर्चा को बार-बार चेतन स्तर पर घसीट लाती है, जबकि अमूल्य रचना-रहस्य कृतिकार के अवचेतन की अतल गहराइयों में छिपे मिलते है।"

इन दिनों 'मेरे साक्षात्कार' शीर्षक से अनेक साहित्यकारों के साक्षात्कार-संग्रह निकले हैं, जिनमें लेखक-विशेष से अनेक इंटरव्यूकारों द्वारा लिए गए साक्षात्कार होते हैं । विष्णु प्रभाकर, डा. रामविलास शर्मा, शिवप्रसाद सिंह, नागार्जुन, राजेन्द्र यादव, श्रवणकुमार, विजय कुमार श्रोत्रिय आदि के इस प्रकार के साक्षात्कार-संग्रह निकले हैं । 'कहना न होगा' में डा. नामवरसिंह से लिए गए साक्षात्कार हैं । 'समग्र' के प्रथमांक में अनेक भेंटवार्ताएं निकली हैं । सन् 1998 में भी बड़ी संख्या में पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं में तथा आकाशवाणी-दूरदर्शन पर साक्षात्कार आए हैं । 1999 में 'साक्षात्कार कोश: साक्षात्कार के सौ वर्ष' (डा. विष्णु पंकज) ग्रंथ निकला है।

इन साक्षात्कारों के अतिरिक्त समय-समय पर पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं तथा दूरदर्शन-आकाशवाणी पर ढेर सारे साक्षात्कार आए है । इनके इंटरव्यूकारों की संख्या विशाल हैं । फिर भी इनमें कुछ नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । - डा. प्रभाकर माचवे, डा. सुरेश सिन्हा, डा. वेदप्रताप वैदिक, उदयन शर्मा, जितेन्द्र गुप्त, रामेश्वर विद्यार्थी, डा. गोविन्दस्वरूप गुप्त, डा. विष्णु पंकज, डा. कलानाथ शास्त्री, डा. रत्नलाल शर्मा, हिमांशु जोशी, डा. रामशंकर दिवेदी, गौरीशंकर गुप्त, डा. आलोककुमार रस्तोगी, त्रिलोकीप्रसाद शर्मा, वेद व्यास, डा. त्रिलोकीनाथ व्रजबाल, कमलकान्त बुधकर, धीरेन्द्र अस्थाना, राजेन्द्र परदेसी, मंगलेश डबराल, मीनूरानी दुबे, जया नर्गिस, अश्विनीकुमार आलोक, मलिका बोहरा, डा. सकलदेव शर्मा. प्रदीप पन्त, मृणाल पाण्डे, नीहारगीते गणेश मंत्री, डा. कैलाश वाजपेयी, डा. भारती, डा. महीपसिंह आदि।

विष्णु प्रभाकर, मनोहरश्याम जोशी, शैलेश मटियानी, प्रेमकपूरं डा. लक्ष्मीनारायण लाल, ओमप्रकाश शर्मा, डा. लक्ष्मणसिंह बटरोही, रतन प्रकाश, सरस्वती नारायण, गुलाब कोठारी, डा. सत्यनारायण, आदर्श शर्मा, महेश झालानी, रामकुमार भ्रमर, डा. महेन्द्र मधुप आदि ने साधारण समझे जाने वाले पात्रों से साक्षात्कार लिए हैं।

प्रमुख इंटरव्यूकार डा.कमलकिशोर गोयनका की साक्षात्कार से संबन्धित उल्लेखनीय पुस्तक आई है- 'जिज्ञासाएं मेरी : समाधान बच्चन के' (1985) । इसमें डा. गोयनका ने डा. हरिवंशराय बच्चन से पत्रों द्वारा एक विशाल इंटरव्यू लिया है । इसके लिए एक वर्ष तक पत्राचार चला । किसी रचनाकार के व्यक्तित्व-कृतित्व को समग्र रूप से उजागर करने वाला यह अकेला पत्र-इंटरव्यू है, जो पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है । मारिशस के हिन्दी-साहित्यकार अभिमन्यु अनत का भी इसी प्रकार का इंटरव्यू जो डा. गोयनका ने लिया है, पुस्तकाकार छपा है । 'परिप्रश्न' (अश्विनी) शीर्षक से प्रकाशित (1985) साक्षात्कार संग्रह में अनेक साहित्यिकों से लिए गए उल्लेखनीय पत्र-इंटरव्यू हैं । बनारसीदास चतुर्वेदी (डा. बाराान्निकोव से), मुंशी प्रेमचन्द (उषादेवी मित्रा से), डा. जीवनप्रकाश जोशी (डा. बच्चन से) डा. पंकज (डा. वृन्दावनलाल वर्मा, डा. बच्चन से), पी.ललिताम्बा, राजीव वर्मा, डा. श्यामसुन्दर कोष, दिनकर

सोनवलकर, अरुण, प्रेमशंकर रघुवंशी, भारतभूषण अग्रवाल, राजेन्द्र द्विवेदी, डा. राजेन्द्र परदेसी, सत्यनारायण श्रीवास्तव, अश्विनीकुमार आलोक आदि ने अनेक उल्लेखनीय पत्र-इंटरव्यू प्रस्तुत किए हैं । अनेक लेखकों-पत्रकारों ने काल्पनिक साक्षात्कार भी लिखे हैं । ये गंभीर और हास्य-व्यंग्यात्मक दो प्रकार के हैं । गंभीर (काल्पनिक) साक्षात्कार राजेन्द्र यादव, लक्ष्मीचन्द्र जैन, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, शरद देवड़ा, अज्ञेय, कमलेश, नगेन्द्र, डा. विजय, रघुवीर सहाय, विश्वनाथ, रमेशचन्द्र आर्य, डा. विष्णु पंकज, आदि ने प्रस्तुत किए हैं । हास्य-व्यंगात्मक (काल्पनिक) साक्षात्कार जी.पी श्रीवास्तव, डा. हरिशंकर शर्मा, हरिशंकर परसाई, गोपालप्रसाद व्यास, डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी, केलकर, सुरीरवाला, केशवचन्द्र वर्मा, शरद जोशी आदि ने बड़ी संख्या में लिखे हैं । गोपालप्रसाद व्यास का इस प्रकार का साक्षात्कार संग्रह 'हलो-हलो' विशेष रूप से उल्लेखनीय है । मनोहर वर्मा की 'जानवरों से इंटरव्यू तथा कन्हैया अगनानी की 'असली गधे से इंटरव्यू' पुस्तक निकली हैं ।

अज्ञेय और अमृता प्रीतम ने अपने 'आत्म-साक्षात्कार' भी प्रस्तुत किए हैं, जो गंभीर हैं । डा. शिवमंगलसिह सुमन, केशवचन्द्र वर्मा, अज्ञातशत्रु, ईश्वरसिंह बैस आदि ने तीखे व्यंग्यात्मक आत्म-साक्षात्कार लिखे हैं । साहित्य, राजनीति, खेलकूद, संगीत, कला, अभिनय, फिल्म आदि सभी क्षेत्रों में बड़ी संख्या में साक्षात्कार लिए गए है । साक्षात्कार पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में तो प्रकाशित होते ही हैं, दूरदर्शन और आकाशवाणी पर भी बड़ी संख्या में आते हैं । साक्षात्कार के लिए अब इंटरनेट का भी प्रयोग होने लगा है।

12.4.2 अंग्रेजी में

साक्षात्कार पत्रकारिता और साहित्य की प्रमुख विधा है । पश्चिम में इस विधा का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में ही हो गया था । वहां के समाचार पत्रों, पुस्तकों, पत्रिकाओं, आकाशवाणी और दूरदर्शन सभी जगह इस विधा का बोलबाला रहा है । विचारकों, राजनीतिज्ञों, शासकों, साहित्यकारों, पत्रकारों, कलाकारों आदि के निजी जीवन, विचारों, कृतित्व आदि के विषय में जानने के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में इसे अपनाया जाता रहा है।

कवि लैडर की प्रमुख गद्य-पुस्तक 'इमेजिनरी कनवर्सेशन्स' में अतीत के महान साहित्यिक पात्रों के काल्पनिक वार्तालाप हैं । इस गद्य-अतीत की रचना कई वर्षों (सन् 1824-53) में हुई थी। इसके संवादों की संख्या एक सौ पचास है । इनमें जीवन और साहित्य से सम्बन्धित नाना प्रकार के विषय लिए गए हैं । लेखक की भाषा-शैली 'सूत्रात्मक, अनलंकृत, अनुदार और तक्षण-कला से परिपूर्ण' है । इनमें के कुछ संवाद तो नाटकीय हैं, शेष विचारात्मक और दार्शनिक हैं । 'पेंटामेरान', जिसमें पेट्रार्क और वोकेशियो के बहुत-से संवाद दिए गए हैं, दाते की सुंदर आलोचना के कारण विशेष उल्लेखनीय है । वाइल्ड की 'इंटेंशंस' भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचना है।

एक बड़ी संख्या में पाश्चात्य पत्रकार-लेखक साक्षात्कार-साहित्य की रचना करते रहे हैं । ' रिज़ू ऑफ रिव्यूज़' के सम्पादक डब्ल्यू टी. स्टीड इस विधा के महान आचार्य थे । उन्होंने अनेक यूरोपीय महापुरुषों से साक्षात्कार लिए । एच. डब्ल्यू नेलसन भी विश्व-विख्यात् साक्षात्कार-लेखक थे । रोम्यां रोला, लारेंस, गाइटेलेज, लुई फिशर, लुडविग राइनर, रोशिन डे, जार्ज शेफर, फील्डर कुक, मैनवेल, रिचर्ड बर्गिन, स्टीव, रिचर्डस, डायना गुडमैन, रेमंड, केनेथ रिंग, सुसान बैल्क्मोर, डा. किसी, मारीख

जोलोटोव, डिस्क जौकी, डा. कुबलर रास, एण्ड्रू मार्टन, ओल्गा इवंसकामा, ओलगा कार्लिस्ले, फ्रैंक आंद्रे जैमी, डाटाटशेवेले आदि प्रसिद्ध पाश्चात्य साक्षात्कारकर्ता है।

'पेरिस रिव्यू' इस विधा की दृष्टि से उल्लेखनीय है । ब्लूस और मैनबैल द्वारा संपादित पुस्तक में अनेक व्यक्तियों के साक्षात्कार है, दूरदर्शन-कार्यक्रम, तकनीक आदि से संबन्धित है । स्टीव ने खिलाड़ियों के, लुडविग ने नेताओं के साक्षात्कार लिए हैं । एक अमेरिकन पत्रकार ने युद्ध-क्षेत्र में साधारण सैनिकों से लम्बे साक्षात्कार लिए हैं । इतालवी महिला पत्रकार ओरियाना फ्लाची ने विश्व के राजनयिकों के इंटरव्यू लिए, जो उनकी कृति 'इंटरव्यू विद हिस्ट्री' में छपे हैं । एण्डरु मार्टन ने डायना और मोनिका से अनेक इंटरव्यू लिए । सभी पाश्चात्य देशों में साक्षात्कार-विधा एकबहु प्रचलित विधा है, जो मुख्यत: पत्रकारिता से संबद्ध है ।

सन् 1975 में अमेरिका के मनोविज्ञानी रेमण्ड मूडी की एक पुस्तक 'लाइफ आफ्टर लाइफ' प्रकाशित हुई । इसमें ऐसे अनेक व्यक्तियों के साक्षात्कार हैं, जो मरकर पुन: जीवित हो गए । उनसे मृत्यु के पश्चात की स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त की गई है । इसी प्रकार की एक पुस्तक कनेक्टीकट विश्वविद्यालय के केन्नेथ रिंग की प्रकाशित हुई है, जिसमें 702 व्यक्तियों के साक्षात्कार हैं । मरकर पुन: जी उठने वाले अनेक व्यक्तियों ने अपने साक्षात्कारों में शांति, शरीर-परित्याग, अंधेरी सुरंग में प्रवेश, सुरंग पार करना और प्रकाश देखना-इन पांच स्थितियों का जिक्र किया है । पुस्तक में कुछ ने एक 'प्रकाशमय प्राणी' से मिलने की भी बात बताई है ।

सन् 1982 में परामनोविज्ञानी सूसन बैल्कमोर की पुस्तक 'बियांड द बॉडी' प्रकाशित हुई । उन्होंने इस प्रकार के 36 व्यक्तियों के साक्षात्कार लिए । न्यू साउथ वेल्स विश्वविद्यालय, आस्ट्रेलिया के हार्वे इरविन ने भी इस प्रकार के बहुत-से व्यक्तियों से बातचीत की थी।

सन् 1990 में 'दलाई लामा' शीर्षक से अंग्रेजी में 200 पृष्ठों की एक पुस्तक (साक्षात्कार- संग्रह) प्रकाशित हुई है, जिसके लेखक विजय क्रांति ने बौद्ध-धर्मगुरु दलाई लामा से लिए गए अनेक साक्षात्कार प्रस्तुत किए हैं । लेखक ने 1960 से 1977 तक दलाई लामा से भेंटवार्ताएं की हैं । पुस्तक में 30 चित्र भी हैं । सन् 1993 में 'सुनो, परिवर्तन के लिए' शीर्षक से एक साक्षात्कार-संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें 50 गरीब लोगों के सत्रह भाषाओं में इंटरव्यू हैं । इनमें गरीबों की जीवन-कथाएं उजागर की गई हैं । इसे लन्दन से 'पानोसा' (एक समाजसेवी संगठन) द्वारा प्रकाशित किया गया है । इसमें सूडान, इथोपिया, चाड आदि देशों के व्यक्तियों के साक्षात्कार हैं ।

'आर्म्स टु फाइट-आर्म्स टु प्रोटेक्ट' शीर्षक से एक साक्षात्कार-संग्रह (पानोसा, पर्यावरण और विकास से सम्बन्धित लन्दन के एक संस्थान द्वारा प्रकाशित) निकला है । इसमें अलसल्वाडोर, इथोपिया, निकारागुआ, साइबेरिया, श्रीलंका, लेबनान आदि 12 देशों की जुझारू महिलाओं के साक्षात्कार हैं, जो अपने देश के लिए हथियार लेकर युद्ध क्षेत्र में लड़ी । 'अनफारगेटबल फायर' इंटरव्यू-संग्रह में हिरोशिमा बमकाण्ड (1945) के प्रत्यक्षदर्शियों के साक्षात्कार हैं । हरिश्चन्द्र के साक्षात्कार संग्रह- 'राजीव गांधी-मैनी फैक्ट्स' (1992) में राजीव गांधी से लिए 62 साक्षात्कार हैं । डा. गीति सैन ने नीदरलैंड की मैडम स्कू से चित्रकला पर बातचीत की है । मैडम स्कू ने भी अनेक चित्रकारों से साक्षात्कार लिए हैं। 'ईवनिंग टाक्स विद अरविन्दो' भी एक महत्वपूर्ण साक्षात्कार संग्रह है जो पाण्डिचेरी से निकला है।

भारत में भी अनेक साक्षात्कारकर्ताओं ने अंग्रेजी भाषा में साक्षात्कार लिए हैं । बंगाल के कवि-गायक दिलीपकुमार राय द्वारा अंग्रेजी में लिए गए साक्षात्कारों का संकलन (1951-60) 'अमंग द ग्रेट' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । इसमें देश-विदेश के प्रमुख साहित्यिकों से सम्बद्ध साक्षात्कार हैं। राय ने रोम्यां रोला, बरटेंड रसेल, महर्षि अरविन्द, महाकवि रवीन्द्र आदि से भेंट करके अधिकांशत: दार्शनिक पक्षों पर ही बातचीत की है।

डा. रणवीर रांग्रा का अंग्रेजी साक्षात्कार-संग्रह 'इंटरव्यूज विद इंडियन राइटर्स' 1992 में प्रकाशित हुआ।उनके अन्य साक्षात्कास-संग्रह 'भारतीय लेखिकाओं से साक्षात्कार' का अंग्रेजी संस्करण प्रकाशनाधीन है।प्रीतीश नन्दी, कुलदीप नायर, आर. के. करंजिया, बहराम, जनार्दन ठाकुर, शैली धवन आदि ने तेजतर्रार साक्षात्कार लिए हैं । बनारसीदास चतुर्वेदी, निहालसिंह, चान्द, खुशवन्तसिंह आदि ने भी अंग्रेजी में साक्षात्कार लिए हैं । निमायी साधन वसु ने इन्दिरा गांधी से की गई भेंटवार्ताओं का संकलन पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया है । डा. प्रभाकर ने निहालसिंह का साक्षात्कार लिया। बलजीत, शशिकुमार, रोशनी, अनुराधा प्रसाद, मेनका, शेखर सुमन, दीपक बोहरा, फरीदा जलाल, मोहन कपूर आदि ने दूरदर्शन पर साक्षात्कार लिए हैं । अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी-दूरदर्शन के प्रतिनिधियों द्वारा समय-समय पर विभिन्न लोगों के साक्षात्कार लिए गए हैं।

12.4.3 संस्कृत में

भारत में जिज्ञासा, विचारों की अभिव्यक्ति और शंका-समाधान की प्रवृत्ति आदिकाल से ही रही है । यही कारण है कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में अनेक संवाद मिलते हैं, इनमें हम आधुनिक साक्षात्कार विधा के बीज की गवेषणा कर सकते हैं । 'कठोपनिषद' में (नचिकेता-यम-संवाद) एक उल्लेखनीय संवाद साक्षात्कार है । नचिकेता यम से पूछता है - "जिस आत्म-तत्व सम्बन्धी ज्ञान के विषय में सभी लोग शंका करते हैं कि मरने के पश्चात् यह आत्मा रहता है या नहीं, इस विषय में आपका जो निर्णय है वह आप हमें बताएं । वह अनिर्वचनीय परमानन्द यह परमात्मा ही है, ऐसा ज्ञानी लोग मानते हैं । मैं भी उसे किस तरह समझूं ? क्या वह प्रकाशित होता है या अनुभव में आता है?"

कहा जाता है कि मरणासन्न रावण के पास राम ने लक्ष्मण को राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा था । लक्ष्मण ने रावण से अनेक प्रश्न किए थे । 'कृष्णार्जुन संवाद' (गीता) भी एक प्रकार से साक्षात्कार ही है । अर्जुन के प्रश्न दृष्टव्य है - 'अपने कुटुम्ब को मारकर हम कैसे सुखी होंगे? समाधि में स्थित स्थिर बुद्धि वाले पुरुष का क्या लक्षण है? और स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है? कैसे बैठता है ? कैसे चलता है ? यह पुरुष बलात् लगाए हुए के सदृश न चाहता हुआ भी किससे प्रेरा हुआ पाप का आचरण करता है ? जो यह ध्यान योग आपने समत्व भाव से कहा है, उसकी मैं मन के चंचल होने से बहुत काल तक ठहरने वाली स्थिति को नहीं देखता हूं । योग से चलायमान हो गया मन जिसका ऐसा शिथिल-यत्न वाला श्रद्धायुक्त पुरुष योग की सिद्धि को भगवत्-साक्षात्कार को न प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त होता है? ब्रह्म क्या है ? और अध्यात्म क्या है तथा कर्म क्या है ? और अधिभूत नाम से क्या कहा गया है ? तथा अधिदेव नाम से क्या कहा जाता है ? आपको मैं तत्व से जानना चाहता हूं क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को मैं नहीं जानता । सगुणोपासक तथा निर्गुणोपासक में श्रेष्ठ योगवेत्ता कौन है ? तीनों (सत, रज, तम) गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है ? मैं संन्यास

और त्याग के तत्व को पृथक्-पृथक् जानना चाहता हूं ।' इन प्रश्नों और कथनों में एक साक्षात्कारकर्ता की जिज्ञासा और बात निकालने की ललक दीख पड़ती है।

महाभारत में 'भीष्म-युधिप्तर-संवाद' भी उल्लेखनीय है । महाप्रयाणोन्मुख भीष्म से युधिष्ठर साक्षात्कार करते हैं तथा विभिन्न प्रश्न उनके समक्ष रखते हैं - "जिसकी देह और धन-सम्पत्ति क्षीण हो गई हो, जो आलसी तथा अत्यन्त कष्ट में हो, उस राजा को अपने संकट से मुक्त होने के लिए क्या करना चाहिए ? संकटकाल उपस्थित होने पर ब्राह्मण को किस वृत्ति से जीवन-निर्वाह करना चाहिए ? किसका धन लें, किसका न लें ? शक्तिशाली शत्रुओं से घिरे राजा को क्या करना चाहिए ? अनजाने में पापकर्म कर बैठने वाला व्यक्ति उससे किस प्रकार मुक्त हो सकता है ? किस प्रकार के व्यक्ति की मित्रता आनन्द दायक होती है?"

'भरत-आत्रेय-संवाद' भी महत्वपूर्ण संवाद है । 'एक दिन नाट्याचार्य भरत अपने पुत्रों सहित अनध्याय का आनन्द मना रहे थे । उसी समय आत्रेय आदि प्रमुख मुनिगण भरत मुनि के समीप उपस्थित हुए और पूछने लगे - "ब्राह्मण, आपने नाट्यवेद का संपादन क्यों और किसके लिए किया है? उसके कितने अंग हैं ? प्रयोग किस प्रकार किया जाता है ? आप इन सब बातें को हमें समझाइए।"

इसी प्रकार राजा प्रदतन-पुरोहित-संवाद यज्ञ के समय राजा जनक और विदज्जन के संवाद, गार्गी-याज्ञवल्कय-संवाद, गौतम-सत्यकाम-संवाद आदि अनेक संवाद प्राचीन साहित्य में पाये जाते हैं, जिन्हें साक्षात्कार का ही रूप माना जा सकता है । आज भी बहुत से साक्षात्कार मात्र 'प्रश्नोत्तर' (संवाद) रूप में पाए जाते हैं ।

12.4.4 अन्य भाषाओं में

12.4.4.1 बांग्ला में साक्षात्कार

विद्वदर डा. रामशंकर द्विवेदी ने न केवल स्वयं अनेक साहित्यकारों के साक्षात्कार लिए है अपितु बहुत सारे बांग्ला साक्षात्कारों का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया है ।'प्रेम बिना शिल्प कहां' शीर्षक से प्रस्तुत अपनी पुस्तक में उन्होंने इस प्रकार के साक्षात्कार समाविष्ट किए हैं । उनके शब्दों में. "बांग्ला मे साक्षात्कार अलग से कोई विधा नहीं है । वहां भी यह अंग्रेजी से आई है किन्तु इसे एक विधा के रूप में नहीं लिया गया है । वैसे बांग्ला में सबसे पहला साक्षात्कार किसने लिया और किस पत्रिका में निकला इसकी जानकारी मुझे नहीं है- मेरा अन्दाज है पहला साक्षात्कार किसी न किसी पत्रिका में ही निकला होगा । सुनील गंगोपाध्याय पर तो साक्षात्कार के रूप में एक पुस्तक ही निकली है जिसका शीर्षक है- 'मुखोमुखि सुनील - 'सुनील आमने-सामने'- संपादक मृत्युंजय सेन । प्रवणकुमार वंद्योपाध्याय, शीर्षेन्दु मुखोपाध्याय, देवाशीषदास गुप्त, अलकराय चौधरी, स्वप्न सोम आदि न समय-समय पर साक्षात्कार लिए है।

"बांग्ला में साक्षात्कार केवल साहित्यकारों, रंगकर्मियों या संगीतकारों से ही नहीं लिए गए है। बांग्ला साक्षात्कारों का दायरा बहुत विस्तृत है । ये उतने ही मनोयोग से राजनीतिज्ञों, इतिहासकारों और विज्ञान आदि से जुड़े प्रतिभाशाली व्यक्तियों से भी लिए गए है।"

12.4.4.2 गुजराती में साक्षात्कार

गुजराती भाषा में अनेक साक्षात्कार लिए गए हैं, परन्तु उनका संकलन और विवेचन अब तक नहीं हुआ है । गुजराती के प्रमुख साहित्यकार श्री जेठालाल त्रिवेदी के अनुसार, 'इंटरव्यू' शब्द का प्रयोग गुजराती में नहीं होता है इंटरव्यू (मुलाकात) का साहित्य एक सम्पूर्ण नया विषय है । लेखक सर्जक की मुलाकात या प्रश्नोत्तर द्वारा जो साहित्य लिखा जाता है, वह इंटरव्यू-साहित्य है ।

गुजराती में बीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में इंटरव्यू-साहित्य का आरंभ हुआ । सबसे पहले डा. आनन्दशंकर ध्रुव ने अंबालाल शंकरलाल का इंटरव्यू लिया और 'वसंत' मासिक पत्रिका में लेख लिखा। इसी से इस स्वरूप के साहित्य का प्रारंभ हुआ । इसके बाद पत्रकारों द्वारा लेखकों से मुलाकातें और प्रश्नोत्तर होते रहे । परन्तु इंटरव्यू का काफी महत्व तो 'तपोवन' और 'कविनो प्रश्न' नाम के दो ग्रन्थों द्वारा प्रकाश में आया । इन ग्रन्थों में भी सुन्दरम् और श्री उमाशंकर जोशी के इंटरव्यू- प्रश्नोत्तर प्रकट हए हैं । इस तरह अभी कुछ समय में गुजराती में इंटरव्यू का विकास हो रहा है । इसका अधिकाधिक विकास दिन-प्रतिदिन होता रहेगा।"

12.4.4.3मलयालम में साक्षात्कार

डा. आरसु, डा. तिरुमल चन्दन आदि ने मलयालम भाषा में केरल के अनेक साहित्यकारों आदि के साक्षात्कार लिए हैं । डा. आरसु ने अनेक साक्षात्कारों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करके महत्वपूर्ण कार्य किया है । उन्होंने मलयालम लेखक माघ विक्कुट्टी (अनुवाद सारिका में प्रकाशित), ओ.बी विजयन् (अग. सि. 81), एन. पी. मुहम्मद, सिस्टर मेरी बनीया (नई धारा), उरूब (लोकराज) आदि के एक दर्जन से अधिक साक्षात्कार लिए हैं, अधिकांश के अनुवाद भी प्रस्तुत किए है।

बोध प्रश्न - 2

1. आप हिन्दी की पहली भेंटवार्ता किसे मानते हैं और क्यों ?
2. क्या प्राचीन संस्कृत-साहित्य में भेंटवार्ता के सूत्र-मिलते हैं ? तर्क सहित बताइए ।
3. हिन्दी में साक्षात्कार के उद्भव एवं विकास पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए ।
4. हाल ही में साक्षात्कार पर आपने जो पुस्तक पढ़ी हो उसके बारे में जानकारी दें ?

12.5 भेंटवार्ता-लेखन

12.5.1 प्रिन्ट मीडिया (पुस्तक, पत्र-पत्रिका)

किसी पत्र-पत्रिका आदि के लिए भेंटवार्ता-लेखन में कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है ।

12.5.1.1 शीर्षक

पहले अधिकतर साक्षात्कारकर्ता अमुक से एक भेंट, भेंटवार्ता, साक्षात्कार, मुलाकात या अमुक के साथ कुछ क्षण अथवा साक्षात्कार-पात्र का नाम शीर्षक के स्थान पर लिख दिया करते थे । जैसे-श्रीमती महादेवी वर्मा (डा. कमलेश), श्री मैथिलीशरण गुप्त (डा. रांग्रा), प्रेमचन्द्रजी के साथ दो दिन (बनारसीदास चतुर्वेदी), महान कलाकार ज्यांशार्लो के साथ (कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर), उदयशंकर भट्ट (विष्णु प्रभाकर), स. ही. वा. अज्ञेय (आशारी व्होरा), लक्ष्मीनारायण लाल से एक अन्तरंग भेंट (कन्हैयालाल

नन्दन) आदि । आजकल अनेक साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार-पात्र का कोई महत्वपूर्ण वाक्य अथवा वाक्यांश शीर्षक में देने लगे हैं - "प्रगति के नाम पर पश्चिम की अन्धाधुन्ध नकल से बड़ी मूर्खता कोई नहीं हो सकती" (निर्मल वर्मा से साक्षात्कार, नवभारत टाइम्स, 9 नवम्बर 1966), "कला और साहित्य में परिवार-नियोजन नहीं चलता" (गिरिराज किशोर से धीरेन्द्र अस्थाना की बातचीत, नवभारत टाइम्स, 21 सितम्बर, 1986), "जनवाद के लिए जरूरी है कलात्मकता" (जनसत्ता, 14 सितम्बर, 1986), "पैरों में घुंघरू के बजने तक जीना चाहता हूं (बिरजू महाराज से साक्षात्कार), "औरत मेरी फिल्मों की आत्मा है" - 'राजकपूर (नवज्योति, 7 सितम्बर, 1986), "मैं व्यक्तिगत जीवन में भी लल्लू ही रहा" (दूरदर्शन धारावाहिक 'हम लोग' में लल्लू की भूमिका करने वाले राजेश पूरी से मोहन दीप की भेंट, वही 10 अगस्त, 1986), 'आवेग से उपजा है मेरा साहित्य' (श्रीकान्त वर्मा से ब्रजेश्वर मदान की बातचीत, जनसत्ता, 1 जून, 1966), "पत्रकार का काम निर्माण है, विध्वंस नहीं" (क्षेमचन्द्र सुमन से डा. विष्णु पंकज की बातचीत, समाचार जगत) ।

कुछ लोग अन्य प्रकार के शीर्षक भी देते है- गुलाबी नगरी के आतिशबाज (गुलाब कोठारी, राजस्थान पत्रिका, 19 अक्टूबर, 1966), पन्नालाल का जीवन ही उपन्यास है (ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कथाकार पन्नालाल पटेल से शेखर जैन की बातचीत, नवभारत टाइम्स, 23 अक्टूबर, 1986), जिन्दा कंप्यूटर शकुन्तलादेवी (पंजाब केसरी, 7 सितम्बर, 1966), बद्रीनाथ से हरिभाऊ उपाध्याय (डा. विष्णु पंकज द्वारा साक्षात्कार, राष्ट्रदूत, 27 दिसम्बर, 1964), गन्ने के साथ निचुड़ती जिन्दगी (बालेन्दु दाधीच, नवभारत टाइम्स, 30 जून, 1988), दुनिया के सबसे ऊंचे और उदास शिखर के साथ (एवरेस्ट विजेता तेनजिंग से मणि मधुकर द्वारा भेंटवार्ता, नवज्योति, 13 जुलाई, 1966) । वस्तुतः शीर्षक देने की कोई निश्चित विधि नहीं है । साक्षात्कारकर्ता अपनी रुचि या मर्जी के अनुसार शीर्षक तय कर देते हैं।

12.5.1.2 भाषा-शैली

भाषा और शैली भी साक्षात्कार के प्रमुख तत्व हैं । साक्षात्कार की भाषा विषय और साक्षात्कार-पात्र के अनुसार होती है । उसका झुकाव जन-भाषा की ओर होना अपेक्षित है । साहित्यकार, पत्रकार, कलाकार, खिलाड़ी, राजनेता, जनसाधारण- सबकी भाषा अलग-अलग होती है । इनके कथन यथासंभव इन्हीं की भाषा में दिए जाते हैं । आकाशवाणी और दूरदर्शन के साक्षात्कारों में तो उनकी भाषा सीधे ही आती है । उसमें साक्षात्कारकर्ता को कुछ करना नहीं पड़ता । सामान्यतः वार्ता के समय नायक की भाषा की ओर ध्यान देना आवश्यक है । साहित्यकारों में ही पन्त, महादेवी और प्रेमचन्द, कृश्नचन्दर, विष्णु प्रभाकर की भाषा में जो अन्तर है, वह सुविदित है । साक्षात्कारकर्ता को अपनी भाषा पर भी ध्यान देना पड़ता है । भाषा के मामले में वह साक्षात्कार-पात्र के निकट रहने का प्रयास करता है । फिर भी वह साक्षात्कार-पात्र की भाषा को जन-भाषा की ओर मोड़ने का हल्का और अप्रत्यक्ष प्रयास कर सकता है, पर इसका आभास नायक को खलना नही चाहिए।

भाषा- शैली के दो उदाहरण दृष्टव्य है - "मैं सोचती थी कि केवल जिन्दगी की घटनाएं ही काफी नहीं होती । ज्यादा महत्वपूर्ण है आपका जीवन-दर्शन । आपका जीवन-दर्शन ही आपको घटनाएं चुनने की तमीज देता है । महत्वपूर्ण यह है कि उन घटनाओं को आपने क्यों चुना और उन घटनाओं

से आप क्या बने । धरती के जरखेज होने के लिए चाहे कितनी मोमबत्तियाँ जलाओ, रोशनी तो होगी ही, लेकिन उगेगा कुछ-नहीं । उगने के लिए 'रोशनी चाहिए सूरज की, मोमबत्ती की नहीं" (अमृता प्रीतम के शब्द, कन्हैयालाल नन्दन द्वारा साक्षात्कार, अन्तरंग सन् 1981)।

'लोकायतन' मध्ययुगीन, निर्गुणपरक, निवृत्तिमूलक, ऊर्ध्व साधना-पथ का काव्य न होकर आधुनिक युग के लिए उपयुक्त विश्व जीवन-मंगल की ओर उन्मुक्त काव्य है, जिसमें ब्रह्म तथा ईश्वर को जीवन से विच्छिन्न न मानकर वागर्थाविद सम्पृक्त माना गया है ।" (सुमित्रानन्दन पंत के शब्द, भेंटकर्ता डा. रणवीर रांग्रा, सृजन की मनोभूमि, पृ. 3)

12.5.1.3 व्यक्तित्व-चित्रण

जिस व्यक्ति का साक्षात्कार लिया जाता है, उसके व्यक्तित्व का चित्रण भी बहुत-से साक्षात्कारकर्ता करते हैं । ऐसे साक्षात्कारकर्ता पात्र के बाह्य-व्यक्तित्व का रेखाचित्र-सा ही खींच देते हैं- "भरी अधकटी मूंछों क छप्पर के नीचे एक स्थिर गम्भीर मुस्कराहट, मोटे चश्मे के ऐनक और धनी भोंहों के नीचे ज्ञान-गुरुत्व से भरी-सी आँखें, गदबदा बदन, ढीला अंग्रेजी लिबास और सादा रहन-सहन, सिर पर रुपहले केशों का विरल अधिराज्य ।" (डा. प्रभाकर माचवे द्वारा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का साक्षात्कार के अन्तर्गत रेखांकन, वीणा, अक्टूबर, 1939)।

12.5.1.4 देशकाल और वातावरण

कुछ साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार में देशकाल और वातावरण का भी चित्रण करते हैं । "इंटरव्यू का पात्र जिस देशकाल, अवस्था, मन: स्थिति और वातावरण में हो, उसका चित्रण सूक्ष्मता और सजीवता से करना आवश्यक है । "उदाहरण दृष्टव्य है- "ललीजी का छोटा-सा साफ-सुथरा घर हुसैनगंज में राम मंदिर के पास है । उनकी बैठक में बहुत ही सादगी दिखाई पड़ी । फर्श पर दरी और चादर थी । दीवाल पर कुछ कलैंडर और फोटो आदि । मुझे उनकी कापी देखने को मिली, जिस पर वे अपनी कविताएं अब भी कभी-कभी लिखती थी । बड़ी सादी-सी कापी थी । आधुनिक साहित्यकारों-सा बनाव-श्रृंगार या दिखावा दिखाई ही न दिया ।" (कैलाश काज्जत, श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल लली का साक्षात्कार, साहित्य-साधिकाओं, भूमिका, सन् 1962)।

12.5.1.5 पात्र की भाव-भंगिमाओं का अंकन

साक्षात्कार में उसके पात्र की भाव-भंगिमाओं ,प्रश्नों आदि की प्रतिक्रिया आदि का भी समावेश किया जाता है । बहुत-से साक्षात्कारकर्ता ऐसा नहीं करते । "जब उत्तर समाप्त हो जाता है, उत्तर के पर्यवसान पर कुछ भाव मुख पर अंकित रह जाते हैं । उनका अंक भी इंटरव्यू में उपयोगी होता है ।" बहुत-से साक्षात्कारकर्ताओं ने इसका ध्यान रखा है- "प्रश्न सुनते ही गुप्तजी ठहाका मारकर हंस पड़े और फिर मुझसे बहुत दूर देखते हुए आज से पचास वर्ष पहले के युग में पहुंच गए । इसअतीत-यात्रा से उनकी आंखों में तो और चमक आ गई, पर चेहरे पर किसी कसक के चिह्न उभर आए ।" (डा. रणवीर रांग्रा, मैथिलीशरण गुप्त का साक्षात्कार, सृजन की मनोभूमि) ।

12.5.1.6 टिप्पणी

साक्षात्कार लिखते समय साक्षात्कारकर्ता स्थान-स्थान पर अपनी टिप्पणी भी देता जाता है। ये टिप्पणियां साक्षात्कार के विकास रोचकता और महत्व वृद्धि में सहायक रहती हैं । टिप्पणियों के द्वारा ही वह घात-प्रतिघातों की व्याख्या, पात्रादि का वर्णन, अपनी प्रतिक्रिया आदि का उल्लेख करता है । टिप्पणी द्वारा साक्षात्कार की भूमिका, पात्र का परिचय, उसकी रचनाओं की सूची आदि दी जाती है। देखिए- "वे यों लिख रहे थे जैसे कोई अज्ञात शक्ति स्वयं उनकी लेखनी को आगे बढ़ा रही हो । सचमुच मैं यही इच्छा लेकर पहुंचा था कि इन आँखों से 'सेवा-सदन' और ' रंगभूमि' के लेखक को लिखते देख सकूं ।" (देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रेमचन्द : एक शब्द चित्र, कला के हस्ताक्षर, 1984) । अनेक साक्षात्कारकर्ता टिप्पणी का उपयोग नहीं करते ।

12.5.1.7 परिशिष्ट

कुछ साक्षात्कारकर्ता इसे साक्षात्कार के अंत में देकर इसमें पात्र की रचनाओं, तिथि क्रम से संक्षिप्त जीवन-वृत्त, सम्बद्ध संस्थाओं आदि की सूची, चित्र आदि दे दिया करते हैं । इसका उपयोग प्राय: पुस्तकों में ही होता है।

12.5.1.8 प्रभाव

"किसी के व्यक्तित्व-कृतित्व का प्रभाव अनेक रूपों में पड़ता है । 'प्रभाव' के सभी रूपों में चित्रण भी एक कला है । इस कला में वस्तुत: अपने आपका चित्र साक्षात्कारकर्ता खींचता है, किन्तु उस चित्र का मूल कारण लक्ष्य-व्यक्तित्व होता है। इंटरव्यूकार को प्रभाव का चित्रण करना तीन कारणों से अभीष्ट है । एक तो लक्ष्य व्यक्ति (साक्षात्कार-पात्र अथवा नायक) की शक्ति इस प्रकार प्रकट हो जाती है । दूसरे, उन विशेषताओं का उद्घाटन हो जाता है जो लक्ष्य-व्यक्तित्व के मूल में है । तीसरे, इंटरव्यू की कला में सजीवता आ जाती है । "साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कार-पात्र के व्यक्तित्व, कृतित्व और विचारों का जो प्रभाव पड़ता है, उसकी अभिव्यक्ति साक्षात्कारकर्ता वार्तालाप में कर देता है अथवा साक्षात्कार लिखते समय वह उसका समावेश कर देता है - "मैंने अनुभव किया कि नगेंद्रजी के स्वभाव में किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं है, पर साथ ही वे जिस बात को उचित समझते हैं उस पर आग्रह करने से भी नहीं चूकते ।" (डा. कमलेश, मैं इनसे मिला, दूसरा भाग, पृ. 162) । कुछ साक्षात्कारकर्ता अपने ऊपर पड़े प्रभाव का अंकन नहीं करते ।

12.5.2 इलाक्ट्राय-माध्यमों (दूरदर्शन-आकाशवाणी) के लिए

इलाक्ट्राय-माध्यम (दूरदर्शन और आकाशवाणी) इंटरनेट के लिए भेंटवार्ता मुद्रित-माध्यम (पत्र-पत्रिका आदि) से कुछ अंशों में अलग होती है । दूरदर्शन-भेंटवार्ता के समय सामने कैमरा होता है । समय की सीमा होती है । बड़ी संख्या में दर्शक भेंटवार्ता सुनने के साथ उसे देखते भी हैं । अत: ऐसी भेंटवार्ता की वीडियो-रिकार्डिग होती है । कभी-कभी वह 'सीधी-प्रसारित' (लाइव टेलीकास्ट) भी होती है । आकाशवाणी-भेंटवार्ता में भी समय-सीमा होती है । उसे श्रोता सुनते हैं, देख नहीं सकते । अत: इसकी तत्नीक के अंतर्गत भेंटवार्ता की जाती है । दूरदर्शन और आकाशवाणी के प्रतिनिधि (भेंटकर्ता)

तो इनकी तकनीक से परिचित होते हैं । यदि पत्रकार-लेखक को दूरदर्शन-आकाशवाणी पर भेंटवार्ता करनी पड़े तो इनकी तकनीक का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेने से इस कार्य में सुविधा हो जाती है।

इलेक्ट्राय-माध्यमो में साक्षात्कार, संबंधित व्यक्ति से सवाल-जवाब का विशेष महत्व है । उसका कई रूपों में उपयोग होता है । 'आप की अदालत', 'रूबरू' सरीखे कार्यक्रमों में विशिष्ट व्यक्तियों से सवाल-जवाब होते हैं । डाक्टर, वकील जैसे विशेषज्ञों से स्वास्थ्य संबंधी और कानून संबंधी समस्याओं पर आधारित कार्यक्रम चलाए जाते हैं । फीचर और वृत्तचित्रों में भी विषय से संबंधित व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएं दृश्य-विधान (विजुअल्स) और सूत्रधार की टिप्पणी के साथ पिरो दी जाती है।

इस प्रकार प्रमुख समाचारों का ब्यौरा बताते समय घटनास्थल के दृश्यों के साथ संबंधित व्यक्तियों की राय और प्रतिक्रिया प्रदर्शित की जाती है । जहां संवाददाता और कैमरामैन नहीं हो वहां से संबंधित व्यक्तियों की ध्वनि-रिकार्डिग प्रस्तुत की जाती हैं जिससे कि समाचार की प्रामाणिकता स्थापित हो- वह सजीव और प्रभावोत्पादक बने । जब संबंधित व्यक्ति की बातचीत करती छवि पर्दे पर आती है तो उसके हावभाव और बोलने की शैली भी बहुत कुछ कह जाती है, जिससे मुद्रित- माध्यम वंचित रह जाता है । दृश्य-श्रव्य माध्यम दृष्टि लिए अधिक जीवंत और प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हो रहा है।

बोध प्रश्न- 3

1. साक्षात्कार में शीर्षक भाषा-शैली और वातावरण की उपयोगिता बताइए ।
2. इलाक्ट्राय-माध्यमों में साक्षात्कार का महत्व समझाइए ।

12.6 सारांश

मनुष्य में दूसरों के विषय में जानने तथा अपने विषय में बताने की सहज प्रवृत्ति होती है। इसे क्रियात्मक रुप देने के लिए भेंटवार्ता (साक्षात्कार) का सहारा लिया जाता है । बातचीत या प्रश्नोत्तर के जरिए दूसरों के विषय में जाना जाता है इन जानकारी से दूसरों को भी अवगत कराया जाता है । यह कार्य पुस्तक पत्र-पत्रिका अथवा दूरदर्शन-आकाशवाणी के जरिए किया जाता है । यदि बातचीत (प्रश्नोत्तर) का उद्देश्य दूसरों को अवगत कराना नही है तो फिर वह मात्र वार्तालाप (कन्वर्सेशन) बनकर रह जाएगा । हिन्दी में यह विधा सितम्बर 1905 में प्रकाशित- रुप में सामने आई पाश्चात्य देशों में पत्रकारिता के अंतर्गत यह और भी पहले प्रचलित थी प्राचीन संस्कृत के अनेक वार्तालापों (जिज्ञासा-समाधान) में भेंटवार्ता विधा के सूत्र दिख पड़ते हैं विश्व की सभी भाषाओं में यह विधा प्रचलित है । भारत की भी समस्त भाषाओं में यह देखी जा सकती है । यह विश्व-प्रचलित विधा अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

12.7 शब्दावली

भेंटवार्ता-साक्षात्कार, बातचीत, इंटरव्यू मुलाकात । इसमें जिज्ञासु व्यक्ति (भेंटकर्ता) किसी विशिष्ट अथवा सामान्य व्यक्ति से प्रश्नों द्वारा जानकारी प्राप्त करता है और उसे पुस्तक, पत्र-पत्रिका, दूरदर्शन-आकाशवाणी आदि के जरिए जन-साधारण के लिए प्रस्तुत करता है ।

भेंटकर्ता - इंटरव्यूकार, साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कार लेने वाला, इन्टरव्यूअर ।

साक्षात्कार-पात्र- साक्षात्कार देने वाला । साक्षात्कार-नायक ।

पत्र-इंटरव्यू - साक्षात्कार-नायक से पूछे जाने वाले प्रश्न डाक द्वारा उसके पास भेज दिए जाते हैं, उत्तर आ जाने पर प्रश्नोत्तर जोड़कर इंटरव्यू बना लिया जाता है ।

काल्पनिक साक्षात्कार - इसमें साक्षात्कार-पात्र से वास्तव में भेंट नहीं की जाती । कल्पना से, स्वप्न में, मिलकर बातचीत की जाती है अर्थात् लेखक कल्पना के आधार पर इस प्रकार का साक्षात्कार लिख लेता है ।

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डाविष्णु पंकज .	–	हिन्दी इंटरव्यू उद्भव और विकास :
डाविष्णु पंकज .	–	जनसंचार की विधा साक्षात्कार
डा. विष्णु पंकज	–	साक्षात्कार कोश (साक्षात्कार के सौ वर्ष)
डाहर .वंशलाल शर्मा	–	हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (14-भाग)
डा कैलाशचन्द्र .भाटिया	–	हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएं
डाविश्वनाथ प्रसाद तिवारी .	–	छायावादोत्तर हिन्दी गद्यसाहित्य-
डारामचन्द्र तिवारी .	–	हिन्दी का गद्यसाहित्य-
डारामगोपाल सिंह चौहान .	–	आधुनिक हिन्दी साहित्य
'शरण ', डाआलो .ककुमार रस्तोगी	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास (2-भाग)
डारामप्रसाद मिश्र .	–	हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास
डामाधव सोनटक्के .	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भेंटवार्ता किसे कहते हैं?
2. समीक्षकों/इन्टरव्यूकारों की परिभाषाओं में आपको कौन-सी ज्यादा ठीक लगी और क्यों?
3. अंतिम दशक की भेंटवार्ताओं पर अपने समीक्षात्मक विचार लिखिए ।
4. भेंटवार्ता-लेखन में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
5. प्रिन्ट-मीडिया और इलाक्ट्राय-मीडिया के लिए भेंटवार्ता में क्या अंतर है?

इकाई 13 संस्मरण- लेखन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 संस्मरण किसे कहते हैं?
13.3 संस्मरण का स्वरूप और उसकी अवधारणा
13.4 संस्मरण का वर्गीकरण
13.5 संस्मरण की विकास-यात्रा और विभिन्न शैलियां
13.6 प्रमुख संस्मरण-रचनाएं और संस्मरण-लेखक
13.7 संस्मरण कैसे लिखें
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली
13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
13.11 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप-

- संस्मरण की परिभाषा, स्वरूप और महत्व को जान सकेंगे ।
- 'वर्गीकरण' के अंतर्गत इस विधा के विभिन्न रूपों को समझ सकेंगे ।
- प्रमुख संस्मरण-लेखकों और संस्मरण-रचनाओं की जानकारी हासिल कर सकेंगे ।
- संस्मरण विधा के विकास-क्रम का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
- संस्मरण कैसे लिखा जाए, उसकी तैयारी और ध्यान में रखने योग्य बातों की जानकारी पा सकेंगे ।
- संस्मरण विधा को पूरी तरह समझने के बाद आप एक सफल संस्मरण-लेखक बन सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

संस्मरण पत्रकारिता और साहित्य की एक प्रमुख विधा है । अनेक पत्रकारों और साहित्यकारों ने समय-समय पर संस्मरण लिखे हैं । ये पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हुए हैं । समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में संस्मरण छपते रहते हैं । विभिन्न अभिनन्दन-ग्रन्थों और स्मृति-ग्रन्थों में सम्बद्ध व्यक्तियों के संस्मरण विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं । अवसर विशेष पर किसी पत्रकार को विशिष्ट व्यक्ति के संस्मरण लिखने पढ़ते हैं । किसी विशिष्ट व्यक्ति, राजनेता, साहित्यकार, पत्रकार, कलाकार, संगीत, खेलकूद आदि क्षेत्र से जुड़े व्यक्ति को बड़ा पुरस्कार मिलने, सम्मान होने, निधन होने व अन्य अवसर पर विशेष रूप से संस्मरण लिखे जाते हैं । संस्मरण लिखना भी एक कला है । यह कला पत्रकार या साहित्यकार को विशेष रूप से आनी चाहिए । देश और विदेशों में हर भाषा में संस्मरण लिखे जाते

है । दूरदर्शन और आकाशवाणी पर भी संस्मरणों का प्रसारण होता है । अनेक बार व्यक्ति स्वयं अपने संस्मरण लिखता अथवा सुनाता है।

13.2 संस्मरण किसे कहते हैं?

वैसे तो संस्मरण-लेखन भारत में एक पुरानी विधा है, परन्तु वर्तमान रूप मे यह विधा पश्चिम से बन-संवर कर आई है । सन् 1932 में मुंशी प्रेमचन्द ने 'हंस' का 'संस्मरण अंक' निकाला था । नन्ददुलारे वाजपेयी संस्मरण को आत्म-प्रचार का साधन मानते थे । प्रेमचंद उनसे सहमत नहीं । वे संस्मरण को एक स्वतंत्र और रचनात्मक विधा मानते थे । अप्रैल, 1941 में 'साधना' (डा. सत्येन्द्र) का 'परिचयांक' निकला, जिसमें अनेक संस्मरण भी प्रकाशित हुए।

संस्मरण आत्मकथा से अलग विधा है । आत्मकथा में केवल अपनी ही हो सकती है जबकि संस्मरण अपने विषय में तथा दूसरों के विषय में भी हो सकते हैं । आधुनिक संस्मरण विधा का विकास शनैः शनैः, बहुत धीरे, हुआ । इसे विधागत मान्यता भी काफी देर से मिली । आत्मकथा के अलावा जीवनी, साक्षात्कार, रेखाचित्र, रिपोर्ताज व यात्रावृत्त संस्मरण से अलग स्वतंत्र विधाएं हैं ।

1901 में अंबिकादत्त व्यास की 'निज वृत्तान्त' शीर्षक से एक रचना सामने आई, जिसमें आधुनिक संस्मरण विधा का बीज-रूप दृष्टिगोचर होता है । श्यामसुन्दरदास के 'साहित्यालोचन' (1922) ग्रंथ में इस विधा का नामोल्लेख तक नहीं है । परन्तु गुलाबराय ने अपनी कृति 'काव्य के रूप' में इस विधा का विवेचन किया है।

डा. रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार - "संस्मरण गद्य-साहित्य की एक आत्मनिष्ठ विधा है । आत्मनिष्ठ इस अर्थ में कि संस्मरण-लेखक मन की निजी अनुभूतियों एवं संवेदनाओं की पीठिका पर सर्जन करता है । संस्मरण के अन्तर्गत बहुधा वैयक्तिक जीवन अथवा व्यक्तिगत सम्पर्क में आए हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के किसी विशिष्ट क्षण, प्रहर अथवा कुछ अधिक विस्तृत कालखंड की स्मृतियों को अंकित किया जाता है । इसके मूल में अनेक प्रकार की प्रेरणाएं कार्य कर सकती हैं किन्तु व्यक्तिगत जीवन अथवा विशिष्ट चरित्र के पक्ष-विशेष को उजागर करना इसका मुख्य उद्देश्य माना गया है । संस्मरण-लेखक कई अर्थों में इतिहास के लिए भी बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करता है क्योंकि वह सम सामयिक जीवन और चतुर्दिक परिवेश का चितेरा होता है । वह जिन लोगों को आधार बनाकर संस्मरण-रचना करता है, वे बहुधा बड़े और विशिष्ट लोग होते हैं । निजी जीवन के सन्दर्भ में उसके लेखन का मूल्य तब आंका जाता है । जब उसके स्मृति-कोष में समाज को देने योग्य कुछ अनुभव सुरक्षित हों । लेकिन संस्मरण-लेखक इतिहासकार नहीं होता । संस्मरण इतिहास की वस्तुपरक भंगिमा से बहुत दूर, साहित्य की भावानुभूतिपरक ललित विधा है । संस्मरण की लेखन-शैली प्रायः निबन्ध अथवा ललित गद्य शैली के निकट होती है । कभी-कभी उसमें कहानी की शैली का भी पूरा आस्वाद आ जाता है । आत्मकथा और जीवनी साहित्य की दृष्टि से संस्मरण बड़े मार्के की विधा है । इसे जीवनी और आत्मकथा का मूलाधार समझना चाहिए । इसमें उन दोनों के प्रायः सभी तत्व सुरक्षित हैं । अन्तर केवल इतना है कि संस्मरण जीवन के खंडरूप को लेकर चलता है जबकि उक्त विधाएं सम्पूर्ण जीवन को अपना उपजीव्य बनाती हैं । जीवनी और आत्मकथा के सन्दर्भ में संस्मरण की दो शैलियां मानी गई है । पाश्चात्य साहित्य में ये दोनों भेद भली-भांति प्रचलित हैं । जीवनी-साहित्य के निकट पड़ने वाली अर्थात् किसी अन्य व्यक्ति के स्मृति-सन्दर्भ का अंकन करने वाली संस्मरण विधा को 'मेमायर्स'

की संज्ञा दी गई है । आत्मवृत्त-निरूपक संस्मरण की विधा को रेमिनिसेंसज' कहा जाता है ।" (हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग- 14, पृ. 483-84)।

संस्मरण के विषय में निम्नांकित विचार भी उल्लेखनीय हैं -

'स्मरण' और 'संस्मरण' शब्द विषय और प्रकृति की अव्यवस्था को सूचित करते हैं, लेखक लिखते समय जो भी याद कर सकता है, उन्हीं का इनमें वर्णन होता है।

- एडगर जानसन (वन माइटी टारण्ट, पृ. 125)

संस्मरण सम्यक् स्मरण है । सम्यक् से तात्पर्य आत्मीयतापूर्वक, गम्भीरता से । लेखक जो स्वयं देख-सुनकर करता है, संस्मरण में उसी की एक परम संवेदनात्मक अनुभूति रहती है ।

डा. विश्वनाथ शुक्ल
(रेखाचित्र और संस्मरण, पृ. 82, साहित्य सन्देश,
साहित्यशास्त्र-विशेषांक, 1962

संस्मरण और साक्षात् दाती (इंटरव्यू) में केवल इतना अंतर है कि संस्मरण व्यक्ति, वस्तु, घटना सबका होता है, उससे लेखक का व्याखगत सम्बन्ध चाहे स्थापित हुआ हो या वह न हुआ हो, किन्तु इंटरव्यू केवल किसी व्यक्ति का ही चित्रण करता है।

डा. गोविन्द त्रिगुणायत
(शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त
भाग 2, पृ. 500)

बोध प्रश्न - 1

1. संस्मरण किसे कहते हैं?
2. संस्मरण का क्या महत्व है?
3. आप अपना एक संस्मरण लिखिए ।
4. संस्मरण और इंटरव्यू में क्या अंतर है?

13.3 संस्मरण का स्वरूप और उसकी अवधारणा

संस्मरण साहित्य और पत्रकारिता की प्रमुख विधा है । यह एक स्वतंत्र और समग्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित है । उसमें रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज साक्षात्कार, यात्रा-वृत्तन्त, निबन्ध, समीक्षा आदि के तत्व न्यूनाधिक मात्रा में समाविष्ट हो जाते हैं परन्तु ये सभी स्वतंत्र विधाएं हैं । संस्मरण में इनका समावेश सहायक रूप में ही हो सकता है । इनके अधिक मिश्रण से संस्मरण, संस्मरण न रहकर वह इन सब की खिचड़ी बनकर रह जाएगा । अत: इस विधा का स्वतंत्र और शुद्ध लेखन आवश्यक है।

संस्मरण में कभी-कभी निबन्धात्मक विवरण लिखने होते हैं, पर वे विस्तृत और अखरने वाले नहीं होने चाहिए । निबन्ध में एक-एक शब्द बंधा हुआ, कसावट लिए हुए होता है । डा. गुलाबराय के अनुसार, "निबन्ध एक सीमित गद्य-रचना है, जिसमें कार्य-कारण की श्रृंखला के साथ विचार निबद्ध होते हैं और उन विचारों में व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट होती है।"

संस्मरण में अति संक्षिप्त रूप में निबन्धात्मक लेखन तो हो सकता है पर उसे निबन्ध नहीं बनाया जा सकता । संस्मरण में पात्रों के मध्य वार्तालाप या संवाद भी होते हैं, परन्तु संस्मरण को कोरा संवाद नहीं बनाया जा सकता । संस्मरण में लेखक या अन्य पात्र नायक या अन्य से प्रश्न भी पूछ सकता है या दूसरे के प्रश्न का उत्तर भी दे सकता है, जो साक्षात्कार की प्रवृत्ति है । परन्तु संस्मरण में प्रश्नोत्तर का समावेश सीमित मात्रा में ही होना चाहिए । अधिक प्रश्नोत्तर देकर उसे साक्षात्कार नहीं बनाया जा सकता । डा. विष्णु पंकज के अनुसार 'साक्षात्कार में व्यक्ति किसी विशिष्ट पात्र से मिलकर प्रश्नों के माध्यम से उससे वार्तालाप करके उसके जीवन, व्यक्तित्व-कृतित्व, विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है ।' संस्मरण में प्रश्नोत्तर का केवल सहायक रूप में ही समावेश किया जा सकता है।

संस्मरण में कमी-कभी पात्र का शाब्दिक रेखाचित्र खींचकर उसमें रेखाचित्रात्मकता का समावेश किया जाता है । प्राय: नायक की बाहयाकृति-अंकन के लिए ऐसा किया जाता है । परन्तु ये दोनों स्वतंत्र विधाएं हैं । डा. भगीरथ मिश्र के अनुसार, "सम्पर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को, देखी-सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में इस प्रकार उभारकर रखना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव: अंकित हो जाए, रेखाचित्र या शब्दचित्र कहलाता है।"

संस्मरण में रेखाचित्र (शब्दचित्र) का समावेश इस सीमा तक ही किया जाता है कि वह संस्मरण के विकास में सहायक हो । जीवनी और संस्मरण दोनों ही स्वतंत्र और समग्र विधाएं हैं । डा. रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार, "जीवनी के अन्तर्गत अन्य व्यक्तियों का जीवन-चरित्र लिखा जाता है । जीवनीकार इतिहास से या समाज से, अतीत से या वर्तमान से अपनी रचना के प्रधान-पुरुष का चयन करके उसे सम्पूर्ण समग्र जीवन को देशकाल-गत परिस्थितियों के अनुसार अवतरित करता है।"

संस्मरण में भी लेखक अपने या दूसरे व्यक्ति (नायक) के जीवन-वृत्त का संक्षिप्त उल्लेख कर सकता है । अत्यधिक उल्लेख करके संस्मरण को जीवनी ही नहीं बना देना चाहिए । संस्मरण में अति संक्षेप में आत्मकथा (एकांश या एकाधिक अंश) का समावेश किया जा सकता है, परन्तु पूरे संस्मरण को सम्पूर्ण आत्मकथा नहीं बनाया जा सकता । आत्मकथा एक पृथक, स्वतंत्र, समग्र विधा है ।" व्यक्तिगत जीवन अथवा आत्मचरित्र के यथातथ्य किन्तु रोचक एव साहित्यिक समांतर को आत्मकथा कहते हैं।"

"डायरी में लेखक की अपनी दिनचर्या तथा दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाओं का वर्णन रहता है । यह तिथिक्रम से लिखी जाती है ।" अत: डायरी संस्मरण से भिन्न स्वतंत्र विधा है । डायरी संस्मरण का स्थान नही ले सकती । केरीकेचर भी संस्मरण से अलग विधा है । डा. रामचन्द्र तिवारी के अनुसार "किसी व्यक्ति के शील-वैचित्र्य के उभरे हुए पक्ष का हास्यगर्भित व्यंग्यपूर्ण चित्रण, जैसा प्राय: कार्टूनों में किया जाता है, केरीकेचर कहा जा सकता है ।" इस प्रकार केरीकेचर का प्रयोग संस्मरण में नहीं किया जा सकता।

रिपोर्ताज भी संस्मरण से पृथक् विधा है । डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय के अनुसार, "रिपोर्ताज में घटना का यथावत् वर्णन और लेखक का उत्साह ये दो मुख्य तत्व होते हैं । यहां भी लेखक किस

दृष्टि से घटना को देखता है और उस 'होने' को अपने 'स्व' से कैसे जोड़ता है, यह बहुत महत्वपूर्ण होता है ।" न तो रिपोर्ताज संस्मरण होता है और न संस्मरण रिपोर्ताज । दोनों स्वतंत्र विधाएं हैं।

यात्रा-वृत्तांत (यात्रावृत्त) भी एक स्वतंत्र और संपूर्ण विधा के रूप में मान्य हो गया है । इसमें लेखक अपनी यात्रा के वृत्तान्त में संस्मरण भी लिखता है । अब इसके स्वतंत्र विधा बन जाने से इसे संस्मरण के अंतर्गत नहीं लिया गया है । वैसे संस्मरण में भी लेखक या नायक अपनी किसी यात्रा का संक्षिप्त उल्लेख कर सकता है । यदि वह यात्रा वृत्तान्त को ही प्रमुखता देता रहेगा तो वह 'यात्रा-वृत्तांत' विधा के अन्तर्गत आएगा।

अन्य विधाएं तो संस्मरण से और भी दूर हैं, अत: उनसे इस विधा की तुलना अपेक्षित नहीं है ।

बहुत-से लेखक, संपादक. आलोचक संस्मरण को रेखाचित्र, निबन्ध, आत्मकथा, जीवनी. रिपोर्ताज आदि विधाओं के मध्य रख देते हैं, जिससे भ्रम उत्पन्न होता है । साक्षात्कार आदि के साथ भी ऐसा हुआ है ।

13.4 संस्मरण का वर्गीकरण

संस्मरण अनेक प्रकार के होते हैं । इन्हें निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता हैं -

- स्वयं के
- सम्बद्ध व्यक्तियों के
- असम्बद्ध व्यक्तियों के

प्रथम वर्ग में लेखक स्वयं अपने संस्मरण लिखता है । वह अपने ही जीवन के विभिन्न प्रसंगों का उल्लेख करता है । दूसरे वर्ग में वे संस्मरण आते हैं जिनमें लेखक नायक या अन्य व्यक्तियों के संस्मरण लिखता है, जिससे या जिनसे वह स्वयं भी सम्बद्ध (जुड़ा हुआ) होता है । तीसरे वर्ग में वे संस्मरण होते हैं जो लेखक द्वारा ऐतिहासिक या वर्तमान उन व्यक्तियों के लिखे जाते हैं, जिनसे वह स्वयं जुड़ा हुआ नहीं होता । दिवंगत व्यक्तियों के विषय में लिखे गए संस्मरण दूसरे या तीसरे वर्ग में आ सकते है।

मेरी असफलताएं (गुलाबराय), जो न भूल सका (कौशल्यायन), बचपन की स्मृतियां (राहुल सांकृत्यायन), साधना के पथ पर (हरिभाऊ उपाध्याय), बाल्य जीवन (आनन्दशंकर माधवन), जब में सोलह साल की थी (आशारानी व्होरा), मेरी पाठशालाएं (राजशेखर) आदि पूर्वोक्त पहले वर्ग में आनी वाली रचनाएं हैं । पथ के साथी (महादेवी वर्मा), प्रसाद और उनके समकालीन (विनोदशंकर व्यास), मृत्युंजय रवीन्द्रनाथ (हजारीप्रसाद द्रिवेदी), दिव्य जीवन की झांकियाँ (यशपाल जैन), जाने -अनजाने (विष्णु प्रभाकर), बंगला देश के सन्दर्भ में (विष्णुकान्त शास्त्री), मैं जिनके सम्पर्क में आया (डा. विष्णु पंकज), दिनकर : एक सहज पुरुष (शिवसागर मिश्र), प्रेरक प्रसंग (रामनारायण उपाध्याय), याद रही मुलाकातें (अक्षयकुमार जैन), बाबा नागार्जुन (डा. नरेन्द्र कोहली), हजारीप्रसाद दिवेदी : कुछ: संस्मरण (डा. कमलकिशोर गोयनका), आदि पूर्वोक्त दूसरे वर्ग में आने वाली रचनाएं हैं । तीसरे वर्ग में 'महाराणा प्रताप के प्रेरक जीवन प्रसंग', महापुरुषों के संस्मरण आदि रचनाओं का समावेश किया जा सकता है।

13.5 संस्मरण की विकास-यात्रा और विभिन्न शैलियां

पं. बालकृष्ण दारा लिखित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के संस्मरण' 'समालोचक' (सित. 1905) में छपे थे । महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी इसी अवधि में बहुत से संस्मरण लिखे ।

संस्मरण-साहित्य में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने अपने गहन अनुभवों और लेखन-प्रौढ़ता की छाप इस विधा पर छोड़ी है । पं. श्रीराम शर्मा के शिकार-विषयक संस्मरण बेजोड़ हैं । इन दोनों लेखकों ने अनेक नेताओं और राष्ट्रीय आन्दोलनों से सम्बद्ध भी बहुत्से उल्लेखनीय संस्मरण प्रस्तुत किए हैं । भाषा-शैली की दृष्टि से उनकी रचनाएं रोचक और सहज हैं । राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी और महादेवी वर्मा के संस्मरण काव्यात्मक और भावपूर्ण बन पड़े हैं । इनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, लच्छेदार और मुहावरेदार है । इन लोगों ने समाज के सामान्य व्यक्तियों के बड़े सजीव संस्मरण लिखे हैं । महादेवीजी ने बड़े साहित्यकारों और समाज के साधारण पात्रों, दोनों प्रकार के व्यक्तियों के संस्मरण लिखे हैं । उन्होंने निराला जैसे महाकवि के संस्मरण लिखे हैं तो 'घीसा' जैसे अत्यंत गरीब बालक के विषय में भी संस्मरण लिखा है।

पं. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर विशिष्ट शैलीकार हैं । उनके संस्मरणों में भी यह विशिष्ट शैली बरकरार है । उनकी अभिव्यक्ति में सहजता और अनुभूति-सौष्ठव है । उनकी रचनाएं हृदय को छू लेती हैं । रामनाथ सुमन और शांतिप्रिय द्विवेदी की संस्मरण कला परिमार्जित और मार्मिक है । राजनेताओं के विषय में लिखे गए सुमनजी के संस्मरण बड़े ही सजीव बन पड़े हैं । हजारीप्रसाद द्विवेदी ने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विषय में बड़े सजीव संस्मरण लिखे हैं । महाराजकुमार डा. रघुवीरसिंह द्वारा लिखे गए ऐतिहासिक संस्मरण विशेष उल्लेखनीय हैं । अज्ञेय ने संस्मरण विधा को एक नई दिशा प्रदान की है । सेठ गोविन्ददास की कृति 'स्मृतिकण' में अनेक उल्लेखनीय संस्मरण हैं । नरेन्द्र की 'गांधी: कुछ स्मृतियां' और जानकीवल्लभ शास्त्री की 'स्मृति के वातायन' भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । इसी क्रम में रायकृष्णदास ('जवाहर भाई'), गंगाप्रसाद पाण्डेय ('ये दृश्य: ये व्यक्ति'), विष्णु प्रभाकर (जाने-अनजाने, ' कुछ शब्द: कुछ रेखाएं') हरिभाऊ उपाध्याय ('साधना के पथ पर'), मोहनलाल महतो वियोगी ('सात सुमन'), तनसुखराम ('विस्मृति के भय से ', 'जीवन के कुछ क्षण') उल्लेखनीय हैं।

यशपाल जैन और अक्षयकुमार जैन भी प्रमुख संस्मरण-लेखक हैं । इनकी अनेक पुस्तकों में ढेर सारे संस्मरण संकलित हैं । देवेन्द्र सत्यार्थी ने अनेक संस्मरण लिखे हैं । मन्मथनाथ गुप्त दारा लिखित 'क्रान्तियुग के संस्मरण' अविस्मरणीय हैं । शिवराम पाण्डेय ने 'मदनमोहन के सम्बन्ध की पुरानी स्मृतियां' लिखी है । प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्त के संस्मरण भी उल्लेखनीय हैं । शिवपूजन सहाय, सत्यवती मलिक, उपेन्द्रनाथ अश्क, राहुल सांकृत्यायन, किशोरीदास वाजपेयी, जगदीशचन्द्र माथुर, अमृतलाल नागर, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह दिनकर, डा. हरिवंशराय बच्चन, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, शिवानी, शैलेश मटियानी, कमलेश्वर, शरद देवड़ा, राजेन्द्र यादव, क्षेमचन्द्र सुमन, बेचन शर्मा आदि का भी इस विधा के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान है।

आजादी से पूर्व 'सरस्वती' में अनेक लेखकों द्वारा लिखित संस्मरण समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं ।'रामकुमार खेमका, जगतबिहारी सेठ, पाण्डुरंग खानखोजे, प्यारेलल मिश्र, काशीप्रसाद जायसवाल, भोलादत्त पांडेय के नाम भी सम्मिलित हैं । ये संस्मरण 'सरस्वती' के प्रकाशन के आरंभ से ही प्रकाशित होने लगे थे । बाद में भी समय-समय पर अनेक संस्मरण प्रकाशित हुए ।

डा. रघुवंश ने अनेक संस्मरण लिखे हैं, जो उनकी एक पुस्तक में संकलित हैं । डा. माचवे के संस्मरण पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं । डा विष्णु पंकज ने डा. सम्पूर्णानन्द, हरिभाऊ उपाध्याय, डा. हरिवंशराय बच्चन, विष्णु प्रभाकर, डा. बनारसीदास चतुर्वेदी आदि के संस्मरण लिखे हैं, जो धारावाहिक रूप से दैनिक 'जागरण' में छपे हैं । उनके द्वारा लिखे गए बहुत सारे संस्मरण उनकी पुस्तक 'नवरंग' में भी प्रकाशित हुए है । ये विभिन्न क्षेत्रों के बहुत से व्यक्तियों के विषयमें लिखे गए है । कुछ समालोचकों ने डा. पद्मसिंह शर्मा कमलेश की पुस्तक 'मैं इनसे मिला' (दो भाग) को संस्मरण-संग्रह बताया है, जबकि वह विशुद्ध रूप से इंटरव्यू-संग्रह है । डा. प्रेमशंकर ने आचार्य नरेंद्रदेव के भावपूर्ण संस्मरण प्रस्तुत किए हैं । डा. रवीन्द्र समर ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और अन्य व्यक्तियों के संस्मरण लिखे हैं, जो 'राष्ट्रवाणी' (बम्बई) और 'ज्ञानोदय' (कलकत्ता) में प्रकाशित हुए हैं।

सूर्यकरण पारीक ने 'चित्तोड के संस्मरण' लिखे हैं । जवाहिरलाल जैन ने 'जीते जागते चित्र' में अनेक संस्मरण प्रस्तुत किया हैं । लेखक की चिंतन-वृत्ति का इन पर भी प्रभाव है । 'मधुमती' पत्रिका में 'वे दिन वे लोग' स्तंभ के अंतर्गत अनेक संस्मरण छपे हैं । अक्षयकीर्ति व्यास ने हरिऔध और रत्नाकर के मार्मिक संस्मरण लिखे हैं । मोहे बिसरत नाहिं (गोपालदास) भी एक महत्वपूर्ण संस्मरण-संग्रह है। राजेन्द्रमोहन भटनागर, तारादत्त निर्विरोध दारा लिखित संस्मरण 'मधुमती' में छपे हैं । रामेश्वर विद्यार्थी द्वारा लिखित अनेक संस्मरण सामने आए हैं । युगलकिशोर चतुर्वेदी ने अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के संस्मरण लिखे हैं । मंगल बिहारी द्वारा लिखित प्रशासनिक अनुभव संस्मरणों के रूप में सामने आए हैं । कर्पूरचन्द्र कुलिश, निरंजननाथ आचार्य, भोलानाथ चतुर्वेदी, डा. विष्णुचन्द्र पाठक द्वारा लिखित अनेक संस्मरण प्रकाशित हो चुके हैं । अविनाश श्रीवास्तव, आनन्दीप्रसाद माथुर, आशनारायण शर्मा, ओंकारनाथ चतुर्वेदी, कमलाकान्त शर्मा, कमल, यशवन्तसिंह नाहर, डा. रामशंकर दिवेदी, शकुन्तला सिरोठिया, डा. शिवप्रसाद सिंह आदि ने भी समय-समय पर संस्मरण लिखे हैं ।

13.6 प्रमुख संस्मरण-रचनाएं और संस्मरण-लेखक

1936 सेवा ग्राम की डायरी	श्रीराम शर्मा
1937 क्रांतियुग के संस्मरण	मन्मथनाथ गुप्त
1939 शेष स्मृतियां	महाराजकुमार रघुवीरसिंह
1939 झूठ सच	सियारामशरण गुप्त
1941 अतीत के चलचित्र	महादेवी वर्मा
1942 हमारे नेता	रामनाथ सुमन
1943 स्मृति की रेखाएं	महादेवी वर्मा
1945 माटी की मूरतें	रामवृक्ष बेनीपुरी
1946 मेरी असफलताएं	गुलाबराय
1946 पथचिह-	शांतिप्रिय दिवेदी
1948 जो न भूल सका	भदंत आनन्द कौशल्यायन
1948 सन् बयालीस के संस्मरण	श्रीराम शर्मा

1949 रेखाएं बोल उठी	देवेन्द्र सत्यार्थी
1950 मैंने देखा	भगवतशरण उपाध्याय
1952 संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी
1953 वटपीपल-	डारामधारीसिंह दिनकर .
1953 स्मरणयात्रा-	काका साहब कालेलकर
1956 पथ के साथी	महादेवी वर्मा
1956 वे और हम	राधिकारमण प्रसाद सिंह
1958 दीप जले शंख बजे	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
1959 तब और अब	राधिकारमण प्रसाद सिंह
1960 आत्मनेपद	अज्ञेय
1960 प्रसाद और उनके समकालीन	विनोदशंकर व्यास
1963 मृत्युंजय रवीन्द्रनाथ	हजारीप्रसाद द्विवेदी
1963 बड़ों से मिलने के विचित्र अनुभव	डामहेशनारायण .
1965 जानेअनजाने-	विष्णु प्रभाकर
1965 दिव्य जीवन की झांकियां	यशपाल जैन
1965 बाल्य जीवन	आनन्दशंकर माधवन
1966 इन लोगों के मध्य	विष्णुचन्द्र शर्मा
1966 सेतु निर्माता	यशपाल जैन
1969 आखें मेरी बाकी उनका	डामधुकर गंगाधर .
1972 दूर वन में	अजितकुमार
1973 बंगलादेश के सन्दर्भ में	विष्णुकान्त शास्त्री
1975 सीधी सादी यादें	दुर्गावती सिंह
1976 मैं देखता चला गया	कर्पूरचंद कुलिश
1977 राष्ट्र की विभूतियां	यशपाल जैन
1977 आलोक की रेखाएं	यशपाल जैन
1977 स्मरण को पाथेय बनने दो	विष्णुकांत शास्त्री
1979 मुस्कराता अतीत	उदयराज सिंह
1980 कथाओं की अंतर्कथाएं	रामनारायण उपाध्याय
1980 सृजन स्मरण	डाललित शुक्ल .
1982 दिनकरएक सहज पुरुष :	शिवसागर मिश्र
1982 पर हार नहीं मानी	भोलानाथ तिवारी
1983 प्रेरक प्रसंग	रामनारायण उपाध्याय
1983 प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन	डात्रिलोकीनाथ व्रजबाल .
1983 मैं इनसे मिली (प्रथम)	आशारानी व्होरा

1984 अदालत के झरोखे से	एनराय .के .
1984 पुलिसनामा	एनराय .के .
1984 जब मैं सोलह साल की थी	आशारानी व्होरा
1984 जिनकी छाया सुखकर है	रामनारायण उपाध्याय
1984 हम इनके ऋणी हैं	विष्णु प्रभाकर
1984 शिखरों की छांह में	अक्षयकुमार जैन
1985 मैं इनसे मिली (द्वितीय)	आशा रानी व्होरा
1985 जिन्हें भूल न सका	रामनारायण उपाध्याय
1986 नवरंग	डाविष्णु पंकज .
1987 बाबा नागार्जुन	डानरेन्द्र कोहली .
1989 लोठकपाट के पीछे	डाश्रवणकुमार गोस्वामी .
1989 स्वराज्य और घनश्यामदास	डालक्ष्मीनारायण लाल .
1989 याद यायावर की	शंकरदयाल सिंह
1989 मैंने इन्हें जाना	शंकरदयाल सिंह
1989 सुरमित स्मृतियां	शंकरदयाल सिंह
1989 गवईमन और गांव की यादें	रामनारायण उपाध्याय
1989 जिन्हे भूल न सका	रामनारायण उपाध्याय
1990 स्मृति के अक्षर	निशांत केतु
1990 हजारी प्रसाद दिवेदी कुछ संस्मरण :	डाकमलकिशोर गोयनका .
1991 संस्मरणों की मांग	रामनारायण उपाध्याय
1992 स्मृतियां उस चंदन के वन की	विष्णुकांत शास्त्री
1993 स्मृति शेषमेरे समकालीन :	डाविजयेन्द्र स्नातक .
1994 हम अनिकेत	नरेश मेहता
1995 जो मैने जिया	कमलेश्वर
1995 छोटी दुनिया के बड़े लोग	डारमाशंकर श्रीवास्तव .
1995 कालजयी स्मृतियां	डाकृष्ण चन्द्र गुप्ता .
1995 मेरी आंखों की खिड़की से	डारामेश्वरलाल खंडेलवाल .
1996 यादों की चादर	उदयराज सिंह
1996 प्रतिनाद	डानरेन्द्र कोहली .
1996 हमसफर मिलते रहे	विष्णु प्रभाकर
1996 यादों की छांव मे	विष्णु प्रभाकर
1997 सर्पीले संस्मरण	प्रेमचन्द सक्सैना
1997 वह जो आईना है	प्राणाधार मधुरेश
1997 यादों के चिराग	कमलेश्वर

1997 आधी रात का सफर	वल्लभ डोभाल
1997 वामन नाचे	डॉरामनरेश मिश्र हंस .

<u>अन्य उल्लेखनीय संस्मरण</u>

अक्षयकुमार जैन	याद रही मुलाकातें
	अमिट रेखाएं
अज्ञेय	स्मृतिलेखा-
अमृतलाल नागर	टुकड़ेटुकड़े दास्तान-
	जिनके साथ जिया
अमृता प्रीतम	रसीदी टिकट
अरुण	महापुराषों के संस्मरण
अवधेशकुमार	पटरियों पर राजमहल
इंदु जैन	पत्तों की तरह चुप
उमाशंकर शुक्ल उमेश	जिनसे मै मिला
	स्मृति के दस्तावेज
डाओमप्रकाश सिंहल .	सत्यार्थी के साथसाथ-
डा(.संपा) कन्हैयालाल शर्मा .	यादों के वातायन से
कन्हैयालाल नन्दन	घाटघाट का पानी-
डाकेदारनाथ अवस्थी .	शचीप्रिया
केसरीकुमार	संस्मरण ओर संस्मरण
क्षेमचन्द्र सुमन	जानेअनजाने-
चतुरसेन शास्त्री	सुगंधित संस्मरण
डाजगदीशप्रसाद वाजपेयी .	साहित्यिक संस्मरण
जैनेन्द्र	मैथिलीशरण गुप्त
तुषारकान्ति घोष	लौकितअलौकित-
नारायणदास पुरोहित	मनमौजी
निश्तर खानकाही	कैसेकैसे लोग मिले-
नीलम संजीव रेड्डी	राष्ट्रपति के संस्मरण
पद्मा सचदेव	मैं कहती हू आंखन देखी
डापरमलाल गुप्त .	अतीत के अनमोल क्षण
परमानन्द आनन्द	क्या मैं पंडा हूं
भगवानदास सेठ	गंधसुगंध-
डामक्खनलाल शर्मा .	तीन दिन का प्रवास
मन्मथनाथ गुप्त	सिर पर कफन बांधकर
महादेवी वर्मा	संस्मरण, मेरे प्रिय संस्मरण

महादेवी वर्मा	श्रंखला की कड़ियां, पथ के साथी
महादेवी वर्मा	स्मृति चित्र
माखनलाल चतुर्वेदी	समय के पांव
मैथिलीशरण गुप्त	श्रद्धांजलि संस्मरण
मोहनदास नेमीशराय	बाबा साहब और उनके संस्मरण
यज्ञदत्त शर्मा	अंतर की आवाज
रवीन्द्र कालिया	कामरेड मोनालिजा
रवीन्द्र कालिया	मेरी पाठशालाएं
राजेश्वर व्यास	इंकलाब
डाराजेन्द्र मिलन .	लन्दन के वे दिन
राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह	रोचक प्रसंग
रामचन्द्र महाजन अमरेश	मधुर स्मृति
रामचरण शर्मा व्याकुल	बीती यादों के पड़ाव
	मेरी अक्षर यात्रा के पदक्रम
डारामधारीसिंह दिनकर .	संस्मरण और श्रद्धांजलि
रामनाथ सुमन	मैंने स्मृति के दीप जलाए
रामनारायण उपाध्याय	आओ अब घर चलें,
	क्रोंच की चीख,
	धुंधले कांच की दीवार
राहुल साकृत्यायन	जिनका मैं कृतज्ञ
	मेरे सहयोग के साथी
	बचपन की स्मृतियां
विजयकुमार गौड़	पहियों पर नाविक
डॉ विष्णु पंकज	कार में कविसम्मेलन-
	भूतों का सम्मेलन
	बड़े लोगों के हास्यप्रसंग-
	मैं जिनके सम्पर्क में आया
विष्णु प्रभाकर	कुछ शब्द कुछ रेखाएं :
	जानेअनजाने -
विन्दु अग्रवाल	भारतभूषण अग्रवाल कुछ यादें :
डाशंकरदयाल शर्मा .	हमारे प्रेरणापुंज
शिवपूजन सहाय	स्मृति शेष
सोमनाथ पाठक	भीलों के बीच बीस वर्ष
श्रीनारायण चतुर्वेदी	मनोरंजक संस्मरण

श्रीनारायण चतुर्वेदी	पावन स्मरण
श्रीनारायण चतुर्वेदी	निजी वार्ता
सत्यजितराय	जब मैं छोटा था
सुनीता बुद्धिराजा	टीस का सफर
सुमित्रा चरतराम	स्मृतियों के स्वर
सुरेश सिंह	यादों के झरोखे
हरिवंशराय बच्चन	क्या भूलूँ क्या याद करूं

13.7 संस्मरण कैसे लिखें ?

नवोदित लेखकों को सामान्यत: अपने स्वयं के जीवन के संस्मरण नहीं लिखने चाहिए । जब तक वे स्वयं कोई असाधारण, बहुत ही उल्लेखनीय कार्य न कर लें तब तक उनके द्वारा स्वयं के जीवन पर आधारित संस्मरण लिखना उपयुक्त न होगा। हां, दूसरों के जीवन से सम्बद्ध संस्मरण वे लिख सकते हैं, जिनसे वे स्वयं भी जुड़े हो सकते हैं । जिन विशिष्ट व्यक्तियों के सम्पर्क में वे आए हैं अथवा जिनसे वे मिले हैं उनके संस्मरंण लिखे जा सकते हैं । ऐतिहासिक (राम, कृष्ण, राणा प्रताप आदि) पात्रों के जीवन-प्रसंगों को संस्मरण कहना उपयुक्त नहीं होगा, क्योंकि लेखक उनसे सम्बद्ध, जुड़ा नहीं होता । वस्तुतः संस्मरण वे प्रसंग ही है जिनसे लेखक भी किसी न किसी रूप में जुड़ा होता है । वे घटनाएं उसके जीवन में घटी हों । यदि दूसरों के जीवन में घटी हैं तो लेखक दर्शक, श्रोता या सहभागी के रूप में उनसे सम्बद्ध रहा हो । जिनसे लेखक का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप में न रहा हो तो भी उनके संस्मरण लिखे जा सकते हैं, जैसे- ' गांधीजी के विशिष्ट संस्मरण', 'स्वामी विवेकानन्द के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग' आदि । इसमें यह आवश्यक नहीं कि स्वयं लेखक गांधीजी या स्वामी विवेकानन्द के सम्पर्क में रहा हो । उनकी जीवनी, आत्मकथा, दूसरों के दारा लिखे संस्मरणों के आधार पर ऐसा लेखन किया जा सकता है।

जिन लोगों के सम्पर्क में लेखक (या पत्रकार) स्वयं रहा है उनके संस्मरण लिखना अधिक श्रेयस्कर है । पहले व्यक्ति का चयन किया जाता है, जिसका संस्मरण लिखा जाना है । घटना एक या एकाधिक हो सकती है । फिर उस व्यक्ति से सम्बद्ध घटना तय की जाती है । तब उसका लेखन किया जाता है।

संस्मरण लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि नायक को अधिक उजागर किया जाए। उसे किसी भी प्रकार से हीन स्थान या दर्जा न दिया जाए । इसमें आत्म-प्रचार या आत्म-विज्ञापन न हो । भाषा और शैली का पूरा ध्यान रखा जाए । इसका लेखन व्यवस्थित हो।

13.8 सारांश

संस्मरण आधुनिक विधा के रुप में अवतरित हुई है व्यक्ति स्वयं अपने जीवन के संस्मरण लिखता है दूसरों से सम्बन्धित घटनाएं लिखता है जिनसे वह भी जुड़ा होता है - चाहे दर्शक या श्रोता के रुप में ही सही । ऐतिहासिक या विशिष्ट व्यक्तियों के भी जीवन-प्रसंग लिखे जाते हैं जिनके उसने देखा तक नहीं है।

संस्मरण एक स्वतंत्र और समग्र विधा है । इससे जीवनी आत्मकथा रेखाचित्र निबंध साक्षात्कार रिपोर्ताज आदि के तत्व संक्षिप्त और सहायक रुप में सम्मिलित हो सकते हैं परन्तु संस्मरण को विभिन्न विधाओं की खिचड़ी नहीं बनाया जा सकता इनका केवल समन्वयात्मक समावेश किया जा सकता है।

संस्मरण जहां पत्र-पत्रिका पुस्तकों अभिनन्दन-ग्रन्थों स्मृति-ग्रन्थों स्मारिकाओं में प्रकाशित होते हैं वहां दूरदर्शन-आकाशवाणी से भी प्रसारित होते हैं व्यक्ति स्वयं अपने या दूसरे के जीवन से सम्बद्ध संस्मरण लिखता या सुनाता है । संस्मरण पत्रकारिता और साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है ।

13.9 शब्दावली

संस्मरण	-	साहित्य और पत्रकारिता की एक महत्वपूर्ण विधा ।
संस्मरण-लेखक	-	संस्मरण को लिखने वाला ।
सम्बद्ध व्यक्ति	-	दूसरे के जीवन की घटनाओं से जुड़ा व्यक्ति (लेखक) या लेखक की रचना का नायक ।

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

शेष स्मृतियां (महाराजकुमार डा. रघुवीरसिंह)
अतीत के चलचित्र (महादेवी वर्मा)
स्मृति की रेखाएं (महादेवी वर्मा)
माटी की मूरतें (रामवृक्ष बेनीपुरी)
संस्मरण (बनारसीदास चतुर्वेदी)
दीपजले : शंख बजे (क. ला. प्रभाकर)
तब और अब (राधिकारमण प्रसाद सिंह)
जाने-अनजाने (विष्णु प्रभाकर)
शिखरों की छांह में (अक्षयकुमार जैन)
स्मृति लेखा (अज्ञेय)
रसीदी टिकट (अमृता प्रीतम)
सत्यार्थी के साथ-साथ (डा. ओमप्रकाश सिंहल)
नवरंग (डा. विष्णु पंकज)

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. संस्मरण किसे कहते हैं? किन्हीं दो परिभाषाओं का भी उल्लेख कीजिए ।
2. संस्मरण को किन वर्गों में विभाजित क्या जा सकता है?
3. संस्मरण की विकास-यात्रा पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए ।
4. महत्वपूर्ण संस्मरणों का उल्लेख कीजिए ।
5. किन्हीं दस संस्मरण-लेखकों की विशेषताएं बताइए ।
6. संस्मरण अन्य विधाओं से किस प्रकार अलग है?
7. संस्मरण लिखते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?
8. पुराने और नए संस्मरण की तुलना कीजिए ।

9. संस्मरण विधा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
10. 'ऐतिहासिक पात्रों के जीवन-प्रसंग और संस्मरण' पर अपने विचार लिखिए ।

विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की सूची

	पाठ्यक्रम का नाम	अवधि
1.	स्नातक उपाधि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
2.	भोजन एवं पोषण में सर्टिफिकेट	6 माह
3.	कम्प्यूटर ज्ञान एवं प्रशिक्षण का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
4.	सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटिंग	6 माह
5.	पंचायती राज प्रोजेक्ट में प्रमाण-पत्र	6 माह
6.	संस्कृति एवं पर्यटन में प्रमाण-पत्र	6 माह
7.	महिलाओं में वैद्यानिक बोध में प्रमाण-पत्र	6 माह
8.	राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति में प्रमाण-पत्र	6 माह
9.	बी.ए.एफ./बी.सी.एफ. (त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम)	1 वर्ष
10.	एम.ए.(अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, हिन्दी)	2 वर्ष
11.	एम.बी.ए.	3 वर्ष
12.	पी.जी.डी.एच.आर.एम.	1 वर्ष
13.	पी.जी.डी.एफ.एम.	1 वर्ष
14.	पी.जी.डी.एम.एम.	1 वर्ष
15.	पी.जी.डी.एल.एल.	1 वर्ष
16.	टी.एच.एम.	1 वर्ष
17.	डी.एन.एच.ई.	1 वर्ष
18.	डी.सी.ओ.	1 वर्ष
19.	डी.एल.एस.	1 वर्ष
20.	डी.सी.सी.टी.	18 माह
21.	बी.जे.(एम.सी.)	1 वर्ष
22.	एम.जे.(एम.सी.)	2 वर्ष
23.	बी.लिब.	1 वर्ष
24.	पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा	1 वर्ष
25.	बी.एड.	2 वर्ष
26.	पी.एच.डी.	3 वर्ष
27.	पी.जी.डी.ई.एस.डी.	1 वर्ष



पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन 4

वर्षमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम. जे. एम. सी. - 1

जनसंचार माध्यमों के
लिए लेखन

पत्रकारिता एवं जनसंचार
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन - 4

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

- **प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा**
  कुलपति
  कोटा खुला विश्वविद्यालय
  कोटा
  (अध्यक्ष समिति)
- **डॉ. ए. डबल्यू. खान**
  कुलपति
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
  नई दिल्ली
- **राधेश्याम शर्मा**
  पूर्व-महानिदेशक
  माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
  विश्वविद्यालय, भोपाल(म. प्र.)
- **डॉ. ओ.पी. केजरीवाल**
  महानिदेशक, महानिदेशालय आकाशवाणी
  नई दिल्ली
- **प्रो. ए.के. बनर्जी**
  पूर्व-अध्यक्ष
  पत्रकारिता विभाग
  बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
  वाराणसी
- **प्रो. जे.एस. यादव**
  निदेशक
  भारतीय जनसंचार संस्थान
  नई दिल्ली
- **डॉ. भंवर सुराणा**
  ब्यूरो चीफ/ विशेष संवाददाता
  दैनिक हिंदुस्तान
  जयपुर
- **डॉ. रमेश जैन**
  अध्यक्ष-जनसंचार विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक

डॉ. रमेश जैन- अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ-संपादक एवं भाषा-संपादक

पाठ-संपादक	भाषा-संपादक
जितेन्द्र गुप्ता	**डॉ. विष्णु पंकज**
वरिष्ठ पत्रकार	वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार
नई दिल्ली	जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.)एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(अकादमिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन - अप्रैल 2012

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित ।

एम. जे. एम. सी. -1

जनसंचार -माध्यमों के लिए लेखन

पाठ्यक्रम - प्रथम
खण्ड (4)

4

इकाई 14 जनसम्पर्क के लिए लेखन	9–21
इकाई 15 मुद्रित-माध्यमों के लिए समूह-लेखन	22–33
इकाई 16 इलाक्ट्राय (रेडियो) माध्यम के लिए समूह-लेखन	34–51
इकाई 17 स्तम्भ-लेखन	52–67
इकाई 18 व्यंग्य-लेखन	68–90

पाठ लेखक

1. **डॉ.विजय कुलश्रेष्ठ**
   सहआचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
   सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

2. **श्याम माथुर**
   उप संपादक
   राजस्थान पत्रिका
   जयपुर

3. **डॉ. विष्णु पंकज**
   वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार
   जयपुर

4. **रामकुमार**
   पत्रकार, लेखक
   कोटा

5. **हमीदुल्ला**
   हिन्दी नाटककार
   जयपुर

6. **डॉ. रीतारानी पालीवाल**
   रीडर, हिन्दी विभाग
   इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
   नई दिल्ली

7. **डॉ. सुरेन्द्र विक्रम**
   अध्यक्ष-हिन्दी विभाग
   क्रिश्चियन डिग्री कॉलेज, लखनऊ(उ.प्र.)

8. **डॉ. राधामोहन श्रीवास्तव**
   अध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग
   बड़हलगंज, गोरखपुर(उत्तर प्रदेश)

9. **डॉ. कैलाश पपने**
   विशेष संवाददाता
   दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली

10. **सुभाष सेतिया**
    संपादक 'आजकल'
    प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
    पटियाला हाउस, नई दिल्ली

11. **डॉ.लक्ष्मीकांत दाधीच**
    प्राध्यापक, वनस्पति शास्त्र विभाग
    राजकीय महाविद्यालय कोटा

12. **दीनानाथ दुबे**
    पत्रकार, लेखक
    कोटा

13. **राधेश्याम तिवारी**
    जनसंचारकर्मी एवं लेखक
    जयपुर

14. **श्रीमती सुषमा जगमोहन**
    संध्या टाइम्स
    बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

15. **सत सोनी**
    संपादक- संध्या टाइम्स
    बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

16. **डॉ. रमेश जैन**
    अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
    कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

17. **डॉ. हेमन्त जोशी**
    प्राध्यापक- पत्रकारिता विभाग
    भारतीय जनसंचार संस्थान
    नई दिल्ली

18. **रामेश्वर मिश्र**
    वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक
    नई दिल्ली

19. **डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ**
    रीडर-हिन्दी विभाग
    राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

20. **जयदेव शर्मा**
    प्रभारी- दैनिक नवज्योति
    कोटा

खंड एवं इकाई परिचय

पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में ' संचार माध्यमों के लिए लेखन' - 4 खंड के अंतर्गत पांच इकाइयाँ हैं । ये इकाइयाँ विभिन्न जनसंचार की विधाओं से संबद्ध है । जनसंपर्क के लिए लेखन, मुद्रित माध्यमों के लिए समूह लेखन, इलाक्ट्राय (रेडियो) माध्यम के लिए समूह लेखन, स्तम्भ लेखन, व्यंग्य-लेखन आदि इकाइयां आपको जनसंचार लेखन के विभिन्न पक्षों की यथेष्ट प्रामाणिक जानकारी देगी ।

इकाई 14 जनसंपर्क के लिए लेखन की है । प्रस्तुत इकाई में जनसंपर्क की अवधारणा, जनसंपर्क के तत्व, जनसंपर्क का कार्य विस्तार, जनसंपर्क के लिए लेखन, लेखन का लक्ष्य, लेखन की विशेषताएं, जनसंपर्क के लिए संपादन आदि बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है । 'जनसंपर्क' जनसंचार माध्यम का एक लोकप्रिय एवं सशक्त अंग है । जनसंपर्क के लिए लेखन एक कला है । अच्छे से अच्छे जनसंपर्ककर्मी जनसंपर्क के लिए लेखन नहीं कर सकते हैं ।
आपको जनसंपर्क प्रस्तुत इकाई लेखन की विस्तार से जानकारी देगी और आप एक अच्छे एवं योग्य जनसंपर्ककर्मी बन सकेगे ।

इकाई 15 मुद्रित माध्यमों के लिए समूह लेखन से संबंद्ध है । मुद्रित माध्यम में समाचारपत्र एवं पत्रिकाएं आती हैं । इस इकाई में समाचार, संपादकीय, अग्रलेख, व्यंग्य लेख, फीचर, रिपोर्ताज आदि विधाओं के लेखन के वारे में विस्तार से बताया गया है ।

माध्यम कोई भी हो कौशल लेखन का है । इसमें आप जनसंचार माध्यमों के लेखक का पाठक वर्ग, उनकी शौक्षिक, सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश की अपेक्षाएं, समूह लेखन के विविध पक्ष, समूह-लेखन के लिए लेखक से क्या अपेक्षाएं होती हैं? आदि के बारे में भी जान सकेंगे ।

इलाक्ट्राय (रेडियो) माध्यम के लिए समूह- लेखन इकाई- 16 है । इसमें रेडियो -लेखन : उपकरण एवं भाषा, रेडियो लेखन की जागरुकता, रेडियो श्रोता समूह, रेडियो लेखन की तैयारी, रेडियो लेखन के लिए विशेष बातें तथा रेडियो की विविध आवश्यकताओं के अनुरूप लेखन कैसे किया जाता है? आदि के बारे में बताया गया है ।
सूचना या समाचार, शिक्षा और मनोरंजन-तीनों स्तरों पर रेडियो ने अपनी गहरी पकड़ बनाई है । अत: जनसंचार के शिक्षार्थियों को रेडियो लेखन के संबंध में यथेष्ट जानकारी देना और उन्हें प्रवीण बनाना जरूरी है ।

इकाई 17 में समाचार पत्र-पत्रिकाएं में स्तम्भ लेखन के बारे में बताया गया है । प्रस्तुत इकाई में पत्र-पत्रिकाओं में स्तम्भों का महत्व, स्तम्भ लेखक स्टेर अन्य स्रोत, समाचारपत्रों में स्तम्भ-लेखन आदि के संबंध में जानकारी दी गई है । 'स्तम्भ लेखन' कोई सरल लेखन नही है । इसके लिए विशेषज्ञ होना जरूरी है।

इकाई 18 व्यंग्य लेखन की है । इसमें व्यंग्य की त्युत्पत्ति, परिभाषा, व्यंग्य के प्रेरक तत्व, व्यंग्य के विविध रूप, व्यंग्य की भाषा, व्यंग्य का शिल्प तथा जनसंचार माध्यमों में व्यंगय लेखन का स्वरूप और महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

व्यंग्य स्तम्भ इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके कारण व्यंग्य आम जनता तक पहुंच सका है हरिशंकर परसाई के व्यंग्य-स्तम्भों की विवेचना से स्वातंत्र्योंत्तर हिन्दी गद्य व्यंग्य की परम्परा को अच्छी तरह समझा जा सकता है ।

इकाई 14 जनसंपर्क के लिए लेखन

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 जनसंपर्क की अवधारणा

14.3 जनसंपर्क के तत्व

14.3.1 जनता

14.3.2 विचार-सामग्री

14.3.4 माध्यम

14.3.4 जनसंपर्कता

14.4 जनसंपर्क का कार्य-विस्तार

14.1.1 लेखन

14.4.2 संपादन

14.4.3 प्रस्तुतीकरण विस्तार

14.4.5 भाषण या संदेश उत्पादन

14.4.6 उत्पादन

14.4.7 विज्ञापन

14.4.8 जनमत सर्वेक्षण

14.5 जनसंपर्क के लिए लेखन

14.5.1 माध्यम के अनुरूप लेखन

14.5.2 लेखन की शैली

14.6 लेखन का लक्ष्य

14.7 लेखन की विशेषताएं

14.8 जनसंपर्क के लिए संपादन

14.9 सारांश

14.10 शब्दावली

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

- जनसंपर्क के उद्देश्य और उपयोगिता से परिचित हो जाएंगे ।
- विभिन्न संचार माध्यमों की विशेषताओं को जान पाएंगे ।
- संचार माध्यम के अनुकूल लेखन की रीति-नीति समझने लगेंगे ।
- जनसंपर्क के विस्तृत कार्यक्षेत्र से परिचित हो जाएंगे ।

- अवसर और माध्यम के अनुसार लेखन की तैयारी कर लेंगे ।
- संयोजन और संपादन के महत्व का वर्णन कर सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

किसी भी संस्था या संस्थान की संपूर्ण कार्यप्रणाली में संचार या संप्रेषण प्रक्रिया का महत्व ठीक वैसा ही है जैसा मनुष्य शरीर या धमनियों में रक्त संचार का महत्व है । किसी संस्था या संस्थान के कर्मचारियों, प्रबन्धकों, ग्राहकों या संबंधित लोगों के बीच एक गतिमान और निरंतर स्वस्थ संबंधों का सामंजस्य कायम रखने के लिए संचार (कम्यूनिकेशन) की प्रक्रिया का प्रभावपूर्ण एवं नियोजित संचालन आवश्यक होता है ।

जनसंपर्क वस्तुत: किसी संस्था या संस्थान में संचार-व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग होता है । अत: जनसंपर्क कर्म में संचार या संप्रेषण को सर्वोच्च प्राथमिकता है । एक जनसंपर्ककर्मी अपने जनसंपर्क कार्यों की योजना बनाने, उन्हें सुव्यवस्थित ढंग से क्रियान्वित करने और नियंत्रित करने आदि की दिशा में विभिन्न माध्यमों या उपकरणों का उपयोग करता है । ये माध्यम ही संचार व्यवस्था की धमनियां हैं जो जानकारी का दोतरफा प्रवाह बनाए रखती हैं । एक व्यक्ति से दूसरे तक या एक संस्थान के भीतर या बाहर संबंधित लोगों या 'जनता' तक संदेश और जानकारी पहुंचाने का काम संपन्न करती है । जनसंपर्क के कार्य का मूलाधार यही संप्रेषण है जो मौखिक या लिखित या अन्य रूपों में क्रियान्वित होता है ।

जनसंपर्क कार्य की सफलता का सार है कि अभिव्यक्ति के स्तर पर लेखन या प्रस्तुतीकरण कितना प्रभावपूर्ण, स्पष्ट, सरल और नियोजित है । हर माध्यम की अपनी सीमाएं, विशेषताएं, भाषा और स्वरूप होता है । अत: किसी भी माध्यम को एक उपकरण (टूल) के रूप में इस्तेमाल करने के लिए लेखन की विधा की बारीकियों से परिचित होना और लेखन-कला का अभ्यास करना या इसमें कुशलता प्राप्त करना आवश्यक है ।

सृजनात्मक या साहित्यिक लेखन के गुणों का समावेश तो हर प्रकार के लेखन की सफलता के लिए जरूरी है परंतु जनसंपर्क के लिए किया जाने वाला लेखन किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति और विशेष माध्यम के लिए किया जाता है । इस प्रकार के लेखन की सफलता और श्रेष्ठता की कसौटी निर्दिष्ट जनता या संबंधित लोगों पर पड़ने वाले प्रभाव से होती है । जिस लक्ष्य को लेकर लेखन किया गया है, उसकी प्राप्ति होना आवश्यक है । लक्ष्य होता है- किसी बात या संदेश को प्रसारित करना और एक संस्थान तथा उसकी जनता के बीच समझ और सद्भाव से एक सेतु का निर्माण करना । किसी प्रकार की गलतफहमी हो तो उसे दूर करना क्योंकि परस्पर स्वस्थ संबंधों को बनाए रखने और पुष्ट करने के लिए प्रभावपूर्ण संप्रेषण ही एक मार्ग होता है । जिस प्रभाव की रचना करने के लिए लेखन किया गया है, उसके परिणाम से ही लेखन क्रिया की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है ।

14.2 जनसंपर्क की अवधारणा

मानव व्यवहार, समूह-मनोविज्ञान, मानव-संबंध आदि की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल होती है । जनसंपर्क मानव संबंधों की इस जटिल प्रक्रिया का विज्ञान है । यह एक समाजशास्त्र है, लेकिन व्यावहारिक रूप से इसके विभिन्न अर्थ लगाए जाते हैं और इसके बारे में अनेक भ्रांतियां भी हैं । अत: कई संस्थाएं और संस्थान अब जनसंपर्क अधिकारी या जनसंपर्ककर्मी के स्थान पर संप्रेषण अधिकारी

(कम्यूनिकेशन आफीसर) या संप्रेषण कर्ता (कम्यूनिकेटर) आदि ऐसे शब्दों का संबोधन जनसंपर्ककर्ताओं को देने लगे हैं ताकि जनसंपर्क से जुड़े नकारात्मक पक्ष की ध्वनि न निकले ।

किसी भी संस्था या संस्थान और उससे संबंधित जनसमूह के बीच निरंतर संप्रेषण या संचार प्रक्रिया जारी रखने का कार्य करना ही जनसंपर्क है जो उस संस्थान और उससे संबंधित जनता के बीच स्वस्थ संबंधों एवं परस्पर समझ का विकास करता है ।

गत कुछ दशकों में जनसंपर्क के संदर्भ में स्पष्ट धारणाओं एवं चिंतन का विकास हुआ है । बदले हुए जटिल सामाजिक परिवेश में किसी भी व्यक्ति, समुदाय, सरकार, संस्था, संस्थान आदि के लिए उससे संबन्धित विविध वर्गों की 'जनता' या 'पालक' की क्रिया-प्रतिक्रिया या विचार से परिचित होना और अपनी बात उस तक पहुंचाना जनसंपर्क का उद्देश्य होता है । दूसरे शब्दों में, एक संस्था या संस्थान के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने से संबंधित ' जनता' या लोगों से परस्पर संवाद कायम रखते हुए किसी प्रकार की गलत धारणा या भ्रांति को उत्पन्न न होने दे और कोई भ्रांति पैदा हो तो उसे निरंतर संपर्क के द्वारा दूर करने का सिलसिला जारी रखे । इसके लिए स्पष्टीकरण, खंडन, संपादक के नाम पत्र आदि साधनों का उपयोग किया जाता है । अभिप्राय यह है कि संप्रेषण की क्रिया को सक्रिय रखा जाना चाहिए । प्रभावपूर्ण संप्रेषण के माध्यम से ही विभिन्न समूहों या इकाइयों के बीच सामंजस्य एवं मधुर संबन्धों का निर्माण करना संभव है । यह कार्य विभिन्न संचार- माध्यमों के द्वारा संपन्न किया जाता है । एक संस्था और उससे संबंधित जनता के बीच दूरी हो तो मौखिक संचार से काम नहीं चलता । ऐसी स्थिति में मुद्रित शब्दों या अन्य माध्यमों से शब्दों के आदान-प्रदान एवं लेखन की विधा के सहारे कार्य करना पड़ता है । लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि जब जटिल परिस्थिति हो तो प्रश्नोत्तर के द्वारा भ्रम-निवारण के लिए संवाददाता-सम्मेलन का आयोजन किया जाता है ।

14.3 जनसंपर्क के तत्व

जनसंपर्क एक ऐसी व्यापक विधा या विद्या है जो किसी संस्था और उससे संबद्ध जनता के बीच तालमेल स्थापित करती है । यह ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें प्रयोक्ता को बहुत ही सजग और सतर्क रहना पड़ता है । जो शब्द एक जनसंपर्ककर्मी बोलकर या लिखकर किसी भी माध्यम से प्रचारित, प्रसारित या प्रशस्त करता है, वह उस तीर के समान होता है जो एक बार छूटने के बाद लक्ष्य को प्रभावित किए बिना नहीं रहता । इस कार्य में लक्षित या निर्दिष्ट जनता, श्रोता या दर्शकों की मानसिक वृत्तियों, अभिरुचियों, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश एवं परंपराओं को भी दृष्टिगत रखना जरूरी होता है । जनसंपर्ककर्ता को इस विधा से जुड़े सभी तत्वों का ध्यान रखते हुए अपने कथ्य को लिखने या अभिव्यक्त करने पर ध्यान देना होता है ।

कौन व्यक्ति, क्या बात, किससे, कब, कैसे और किस माध्यम से कहना चाहता है और उसका क्या प्रभाव पड़ता है? ये प्रश्न. ही जनसंपर्क के मूल तत्वों को निर्धारित करते हैं । मोटे तौर पर जनसंपर्क के चार तत्व माने जाते हैं -

1. जनता-लक्ष्य समूह
2. विचार-सामग्री, समाचार-सामग्री या संदेश
3. संप्रेषण-माध्यम या मीडिया
4. जनसंपर्ककर्मी या संप्रेषणकर्ता

इन चारों तत्वों का विवेचन करें तो यह बात स्पष्ट होगी कि जनसंपर्क के लिए कोई भी संदेश तैयार करना, लिखना या उसे प्रसारित करना, ये कार्य कुशलता और अभ्यास के साथ सावधानीपूर्वक सम्पन्न करने चाहिए ताकि निश्चित परिणाम और लक्ष्य की पूर्ति संभव हो सके ।

14.3.1 जनता

जनसंपर्क का लक्ष्य एक संस्था, संस्थान, समुदाय आदि और इनसे संबंधित जनता के बीच संचार की दोहरी-व्यवस्था के दारा आपसी संबन्धों का निर्माण करना है । अत: लक्ष्य समूह आम जनता जनसंपर्क का महत्वपूर्ण तत्व है । जनता या 'पालक' का अर्थ जनसमुदाय मात्र नहीं होता । उदाहरण के लिए उपभोक्ता-सामग्री का उत्पादन करने वाली एक कंपनी या संस्थान के लिए उसके कर्मचारी, उस संस्थान के प्रबंधकगण, उपभोक्ता, सरकार और जनसाधारण, ये सब अलग- अलग प्रकार की जनता होती है । उस संस्थान के जनसंपर्ककर्मी को इन सबके साथ संप्रेषण की विविध प्रकार की विधियों का उपयोग करना पड़ता है । इसके लिए समाचार, फीचर; विज्ञापन, टीवी., रेडियो आदि के दारा संदेश प्रसारित करने का कार्य निरंतर करते रहना होता है ।

जनसंपर्क के लिए लेखन कार्य करते समय लक्ष्य वर्ग या समूह को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। एक संस्थान से संबंधित विभिन्न प्रकार की जनता की भली प्रकार पहचान कर लेनी चाहिए । जिस 'जनता' के लिए अर्थात् कर्मचारियों के लिए या उपभोक्ताओं के लिए या अन्य वर्ग के लिए लेखन या संप्रेषण करना है, उसका शैक्षणिक स्तर क्या है, उसकी भाषा क्या है, उसका आर्थिक स्तर और दशा क्या है? इसके साथ ही यह भी तय करना पड़ता है कि कोई भी संदेश या बात - 'जनता विशेष' तक संप्रेषित करने के लिए समाचारपत्र, रेडियो, टीवी., फिल्म प्रदर्शनी आदि विभिन्न माध्यमों में से कौन सा माध्यम अधिक उपयुक्त एवं प्रभावपूर्ण सिद्ध होगा?

'जनता' की रुचि तथा उसके व्यवहार की जानकारी करके उसी के अनुरूप संदेश या पांडुलिपि (कॉपी) की रचना करनी चाहिए । यह भी ध्यान में रखें कि जो संदेश संप्रेषित करने का प्रयास किया जा रहा है, उस पर क्या प्रतिक्रिया हो सकती है? उसका प्रभाव अनुकूल होगा या नहीं? इन सारे प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए जनता के लिए संदेश या लेखन-क्रिया संपन्न की जाती है ।

14.3.2 विचार-सामग्री

विचार-सामग्री से तात्पर्य किसी संस्था या संस्थान की नीतियों, लक्ष्यों, विचारों, उत्पाद या सेवाओं की विशेषताओं, संस्था की गतिविधियों, उसके कल्याणकारी एवं जनहित से संबंधित कार्यो एवं सेवाओं आदि के संबंध में एकत्रित की जाने वाली उस सामग्री से है जिसके आधार पर लेखन करना होता है या कोई संदेश तैयार करना पड़ता है । संस्थान द्वारा विभिन्न प्रकार की जनता को आवश्यकतानुसार अपना संदेश पहुंचाने या अपनी बात कहने का कोई न कोई उद्देश्य होता है । उसे ध्यान में रखते हुए सरल, सुस्पष्ट और प्रभावपूर्ण ढंग से समाचार, फीचर, विज्ञापन या अन्य प्रकार से प्रसारित किए जाने वाले संदेश का लेखन-कार्य किया जाना चाहिए । यह लेखन कार्य किसी विज्ञापन एजेन्सी, विशेषज्ञ या किसी भी विधा के जानकार व्यक्ति के माध्यम से भी कराया जा सकता है, परन्तु लेखन एवं संदेश के उपयुक्त होने या नहीं होने का निश्चय जनसंपर्क अधिकारी को करना होता है ।

ऐसी स्थिति में, उसे लेखन के विविध पक्षों का ज्ञान एवं अनुभव होना जरूरी है । तभी वह अपने कार्य में दक्षता प्रदर्शित कर सकता है ।

14.3.3 संप्रेषण माध्यम

जनता को भी जो बात संप्रेषित करनी है या जो संदेश पहुंचाना है, उसका माध्यम क्या हो? यह भी जनसंपर्ककर्मी को तय करना पड़ता है । संदेश की रचना सोच -समझकर की गई हो और माध्यम का चुनाव ठीक नहीं किया गया हो तो जनसंपर्क का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता । जिस लक्ष्य वर्ग या समूह तक जिस माध्यम की पहुंच हो, उसी के द्वारा संदेश दिया जाना चाहिए ताकि वह अपेक्षित लोगों को प्रभावित कर सके । लोककथा, लोकगीत, लोकनृत्य आदि विभिन्न परंपरागत माध्यम, समाचारपत्र, होर्डिग, भित्तिचित्रण, प्रदर्शनी, विज्ञापन, रेडियो, टीवी., फिल्म आदि विभिन्न मुद्रित या इलेक्ट्रानिक माध्यमों का आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सकता है । यद्यपि बहुत बड़े संस्थानों के पास तमाम साधन होते हैं लेकिन आमतौर से संदेश की रचना करने या माध्यम के अनुरूप अपनी बात को कुशलता के साथ कलमबद्ध करने या लिखने का दायित्व जनसंपर्क विभाग या अधिकारी को सौंपा जाता है जो प्रबंधन (मैनेजमेंट) का अंग होता है ।

14.3.4 जनसंपर्ककर्ता

जनसंपर्क किसी भी संस्था की संपूर्ण गतिविधियों या प्रबंधकीय कार्यो का प्रमुख अंग होता है । एक संस्थान के सूचनातंत्र या संप्रेषण कार्य के द्वारा विभिन्न विभागों, कर्मचारियों और प्रबंधकों, संस्था और सरकार संस्था और उपभोक्ता, संस्था और जनसाधारण आदि के बीच संप्रेषण की किया को ठीक ढंग से जारी रखने का कार्य जनसंपर्क अधिकारी या जनसंपर्ककर्ता द्वारा किया जाता है । इसे सूचना अधिकारी, कम्यूनिकेशन अधिकारी, जनसंपर्क प्रबन्धक आदि विभिन्न संबोधन दिए जाते हैं । जनसंपर्ककर्ता को अभिव्यक्ति के स्तर पर लेखन और संप्रेषण कला के विभिन्न पक्षों, उनके उपयोग करने के लिए काम आने वाले उपकरणों या माध्यमों तथा संप्रेषित सामग्री या संदेश के प्रभाव और परिणाम आदि का ज्ञान और समुचित अनुभव होना चाहिए । किसी भी संदेश की सरल, सुरुचिपूर्ण और संग्राह्य प्रस्तुति और इस प्रक्रिया के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति ही जनसंपर्क कार्य की सफलता का मापदंड है ।

बोध प्रश्न - 1

1. जनसंपर्क का बुनियादी उद्देश्य क्या है?
2. जनसंपर्क के तत्वों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ।
3. लक्ष्य-वर्ग या समूह को ध्यान में रखना क्यों आवश्यक है?

14.4 जनसंपर्क का कार्य- विस्तार

मनुष्य की अनादिकाल से यह प्रवृत्ति रही है कि वह अपनी जिज्ञासा की पूर्ति एवं अपने विचारों और भावों को समाज में रहकर एक दूसरे से बांटे । इस मानव प्रवृत्ति, सामाजिक संपर्क, और परस्पर संबंधों की लम्बी परपरा ने ही समाज को सभ्य बनाया एवं सामाजिक संस्कृति का निर्माण किया । जनसंपर्क के कार्य कोई नई बात नहीं है । तात्विक दृष्टि से अशोक के शिलालेख भी जनसंपर्क अभियान

के अंग थे । कबीर ने समाज को बदलने के लिए भक्ति रचनाओं का सहारा लिया । संत तुलसी ने रामायण की रचना करके एक आदर्श समाज के सामने रखा । गुरु नानक ने संतों और सूफियों की वाणी के माध्यम से उपदेश दिए । इस प्रकार जनसंपर्क की प्रक्रिया विभिन्न रूपों और माध्यमों के दारा सदियों से संचालित होती आई है और इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विविधता से पूर्ण है ।

समसामायिक जटिल आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में मानव के परस्पर संबंधों और विभिन्न संस्थानों या संस्थाओं की जनसंपर्क आवश्यकताओं के सन्दर्भ में एक व्यवसाय के रूप में भी इस विधा का विकास हुआ है । इसका कार्य क्षेत्र असीमित है, परंतु इसके प्रमुख कार्यो को निम्नलिखित बिन्दु शामिल है -

1. लेखन, 2.सम्पादन, 3. प्रस्तुतीकरण, 4. विस्तार,
5. भाषण, 6. उत्पादन 7.विज्ञापन 8. जनमत-सर्वेक्षण

14.4.1 लेखन

व्यवस्थित और प्रभावपूर्ण संचार या ' कम्यूनिकेशन' किसी भी संस्थान की सफलता के लिए आवश्यक माना गया है । जनसंपर्क के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु लिखित एवं उच्चरित दोनों प्रकार के संदेशों का उपयोग किया जाता है । रिपोर्ट, प्रेस विज्ञप्ति, समाचार, संदेश, फीचर, पैम्फलेट, पुस्तिकाएं, पत्रिकाएं, रेडियो, टीवी., विज्ञापन, फिल्म आदि सम्मिलित हैं ।

आमने -सामने की बातचीत या व्यक्तिगत रूप से संदेश देना, अपनी बात कहना संप्रेषण का श्रेष्ठ स्वरूप है, परन्तु किसी भी संस्था या संस्थान की 'जनता' का फैलाव दूर-दराज तक हो सकता है और मौखिक संदेश देना संभव नहीं हो पाता । अत: आमतौर से, लेखन के माध्यम से ही अपनी बात पहुंचाई जाती है । लिखित या मुद्रित प्रस्तुति या अन्य किसी माध्यम से बात को कहनेया संदेश को प्रसारित करने की प्रक्रिया में व्यक्तिगत रूप से की जाने वाली संचार-प्रक्रिया की विशेषताओं का अभाव रहता है । यदि लक्ष्य श्रोता, दर्शक या पाठक कोई स्पष्टीकरण चाहे तो यह संभव नहीं होता, इसकी गुंजाइश नहीं रहती जबकि व्यक्तिगत संपर्क या व्यक्तिगत संप्रेषण के समय संभव रहती है । दूसरी कठिनाई यह है कि संप्रेषण के प्रभाव की जानकारी या 'जनप्रतिक्रिया' के बारे में जनसंपर्ककर्मी कोई जानकारी नहीं मिल पाती है । अत: जनसंपर्ककर्मी को पाठक या जनता के मानस तक अपनी पहुंच कायम करने की चेष्टा करनी पड़ती है ।

संचार-माध्यम चाहे जो भी हो, लेखन के बाद ही ठीक ढंग से संदेश को मुद्रित शब्द या ध्वनि या छवि आदि दृश्य -श्रव्य माध्यमों के द्वारा प्रसारित करना श्रेष्ठ मार्ग है । अत: लेखन अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचने का जनसंपर्क की सफलता का आधारभूत पक्ष है ।

14.4.2 संपादन

किसी संस्थान या संस्था को विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होने वाली सामग्री जानकारी या संस्थान की गृह-पत्रिका, समाचार-विज्ञप्तियों, प्रगति रिपोर्ट, वार्षिक एवं नियतकालिक प्रतिवेदनों, विज्ञापन की कापी, छायाचित्रों, फिल्म, फीचर आदि का संपादन करना भी जनसंपर्ककर्मी के कार्यो का मुख्य अंग है । अत: जनसंपककर्मी के दायित्व में लेखन-विधा में कुशलता एवं अनुभव के साथ संयोजन और संपादन की विधा का ज्ञान भी शामिल होता है ।

14.4.3 प्रस्तुतीकरण

जनसंपर्क के दायित्वों की पूर्ति के लिए यह भी आवश्यक होता है कि तैयार की गई संप्रेषण सामग्री का प्रस्तुतीकरण भी प्रभावपूर्ण हो । प्रस्तुतीकरण की शैली एवं प्रस्तुति का ढंग यदि कमजोर है तो लेखन एवं संपादन के द्वारा अत्यन्त सृजनशीलता के साथ तैयार संप्रेषण-सामग्री यथेष्ट प्रभाव की सृष्टि नहीं हो पाएगी । अत: प्रेस-विज्ञप्ति, समाचार, टिप्पणियां, लघु पुस्तिकाएं, पत्रिकाएं, रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म, प्रदर्शनी, नाटक आदि के माध्यम के प्रभावी प्रस्तुतीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है ।

14.4.4 विस्तार

जनसंपर्क का क्षेत्र व्यापक होता है । किसी भी संस्थान या संस्था की विशेष आवश्यकता के अनुरूप जनसंपर्क कार्यो का विस्तार होता है । संस्थान के स्थापना दिवस, अन्य विशेष अवसरों आदि को समारोहपूर्वक मनाना, खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि के द्वारा विकास में योग देना तथा संस्था, उसके उद्देश्य और छवि अथवा उत्पादित माल या सेवा का प्रचार-प्रसार करना जनसंपर्क के क्षेत्र में आवश्यक अंग है ।

14.4.5 भाषण या संदेश

लेखन एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर जनसंपर्क के दायित्वों में विविधता के अनेक आयाम जुड़े रहते हैं । समाचार, फीचर, विज्ञापन, पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेखन, संपादन, विशेष आयोजनों का प्रचार-प्रसार करने के अलावा विशेष अवसरों एवं आयोजनों के लिए संस्था या संस्थान के पदाधिकारियों के लिए संदेश या भाषण तैयार करने का कार्य भी जनसंपर्क के अन्तर्गत आता है ।

14.4.6 उत्पादन

लेखन, संपादन, प्रस्तुतीकरण आदि की कला को जानने तक ही जनसंपर्क का कार्य पूरा नहीं हो जाता । जनसंपर्क विभाग ही सारी सामग्री का प्रकाशन या उत्पादन का प्रचार-प्रसार करने के लिए जिम्मेदार होता है । उत्पादन के तात्पर्य प्रचार कार्य हेतु कार्यक्रम या संदेश तैयार करना, नीति या योजना के आधार पर प्रचार-प्रसार, पैम्फलेट, पुस्तिकाएं, स्लाइड, विज्ञापन, फिल्म आदि सामग्री तैयार करवाना है । वार्ताओं, विचार-गोष्ठियों, पत्राचार या बुलेटिन आदि के लिए सामग्री संकलन, प्रकाशन, प्रस्तुतीकरण हेतु विविध माध्यमों का ज्ञान एवं उनके उपयोग की जानकारी रखना भी जनसंपर्ककर्मी के दायित्व का अंग है । उत्पादन के अंतर्गत सामग्री की कलात्मक साज-सज्जा, मेकअप, ले आउट प्लान, डिजाइन, फोटोग्राफी आदि भी शामिल होते हैं ।

14.4.7 विज्ञापन

जनसंपर्क में विज्ञापन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । विज्ञापन भी किसी संस्था या संस्थान के संदेश प्रसारित करने का एक सशक्त माध्यम है । विज्ञापन समाचारपत्रों के अलावा रेडियो, दूरदर्शन आदि माध्यमों से भी प्रसारित किए जाते हैं । विज्ञापन में भारी व्यय होता है । अत: जनसंपर्क कमी को बजट एवं खर्चे को ध्यान में रखते हुए संस्थान एवं उसके उत्पादों या सेवाओं का प्रभावपूर्ण एवं

विश्वसनीय विज्ञापन-कार्य संपन्न करने का दायित्व निभाना होता है । विज्ञापनों के लिए सरल, स्पष्ट, संक्षिप्त एवं सजीव संदेश की लिए संरचना करना या कराना भी जनसंपर्क का कार्य है ।

14.4.8 जनमत-सर्वेक्षण

अखबारों, सर्वेक्षणों आदि के हारा आम जनता या संबंधित व्यक्तियों की राय जानना भी जनसंपर्क का अविभाज्य अंग है । उत्पादित माल, संस्था या संस्थान के प्रति जनता की राय, संदेश के प्रति प्रतिक्रिया एवं संप्रेषण कार्यो से पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करके उसके अनुरूप जनसंपर्क के स्वरूप और शैली में संशोधन या परिवर्तन किया जाता है ।

बोध प्रश्न - 2

1. जनसंपर्क-लेखन में क्या विशेषताएं होनी चाहिए ?
2. जनसंपर्क की परिधि कितनी व्यापक है? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।
3. संस्था या उत्पाद के बारे में लोकमत का ज्ञान क्यों आवश्यक है?

14.5 जनसंपर्क के लिए लेखन

लेखन के मौलिक तत्वों का ज्ञान और लेखन में दक्षता प्राप्त करना तो अभिव्यक्ति के स्तर पर जनसंपर्क कार्य में अनिवार्य है ही, इसके साथ-साथ जनसंपर्क के दायित्वों और कार्यो के विस्तार, विविधता और विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के संदर्भ में किया जाने वाला लेखन यदि सृजनात्मक एवं गुणात्मक नहीं होगा तो लक्ष्यों की पूर्ति संभव नहीं होगी । साहित्यक लेखन और सृजनात्मक लेखन में सीमाएं नहीं होतीं । कोई विशेष बंधन नहीं होता । परन्तु, जनसंपर्क कार्य किसी संस्था या संस्थान की नीतियों, उद्देश्यों और योजनाओं की पूर्ति में सहयोग करने और आवश्यकता के अनुसार सीमित साधनों या निश्चित धनराशि के व्यय के द्वारा संपन्न करना होता है । ऐसे में, जनसंपर्ककर्मी के लेखन की सीमाएं होती हैं । साथ ही वह किसी एक लेखन-विधा तक अपने को सीमित नहीं रख सकता । उसके लेखन में, इन सीमाओं और नीतिगत बंधनों के बावजूद सृजनात्मक लेखन की छाप होनी चाहिए । उसके लेखन में गति और प्रवाह हो । वह अभिव्यक्ति के स्तर पर इतना सशक्त हो कि निर्दिष्ट जनता तक प्रभावपूर्ण ढंग से संदेश पहुंचा सके और कोई अपेक्षित भाव या विचार पाठक श्रोता, दर्शक या जनता के मानस पर अंकित कर सके । जनसंपर्क के लिए लेखन एक कठिन कार्य अवश्य है, परन्तु लेखन-कला के मौलिक तत्वों का ज्ञान हो और जनसंपर्क कर्म की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाए तो अभ्यास और परिश्रम से यह कार्य सरल और सुगम बन सकता है । जनसंपर्क के लिए लेखन करने की दिशा में उन माध्यमों या उपकरणों की लेखन-तकनीकों और उनकी प्रकृति आदि के बारे में पूर्ण ज्ञान रखना आवश्यक है ।

14.5.1 माध्यम के अनुरूप लेखन

अपेक्षित प्रभाव की सृष्टि करने और लेखन को सजीव, सृजनात्मक एवं रुचिकर बनाए रखते हुए उसे बोझिल और उबाऊ नहीं होने देने का दायित्व निभाते हुए जनसंपर्क में लेखन के उद्देश्य, नीतिगत सीमाओं बजट की सीमा को ध्यान में रखने के अलावा यह भी ध्यान में रखना होता है कि लेखन गृह-पत्रिका के लिए है, किसी प्रतिवेदन के लिए है, समाचारपत्र में प्रकाशन के लिए है या रेडियो या टीवी. के लिए प्रस्तुत किया जाना है । आज के युग में संचार की टैक्नोलाजी का इतना विकास हो

गया है कि संदेश को कुछ ही क्षणों में दुनिया भर में पहुंचाना संभव है । अत: संदेश, समाचार, फीचर या अन्य प्रकार का लेखन करते समय समसामयिक टैक्नोलाजी, इसकी कार्य प्रणाली और प्रकृति का ज्ञान होना आवश्यक है । समाचारपत्र मुद्रित माध्यम है । समाचारपत्रों के लिए समाचार, विज्ञप्ति, फीचर या आलेख तैयार करना हो तो समाचारों या आलेखों की भाषा, शैलो, गठन, शिल्प और पत्रकारिता के मौलिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखना होता है । ऐसा नहीं करने पर किसी भी संदेश, समाचार या सामग्री को समय और गति के अनुरूप स्थान मिलना या उसका प्रकाशन होना संभव नहीं है ।

यदि रेडियो के लिए समाचार या प्रसारण सामग्री तैयार करनी हो तो यह देखना होगा कि रेडियो श्रव्य-माध्यम है । रेडियो के लिए समाचार है तो उसमें प्रसारण माध्यम के अनुरूप समाचार की भाषा और शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए । इसमें समाचारपत्रों के लिए लिखे जाने वाले समाचारों की तुलना में कम, सुबोध किन्तु प्रभावशाली शब्दों द्वारा प्रभाव की सृष्टि करने पर अधिक बल देना होता है ।

फिल्म और टेलीविजन दृश्य- श्रव्य माध्यम हैं । ध्वनि या शब्दों और दृश्यों की संरचना में तालमेल के साथ टीवी. के लिए लेखन या संपादन की अलग विशेषताएं होती हैं । इसी प्रकार विज्ञापन या अन्य माध्यमों की अपनी-अपनी विशेषताएं और लेखन- शैलियां होती हैं ।

यद्यपि समाचार, फीचर या विज्ञापन की विशेषताएं अलग- अलग होती हैं । माध्यम के अनुरूप इनके आकार, भाषा और तकनीक में भी अंतर होता है । इन विविध माध्यमों में लेखन की तकनीक का ज्ञान भी होना चाहिए ।

माध्यम के अनुरूप संदेश की रचना या लेखन होने से प्रेषित समाचार या अन्य सामयिक सामग्री को अधिक स्थान मिलने और प्रकाशित या प्रसारित होने को अधिक संभावना रहती है ।

किसी भी जनसंपर्क अधिकारी के लिए आवश्यक है कि जिस संस्था में वह कार्य करता है, उसकी नीतियों, लक्ष्यों, कार्य-कलापों और विशेषताओं को भलीभांति जाने और समझे क्योंकि इनको बिना जाने जनसंपर्क अधिकारी अपने पक्ष को स्पष्ट रूप में न तो प्रकट कर सकता है और न उसकी पैरवी कर सकता है । किसी भी प्रश्न पर भ्रम पैदा होने या विरोध होने पर विज्ञ संचारकर्मी अपने पक्ष को दृढ़ता से रखकर स्पष्टीकरण दे सकता है जिससे कि उसकी संस्था की छवि न बिगड़े ।

अत: किसी भी विषय या पक्ष पर लेखन प्रारंभ करने से पूर्व उससे संबद्ध आकड़ों का संकलन, उपलब्ध आकड़ों का यथार्थ परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण, क्रमबद्ध अध्ययन, किसी समस्या संबंधी विविध विरोधी व समस्यापरक गुण-दोषों का विवेचन तथा निष्कर्षों या प्रभाव का आकलन भली भांति कर लेना चाहिए । इन बिन्दुओं को समझकर स्पष्ट विचार और लेखन का आधार बनाना चाहिए । संदेश या पांडुलिपि तैयार करते समय यह भी देखना आवश्यक है कि लोकमत के निर्माण की प्रक्रिया दीर्घकालीन है या अल्पकालीन । इसके बाद, अनुकूल वातावरण की सृष्टि करने के लिए आधारभूत सिद्धान्तों और विचारधाराओं का अनुगमन करना होता है । इसके लिए चार बिन्दुओं को सदैव ध्यान में रखना चाहिए - 1. समयबद्ध प्रचारात्मक दृष्टि के अनुसार संदेश की रचना, जनसमुदाय या जनता की पृष्ठभूमि के अनुरूप भाषा का उपयोग, संदेश या लेखन का सुस्पष्ट होना और भाषा की स्पष्टता, सुगमता एवं सार्थकता ।

इस प्रकार समय के अनुरूप या समयबद्ध ढंग से दीर्घकाल या अल्पकाल के लिए प्रचारात्मक संदेश का लेखन करते समय जनता या जनसमुदाय की परंपराओं, विचारों, रीतिरिवाजों, वातावरण, प्रचलित सामाजिक मान्यताओं आदि के संदर्भों को ध्यान में रखना चाहिए । संप्रेषण या संचार के तीन मौलिक तत्वों को भी सदैव ध्यान में रखना चाहिए । संप्रेषण प्रक्रिया में जो बात कहनी है - वह संदेश है, जिस माध्यम से बात कहनी है- वह माध्यम या 'चैनल' है और जिसको संदेश पहुंचाना है - वह समूह या जनसमुदाय संदेश प्राप्तक्कर्ता है । इन तीनों में एकसूत्रता होनी चाहिए । जो संदेश प्रसारित किया जाना है, वह अपने संपूर्ण अर्थ के साथ प्राप्तकर्ता तक पहुंचे और उसका प्रभाव पड़े, यह तभी संभव है जबकि संदेश को लिखने वाले व्यक्ति को जन-भावनाओं एवं उनकी मनोग्रंथियों की पूरी जानकारी हो ।

14.5.2 लेखन की शैली

शैली का अर्थ है- विचारों और भावों को अभिव्यक्ति देने का अन्दाज या तरीका । एक ही विषय पर किया गया लेखन शैली के स्तर पर भिन्न-भिन्न हो सकता है । शैली का निर्माण या विकास अभ्यास और निरंतर लेखन से हो सकता है । यह तथ्य परक, विचारपरक, सूचनात्मक या वर्णनात्मक आदि किसी भी प्रकार की हो, उसमें विचार या प्रभाव की दृष्टि से अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए । अत: जनसंपर्क के लिए लेखन की शैली के संदर्भ में निम्नलिखित बिन्दुओं को भाषा एवं शैली की दृष्टि से ध्यान में रखना चाहिए -

जो कुछ भी कहा जाए, वह सरल, स्पष्ट एवं सुगम भाषा में हो और शैली सुबोध है । अर्थात् - किसी भी माध्यम से बात प्रसारित हो, वह बोधगम्य हो ताकि साधारण जन बिना कठिनाई के उसे समझ सके । लेखन सारमय एवं संक्षिप्त हो । अर्थ की स्पष्टता होनी चाहिए । संदेश-रचना करने वाले और संदेश-प्राप्त करने वाले व्यक्ति या समूह के बीच एक समझ का पुल निर्माण करने की क्षमता भी लेखन में होनी चाहिए ।

इस प्रकार शैली कोई भी हो, उसका लक्ष्य कथन में सुस्पष्टता, सहजता, सृजनात्मकता, बोधगम्यता के गुणों के द्वारा जनसमुदाय की रुचि को संपादित करना होना चाहिए । शैलीगत विशेषताओं का ध्यान रखा जाए तो संदेश-लेखन करने वाले और प्राप्त करने वाले के बीच संप्रेषण के स्तर पर कोई दूरी नहीं रह पाएगी ।

14.6 लेखन का लक्ष्य

लेखन का लक्ष्य होता है - पाठक, श्रोता, दर्शक या जनसमुदाय तक किसी संदेश या विचार को पहुंचाना । कोई भी विचार या संदेश तभी लक्ष्य तक पहुंच पाता है जबकि वह पाठकों की अभिरुचि, भावनाओं और विचारों को स्पष्ट करने की क्षमता रखता हो । रुचिकर और सहज लेखन में ही ऐसी क्षमता हो सकती है । मात्र किसी बात को जनता तक पहुंचा देने से लक्ष्य प्राप्त नहीं होता । संप्रेषण-प्रक्रिया में संदेश प्राप्त करने वाले व्यक्ति का किसी विचार से सहमत होना तो आवश्यक नहीं है परंतु यदि संदेश या विचार का लेखन प्रभावपूर्ण और रुचिकर नहीं है तो वह लोकमत को प्रभावित नहीं कर कता । किसी भी विचार के प्रसारण या संप्रेषण की सफलता का रहस्य इस बात में निहित है कि वह प्राप्तकर्ता के मन पर असर डाले । उसे किसी बात को सोचने के लिए प्रेरित करे ।

अत: संदेश का लेखन तर्कसंगत, तथ्यात्मक और जनता या उस जनसमुदाय के लिए सीधे संबोधन की तरह होना चाहिए ताकि उसकी ग्राह्यता सुगम हो और वह प्राप्तकर्ता के मन में स्पंदन का भाव उत्पन्न कर सके । सावधानी के साथ तैयार किया गया संदेश और सरल शब्दों और सहज शैली के साथ रुचिकर ढंग से प्रसारित बात अपना असर अवश्य छोड़ती है । विषय या विचार स्पष्ट हो, सरल और सहज समझ में आने वाले शब्दों और मुहावरों का प्रयोग हो, मनोरंजक एवं रोचक प्रस्तुति हो तो लेखन का उद्देश्य पूर्ण हो सकता है ।

लेखन करने वाला स्वयं ही अपने लक्ष्य और विचार के बारे में स्पष्ट नहीं हो तो न तो उसकी अभिव्यक्ति में स्पष्टता होगी और न ही उसका लेखन प्रभाव उत्पन्न करने वाला होगा । अत: यह ध्यान में रखते हुए कि जनसंपर्क में लेखन का निश्चित लक्ष्य होता है । उसकी पूर्ति के लिए अभिव्यक्ति एवं संचार की सारी विशेषताओं को ध्यान में रखकर लेखन कार्य संपन्न करना चाहिए ताकि लक्ष्य की पूर्ति हो सके ।

14.7 लेखन की विशेषताएं

जनसंपर्क के लिए लेखन की मौलिक विशेषताओं के साथ उसमें लक्ष्य तक पहुंचने और अपेक्षित प्रभाव पैदा करने की विशेषता का समावेश होना चाहिए । लेखन में सामयिकता और तात्कालिकता का पुट भी रहना चाहिए । समय के साथ समाज का सोच, अभिरुचि, परंपराएं और आवश्यकताएं परिवर्तित होती रहती हैं । सामयिक सामाजिक संरचना और प्रभाव को ध्यान में रखते हुए समय- समय पर लेखन की विधा, भाषा और शैली में परिवर्तन आवश्यक है । जनसंपर्क के लिए किया जाने वाला लेखन यद्यपि किसी उद्देश्य या उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता हैं, परन्तु उसको जब तक संदेश मानवीय सुरुचि और मानवीय संवेदनाओं का स्पर्श नहीं करेगा अपने लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर पाएगा । जनता की तर्क- शक्ति और समझ पर संदेह भी नहीं करना चाहिए । यदि अपने हित या स्वार्थ के लिए असत्य के सहारे भ्रमजाल फैलाकर कोई बात कहीं जाएगी तो वह किसी दिन जनसंपर्क के लिए किए जाने वाले लेखन एवं कार्यो पर संदेह और अविश्वसनीयता के प्रश्नचिह्न खडे कर देगी । अत: लेखन में सत्य और तथ्य का पुट होना चाहिए । चालाकी और चतुराई से जनसंपर्क का कार्य दीर्घजीवी नहीं रह पाता है ।

इस प्रकार जनसंपर्क के लिए किया जाने वाला लेखन भाषा, शैली और माध्यम के स्तर पर ही प्रभावपूर्ण न हो बल्कि विचारों और तथ्यों के स्तर पर भी यथार्थ और सत्य को प्रकट करने वाला हो । उसमें असत्य या चतुराई से काम नहीं लिया जाना चाहिए । पूर्वाग्रह और पक्षपात से भी दूर रहना चाहिए । थोड़े शब्दों में ज्यादा बात कहने के साथ-साथ लेखन को स्पष्ट और बोधगम्य बनाए रखने की भी क्षमता का निर्माण करना चाहिए । बात या सुझली हुई चुस्तदुरुस्त और स्पष्ट भाषा नहीं होगी तो कोई भी लेखन अपने उद्देश्य में सफल नहीं होगा ।

14.8 जनसंपर्क के लिए संपादन

संपादन भी एक महत्वपूर्ण कला है । कोई भी मुद्रित या प्रसारित होने वाली सामग्री, छायाचित्र, ग्राफ डिजायन आदि जनसंपर्क के क्षेत्र में अलग- अलग लोगों द्वारा लिखी या तैयार की जाती है । प्रकाशनों, विज्ञापनों या अन्य प्रकार के जनसंपर्क के कार्यो को पूरा करने वाली सामग्री के संपादन का अर्थ है -सामग्री का चयन और प्रस्तुतीकरण ।

सामग्री के सुरुचिपूर्ण संयोजन, सृजनात्मक एवं प्रेरणादायक रुप में प्रस्तुतीकरण या प्रसार आदि का महत्वपूर्ण स्थान होता है । जनसंपर्क के लिए लेखन और संदेश-प्रसार की सामग्री तैयार करने और उसे प्रकाशित प्रसारित करने के संदर्भ में आवश्यकता के अनुरूप उसे संपादित करने का भी कार्य सम्मिलित है । अत: जनसंपर्ककर्ता के लिए संपादन कला के प्रमुख तत्वों को जानना और माध्यमों के अनुरूप प्रसार सामग्री में काटछांट, सुधार या संशोधन करके उसे अंतिम रूप देना भी उसके दायित्वों में संमिलित है ।

किसी संस्था या संस्थान की गृह-पत्रिका या प्रकाशनों का संपादन करने के अलावा समाचारों, फीचर, प्रतिवेदन, बुलेटिन आदि विविध प्रकार की सामग्री का भी जनसंपर्ककर्ता को संपादन करना होता है । अत: उसे संपादन कला के विविध पक्षों की मौलिक और यथेष्ट जानकारी होनी चाहिए ।

बोध प्रश्न - 3

1. माध्यम के अनुसार लेखन से क्या तात्पर्य है ?,
2. जनसंपर्कक्र्ता को अच्छा संपादक क्यों होना चाहिए?
3. जनसंपर्ककर्ता की लेखन-शैली में कौन सी विशेषताएं होनी चाहिए?

14.9 सारांश

लेखन की विधा में कुशलता प्राप्त करने के लिए लेखन के मौलिक तत्वों का ज्ञान और अभ्यास आवश्यक होता है जनसंपर्क के लिए लेखन करते समय सृजनात्मक के स्तर पर अनेक सीमा रेखाएं होती है क्योंकि इस क्षेत्र में लेखन किसी के पक्ष में किया जाता है स्वांत: सुखाय नहीं । लेखन के बाद समाचार विज्ञप्ति आलेख विज्ञापन आदि को किसी माध्यम से उस जनता या जनसमुदाय तक पहुंचाने या प्रसारित करने का प्रयास किया जाता है जिसके लिए संदेश या पछलिपि तैयार की गयी है । अत: उस माध्यम की संदेश रचना या लेखन-विधा की तकनीक का भी ज्ञान रखते हुए लेखन करना पड़ता है । विविध प्रकार की 'जनता' के लिए लेखन की भाषा और शैली भी भिन्न होती है ।

इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए मौलिक सृजनात्मक तथ्यात्मक एवं सुरुचिपूर्ण लेखन करना और जनता या जनसमुदाय के मानस में एक प्रभाव की सृष्टि करना जनसंपर्क के लिए किए गए लेखन का लक्ष्य होता है । जो लेखन इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं करता वह सार्थक नहीं माना जा सकता ।

इस प्रकार जनसंपर्क के लिए किए जाने वाले लेखन का कार्य चुनौतीपूर्ण एवं विविधतापूर्ण अवश्य है परन्तु लेखन और जनसंपर्क कर्म को समर्पित भाव से करने तथा सदैव लेखन का अभ्यास करते हुए इस कार्य को संपन्न करना सहज कार्य बन सकता है इसके अलावा जिस संस्था या संस्थान के लिए जनसंपर्क कार्य किया जाए उसके कार्यो और नीतियों के बारे में स्पष्ट दृष्टिकोण और उसके प्रति दायित्व भावना रखते हुए उस संस्था या संस्थान तथा जनता के बीच एक सेतु का निर्माण करना अपेक्षित है जो जनसंपर्क कर्म का आधारभूत लक्ष्य है ।

14.10 शब्दावली

संचार : एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्याज़ तक मौखिक या किसी माध्यम से सूचना, विचार, दृष्टिकोण संप्रेषित करना । प्रेषक, प्रेषित संदेश और लक्ष्य व्यक्ति या समूह के बिना यह प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती ।

प्रेस-विज्ञप्ति : लिखित, समाचार, संदेश या प्रतिवाद, जो प्रकाशन और प्रसारण के लिए समाचार- माध्यमों को प्रेषित किया जाए ।

संवाददाता-सम्मेलन-आयोजन : विशेष जानकारी या स्पष्टीकरण देने अथवा घोषणा करने के लिए समाचार माध्यमों के संवाददाताओं को आमंत्रित करके उन्हें संबोधित करना और उनके प्रश्नों का उत्तर देना ।

पैम्फलेट : पतली पुस्तिका, पर्चा

लक्ष्य वर्ग या समूह : कोई भी वर्ग या समूह जिस तक जानकारी या संदेश पहुंचाना है जैसे ग्राहक, शिक्षक, वैज्ञानिक, ग्रामीण समुदाय, निवेशक वर्ग आदि ।

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. जनसंपर्क की अवधारणा से आप क्या समझते हैं?
2. जनसंपर्क के तत्वों का विवेचन कीजिए ।
3. जनसंपर्क कार्य विस्तार के प्रमुख बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए ।
4. जनसंपर्क-लेखन का लक्ष्य आपकी दृष्टि में क्या होना चाहिए?
5. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए -
   अ. जनसंपर्क लेखन की विशेषताएं
   ब. जनसंपर्क के लिए संपादन
   स. जनसंपर्क एवं संप्रेषण माध्यम
   द. जनसंपर्क और जनता

14.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पब्लिक रिलेशंस : जेठवानी, वर्मा, सरकार, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, दिल्ली ।
2. भारत में जनसंपर्क : डा. बलदेवराज गुप्त, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
3. Practical Public Relations : Sam Blac, Universal Bookstall, New Delhi
4. Effective Public Relations Scott M. Cutlip, Allen H.
   Cenrre Prentice Hall
6. Writers Workshop : Techniqnes in Creative, Writing
   Batsford, 1979
   Maybury, Barry.
7. Guide to fiction Writing, whitney, London
   Popular Press

इकाई 15 मुद्रित - माध्यमों के लिये समूह - लेखन

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.1.1 जनसंचार-माध्यमों के लिए लेखन

15.1.2 माध्यम कोई भी : कौशल लेखक का

15.2 मुद्रित माध्यम : लेखन के क्षेत्र

15.2.1 मुद्रित-माध्यम

15.2.2 मुद्रित-माध्यम का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

15.3 मुद्रित माध्यम की स्तंभ सामग्री

15.3.1 समाचार

15.3.2 अच्छे समाचार के आवश्यक गुण

15.3.3 संपादकीय

15.3.4 अच्छे संपादकीय लेखन के लिए आवश्यक बातें

15.3.5 अग्रलेख या विशेष लेख

15.3.6 सामयिक लेख

15.3.7 व्यंग्य लेख

15.3.8 फीचर

15.3.9 फीचर लेखन संबंधी आवश्यक बातें

15.3.10 रिपोर्ताज

15.3.11 परिशिष्ट लेखन

15.4 सारांश

15.5 उपयोगी पुस्तकें

15.6 निबंधात्मक प्रश्न

15.0 उद्देश्य

अभी तक आप पढ़ आए हैं कि जनसंचार-माध्यम के लिए लेखन कार्य विशेष दृष्टि से किया जाता है । यह सामान्यत: समाचार माध्यम (प्रेस मीडिया) की भांति छ: ककारों पर आधारित समाचार लेखन नहीं होता है । इसमें निर्धारित विषय पर पर्याप्त शोध, पुस्तकालय से गृहीत संदर्भ, विशिष्ट या संदर्भ से जुड़े लोगों के साक्षात्कार के माध्यम से एकत्रित जानकारी के साथ विषय या व्यक्ति से संबंधित चित्र और कलाकार अथवा कंप्यूटर के मल्टी मीडिया का कलात्मक उपयोग भी होता है । जनसंचार-माध्यम समाज के एक बड़े वर्ग को प्रभावित करता है । अत: इस पाठ के अंतर्गत आप जान सकेंगे कि : -

- जनसंचार-माध्यमों के लेखक का पाठक वर्ग कैसा है?
- उनकी शैक्षिक, सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश की अपेक्षाएं क्या होती हैं?

- समूह लेखन के विविध पक्ष कौन-से होते हैं?
- समूहों के लेखन के लिए विषय का प्रतिपादन कैसे किया जाता है?
- समूह-लेखन के लिए लेखक से क्या अपेक्षाएं होती हैं?

15.1 प्रस्तावना

15.1.1 जनसंचार-माध्यमों के लिए लेखन

जनसंचार के विविध माध्यम हैं और उनके लिए लेखन आज की आवश्यकता है क्योंकि मुद्रित माध्यम (पत्र-पत्रिकाओं) को विशेष समयावधि के लिए निरंतर लेखक से अपेक्षाएं रहती हैं । इलाक्ट्राय-माध्यम श्रोता-समुदाय के लिए होता है और उसके लिए लिखना मुद्रित-माध्यम की प्रविधि या तकनीक के आधार पर संभव नही होता । फिर प्रत्येक माध्यम के लिए लेखन संबन्धी कुछ विशेष अपेक्षाएं होती हैं और पाठक तथा श्रोता अथवा दर्शक जैसे वर्गो या समूहों के लिए जब लिखा जाता है तो लेखक को यह भी ध्यान रखना होता है कि उसका पाठक, श्रोता या दर्शक किस शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक वर्ग का है तभी उनके लिए वह उत्तम लेखन कर सकता है ।

15.1.2 माध्यम कोई भी : कौशल लेखक का

लेखक के समक्ष एक व्यापक अनुभव-संसार होता है । यदि वह मुद्रित-माध्यम के लिए लेखन करता है तो सर्जनात्मक लेखन (कहानी, कविता, व्यंग्य, विनोद वार्ता, साक्षात्कार या समीक्षा) को छोड़कर सूचनापरक, ज्ञान वर्द्धक तथा मनोरंजनपरक लेखन पर दृष्टि केंद्रित करता है और उसके लिए अपना एक शिल्प विकसित करना होता है । लेकिन आज जब इलाक्ट्राय-माध्यम पूरे समाज पर प्रभावी हो चुका है तो ऐसी स्थिति में उसकी अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप लेखन हेतु विशेष शिल्प अपनाया जाना आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य भी है ।

रेडियो माध्यम के लिए लेखक को ऐसे श्रोता का ध्यान करना है जो एक बार सुनता है, दुबारा सुनने का अवसर उसे नहीं है । सब कुछ इतना स्पष्ट, नपे -तुले शब्दों में और सार्थक होना अपरिहार्य है । टेलीविजन के दर्शक के लिए विषयवस्तु या सूचना या संदेश के साथ विजुअल या दृश्य-विधान (सीनिरियो) का औचित्य भी ध्यान में रखकर उपलब्ध समयावधि के अन्तर्गत ही लेखन कार्य करना होता है । ध्यान देने योग्य बात इतनी- सी है कि लेखक को जनसंचार के विशिष्ट माध्यमों के लिए लिखना होता है और तदनुरूप उसे अपना शिल्प-कौशल भी प्रदर्शित करना होता है ।

15.2 मुद्रित- माध्यम - लेखन के क्षेत्र

15.2.1 मुद्रित-माध्यम

जनसंचार के विविध रूपों में सर्वसुलभ और सस्ता माध्यम मुद्रित-माध्यम है जिसके अंतर्गत आते हैं - दैनिक, साप्ताहिक या पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएं । द्विमासिक, त्रैमासिक, वार्षिक पत्रिकाएं भी मुद्रित-माध्यम के अंतर्गत ली जाती हैं, परन्तु उनके लिए लेखन कार्य अति सीमित और दीर्घ अंतराल का रहता है तो वह पाठकों को अत्यधिक प्रभावित नहीं करता है ।

दैनिक समाचारपत्र बहुत ही अल्पकालिक और विस्मरणीय मुद्रित्माध्यम है और उसका मूल केन्द्र समाचार ही है, पर इसके साथ उसमें अग्रलेख, विशेष लेख, व्यंग्य लेख, फीचर नियमित लिखे जाते हैं और संपादकीय तथा संपादकीय टिप्पणियां भी लिखी जाती है । प्रथम चार प्रकार के लेखन के लिए समाचारपत्र अपने संपादकीय विभाग से भिन्न लेखकों की सेवाएं पारिश्रमिक देकर प्राप्त करते हैं । स्थायी फीचर लेखन का दायित्व स्थानीय स्तर पर संपादकीय अनुभाग के किसी भी सदस्य को दिया जाता है । कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर किसी विशेष अवसर पर भेंटवार्ता, (साक्षात्कार, बातचीत) आदि भी प्रकाशित करने की व्यवस्था करनी होती है ।

15.2.2 मुद्रित माध्यम का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

पत्रकारिता जनसंचार का मुद्रित माध्यम है जो वास्तव में दैनिक प्रसंगों एवं घटनाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं । सामान्य रूप से उसके लिए समाचारों के अतिरिक्त भी कुछ सामग्री प्रकाशनार्थ आवश्यक होती है । यह समस्त सामग्री सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विषयों से संबंधित होती है । जितना महत्वपूर्ण राष्ट्र का अंग यह समाज है, उतना ही परिवार या व्यक्ति भी समाज का महत्वपूर्ण अंग है । समाज के अच्छे-बुरे सभी पहलुओ पर एक नियंत्रक दृष्टि और संतुलित दिशा प्रदान करने की महत्वपूर्ण भूमिका पत्र या पत्रिका संभालते हैं तथा पत्रकार भी इस मानव समाज को संकट से निकालकर स्वस्थ और हितकर स्थिति में ले जाने के लिए तत्पर रहता है ।

सामाजिक दायित्व के दायरे में समाज के आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, नैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी पक्ष आ जाते हैं । पत्र-पत्रिकाएं सामाजिक विषमता और असंतुलन को मिटाकर और जनहित नीतियों को प्रसारित करके सामाजिक परिवर्तन में अमूल्य योगदान करती पत्र- पत्रिकाएं सामाजिक परिस्थितियां और घटनाचक्रों पर तीखी दृष्टि रखकर निष्पक्ष विश्लेषण एवं निर्भीक आलोचना प्रस्तुत कर जनमत निर्माण की ओर कदम बढ़ाती हैं ।

बोध प्रश्न - 1

1. जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन में लेखक का कौशल क्यों महत्वपूर्ण है?
2. मुद्रित माध्यम से आपका आशय क्या है?
3. मुद्रित माध्यम का सामाजिक परिप्रेक्ष्य क्या है?

15.3 मुद्रित- माध्यमों की स्तंभ- सामग्री

मुद्रित्-माध्यम यानी दैनिक, साप्ताहिक एवं पाक्षिक समाचारपत्रों या पत्रिकाओं में स्थायी पृष्ठों या स्तंभों का विभाजन नीचे दिया जा रहा है जिनके लिए उपयुक्त रचनाओं की निरंतर आवश्यकता रहती है -

1. समाचार
2. संपादकीय
3. अग्रलेख या विशेष लेख
4. सामयिक लेख
5. व्यंग्य लेख
6. फीचर
7. रिपोर्ताज
8. परिशिष्ट

(क) रविवारीय
(ख) शिक्षा एवं संस्कृति
(ग) स्वास्थ्य एवं सौंदर्य
(घ) पारिवारिक
(ङ) उद्यम एवं व्यवसाय
(च) खेलखिलाड़ी-
(छ) बालस्तंभ-
(ज) किशोर-किशोरी
(झ) फिल्म या टेलीविजन

15.4.1 समाचार

समाचार की परिभाषा को कुछ शब्दों में बांधना संभव नहीं है । पश्चिमी संचार विशेषज्ञ डाउलिंग लैदरबुड के मतानुसार- "समाचार किसी घटना, परिस्थिति, स्थिति या रूप की सही और सामयिक सूचना है- ऐसी सूचना जिसमें उन लोगों की, जिनके लिए यह अभिप्रेत हो, रुचि हो ।"

इस प्रकार निश्चित ही "ऐसी कोई भी सत्य एवं तथ्यपरक सामयिक सूचना जिसमें अधिसंख्य व्यक्तियों की रुचि स्पष्टत: बनी रहती है, समाचार कहा जाता है ।" इसीलिए समाचार के तत्वों के रूप में तात्कालिकता निकटता, आकार, विचित्रता, महत्ता का रेखांकन किया जा सकता है और उसमें जनाकर्षण भी निहित माना जा सकता है । दूसरे शब्दों में यह यह कहा जा सकता है कि समाचार के समाचारत्व- तत्वों में जानकारी, नवीनता, बहुसंख्यक रुचि, उत्तेजक सूचना और परिवर्तन की सूचना निहित है ।

समाचार के आकर्षक तत्वों में सामयिकता, घटनास्थल, मानवीय सुरुचि, आत्मीयता के अतिरिक्त चार सकार (सत्यता, स्पष्टता, सुरुचि, संक्षिप्तता) है । इसलिए समाचार लेखन के पूर्व ही संवाददाता या समाचार लेखक के मन में यह तय हो जाता है कि समाचार का विवरण किस क्रम से दिया जाना है क्योंकि उसे यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि उसके समाचार से पाठक को छह ककारों का उत्तर मिल जाना चाहिए -

1.	क्या	क्या घटना घटित हुई ?
2.	कहां	घटना कहां हुई?
3.	कब	घटना किस समय घटित हुई?
4.	कौन	किसने/किसके साथ घटना घटी?
5.	क्यों	घटना क्यों हुई?
6.	कैसे	घटना कैसे घटित हुई?

15.3.2 अच्छे समाचार के आवश्यक गुण

मुद्रित माध्यम की प्रमुख आवश्यकता समाचार लेखन है । समाचार-डेस्क पर समाचारों का आगमन निरंतर रहता है । कई बार प्राप्त समाचारों का पुनर्लेखन भी करना पड़ता है तो कई बार सीधे ही संवाददाता दारा प्रेषित समाचार को यथावत रूप में ही मुद्रण के निमित्त दे दिया जाता है अथवा समाचार हेतु बचे हुए स्थान के अनुसार उसमें काटछांट कर दी जाती है ।

समाचार-लेखन में जहां छह ककारों की प्रवीणता आवश्यक होती है, वही यह भी आवश्यक होता है कि -

(1) समाचारों की भाषा और शैली ऐसी होनी चाहिए जो समाचार की गहराई तक पाठक को ले जाती हो ।

(2) समाचार का आमुख (इंट्रो) आकर्षक एवं ठोस होना चाहिए ।

(3) समाचारों में मानवीय संवेदना के पक्षों को अधिक प्रचारित करने का प्रयास होना चाहिए ।

(4) समाचार-लेखन में विलोम पिरामिड प्रणाली का प्रचलन है, जिसमें समाचार का सार संक्षेप प्रारंभ में दे दिया जाता है और विवरण बाद में पिरोए जाते हैं ।

(5) समाचार अधिकांश रूप में ऊर्ध्व पिरामिड (अपराइट पिरामिड) के रूप में तब लिखे जाते हैं जब मानवीय संवेदना वाले समाचार हों । ऐसे समाचारों के आरंभ के समाचारों से क्रमश: आगे बढ़ा जाता है । समाचार का अंत सर्वाधिक महत्व वाले विवरण से पूरा किया जाता है ।

(6) समाचार-लेखन में प्रमुखता उसके आमुख की, फिर विस्तार की और अंत की महत्ता समापन में होती है । तभी वह पाक पर अपना प्रभाव छोड़ सकता है ।

(7) समाचार सूंघकर या किसी विश्वसनीय स्रोत से प्राप्त करके। समाचार लिखते समय ऐसा कोई उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए ।

(8) समाचार-लेखन के लिए भी संवाददाताओं एवं संपादकों को आचार संहिता का पालन करना चाहिए ।

15.3.3 संपादकीय

किसी भी समाचारपत्र में समाचारों के अतिरिक्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'संपादकीय' होता है । संपादकीय किसी भी समाचारपत्र की आत्मा है, उसकी सार्थक वाणी है तथा उसका उद्देश्य पाठक तक अपने विचार पहुंचाना है, परन्तु यह विचार संपादक के निजी नहीं अपितु पाठक वर्ग से ही संबंधित या किसी समसामयिक समस्या से संबंधित होते हैं । समाचार लिखना कहीं अधिक सहज होता है लेकिन संपादकीय लिख पाना कठिन हो जाता है क्योंकि संपादकीय लेखन से पूर्व लेखक को यह निश्चित कर लेना होता है कि वह जो कुछ लिखने जा रहा है, अन्य हजारों व्यक्तियों के सोच के साथ जुड़ना चाहिए तथा उन्हें प्रभावित करना चाहिए और विश्वसनीय लगना चाहिए । संपादकीय में क्षेत्र, समाज और राष्ट्र-हित स्पष्ट: उभरकर आना चाहिए । अनुसंधान या खोज से वर्तमान या समसामयिक समस्याओं की पूर्व । स्थिति की समस्त जानकारी प्राप्त की जा सकती है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि संपादकीय के स्वरूप और शैली का कोई स्पष्ट रूप अभी तक सामने नहीं आ सका है और न उसके आकार का कोई प्रतिमान निर्धारित है । फिर भी यह सामान्यत: यह स्वीकार किया जाता है कि संपादकीय छोटे आकार का ही होना चाहिए ताकि उसके लिए पाठक को तीन-चार मिनट से अधिक समय नहीं लगे।

किसी भी संपादकीय का अर्थ किसी भी घटना, गतिविधि अथवा विषय पर समाचारपत्र या संपादक का मत है और उसकी पहली प्राथमिकता निष्पक्षता होती है । इसके उपरान्त संपादकीय लेखन में निर्भीकता और निर्लिप्तता का होना आवश्यक है क्योंकि संपादकीय ही विचार- अभिव्यक्ति का साक्षात् स्वरूप है । अत: प्रत्येक संपादकीय से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह अपने कथन या तर्क को सप्रमाण प्रस्तुत करे ।

संपादकीय लिखने के लिए यह जान लेना भी आवश्यक है कि पत्र में प्रकाशित होने वाला प्रत्येक समाचार संपादकीय टिप्पणी के योग्य नहीं होता है । समाचार का महत्व ध्यान में रखकर ही संपादकीय के विषय का चयन किया जाता है । साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि संपादकीय प्रकाशित समाचार पर ही आधारित हो । किसी ऐसे विषय पर भी संपादकीय लिखा जा सकता है, जो समाचार न बना हो । पर यह सुनिश्चित कर लेना सार्थक होता है कि संपादकीय में समाचारपत्र का दृष्टिकोण अवश्य अभिव्यक्ति पा रहा हो । संपादकीय आकार में संक्षिप्त, ठोस, तार्किक, जनहितार्थ एवं प्रभावपूर्ण होना चाहिए तभी पाठक उसे पसंद करेंगे।

संपादकीय पृष्ठ का सबसे महत्वपूर्ण अंग और प्रधानत: पहले दो कालम में स्थान पाने वाला 'संपादकीय' ही होता है । यह संपादक और पत्र के विचारों और रीति-नीति का दर्पण होता है तथा गंभीर चिंतन, तथ्यात्मक अन्वेषण के साथ प्रभावशाली शैली में लिखा जाता है । विषय पर उसकी दृष्टि का परिचायक होता है । सामान्यत: संपादकीय का निर्धारित स्थान समाचार पृष्ठ का मध्य भाग होता है तथा पृष्ठ भी बायां और प्रथम दो कालमों में ही है, परन्तु बहुत ही महत्वपूर्ण घटना होने पर संपादकीय निर्धारित पृष्ठ के स्थान पर मुख पृष्ठ के बाएं प्रथम दो कालमों में प्रस्तुत किया जाता है । इस प्रकार के संपादकीय में संपादकीय-लेखक का नाम भी अंत में रहता है ।

15.3.4 अच्छे संपादकीय-लेखन के लिए आवश्यक बातें

संपादकीय लिखने के लिए सामान्यत: कुछ नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है । एक अच्छे संपादकीय-लेखन के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक होती हैं ।

1. संपादकीय में तथ्यों को पूर्णत: ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करें । तथ्यों को आधे-अधूरे रूप में आधार बनाकर या स्थितियों को विकृत रूप में प्रस्तुत करना अनुचित है ।
2. संपादकीय में ज्ञात तथ्यों को सप्रमाण रूप में तथा बहुजन हिताय की कसौटी पर कसकर वस्तुवादी या वस्तुनिष्ठ रूप में रखा जाना चाहिए ।
3. संपादकीय में सत्य का उद्घाटन होना चाहिए तथा यह सत्य इतना स्पष्ट होना चाहिए कि उसे संपादकीय में खोजने की आवश्यकता नहीं पड़े । सत्य उभरकर पाठक के समक्ष आना ही सर्वोत्तम व्यवस्था है ।
4. संपादकीय में 'मैं' का प्रयोग वर्जित रहना चाहिए क्योंकिं संपादकीय लिखता व्यक्ति ही है, पर वह मतोल्लेख समाचारपत्र रूपी संस्था और संपादक मंडल रूपी परिवार का कथन होता है । अत: व्यक्तिचिंतन की दृष्टि उसमें होकर भी समूह-लेखन का घोष बना रहना चाहिए ।
5. संपादकीय में व्यक्ति-हित ओर स्वार्थ-भाव की अभिव्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है । अत: कुछ विशेष सुविधाओं को पाने के लिए संपादकीय लेखन कदापि नहीं होना चाहिए ।
6. संपादकीय लेखन में खुले हृदय और उदार-चिंतन से अपने निष्कर्षो पर पुनर्विचार करते रहना ही अधिक उपयुक्त है । असहमति या विरोध का भी स्वागत किया जाना चाहिए ।
7. संपादकीय में प्रकट विचारों के प्रति दृढ़ता दिखाने तथा लोकतंत्रात्मक स्तर पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दृष्टिकोण रखते हुए भी स्वस्थ और सही निर्णय प्रस्तुत करने में पीछे नहीं रहना चाहिए ।

8. अपने सहयोगियों अथवा अन्य व्यक्ति के मत का आदर करें और व्यावसायिक ईमानदारी का परिचय निष्ठापूर्वक देना चाहिए ।
9. संपादकीय लेखन में भी आचार संहिता का पालन उचित है । पत्र और सहयोगियों की प्रतिष्ठा संहिता-पालन से बढ़ती है ।

15.3.5 अग्रलेख या विशेष लेख

मुद्रित-माध्यम हेतु संपादकीय लेखन के अतिरिक्त अग्रलेख या विशेष लेख की महत्ता होती है । कुछ लोग सामान्य भाषा में संपादकीय को अग्रलेख कह देते हैं, पर संपादकीय तो संपादकीय अथवा संपादक-मंडल का मत अथवा विचार होता है ।

अग्रलेख का स्थान संपादकीय पृष्ठ पर ही होता है । जिस प्रकार संपादकीय विचार अभिव्यक्ति का माध्यम है, उसी प्रकार अग्रलेख वास्तव में संपादकीय भावों के निकट ही होता है । यदि वह संपादकीय के रूप में ही है तो फिर अग्रलेख कहने की आवश्यकता भी नहीं होती । संपादक तो किसी ज्वलंत समस्या पर अथवा राष्ट्रीय सामाजिक, आर्थिक अंतर्राष्ट्रीय स्थिति अथवा जनता को प्रभावित करने वाली स्थितियों पर लिखे जाते हैं, परन्तु अग्रलेख का विषय चयन करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि पाठकों की रुचि किस विषय पर अपेक्षाकृत अधिक केंद्रित होती है ।

समाचारपत्रों में अग्रलेख की उपयोगिता पर विचार करते हु ए यह कहा जा सकता है कि अग्रलेख पाठकों को अधिक जागरूक बनाने की भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे तात्कालिक घटनाओं, आकस्मिक आपदाओं तथा सुखद घटनाक्रम की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं । यही कारण है कि प्राय: संपादकीय विभाग में कार्यरत किसी वरिष्ठ सहसंपादक को अग्रलेख का दायित्व और विषय दिया जाता है तथा उसके लिए संपादक का परामर्श और दिशा-निर्देश रहता है ।

अग्रलेख लेखन हेतु आवश्यक बातें -

अग्रलेख अब समाचारपत्र के व्यावसायिक रूप धारण कर लेने पर संपादकीय पृष्ठ के अनिवार्य अंग बन गए हैं और संपादक अपने सहयोगी सहसंपादकों के साथ विचार-विमर्श करके विषय एवं लेखक तय करते हैं । ऐसी स्थिति में अग्रलेख लेखन के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है -

1. वह तथ्यों को ईमानदारी से प्रस्तुत करे तथा पाठकों को सही मार्ग दिखाए ।
2. अग्रलेख में प्रस्तुत विषय में निष्कर्ष सदैव निष्पक्ष होने चाहिए ।
3. व्यक्तिगत स्वार्थो तथा भ्रष्टाचार से दूर रहे ।
4. अपने त्रुटि-दिग्दर्शक या विरोधी मत रखने वालों का उचित आदर करना चाहिए ।
5. अपने सहयोगियों की प्रतिबंध करें तथा उनके मत एवं विमर्श पर भी ध्यान दें क्योंकि सहयोगियों की प्रतिष्ठा में ही अपनी और समाचारपत्र की प्रतिष्ठा है ।
6. नित्य नवीन जानकारी के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पुनर्विचार करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए ।
7. लोकतांत्रिक विचारधारा में आस्था एवं निष्ठा रखकर अपने विचारों को दृढ़ता क साथ प्रकट करने और दूसरे के विचारों को सुनने का अवसर देना चाहिए ।
8. अपने लेखन से पाठकों को चिंतन का अवसर देना चाहिए तथा पाठकों के तर्क भी सुनने चाहिए।

15.3.6 सामयिक लेख

सामयिक लेख का स्थान संपादकीय पृष्ठ ही होता है । इसीलिए यह कहा जा सकता है कि संपादकीय पृष्ठ पर संपादकीय के अतिरिक्त भी बहुत कुछ और होता है । इसमें सामयिक लेख प्रमुख है । सामयिक लेख किसी विषय विशेष पर व्यक्ति-विशेष का मत और विश्लेषण होता है तथा यह व्यक्ति-विशेष अपने विषय का विशेषज्ञ होता है । अत: इस सामयिक लेख के लिए यह आवश्यक नहीं कि संपादकीय विभाग की सेवाएं ही उपलब्ध हों, क्योंकि ऐसी विशेषता संपादकीय मंडल में उपलब्ध ही हो यह आवश्यक नहीं है । अत: इसके लिए स्थायी रूप से सभी विषयों के विशेषज्ञों से समाचारपत्र या संपादक का संबन्ध बना रहता है जो समय-समय पर उन्हें सामयिक लेख उपलब्ध कराते है । सामयिक लेख भी संपादकीय की भांति जनता को जागृत करने,जनता को दिशा देने तथा जनमत निर्धारण में सहायक होते हैं ।

सामयिक लेखों को विषयानुसार इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है : -

(क)	राजनीतिक	(ख)	आर्थिक
(ग)	शैक्षिक	(घ)	प्रादेशिक
(ङ)	राष्ट्रीय	(च)	अन्तरराष्ट्रीय

सामयिक लेख लिखने वालों में खुशवंतसिंह, कुलदीप नायर, अरुण शौरी, महेश, मंगल बिहारी, बलराज मेहता आदि विभिन्न समाचारपत्रों के लिए लिखते है । कुछ -समाचारपत्रों में इस प्रकार के सामयिक लेख के लिए स्थायी स्तंभ या कॉलम निर्धारित किए जाते हैं ।

15.3.7 व्यंग्य लेख

संपादकीय पृष्ठ की समग्रता दिखा पाना तब तक संभव नहीं होता, जब तक उसमे व्यंग्य लेख का स्तंभ (कॉलम) न हो क्योंकि पत्र के कुछ पाठकों की रुचि समाचार के अतिरिक्त व्यंग्य लेख पर ही केंद्रित होती है और ऐसे पाठकों से पूछा जाए तो उन्हें संपादकीय या सामयिक लेख अथवा अग्रलेख में कोई रुचि नहीं होती । समाचारों पर दृष्टि डालने के उपरांत वे सीधे ही व्यंग्य स्तंभ (कॉलम) संभालते हैं ।

यद्यपि व्यंग्य आज जीवन से ही लुप्त हो रहा है क्योंकि मनुष्यों की सहन शक्ति कम हो गई है या फिर दूसरे रूप में व्यंग्य का केंद्र आज राजनीति और नेता हैं । पाक उन्हें व्यंग्य लेखक से कहीं अधिक जानते हैं । ऐसी स्थिति में उनके संबंध में कुछ व्यंग्यात्मक पढ़ने की इच्छा ही उनमें नहीं देखी जाती है ।

वास्तविकता यह है कि व्यंग्य लेख के निमित्त लेखक को प्रेरणा या व्यंग्य का उत्सव सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक विसंगतियों ओर विद्रूपताओं से मिलता है । पर इसके लिए व्यंग्य लेखक को जीवन के हर कटु अनुभव का ज्ञान होना आवश्यक है या फिर उसकी कल्पना में व्यंग्य की सर्जना- शक्ति बहुत गहन होनी चाहिए ।

व्यंग्य-लेखक समाचारपत्र के लिए व्यंग्य का आधार उसके प्रथम लीड समाचार या संपादकीय में व्यक्त विचार को ही बना लेता है । व्यंग्य लेखक का चिन्तन एकांगी न होकर बहुआयामी होता है तथा उसमें विवेचनायुक्त गहराई होती है । वैसे यह निश्चित है कि किसी भी समाचारपत्र के लिए

व्यंग्य स्तंभ लेखन के लिए संपादकीय विभाग में ही किसी समर्थ सहयोगी को यह दायित्व दिया जाता है । इसे बाहर के किसी व्यक्ति द्वारा प्राय: नहीं लिखा जाता है ।

15.3.8 फीचर

मुद्रित-माध्यम आज बिना फीचर के वैसा ही प्रतीत होगा जैसे बिना आभूषणों के कोई नवयौवना क्योंकि मुद्रित माध्यम चाहे दैनिक समाचारपत्र हो या साप्ताहिक अथवा पाक्षिक, सभी में किसी भी प्रकार के समाचारत्व से परिपूर्ण रोचक एवं आकर्षक ढंग से लिखा गया कल्पनामय मनोरंजनपरक प्रासंगिक आलेख फीचर के रूप में अलंकरण या शोभा का कारण बनता है । फीचर के विषय बहु आयामी होते हैं । इसमें कल्पना, तथ्य एवं लेखन कला का मिश्रित रूप विद्यमान रहता है । फीचर-लेखक विविध विषयों के पूर्वानुमान पर निर्धारित समयावधि से पूर्व ही समाचारपत्रों को फीचर प्रेषित कर देते हैं । और कभी-कभी किसी घटना विशेष द्वारा पड़ने वाले प्रभावों का पूर्वानुमान लगाकर संभावित परिणामों की ओर भी फीचर लेखक अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है । इस प्रकार फीचर एक रोचक, ज्ञानवर्द्धक मार्गदर्शक विधा है ।

3.6.1 फीचर लेखन के विविध प्रकार हो सकते हैं । डा. विजय कुलश्रेष्ठ ने 'फीचर लेखन' में फीचर के विविध प्रकारों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है : -

1. समाचारपरक
2. मानवीय रुचिपरक
3. व्याख्यात्मक
4. पार्श्वचित्र या व्यक्तित्व रेखांकन
5. ऐतिहासिक
6. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
7. खेलकूद
8. पर्वोत्सवी
9. पारिवारिक
10. फोटो फीचर
11. प्रकीर्णक

(क) फैशन (ख) कड़ाई (ग) बुनाई
(घ) पर्यटन (ङ) परीक्षा (च) बचत
(छ) रोजगार (ज) गृहबगीचा- (झ) किचनवेयर
(ञ) गृहसज्जा- (ट) रेडियो, टी .वीउपकरण .
(ठ) श्रृंगार प्रसाधन (ड) ब्यूटी कल्चर
(ढ) मातृत्व एवं शिशु पोषण

15.3.9 फीचर लेखन संबन्धी आवश्यक बातें

फीचर लेखन निरंतर लेखन की कला है । किसी भी पत्र या पत्रिका के लिए फीचर लिखते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना फीचर लेखक के लिए आवश्यक माना जाता है : -

1. समाचार पर आधारित फीचर के लिए विषय सामग्री चयन करने के लिए समाचार की नई-पुरानी फाइलें एवं तत्कालीन परिस्थितियों में की प्रासंगिकता देख लेना उपयुक्त होगा ।
2. आवश्यक हो तो अनुभव-सिद्ध या स्रोत-व्यक्तित्व का साक्षात्कार लेकर सामग्री संचयन करना सर्वथा उपयुक्त रहेगा ।

3. पत्र-पत्रिका की रीति-नीति, पाठक वर्ग, विषय की प्रासंगिकता का पूर्णत: विचार करके तथा कभी-कभी पत्र या पत्रिका से विषय की पूर्व -स्वीकृति प्राप्त कर लेना उपयुक्त होगा ।
4. फीचर में पाठक की विश्वसनीयता के निर्धारण के लिए सोत सामग्री, तथ्य एवं सत्य आदि का व्यावहारिक प्रमाणांकन और मूल्यांकन उचित होगा ।
5. फीचर में लेखकीय व्यक्तित्व एवं आत्मविश्वास के साथ लेखक की शैली और शब्द-चयन फीचर और लेखक-दोनों की पहचान बनाते हैं ।
6. फीचर संक्षिप्त, भावात्मक, तीव्र गति संप्रेषक होने के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धक एवं रोचक होगा तभी पाठकों को आकर्षित कर सकेगा ।
7. फीचर की भाषा बोलचाल की और मुहावरेदार होगी तभी वह अधिक ग्राह्य होगा । इसीलिए लेखक को निरंतर अपने अभिव्यक्ति-कौशल पर ध्यान देना होगा तथा सहज, स्वाभाविक, आत्मीय एवं आकर्षक शैली अपनानी होगी ।
8. फीचर का प्रारंभिक अंश जितना आकर्षक हो उतना ही आकर्षक उसका समापन भी हो । आरंभ किसी सूक्ति, विषय-सार या प्रश्नात्मक वाक्य से किया जा सकता है और समापन में भी ऐसी ही प्रवृत्ति बनाए रखनी होगी ।

15.3.10 रिपोर्ताज

'रिपोर्ताज' मुद्रित-माध्यम की ही नहीं, इलाक्ट्राय-माध्यम (रेडियो और टेलीविजन) की भी महत्वपूर्ण विधा है । सामान्यत इसका संबन्ध रिपोर्ट से लिया जाता है, जो उचित नहीं है । रिपोर्ताज फ़्रांसीसी भाषा का शब्द है और पत्रकारिता से जुड़े रिपोर्टिग शब्द से इसका अर्थ ग्रहण किया जाता है । इस विधा का विकास द्वितीय विश्व युद्ध के आसपास माना जाता है क्योंकि उस काल में युद्ध के सजीव, मार्मिक और टिप्पणीयुक्त विवरण तैयार किए गए, वहीं रिपोर्ताज कहे गए थे । रिपोर्ताज न समाचार होता है और न मात्र रिपोर्ट होता है । वह उक्त दोनों विशेषताओं को अपने बीच समाहित करते हुए इन दोनों से कुछ भिन्न, पर यथातथ्य वर्णन, मानवीय संवेदना, मामिकता और साहित्यिक शैली के साथ प्रस्तुत आलेख होता है जिसमें निम्न लिखित तत्व समाहित होते हैं -

1. अन्तर्वस्तु
2. भाषा
3. शैली
4. प्रतिपाद्य

रिपोर्ताज की अन्त:वस्तु में समसामयिकता, तथ्यपरकता और कथात्मकता निहित होती है तथा लेखक को समाचारपत्र की प्रचलित भाषा का प्रयोग न करके भाषा सर्जनात्मक रूप में प्रस्तुत करनी होती है । इसके लिए साहित्यिक शब्दावली के साथ छोटे-छोटे वाक्य और छोटे अनुच्छेद में ही अपना आलेख सीमित करना होता है । कथात्मक शैली के साथ किंचित वर्णनात्मक शैली या फिर नाटकीय शैली का समावेश करके रिपोर्ताज को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है ।

रिपोर्ताज में लेखक अपने समय का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है । अत: किसी घटना-विशेष से संबद्ध विविध प्रसंगों को ही नहीं बल्कि उस घटनाचक्र की सूत्रधारी शक्ति, उनके इरादों का उल्लेख तथा उससे प्रभावित तथा प्रभावित होने वालों के दृढ़ संकल्पों और संघर्ष आदि का उल्लेख भी लेखक मानवीय सम्वेदना के धरातल पर भावात्मक रूप से करता है ।

रिपोर्ताज में महत्व इसी बात का होता है कि लेखक जिन घटनाओं को शब्द दे रहा है, वे जीवंत होकर पाक के सामने आती है और लेखक को इस दिशा में पूर्वाग्रह और पक्षपात से मुक्त रहने का संकेत भी करती है तभी रिपोर्ताज सही, ईमानदारी से परिपूर्ण तथा मानवीय कर्म की प्रस्तुति में सफल और सार्थक कहा जा सकता है ।

15.3.11 परिशिष्ट -लेखन

आजकल प्रत्येक समाचारपत्र में परिशिष्ट आवश्यक हो गया है क्योंकि समाचारपत्रों में प्रतिस्पर्धा है । समाचार, संपादकीय, सामयिक लेख, अग्रलेख आदि लेकर ही समाचारपत्र दूसरे समाचारपत्र से प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते । इसीलिए रविवारीय परिशिष्ट की प्राचीन परंपरा से हटकर अब प्रतिदिन किसी विशेष विषय को केंद्रित कर परिशिष्ट निकालने की पद्धति अपना ली गई है और ये परिशिष्ट भी सामान्य नहीं, आजकल बहुरंगी एवं चित्रात्मक हो गई हैं । एक समय था कि हिन्दी समाचारपत्रों में चित्र होते ही नहीं थे और होते भी थे तो श्वेत-श्याम रूप में एक या दो किन्हीं विशेष अवसरों तथा विशेष व्यक्तियों से संबन्धित ही । अब मुद्रण तकनीक के विकास के साथ ही बहुरंगी परिशिष्ट में छायाचित्रों की बहुलता भी हुई है तो कलाकार निर्मित चित्रों के द्वारा अलंकरण की क्षमता भी बढ़ गई है ।

विविध सामाजिक या सांस्कृतिक पर्वो के अतिरिक्त स्थायी रूप से पारिवारिक, स्वास्थ्य-सौन्दर्य, महिला, बाल, युवा, शिक्षा, संस्कृति, खेल, उद्यम एवं व्यवसाय, रोजगार संबंधी परिशिष्ट आए दिन पत्रों में अपना अधिकार जमा चुके हैं । इसके निमित्त विविध स्तंभ-लेखक भी तैयार हुए है तथा विषयविशेषज्ञों की सेवाएं भी ली जाती हैं ।

बोध प्रश्न - 2

1. मुद्रित माध्यमों में स्तंभ- सामग्री का स्वरूप कैसा है?
2. मुद्रित- माध्यम में समाचार-लेखन के तत्व बताइए ।
3. समाचार- लेखन में छः ककार क्या हैं?
4. संपादकीय समाचारपत्र की आत्मा क्यों कहा जाता है?
5. अच्छे संपादकीय के लिए आवश्यक बातें बताइए ।
6. अग्रलेख सामयिक लेख एवं व्यंग्य लेख क्या हैं उनका अंतर बताइए फीचर क्या है? अच्छे फीचर लेखन के लिए आप क्या करेंगे?
7. रिपोर्ताज किसे कहते हैं वह समाचार से कैसे भिन्न है?

15.4 सारांश

मुद्रित- माध्यम जन सामान्य के लिए सस्ता और सुलभ माध्यम है, लेकिन अशिक्षित जनसंख्या का प्रभाव हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के पचास वर्ष बीत जाने पर भी समाप्त नहीं हुआ है । ऐसी स्थिति में इलाक्ट्राय- माध्यम के रूप में विकसित ट्रांजिस्टर-क्रान्ति ने अशिक्षितों के लिए अवश्य ऐसा अवसर उपलब्ध करा दिया है जो मुद्रित- माध्यम के संबन्ध में आने वाली कठिनाइयों का हल है । पर इसका अर्थ यह नहीं है कि मुद्रित- माध्यम का महत्व जनसामान्य के लिए कम हो गया है ।

मुद्रित- माध्यम के छप में प्रधानत: समाचारपत्र और पत्रिकाएं ही जनसामान्य की ज्ञान और मनोरंजन की अभिरुचि की पूर्ति करती है मुद्रित- माध्यम में पाठकों को समाचार ही नहीं संपादकीय' अग्रलेख सामयिक लेख फीचर 'व्यंग्य लेख' कार्टून आदि के अतिरिक्त परिशिष्टाक रूप में कथा कहानी कविता जैसी साहित्यिक रचनाएं और दैनंदिन जीवन में काम आने वाली विविध जानकारियां, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, युवा जगत, खेल खिलाड़ी, वाणिज्यिक सूचनाएं, उद्यम एवं व्यवसाय आदि से संबंधित सामग्री उपलब्ध होती हैं । इस इकाई में उक्त सभी मुद्रित सामग्री के लेखन के संबन्ध में यथास्थान आवश्यक उल्लेख किया गया है ।

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कुलश्रेष्ठ, विजय	:	फीचर लेखन, हंसा प्रकाशन जयपुर
कुलश्रेष्ठ, विजय	:	मुद्रण माध्यम और संपादन पंचशील प्रकाशन, जयपुर
त्रिखा, नंदकिशोर	:	समाचारसंक्लन और लेखन:, हिन्दी समिति, लखनऊ
दलाल, यासीन एवं जैन रमेश	:	संवाददाता और समाचार लेखन राजस्थान प्रकाशन, जयपुर
चतुर्वेदी, प्रेमनाथ	:	समाचार संपादन, एकेडेमिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली
दीक्षित, प्रवीण	:	जन माध्यम अघ्नै पत्रकारिता
जैन रमेश	:	समाचार संपादन और पृष्ठ सज्जा

15.6 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुद्रित-माध्यम किसे कहते है तथा उसके लिए किस-किस विधा में लेखन किया जाता है?
2. जनसंचार माध्यम के रूप में मुद्रित-माध्यम की उपयोगिता स्पष्ट कीजिए तथा उससे संबंधित रिपोर्ताज एवं फीचर पर भी विचार प्रकट कीजिए ।
3. संपादकीय को समाचारपत्र की आत्मा क्यों कहा जाता है? अच्छे संपादकीय लेखन के लिए आपको क्या अपेक्षित होगा?
4. फीचर क्या है तथा उसके विविध भेद बताए । समूह-लेखन के श्रेष्ठ माध्यम के रूप में उसका क्या स्वरूप है?

इकाई 16 इलाक्ट्राय (रेडियो) माध्यम के लिए समूह-लेखन

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.1.1 इलाक्ट्राय-माध्यम और रेडियो

16.1.2 रेडियो : श्रव्य-माध्यम

16.2 रेडियो-लेखन : उपकरण और भाषा

16.2.1 रेडियो-लेखन की जागरूकता

16.2.2 रेडियो-लेखन के उपकरण

16.2.3 शब्द

16.2.4 ध्वनि-प्रभाव

16.2.5 संगीत

16.2.6 रेडियो-लेखन हेतु अपेक्षाएं

16.2.7 श्रोताओं की कल्पना-शक्ति जगाना

16.2.8 श्रोताओं पर अपनी पकड़ बनाना

16.2.9 रेडियो-उपकरण की निजता का ध्यान

16.2.10 श्रोता वर्ग की पहचान

16.2.11 श्रोता की विभिन्न विधाओं का ज्ञान

16.3 रेडियो श्रोता-समूह

16.3.1 शैक्षिक आधार

16.3.2 आयु का आधार

16.3.3 पेशे का आधार

16.4 रेडियो-लेखन की तैयारी

16.4.1 रेडियो-लेखन की विधाएं

16.4.2 रूपक

16.4.3 वार्ता

16.4.4 साक्षात्कार

16.4.5 परिचर्चा

16.4.6 समाचार

16.4.7 व्यक्ति-चित्र

16.4.8 रेडियो-पत्रिका

16.4.9 रेडियो रूपान्तरण

16.4.10 रेडियो-नाटक

16.4.11 रेडिया-विज्ञापन
16.4.12 आंखों देखा हाल
16.4.13 प्रश्नोत्तरी या क्विज
16.5 रेडियो-लेखन के लिए विशेष बातें
16.6 सारांश
16.7 उपयोगी पुस्तकें
16.8 निबंधात्मक प्रश्न

16.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि मुद्रित-माध्यम समाचारपत्र या पत्रिका के पाठक समूह के लिए क्या और कैसे लिखा जाता है? इस इकाई में आप इलाक्ट्राय-माध्यम (रेडियो) के श्रोताओं के लिए लेखन संबन्धी निम्नलिखित बातें जान सकेंगे कि-

इलाक्ट्राय-माध्यम मुद्रित माध्यम से किस प्रकार विशिष्ट है?

रेडियो की विशेषताएं और क्षमताएं क्या हैं?

रेडियो के श्रोता-समुदाय का स्वरूप क्या है?

रेडियो की विविध आवश्यकताओं के अनुरूप लेखन कैसे किया जाता है?

16.1 प्रस्तावना

16.1.1 इलाक्ट्राय-माध्यम और रेडियो

जनसंचार-माध्यमों का मानव जीवन में महत्व बढ़ गया है । यह कहा जा सकता है कि ज्यों - ज्यों सभ्यता एवं विज्ञान ने विकास किया है, वैसे ही जनसंचार के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं । सूचना या इनफार्मेशन आज के विश्व का सबसे शक्तिशाली अस्त्र हो रहा है, परन्तु जनसंचार के क्षेत्र में इलाक्ट्राय क्रांति ने सूचना तंत्र का विशाल रूप धारण कर लिया है । इसका परिणाम यह हुआ है कि परंपरागत संचार-माध्यम भी प्रभावित हुए हैं । भारत में, जिसकी 73 प्रतिशत जनता ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, आधुनिक संचार माध्यमों के स्थान पर मुख्यत: परंपरागत या लोक-माध्यम काम में आते हैं । आधुनिक समाज में अवश्य ही जनसंचार के क्षेत्र में इलाक्ट्राय-माध्यमों का प्रचलन एवं विकास मिलता है तथा उनके सूचना तंत्र को प्रबल बनाए रखने में रेडियो की सशक्त भूमिका है ।

इलाक्ट्राय-माध्यम के दो विशेष रूप हैं - रेडियो और टेलीविजन । रेडियो श्रव्य-माध्यम है और टेलीविजन श्रव्य-दृश्य माध्यम जिसे ऑडियो-विजुअल भी कहा जाता है । मुद्रित-माध्यम की अपेक्षा यह तीव्रगामी माध्यम के रूप में विश्व स्तर पर मान्य हो चुका है । रेडियो केवल श्रव्य-माध्यम है, जिसे सुनकर समझा जा सकता है, लेकिन टेलीविजन श्रव्य-दृश्य रूप में विकसित टेली-मीडिया भारत- जैसे देश में सर्वसाधारण के घरों तक नहीं पहुंच सका है । इसके विपरीत रेडियो ने समाज के उच्च एवं निम्न वर्ग समुदाय तक के लोगों में अपना स्थान बना लिया है । सूचना या समाचार, शिक्षा और मनोरंजन - तीनों स्तरों पर रेडियो ने अपनी गहरी पकड़ बनाई है ।

18.1.2 रेडियो : श्रव्य-माध्यम

जनसंचार के क्षेत्र में रेडियो इलाक्ट्राय-माध्यम का एक श्रेष्ठ श्रव्य-माध्यम है । इसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण है कि यह माध्यम तत्काल संदेश-प्रेषण में अग्रणी है । मुद्रित-माध्यम से कोई संदेश कई घंटे विलंब से पहुंचता है । रेडियो टेलीविजन माध्यम से भी अधिक उपादेय सिद्ध हुआ है । टेलीविजन संदेश प्रसारण में वह रेडियो की बराबरी नहीं कर सकता क्योंकि तत्संबंधी चित्रों की तात्कालिक व्यवस्था नहीं कर पाता । यह तभी संभव हो सकता है जब घटना-स्थल पर कैमरा मौजूद हो और जीवंत प्रसारण या लाइव टेलीकास्ट किया जाए ।

रेडियो दृष्टिहीन-माध्यम है जिसे 'ब्लाइंड बाक्स' भी कहा जाता है । इस दृष्टिहीन-माध्यम में स्वर या ध्वनि का ही महत्व होता है तथा यह श्रोता की अपेक्षाओं की कल्पनाशीलता को साथ लेकर चलता है । रेडियो अपने श्रोताओं की कल्पनाशीलता अथवा कल्पनाशक्ति के सहारे ही अपने प्रसारण की सार्थकता सिद्ध करता है । स्वर या ध्वनि-प्रभावों से ही श्रोता अपने मानस पर स्वयं तद्विषयक चित्र बना लेता है । ध्वनि के विविध प्रभावों और निरंतरता के कारण ही श्रोता को समसामयिकता और वर्तमान का बोध होता है ।

ट्रांज़िस्टर - क्रांति ने रेडियो को व्यापक आयाम दिए हैं । ट्रांजिस्टर के कारण रेडियो सस्ता, सर्वसुलभ और अत्यंत सुविधाजनक हो गया है । नवीन वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास ने रेडियो की व्यापकता कई गुना बढ़ा दी है । इसकी सबसे बड़ी शक्ति, उपादेयता और उपलब्धि इसकी सहज सुलभता है तथा इस माध्यम के प्रयोग के लिए श्रोता का शिक्षित होना भी अनिवार्य नहीं है ।

16.2 रेडियो- लेखन : उपकरण और भाषा

16.2.1 रेडियो-लेखन की जागरूकता

रेडियो-लेखन सामान्य लेखन से विशिष्ट प्रविधि है । इसके पीछे यह कारण है कि रेडियो जनसंचार का ऐसा इलाक्ट्राय-माध्यम है जो 'दृष्टिहीन' होने के साथ-साथ स्वर या ध्वनि पर आश्रित होकर भी उस श्रोता वर्ग तक अपना सन्देश बिना हिचक ले जाता है, जो वर्ग अशिक्षित है या अर्द्धशिक्षित है । इसके साथ ही जनसंचार का वह ऐसा माध्यम है जो अपने 'जन' (श्रोता) तक संचारित तो होता है, परन्तु होता उससे दूर ही है । एक दूसरे को वक्ता और श्रोता देख नहीं सकते हैं । ऐसी स्थिति में श्रव्यता की विशेषता के कारण रेडियो-लेखक या वक्ता को अपना संदेश इस रूप में ढालना पड़ता है कि स्वर या ध्वनि के प्रभाव से ही श्रोता इधर रेडियो सुने और उधर इसके मानस में तत्संबंधी दृश्य उपस्थित हो सकें ।

16.2.2 रेडियो -लेखन के उपकरण

रेडियो दृश्यहीन किन्तु श्रव्य-माध्यम है । श्रव्यता का ध्यान रखकर ही रेडियो -लेखन के उपकरण निर्धारित किए गए हैं । रेडियो-आलेख तैयार करते समय लेखक को अपने ध्यान में यह अवश्य रखना होता है कि समाचार, संदेश या विचार सरल और सहज भाषा में प्रस्तुत किया जाए । मुद्रित-माध्यम और श्रव्य-माध्यम के उपकरणों में अंतर होता है । रेडियो-लेखन एक तकनीकी लेखन है । अत: उसके निम्नलिखित उपकरणों पर विचार किया जा सकता है : -

1. शब्द
2. ध्वनि-प्रभाव
3. संगीत

16.2.3 शब्द

रेडियो को शब्द-माध्यम कहा जाता है । लेकिन शब्द का यह माध्यम श्रव्य प्रक्रिया में है । इसलिए उच्चरित शब्द अनुभाग (स्पोकन वर्ड्स) के रूप में रेडियो का एक अनुभाग होता है । पुस्तक में मुद्रित (प्रिंटिड) एवं लिखित शब्द की महत्ता रहती है और रेडियो में उच्चरित शब्द (स्पोकन वर्ड्स) की माया है । इस संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि रेडियो की भाषा में शब्द का प्रभाव श्रोता के मस्तिष्क में दृश्य-प्रभाव उत्पन्न करने या कल्पना जमाने के लिए किया जाता है । अत: रेडियो-लेखक को सदैव ऐसे शब्द-प्रयोग पर ही अपना ध्यान केंद्रित करना होता है जो श्रोता को सीधे ही अपेक्षित प्रभाव और आलेख- श्रवण के प्रति जिज्ञासा जगाए रख सके ।

18.2.4 ध्वनि-प्रभाव

श्रव्य-माध्यम होने के कारण जहां शब्द की क्षमता और महिमा कम होती जाती है, वहीं ध्वनि-प्रभावों का सकारात्मक प्रयोग करके रेडियो-लेखक श्रोता के कल्पनालोक में दृश्य निर्मित करता है और यह दृश्य-निर्माण क्षणांश में होता है तथा आगे उसी आधार पर ध्वनि समग्र वातावरण की सृष्टि करती है । यदि ट्रेन की सीटी की ध्वनि और ट्रेन की गति क्रमश: धीमी होती चली जाए तो श्रोता की कल्पना में प्लेटफार्म आ जाता है और फिर खोमचे वालों की पुकारें, चाय वाले की आवाजें आदि प्लेटफार्म का दृश्य निर्मित कर देती है ।

रेडियो-लेखक यदि ध्वनि-प्रभावों का प्रयोग करने में समर्थ और कुशल है तो वह तीन प्रकार की ध्वनियों का प्रयोग कर अपने आलेख की सार्थकता सिद्ध करता है । पहली ध्वनि 'क्रिया-ध्वनि' (एक्शन साउंड) काही जाती है जिससे श्रोता यह समझ कि कौन - सी क्रिया हो रही है । उदाहरणार्थ दरवाजे पर थपकी और खटखटाहट की ध्वनि या घंटी बजने की ध्वनि यह प्रभाव देती है कि कोई द्वार पर आया है । कई बार 'क्रिया ध्वनि' के प्रभाव से पात्र के मनोभावों का भी पता चलता है । 'उफ्फ' कह कर धम्म से बैठने की ध्वनि यह बताती है कि पात्र हताश या आक्रोश-मिश्रित भाव लेकर जहां है, वही बैठ गया है ।

कभी-कमी स्थल- ध्वनि (सैटिंग साउंड) का प्रयोग करके रेडियो में वातावरण-विशेष का उल्लेख अथवा वातावरण-निर्माण का बोध कराया जाता है । बसों के हार्न और माइक्रोफोन पर गाड़ी रवाना करने की सूचनाएं या बस के प्रस्थान के समय की घोषणा बस स्टैड का आभास देती है । हवाई जहाज के उड़ान भरने अथवा एक विशेष प्रकार के शोर और सीटी की ध्वनि के बाद वातावरण शांत होने के ध्वनि-प्रभाव से हवाई अड्डे का आभास हो जाता है । कहीं प्रिंटिंग मशीन की खड़खड़ाहट की ध्वनि प्रेस के स्थान या समाचारपत्र के पार्श्व-स्थल का आभास दे सकती है ।

कमी-कभी प्रतीक- ध्वनियां (सिंबोलिक साउंड) का प्रयोग करके आलेख में नाटकीय सृष्टि का आभास दिया जाता है तथा श्रोताओं के मस्तिष्क में ऐसी ध्वनियां किसी विशेष भाव या स्थितियां को उभारने के लिए प्रयोग की जाती हैं । चुटकुले सुनाते समय श्रोताओं के ठहाकों का प्रतीकात्मक संकेत ध्वनि दारा किया जाता है ।

सामान्यत: ध्वनि-प्रभाव रेडियो-लेखन में कुछ विशेष स्थितियों में ही समाविष्ट किए जाते हैं:-

(1) किसी दृश्य में किसी स्थिति के सजीव उल्लेख के लिए

(2) किसी दृश्य की प्रामाणिक्ला या वास्तविकता सिद्ध कराने के लिए

(3) वातावरण या किसी प्रकार की मनोदशा (मूड) को उभारने के लिए ।

उक्त स्थितियों में ध्वनि-प्रभावों को किन्हीं विशेष संवादों अथवा मानव-उच्चरित वाक्यावलियों के साथ जोड़कर कार्यक्रम में समग्र प्रभाव उत्पन्न किया जाता है । रेडियो-लेखन के निमित्त आलेख कोई भी हो ध्वनि-प्रभावों की यदि आवश्यकता है तो निश्चित ही उनका समावेश किए जाने की अनिवार्यता भी रहती है तथा लेखक को यह स्पष्ट करना होगा कि वह किसी प्रकार के ध्वनि-प्रभाव की अपेक्षा करता है ।

16.2.5 संगीत

रेडियो कार्यक्रमों में संगीत का महत्त्व विशेष ही है । रेडियो -आलेख तैयार करते समय अपेक्षित संगीत का उपयोग करने के संकेत से वातावरण बनाने, स्थितियों में नाटकीयता लाने, पात्र की मनोदशा स्पष्ट करने तथा भावपूर्ण परिस्थितियों का उल्लेख किए जाने में सहायक है । इस दिशा में रेडियो रूपक, रेडियो-नाटक आदि में संगीत की विविध अपेक्षाओं का उल्लेख किया जा सकता है । इस प्रकार के कार्य में मंद, तीव्र, हर्षसूचक, दृश्य परिवर्तनकारी, आरंभिक और समापन जैसे संगीत शीर्षकों में वर्गीकरण किया जाकर अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न कराए जा सकते हैं । आलेख में यथास्थान इस प्रकार का उल्लेख किया जाना अनिवार्य होता है । रेडियो-लेखक के लिए अपने आलेख तैयार करते समय ही व्यापक दृष्टि से यह देख लेना होता है कि स्व, कहां और क्यों संगीत अपेक्षित है तथा उसी के अनुरूप संकेत करना भी आवश्यक होता है ।

16.2.6 रेडियो-लेखन हेतु अपेक्षाएं

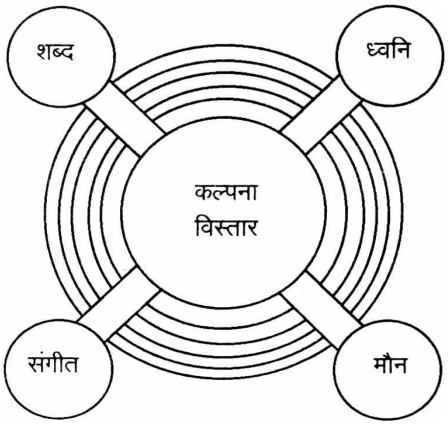
रेडियो-लेखन एक विशेष प्रविधि का लेखन है और यह मंच स्वर या ध्वनि पर आधारित होता है । इसलिए रेडियो के लिए कोई भी आलेख तैयार करते समय लेखक यह ध्यान रखता है कि श्रोता की श्रवण-योग्यता पर उसका आलेख खरा उतरना चाहिए । इस संबन्ध में निश्चित ही रेडियो-लेखक से निम्नलिखित अपेक्षाएं की जा सकती है -

1. श्रोता की कल्पना- शक्ति जगाना
2. श्रोताओं पर अपनी पकड़ बनाना
3. रेडियो उपकरण की निजता का ध्यान
4. श्रोता वर्ग की पहचान
5. रेडियो की विभिन्न विधाओं का ज्ञान

16.2.7 श्रोताओं की कल्पना- शक्ति जगाना

रेडियो दृष्टिहीन जनसंचार का इलाक्ट्राय-माध्यम है । ऐसी परिस्थिति में श्रोता जब भी रेडियो का 'स्विच आन' करता है, उसे अपनी कल्पना के व्यापक संसार में विचरण की सुविधा मिल जाती है । गीत या नाटक में जब कोई नारी-स्वर गूंजता है तो श्रोता अपनी कल्पना- शक्ति से नारी- छवि का निर्माण कर लेता है । दूसरी ओर रेडियो कभी 'आर्म्स चेयर' श्रोता के लिए ही एक संचार माध्यम

था, परन्तु ट्रांजिस्टर क्रांति के बाद अब यह आर्म्स चेयर श्रोता की वस्तु न रहकर लिहाफ में उष्मा ग्रहण करते हुए अपने मनपसंद कार्यक्रम को नेत्र छूकर सुनने का उपयुक्त साधन हो गया है । इसलिए रेडियो के लिए आलेख तैयार करते समय लेखक को श्रोताओं की कल्पना- शक्ति जागृत कराना अनिवार्य है । इसीलिए यह प्रविधि-विशेष का लेखन कहा जा सकता है । रेडियो-लेखक से यह अपेक्षा रहती है कि वह रेडियो के लिए अपना आलेख तैयार करते समय यह ध्यान में रखे कि उसे श्रोताओं की कल्पना शक्ति उद्‌बुद्ध करनी है, पाठकों के लिए आलेख प्रस्तुत नहीं करना है । उसे चार स्तरों पर अपने श्रोता की कल्पना शक्ति उद्‌बुद्ध करने के लिए तत्पर रहना होता है-



16.2.8 श्रोताओं पर अपनी पकड़ बनाना

रेडियो का कार्यक्रम कोई भी क्यों न हो, वह तभी सफल माना जा सकता है, जब उसकी पकड़ अपने श्रोताओं पर हो, कार्यक्रम उन्हें बांध सके अन्यथा श्रोता के 'फीड बैंक' का तुरन्त प्रभाव रेडियो बंद कर देना या दूसरा स्टेशन लगाने के रूप में सामने आता है । इसके लिए आवश्यक है कि रेडियो-लेखक को अपने आलेख अथवा कार्यक्रम-अधिकारी को इस आलेख का आरंभ इस रोचक ढंग से करना आवश्यक है कि श्रोता उसके साथ बंध जाए । कहानी, नाटक, विनोद वार्ता आदि का कथानक निर्वाह आरंभ से ही ऐसा हो कि श्रोता में श्रवण-रुचि जगाए तथा वह उत्सुकता उत्पन्न करे ।

16.2.9 रेडियो उपकरण की निजता का ध्यान

ट्रांजिस्टर क्रांति ने रेडियो-उपकरण को निजी बना दिया है । अब वह समूह में बैठकर सुनने का उपकरण नहीं रह गया है । आज कृषक अपने खेत में, साइकिल सवार अपने रास्ते में, स्नान करते युवक या युवती अपने बाथरूम में अपना ट्रांजिस्टर सुनते हुए देखे जा सकते हैं । आज साइकिल रिक्शा वाला भी अपने रिक्शे के फ्रेमम में ट्रांजिस्टर लटकाए अपना मनपसंद कार्यक्रम सुनते हुए देखा जा सकता है । कुछ लोग रेडियो के धीमे स्वर में कार्यक्रम सुनते हुए लिखना-पढ़ना पसंद करते हैं । अत: आज रेडियो या ट्रांजिस्टर के साथ श्रोता की निजता स्थापित हो चुकी है । अत: रेडियो - लेखक को श्रोता की इस निजता का आभास लेखन का दायित्व निर्वाह करते समय महत्व रखता है । अत: ऐसी स्थिति में आलेख में अनौपचारिक शैली और बोलचाल की भाषा एवं शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए ।

16.2.10 श्रोता-वर्ग की पहचान

रेडियो-लेखक को कोई भी आलेख तैयार करने से पूर्व यह ध्यान में रखना बहुत ही आवश्यक है कि उसे किस श्रोता-वर्ग के लिए आलेख तैयार करना है? यदि प्रबुद्ध वर्ग के लिए ही उसे आलेख लिखना है तो समस्या या विषय का निर्धारण तदनुरूप करना होगा और यदि वह बालकों के लिए है तो उसमें उनके अनुकूल आलेख तैयार करना होगा । रेडियो -लेखक को अपने आलेख संबंधी आयु वर्ग या विशिष्ट श्रोता-वर्ग की पहचान करना उतना ही आवश्यक है जिस प्रकार किसी रोग के निदान में पूर्व परीक्षण द्वारा रोग की संभावना का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य होता है । श्रोता के आयु-वर्ग या विशिष्ट वर्ग की पहचान होते ही उनकी रुचियों, मनोविज्ञान और अपेक्षाओं का ध्यान रखकर ही आलेख तैयार करना होता है ।

16.2.11 रेडियो की विभिन्न विधाओं का ज्ञान

रेडियो-लेखक को समूह या समूहों के लिए आलेख तैयार करना होता है । ऐसी स्थिति में रेडियो से संबंधित विविध विधाओं का सम्यक् ज्ञान भी रेडियो-लेखक के लिए आवश्यक है । विभिन्न रेडियो- लेखन की विधाओं की अपनी विशेषताएं होती हैं और उसके आधार पर तत्संबंधी सामग्री संकलित कर, परीक्षण के उपरांत विधिवत आलेख तैयार करना होता है । इसके लिए यह भी यह देख लेना जरूरी होता है कि वार्ता, कहानी, परिचर्चा का किस वर्ग -विशेष के लिए हैं? रूपक का विषय और श्रोता-मंडल कौन-सा है? प्रत्येक विधा की अपनी विशेषताएं और अपने - अपने श्रोता-मंडल होते है ।

बोध प्रश्न- 1

1. रेडियो को दृश्यहीन माध्यम क्यों कहा जाता है?
2. रेडियो-लेखन के उपकरण क्या-क्या हैं, स्पष्ट कीजिए ।
3. ध्वनि प्रभाव किसे कहते हैं? उसका महत्व समझाइए ।
4. रेडियो -लेखन में ध्वनि प्रभाव का ज्ञान क्यों अपेक्षित है?
5. रेडियो -लेखन हेतु क्या अपेक्षाएं होती हैं?

16.3 रेडियो- श्रोता- समूह

रेडियो -लेखक एक प्रकार का समूह-लेखन है और जब तक इस संबन्ध में विशेष प्रवृत्ति नहीं अपना ली जाती, तब तक रेडियो के विविध श्रोता-समूहों के लिए लेखन करना अधिक उपादेय नहीं हो सकता । रेडियो के श्रोता-समूह को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है : -

अ. शैक्षिक आधार

1. शिक्षित
2. अशिक्षित
3. अर्द्धशिक्षित

आ. आयु का आधार

1. बालक-बालिकाएं
2. किशोर-किशोरियां
3. प्रौढ़
4. वृद्ध

इ. पेशे का आधार

1. कृषक
2. मजदूर.
3. अध्यापक
4. अन्य सेवाकर्मी
5. गृहकर्मी महिला
6. सामान्य श्रोता वर्ग
   अ. छात्र-छत्राएं
   ब. खेल अभिरुचिपूर्ण श्रोता
   स. मनोरंजक श्रोता

16.3.1 शैक्षिक आधार

शैक्षिक आधार पर रेडियो श्रोता-समूह को तीन स्तरों पर वर्गीकृत किया जा सकता है जिसमें से प्रथम वर्ग ऐसा है जो पूर्ण शिक्षित है तथा समय पर रेडियो - श्रोता के रूप में क्रियाशील रहता है । वर्तमान समय में इस समूह का श्रोता-मंडल टेलीविजन मुखी हो गया है, फिर भी शिक्षित श्रोता- वर्ग का एक समूह अब भी रेडियो के समाचार ही नहीं, अन्य विविध प्रसारण भी सुनता है - रेडियो का दूसरा वर्ग अशिक्षित है और उसकी आय की एक सीमा है जिसमें वह टेलीविजन जैसा महंगा इलाक्ट्राय-माध्यम क्रय करने की सामर्थ्य नहीं रखता क्योंकि उसके संचालन के लिए उसके पास बिजली की व्यवस्था नहीं है, अन्यथा ऐसे अशिक्षित श्रोता समूह भी हो सकते हैं, जिन्हें बिजली की सुविधा है और वे कृषक या अच्छे व्यवसाय में होने के कारण टेलीविजन- जैसे मूल्यवान उपकरण क्रय कर सकते हैं । इस प्रकार के विद्युत-उपयोग की सुविधा वाले क्षेत्र को छोड़कर अशिक्षित श्रोता- समूह के लिए रेडियो की महत्ता कम नहीं है । फिर जिस श्रोता समूह को अशिक्षित कहा गया है, उसके लिए बिजली की सुविधा के अभाव को प्रमुख रखकर ही रेडियो पर उनकी आश्रित देखी जा सकती है और उससे सस्ता सुलभ साधन उनके पास अन्य नहीं है ।

16.8.2 आयु का आधार

रेडियो श्रोता- समूह का एक वर्गीकरण आयु के आधार पर भी किया जा सकता है । इसमें श्रुत विषयक अपेक्षा के अतिरिक्त और कोई अन्य विशेषता अपेक्षित नहीं होती है तथा इस वर्ग के श्रोता समूह में विषयपरक वाली गम्भीरता वाली विधाओं की अपेक्षा मनोरंजन एवं सूचना क्षेत्र की केन्द्रीयता ही प्रमुख है ।

आयु के आधार पर बालक-बालिकाओं का एक वर्ग मात्र मनोरंजन के लिए ही रेडियो के प्रति अपना आकर्षण रखता है जिसके माध्यम से बच्चों के कार्यक्रम यथा 'किलकारी', 'फुलवारी ', 'नन्हीं पौध', 'अंकुर' आदि आयोजित किए जाते हैं तथा उनके लिए कहानी, कविता, चुटकुले, सरस वार्ता आदि कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है तथा उस श्रोता-वर्ग के लिए उसी प्रकार की भाषा एवं शैली का प्रयोग भी किया जाता है । किशोर एवं किशोरियों का वह वर्ग है जो बालकों से कहीं प्रबुद्ध होता है जिसे युवा वर्ग भी कह सकते हैं जिनकी रुचियो के अनुकूल ही रेडियो का कार्यक्रम लिखा जाना अपेक्षित होता है । इनके लिए विशिष्ट वर्ग की लेखिकाओं से उनकी समस्याओं पर रेडियो - लेखन कराया जाता है । युवकों के लिए भी कहानियां, कविताएं, रोजगार परक ज्ञान, प्रतियोगी परीक्षाओं संबन्धी जानकारियां, युवा वर्ग की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के निराकरण हेतु विशेष लेखन कराया जाता है ।

प्रौढ़ आयु वर्ग में गृहकार्यो में व्यंस्त नारी समाज ही ऐसा श्रोता-वर्ग है जो निरंतर घर पर रहकर श्रोता रूप में रेडियो के प्रति अपनी रुझान उन्हीं क्षेत्रों में रखता है, जहां अभी तक बिजली या धन के अभाव के कारण टेलीविजन की पहुंच नहीं है । गृहकार्यो -सिलाई, बुनाई, खान-पान, स्वास्थ्य -रक्षा, परिवार कल्याण विषयक नवीन जानकारियों के लिए विषय-विशेषज्ञों से रेडियो-लेखन इस श्रोता-समूह के लिए कराया जाता है । मनोरंजन के निमित्त गीतों भरी कहानी, फिल्म-संगीत, स्थानीय या क्षेत्रीय लोकगीतों का प्रसारण भी उनके लिए किया जाता है ।

वृद्ध श्रोता समूह में ऐसा वर्ग भी सम्मिलित है, जहां टेलीविजन वाले कमरे में परिवार के सभी स्त्री-पुरुष- बच्चे जमे रहते हैं और वृद्ध वहां पहुंच नहीं पाते हैं तो ऐसे आयु वर्ग के लिए रेडियो ही एकमात्र समय व्यंतीत करने और मनोरंजन का साथी होता है । अत: ऐसे श्रोता-वर्ग के लिए भी विशेष प्रकार का लेखन आवश्यक होता है और इस वृद्ध श्रोता-समूह को ध्यान में रखकर डॉक्टरों, मनोवैज्ञानिकों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं आदि से ऐसा रेडियो -लेखन कराया जाता है जो उनके अकेलेपन को सहज ढंग से लेने, अपनी व्यंस्तताओं को बढ़ाने तथा मनोरंजन के लिए उपयुक्त होता है ।

16.3.3 पेशे का आधार

पेशे के आधार पर रेडियो का श्रोता-समूह वर्गीकृत किया जा सकता है लेकिन आज के साधन-सुविधा-संपन्न समाज में इस वर्ग समूह की कमी अवश्य हो गई है क्योंकि अधिकांश घरों में, जहां बिजली पहुच गई है, वहां रेडियो का स्थान भी टेलीविजन ने ले लिया है । इस श्रोता- वर्ग में किसान- मजदूरों के उस वर्ग की अवश्य चर्चा की जा सकती है, जिनके पास अभी बिजली-सुविधाएं नहीं हैं । यद्यपि अध्यापक या अन्य सेवाकर्मी वर्ग सारे दिन बाहर रहता है और बिजली के अभाव में ही वह रेडियो-जैसे इलॉक्ट्राय-माध्यम पर निर्भर करता है, जिसमें शाम को प्राय: समाचार, वार्ताएं या अन्य मनोरंजक कार्यक्रमों का सुनना पसंद करता है।

सामान्य रेडियो श्रोता-वर्ग में छात्र-छात्राओं, खिलाड़ियों के अलावा वह वर्ग और संमिलित हो जाता है जिन्हें मनोरंजन के अन्य साधन सुलभ नहीं हैं । ये वर्ग, जब भी अवकाश होता है अपने रेडियो सैट या ट्रांजिस्टर से अपने वांछित कार्यक्रम सुनना चाहते हैं । रेडियो विधा के लेखक वर्ग को इस वर्ग के श्रोताओं की अपेक्षानुसार रेडियो -लेखन करना अनिवार्य हो जाता है ।

बोध प्रश्न- 2

1. रेडियो -श्रोता से आप क्या समझते है? उसको किस रूप में आप रेडियो-श्रोता कहेंगे?
2. रेडियो श्रोता-समूह का वर्गीकरण कीजिए ।

16.4 रेडियो- लेखन की तैयारी

रेडियो इलॉक्ट्राय जनसंचार का विशेष माध्यम है और उसके लिए लेखन भी विशेष प्रविधि या तकनीक के आधार पर ही होता है । दृश्यहीन एवं दृष्टिहीन माध्यम के कारण स्वर एवं ध्वनि माध्यम से ही कोई संदेश श्रोता तक पहुंच पाता है लेकिन श्रोता की कल्पना- शक्ति को अधिक प्रखर बनाने में रेडियो -लेखन की सफलता असंदिग्ध कही जा सकती है । रेडियो-लेखन की महत्ता इसी में है कि उसका उचित शब्द (स्पोक्ल वर्ड) सुनकर श्रोता अपनी कल्पना में आलेख के कथन की साकारता पा लेता है ।

16.4.1 रेडियो लेखन की विधाएं

रेडियो -लेखन की तैयारी से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि रेडियो-लेखन किन-किन विधाओं में किया जा सकता है । मधुकर गंगाधर ने रेडियो -लेखन-परक बहुत-सी विधाओं का उल्लेख किया है, पर भेदों -उपभेदों में न जाकर स्तूल रूप से रेडियो लेखन की विधाओं का वर्गीकरण निम्न लिखित रूप में किया जा सकता है

(1)	रूपक	(2)	वार्ता
(3)	साक्षात्कार	(4)	परिचय
(5)	समाचार	(6)	व्यक्तिचित्र-
(7)	रेडियो पत्रिका	(8)	रेडियो रूपांतर
(9)	नाटक	(10)	विज्ञापन
(11)	आंखों देखा हाल	(12)	प्रश्नोत्तरी या क्विज

16.4.2 रूपक

रेडियो विशेषज्ञ इसे “डाक्यूमेन्ट्री” भी कहते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ "वृत्तचित्र" है । प्रसारण की दृष्ठि से इसमें भेद नहीं माना जाता है । मधुकर गंगाधर इसे “आलेख निरूपक” या " वस्तुरूपक' ' कहते हैं । डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ के अनुसार "रूपक और फीचर" दोनों में अंतर है क्योंकि रूपक संस्कृत नाटकों का एक विशेष वर्ग है, परन्तु रेडियो- लेखन में सभी कुछ नाटकीय नहीं होता है, शिल्पविधि में प्रस्तुतीकरण नाटकीयता लिए हुए हो सकता है । जयभगवान गुप्त उसे "रूपक" ही कहते हैं तथा स्पष्ट करते हैं कि "रूपककार रेडियो पर प्रयुक्त होने वाली नाटक शिल्प की सभी युक्तियां तथा रचनातंत्र के सभी उपकरणों तथा शैलियों का सहारा लेता है ताकि सूचनाओं को रोचक ढंग से संप्रेषित किया जा सके ।" आलेख की प्रस्तुति में प्रस्तुतकर्त्ता की अन्तःदृष्टि का सीधा संबंध अपने श्रोता से होना आवश्यक है । यही कारण है कि रूपक-लेखक को यथार्थ के आधार पर विषय के प्रतिपादन के साथ परिकल्पना, अनुभवशीलता और अपनी कलात्मकता के साथ-साथ प्रस्तुतकर्त्ता की अपनी समझ और अनुभव पर भी दृष्टि रखनी होती है ।

16.4.3 वार्ता

वार्ता रेडियो-माध्यम की एक महत्वपूर्ण विधा है । रेडियो क्षेत्र में "वार्ता" अंग्रेजी के "टाक" का पर्याय है । सामान्य अर्थ में दो व्यक्तियों में बातचीत को वार्ता कहा जाता है लेकिन रेडियो जगत में वार्ता एक पक्षीय या वार्ताकारीय होती है । उसमें दूसरा भागीदार नहीं होता और न श्रोता या व्यंवधान हो सकता है । इतनी प्रतिबद्धता के रहते हुए अच्छी वार्ता वही हो स्क्ती है, जिसमें दूरस्थ बैठे श्रोता के मध्य वार्ताकार का असूच्य सवाद निहित रहे । वार्ताकार आलेख इस ढंग से तैयार करता है जिससे यह प्रतीत होता है कि वार्ताकार अपने श्रोताओं से सीधे संवाद की स्थिति में है । वार्ताकार को अपनी वार्ता का आरंभ इस प्रकार करना होता है कि वह शुरू से ही श्रोता को आकर्षित करे या बांध सके । इसके साथ ही तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में वार्ता नीरस न हो जाए ।

16.4.4 साक्षात्कार

साक्षात्कार रेडियो- जैसे इलॉक्ट्राय-माध्यम की महत्वपूर्ण विधा है । इसमें किसी विषय पर प्रश्नकर्ता विभिन्न व्यक्तियों और समुदायों की राय जानने का प्रयास करता है । रेडियो जगत में इसे "भेंटवार्ता" के नाम से भी जाना जाता है । किसी भी क्षेत्र के महत्वपूर्ण व्यक्ति अर्थात् राजनीतिज्ञ समाज विज्ञानी, समाज सेवी, वैज्ञानिक, शिक्षाविद अथवा किसी भी प्रतिष्ठित व्यक्ति से साक्षात्कार लिया जा सकता है । इस प्रकार साक्षात्कार व्यक्ति-विशेष तक सीमित हो जाते हैं, ऐसा नहीं है । आम आदमी से भी भेंट करके उसका मत या संमति भी पूछी जाती है लेकिन साक्षात्कार विचार- विमर्श नहीं हो सकता है ।

विचार-विमर्श के लिए उसके निमित्त एकत्रित या संमिलित सभी व्यक्ति अपना- अपना मत प्रस्तुत करते हैं, जबकि साक्षात्कार में केवल साक्षात्कारी या व्यक्ति-विशेष का मत ही होता है । प्रश्नकर्त्ता या साक्षात्कारकर्त्ता की भूमिका इस दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है कि वह साक्षात्कारी को कुरेद-कुरेद कर ऐसे प्रश्न पूछ लेता है जिनके उत्तर से नवीन तथ्य प्रकट होते हैं, पर वहां प्रश्नकर्त्ता बहस नहीं करता, केवल अपने प्रश्न ही साक्षात्कारी के समक्ष रखता है ।

साक्षात्कार व्यक्ति और विषय-दोनों पर आधारित होता है तथा उसके लिए अभीष्ट प्रश्नावली तैयार करना भी उपयोगी होता है । प्रश्न सीधे, स्पष्ट और छोटे होते हैं, पर अपनी टिप्पणी उनके साथ नहीं जोड़ी जा सकती है । ऐसी प्रश्नावली साक्षात्कारी को उपलब्ध करायी जा सकती है ।

18.4.5 परिचर्चा

परिचर्चा रेडियो-माध्यम की विशेष विधा है जो कार्यक्रम- अधिकारी द्वारा विशेष प्रयोजन के निमित्त किसी विषय पर आयोजित की जा सकती है । सामान्यत: परिचर्चा की दृष्टि विषयपरक, गहन और बहु-पक्षीय समन्वित चर्चा पर ही केंद्रित होती है । रेडियो -वार्ता और परिचर्चा में अंतर उतना ही है ।के रेडियो -वार्ता में व्यक्ति या विषय-विशेषज्ञ अपनी बात अपने ढंग से प्रस्तुत करता है और उसके कथन-प्रवाह में कोई अन्य व्यक्ति हस्तक्षेप नहीं करता है, परन्तु परिचर्चा में व्यक्ति कई होते हैं और एक के व्यक्त विचार से असहमत अन्य व्यक्ति विषय को दूसरी ओर ले जाने के लिए अपनी दृष्टि स्पष्ट करते हुए हस्तक्षेप कर सकता है । कम से कम तीन व्यक्तियों का परिचर्चा में होना आवश्यक माना गया है तथा वे विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ होते हैं । इनमें से एक अथवा अन्य विशेषज्ञ परिचर्चा-संचालक या नियामक होता है । इस नियामक-संचालक का कार्य पूरी परिचर्चा को निश्चित दायरे में रखते हुए सीमित समय की अवधि में परिचर्चा को आगे और अन्तिम चरण तक पहुंचाना होता है । संचालक ही विचार-विमर्श का आरंभ करता है तथा विभिन्न विशेषज्ञों का क्रम निर्धारित कर क्रमश: उनका परिचर्चा के अंतर्गत मत प्राप्त करता है । यदि कोई विशेषज्ञ अपने निर्धारित विषय बिन्दु से विचलित होता है तो संचालक तुरन्त कथन के मध्य में हस्तक्षेप करते हुए परिचर्चा को विषयान्तर होने से बचाता है । अंत में संचालक परिचर्चा का सारांश प्रस्तुत करता है ताकि श्रोता कुछ ही वाक्यों में उस पूरी परिचर्चा को समझ सकता है ।

16.4.6 समाचार

समाचार-लेखन रेडियो की महत्वपूर्ण विधा है । इसके लिए समाचारों का चयन, प्रस्तुतीकरण और संपादन तक की दीर्घ प्रक्रिया से गुजरना होता है । अत: समाचार-लेखन मुद्रित-माध्यमी समाचारों की भांति नहीं होता । अत्यधिक संक्षिप्त और समग्र सूचनाओं को समेटे हुए रेडियो-समाचार अपने निम्नलिखित छ: ककारों पर आधारित रहता है -

(1) क्या हुआ? (2) क्यों हुआ?

(3) कहां हुआ? (4) कब हुआ?

(5) कैसे हुआ? (6) कौन देखा या किसने कहा?

रेडियो समाचार अशिक्षित और शिक्षित सभी वर्ग के लिए होते हैं । अत: वे बहुत ही सरल और स्पष्ट ढंग से मुख्य सूचना पर ही केंद्रित रहते हैं। विस्तार का अवसर नहीं होता और न श्रोता सावधान होता है । अत: मुख्य उल्लेख ही समाचारों में किया जाता है ।

इस प्रकार के समाचारों को चार श्रेणियों में लिखा जाता है, जो क्रमश: स्थल, विषय, समय तथा समाचार की विशेषता के आधार पर निर्धारित होती हैं । रेडियो -समाचार की अंतिम श्रेणी के अतिरिक्त "फ्लेश" समाचार की एक विशिष्ट श्रेणी और होती है जो सामान्य प्रसारण के चलते हुए बीच में ही श्रोताओं को तत्काल जानकारी देने के लिए प्रसारित किया जाता है । किसी राष्ट्रीय नेता की असामयिक मृत्यु, सत्ता में अचानक परिवर्तन, आपातकाल, दुर्घटना विशेष पर तात्कालिक सहायता आदि के संबन्ध में "फ्लैश न्यूज" का प्रसारण किया जाता है ।

16.4.7 व्यक्ति -चित्र

व्यक्ति-चित्र-प्रसारण रेडियो विधा का विशेष कार्यक्रम माना जाता है, क्योंकि इसका मूल विषय कोई व्यक्ति होता है । यद्यपि रेडियो (माध्यम से व्यक्ति-चित्र-प्रस्तुति का को निर्धारित स्वरूप नहीं है क्योंकि बहुत कुछ परिस्थितियों पर ही निर्भर करता है । अत: किसी चर्चित व्यक्ति का परिचय श्रोताओं को कराना होता है, जिसे कभी रूपक के माध्यम से भी प्रस्तुत किया जा सकता है । व्यक्ति चित्र का आलेख तैयार करते समय यह अवश्य ध्यान में रखना होता है कि व्यक्ति-चित्र प्रस्तुत किए जाने वाले व्यक्ति का वक्तव्य, साक्षात्कार, विशेष कथन या चिंतन एक साथ प्राप्त कर लिया जाए और ऐसा करने के लिए स्रोत खोज लिए जाएं । यदि ऐसा व्यक्ति उपलब्ध न हो पाए तो पूर्व में उपलब्ध कोई साक्षात्कार ही मिल जाने पर व्यक्ति-चित्र में जीवंतता आ सकती है । यदि यह भी संभव न हो तो यह प्रयास होना चाहिए कि ऐसे व्यक्तियों से साक्षात्कार लिया जाए जो उस व्यक्ति विशेष एवं उसके कार्य - क्षेत्र से परिचित रहे हो ।

व्यक्ति-चित्र के लिए सामग्री-संकलन और साक्षात्कार में ऐसी भी सामग्री हो सकती है जिसका उपयोग निर्धारित व्यक्ति-चित्र के लिए उपादेय न हो, पर उस सामग्री की पूरी तरह जांच अवश्य कर लेनी चाहिए ताकि व्यक्ति-विशेष के जीवन एवं कार्यशैली तथा व्यक्तित्व के विविध पहलू उभर कर आ सकें ।

16.4.8 रेडियो-पत्रिका

रेडियो -लेखन के क्षेत्र में पत्रिका-प्रसारण हेतु नई विधा है । रेडियो -पत्रिका की विधा का विकास मूलत: इस प्रवृत्ति के आधार पर हुआ है कि इसमें श्रोता को समाचार, चुटकले, संस्मरण, व्यंग्य, -लेख, ललित लेख, संपादकीय वक्तव्य के साथ ज्वलंत सामयिक समस्या मिल जाती है । रेडियो पर इस पत्रिका के विविध रूप रखे जा सकते हैं -खेल पत्रिका, फिल्मी पत्रिका, विज्ञान पत्रिका, साहित्यिक पत्रिका, समाचार पत्रिका, युवा पत्रिका, विद्यालय पत्रिका आदि ।

रेडिया-पत्रिका का विकास मूलत: प्रसारण के उद्देश्यों यानी सूचना, शिक्षा और मनोरंजन की पूर्ति के लिए ही हुआ है, पर वास्तविकता यह है कि रेडियो माध्यम का महत्व केवल इतने से ही स्थिर नहीं रह जाता है । समय के साथ रेडियो को अपने लिए प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है । पहले मुद्रित-माध्यम से ही सामना था, पर अब इलॉक्ट्राय-माध्यम के टेलीविजन से कड़ी प्रतिस्पर्धा है । इसी स्तर पर रेडियो-माध्यम की सहज सुलभता और टेलीविजन की सर्वसाधारण को बिजली की सहज उपलब्धता के अभाव में अपनी सक्रिय भूमिका में परिवर्तनकारी चुनौती है । रेडियो -पत्रिका इस दिशा में उसे पर्याप्त सहयोग कर सकती है । अत: श्रोताओं के लिए मनोनुकूल वैविध्यपूर्ण सामग्री एक निश्चित अंतराल पर दिए जाने से अवधिकाल की घटनाओं के समाचारों के साथ विविध सामग्री का संचयन कर पत्रिका का प्रसारण रेडियो से किया जाना महत्वपूर्ण कार्य समझा जा सकता है ।

16.4.9 रेडियो रूपांतरण

रेडियो प्रसारण को श्रोताओं की अभिरुचि का केन्द्र बनाए रखने के लिए जहां रेडियो-लेखन की विविध विधाओं के विस्तार का कार्यक्रम बनाया जाता है, वही किसी भी कृति या रचना को बिना उसके कथ्य को हानि पहुंचाए प्रसारण के लिए रूपान्तरण करना भी विधा रूप में विकसित किया जा चुका है । किसी भी कृति विशेष, चाहे वह क्षेत्रीय भाषा में हो या अन्य भाषा-विशेष की कृति हो, उसका रेडियो रूपान्तरण या रेडियो एडाप्टेशन किया जा सकता है, पर ध्यान रखना होता है कि रूपांतरण करते समय कृति के मूल कथ्य, तत्व या संदेश में किसी भी प्रकार का परिवर्तन या विकृति नहीं आनी चाहिए ।

रूपांतरण मूलत: नाटक विधा के लिए ही किया जाता है । किसी उपन्यास या कहानी को रेडियो नाटक विधा में परिवर्तित करने के लिए कुछ आवश्यक कदम उठाने होते हैं । घटनाओं, चरित्रों और प्रसंगों को संवाद, ध्वनि-प्रभाव और सूत्रधार के माध्यम से प्रस्तुत करना होता है । ध्वनि-प्रभाव और सूत्रधार के माध्यम से प्रस्तुत करना होता है । ध्वनिप्रभाव, स्वर-नियोजन तथा सूत्रधार के माध्यम से श्रोता के समय की उपयुक्तता के साथ एक निश्चित कथा-वस्तु पर आधारित वातावरण की रचना ही रूपांतरण की सबसे बड़ी कसौटी है । ऐसी स्थिति में मूल लेखक के संवादों का ही उपयोग किया जाता है, यदि वे रेडियो के अनुकूल न हो तो उन्हें रेडियो के अनुकूल बनाने की प्रवृत्ति अपनाई जाती है ।

रूपांतरण करते समय रूपांतरणकर्त्ता को यह अवश्य ध्यान में रखना होता है कि लेखक के मूल कथ्य की सुरक्षा रहे तथा उसमें न अपनी ओर से कुछ मिलाया जाए और न मूल कथ्य में से अनावश्यक रूप से कुछ काटा जाए । पात्रों की संख्या कम रहे तथा प्रमुख घटनाओं पर ही रूपांतरण केंद्रित रहे । इसके निमित्त यह उचित होता है कि प्रभावी संवादों का चयन मूलवृत्ति से कर लिया

जाएं तथा उन्हें अधिक प्रभावी बनाने के लिए ध्वनि-प्रभावों का विशेष प्रयोग किया जाएं । रेडियो-रूपांतरण में रेडियो समय की सीमा का ध्यान भी रखा जाना आवश्यक है । किसी बड़ी कृति के रूपांतरण को धारावाहिक रखा जाना आवश्यक है । किसी बड़ी कृति के रूपान्तरण को धारावाहिक रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है ।

16.4.10 रेडियो नाटक

रेडियो नाटक रेडियो प्रसारण की विख्यात विधा है तथा यह एक विशेष लेखन प्रविधि के अन्तर्गत आने वाली विधा रंगमंचीय नाटक से अनेक बातों में भिन्न है । अत: यह आवश्यक नहीं है कि जो अच्छा नाटककार हो, वह अच्छा रेडियो नाटककार भी हो । क्योंकि जब तक वह रेडियो नाटक के तत्वों से अपने आपको सम्पन्न नहीं बना लेता तब तक वह सफल रेडियो नाटककार नहीं हो सकता । यह बात भिन्न है कि उसकी किसी नाटक कृति को रेडियो पर प्रसारित किया गया हो, उसमें निश्चित ही रेडियो ड्रामा प्रोड्यूसर की भूमिका का योगदान कम नहीं होता है ।

रेडियो नाटक का प्रसारण असंख्य श्रोताओं के लिए होता है और श्रोता मंडल के विविध वर्ग होते हैं । इसलिए रेडियो नाटक के विषय के निर्धारण में पर्याप्त विचार करना होता है । प्रविधि (तकनीक) और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से रेडियो नास्त्र लेखन के विषय सामाजिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तो हो ही सकते हैं । उक्त विषयों के अतिरिक्त भी समसामयिक घटनाओं या पारिवारिक अथवा व्यक्तिगत समस्याओं के आधार पर भी विषय निर्धारित किए जा सकते हैं ।

रेडियो नाटकों के कई भेद किए जा सकते हैं । प्रमुखत: मोनोलॉग (एक पात्रीय) झलकी, प्रहसन, रेडियो रूपांतरण, रेडियो फैंटेसी (अतिकल्पना), धारावाहिक रेडियो नाटक, काव्य नाटक, ध्वनि नाटक, रेडियो कार्टून आदि ।

16.4.11 रेडियो विज्ञापन

रेडियो विज्ञापन का विकास भी आज विधा के रूप में हो चुका है । विविध भारती की विज्ञापन सेवा के अतिरिक्त क्षेत्रीय प्रसारणों में भी विज्ञापन का समावेश हो चुका है । संचार विशेषज्ञों की मान्यता यह है कि रेडियो विज्ञापन में वे सभी दृश्य एवं मौखिक सन्देश संमिलित है जो पत्र-पत्रिकाओं, फिल्मों, दूरदर्शन या यात्रा-वाहनों या मार्ग पर लगे पट्टिका-विज्ञापनों में निहित है । लेकिन इसके साथ ही यह नहीं विस्मृत किया जा सकता है कि रेडियो विज्ञापन की अपनी कुछ सीमाएं होती हैं और उससे वह लाभ नहीं उठाया जा सकता है जो मुद्रित-विज्ञापन से पाया जा सकता है ।

रेडियो विज्ञापन की विशेषता है कि वह श्रव्य होता है तथा चलते -फिरते या कमरे के बाहर बैठकर भी सुना जा सकता है । वह कम से कम समय के लिए होता है तथा उसमें ध्वनि एवं संगीत प्रभाव निहित रहता है । रेडियो विज्ञापन स्वयं श्रोताओं तक पहुंचता है, परन्तु पुनरावृत्ति नहीं हो सकती । उसे शिक्षित-अशिक्षित, बचे-बूढे, स्त्री-पुरूष बिना किसी भेद-भाव के सुन सकते हैं । इसमें जिंगल्स (गीतात्मक) तैयार हो सकते हैं ।

रेडियो विज्ञापन में समय की महत्ता होती है तथा उसी के अनुसार विज्ञापन प्रसारण का मूल्य चुकाना पड़ता है । स्पॉट आयोजित कार्यक्रम या प्रायोजित गीत (जिंगल्स) के प्रसारण के शुल्क की दरें भी निर्धारित होती हैं । रेडियो विज्ञापन का प्रस्तुतीकरण सामान्य वाचन, नाटकयिकृत और जिंगल्स

के रूप में किया जाता है । रेडियो विज्ञापन प्रसारण के लिए निर्धारित आचार संहिता का पालन करना अनिवार्य है ।

16.4.12 आंखों देखा हाल (कमेंट्री)

यह रेडियो -लेखन एवं प्रसारण की विवरणात्मक विधा है । इसमें प्रचारक या कमेंट्रेटर जैसा देखता है, वैसे ही माइक्रोफोन पर अपने असंख्य श्रोताओं को सुनाता चलता है । अत: आखों देखा हाल उस वर्णन को कहते है जो घटना के साथ-साथ चलता है और हाथों - हाथ अपने श्रोताओं तक क्रमबद्ध रूप में लगातार जानकारी देता है । यह हाल मुख्यत: सार्वजनिक महत्व की घटनाओं के सजीव वर्णन से संबंधित होता है । इसमें पन्द्रह अंगस्त, छब्बीस जनवरी, सैनिक परेड, सांस्कृतिक उत्सव, क्रिकेट, फुटबाल, तैराकी, हॉकी, सौंदर्य प्रतियोगिता, खेल, कार-रैली, विश्व स्तर की महत्वपूर्ण बैठकों की कार्यवाही का सीधा रेडियो प्रसारण होता है ।

आंखों देखा हाल इसलिए रेडियो-लेखन की विधा के रूप में महत्व पा गया है क्योंकि इसके माध्यम से कोई भी घटना, उत्सव, खेल लोकप्रियता प्राप्त कर लेता है । आंखों देखा हाल या कमेंट्री प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति के आधारभूत गुण इसे जीवंत बना देते हैं । उसका स्वर, वाचकीय प्रवाह, सम्यक ज्ञान, सरल भाषा के साथ-साथ वाचक की अपनी शैली भी महत्व रखती है । शैली की मौलिकता ही एक अच्छा कमेंटेटर या आंखो देखा हाल प्रस्तुतकर्त्ता बनाती है । कभी-कभी उसका मौन और खाली समय का उपयोग करने की योग्यता श्रोताओं पर उसका प्रभाव छोड़ने में सफल होती है । घटनाओं, समारोहों या खेल के अनुरूप आंखो देखा हाल का स्वरूप भी भिन्न हो जाता है । शोकपूर्ण घटना, गांधीजी, नेहरू, इंदिरा की मृत्यु के समय का आंखों देखा हाल प्रस्तुत करने प्रकृति भिन्न होगी ।

खेल का आँखों देखा हाल तैयार एवं प्रस्तुत करते समय प्रस्तुतकर्त्ता को निष्पक्ष, सरल भाषा, खेल का ज्ञान, एकाग्रता, सहज अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रवाहपूर्ण सरस आवाज की आवश्यकता होती है ।

16.4.13 प्रश्नोत्तरी या क्विज

रेडियो लेखन की यह बहुत ही महत्वपूर्ण एवं नवीनतम विधा है । इसमें लेखक के समक्ष विषय का चयन और विषय का गहरा ज्ञान अनिवार्य है । वह विषय के विविध पक्षों पर अपने प्रश्न तैयार करता है तथा इसके उपयुक्त उत्तर भी प्रश्न के साथ ही दूसरी स्याही से अंकित कर लेता है ताकि उसे उत्तर देने में विलंब न हो । इस संबंध में किसी संस्था या स्कूल के छात्रों को उनके स्थान पर ही बाह्य रिकार्डिंग व्यवस्था (ओ. बी.) से अथवा स्टूडियो में आमान्त्रित करके प्रश्न प्रस्तुत करता है फिर आमन्त्रित समूह में से उत्तर की अपेक्षा करता है । कभी उत्तरदाता से किसी प्रश्न का उत्तर न आने पर स्वयं उत्तर प्रस्तुत करता है और यदि पहली बार सही उत्तर नहीं आता है तो प्रश्न दूसरे ढंग से भी प्रस्तुत करके या मूल प्रश्न दुहराकर दूसरी बार श्रोताओं को उत्तर देने का अवसर उपलब्ध कराता है ।

प्रश्नकर्त्ता या क्विज प्रस्तुतकर्त्ता कभी-कभी ऐसी स्थिति का भी सामना करता है जब आमंत्रित या सामने उपलब्ध श्रोता-समूह से उत्तर नहीं प्राप्त कर पाता है या उत्तर अधूरे रूप में ही पाता है तो पुन: उत्तर पाने का यत्न कर श्रोताओं के बीच प्रश्न प्रस्तुत करता है अन्यथा अर्द्धांश का

सही उत्तर देने वाले को भी समादृत करता है । वास्तव में ऐसे आयोजन के लिए किसी भी विषय का उल्लेख पहले ही आमंत्रित संस्था या समूह को कर दिया जाता है ताकि वे उस संबंधित विषय में अपनी अपेक्षाओं के अनुकूल तैयारी के साथ शक्ति स्थल पर एकत्र हो सकें ।

आंखों देखा हाल और क्विज स्टूडियो से बाहर के त्वरित या तात्कालिक रेडियो-लेखन की विधा है । आंखों देखा हाल में भी अवसर या घटना संबन्धी पूरी जानकारी पहले से ही जुटा ली जाती है । क्विज में भी सारी जानकारी पहले से ही जुटाई जाती है । अंतर इतना ही है कि आंखों देखा हाल में पूर्व जुटाई गई सामग्री का उपयोग खाली समय में या घटना के आरंभ काल की भूमिका के समय में होता है और क्विज में उस पूर्व सामग्री के प्रश्नों के साथ उनके उत्तर भी तैयार करने होते हैं । उत्तर प्राप्ति पर सही होने की घोषणा अथवा सही उत्तर न मिलने पर गलत होने का उल्लेख करते हुए सही उत्तर की घोषणा भी उसे करनी होती है ।

बोध प्रश्न - 3

1. रेडियो लेखन की विभिन्न विधाएं बताइए ।
2. रेडियो-लेखन में वार्ता साक्षात्कार और परिचर्चा में क्या अंतर है?
3. रेडियो रूपांतरण किसे कहा जाता है और वह कैसा होना चाहिए?
4. रेडियो नाटक और सामान्य नाटक में अन्तर क्यों है, रेडियो नाटक लिखते समय आप क्या करेगे ?
5. आंखों देखा हाल और क्विज में क्या अंतर है? आंखों देखा हाल कब, कहां और कैसे प्रस्तुत किया जा सकता है?

16.5 रेडियो- लेखन के लिए विशेष बातें

रेडियो -लेखक के पास अपना कौशल प्रदर्शन के लिए है -भाषा पर अधिकार, असीमित शब्द भंडार, व्याकरण पर पकड़ तथा संप्रेषण तकनीक की गहरी समझ । यह पहले ही विचार कर आए हैं कि रेडियो-लेखन हेतु कुछ अपेक्षाएं होती है । रेडियो -लेखन के लिए कुछ विशेष बातें ध्यान देने योग्य हैं -

1. रेडियो के लिए कोई भी आलेख तैयार करते समय सबसे पहले यह देखना आवश्यक है कि उसे किस आयु वर्ग या विशिष्ट वर्ग (किसान-मजदूर, ग्रामीण या नागरीय) के लिए आलेख तैयार करना है ।
2. आलेख तैयार करते समय विषय का शोध करना भी आवश्यक है । अधिक से अधिक जानकारी जुटाकर लिखते समय उसमें से उपयुक्त जानकारी का उपयोग करने की सुविधा रहती है । शोधपरक कार्य करने से नवीनतम जानकारी श्रोताओं को उपलब्ध कराई जा सकती है ।
3. आलेख में तिथियों, अंकों और तकनीकी सिद्धान्तों में उलझने के स्थान पर सीधे ही सूचनाएं देना पर्याप्त है । यदि व्यक्ति-चित्र है तो व्यक्तित्व को उभारना उचित होगा । उसकी एक-एक कृति की चर्चा में समय व्यर्थ नहीं किया जाना चाहिए ।
4. श्रोता वर्ग गंभीर चर्चाओं से अधिक सहज भेंटवार्ताओं, झलकियों तथा उपलब्धियों में आनन्द लेता है । अत: महत्वपूर्ण घटनाओं या विकासपरक गतिविधियों की झांकी ही उपयुक्त होती है ।

5. अगर साक्षात्कार लेना है तो उसकी पूर्व तैयारी करके प्रश्नावली साक्षात्कारी को देना उचित है ताकि निर्धारित समयावधि में साक्षात्कारी से वांछित सामग्री पर चर्चा हो सके ।
6. रेडियो ऐसा इलॉक्ट्राय-माध्यम है जो सीधे ही अतर्क्य रूप में श्रोता को कुछ समझाता है । अत: पुस्तकीय शैली से अभिलेखकर्त्ता को बचना चाहिए ।
7. आलेखकर्त्ता का आकर्षक आरंभ करना पहली प्राथमिकता है, तभी श्रोता को बांधा जा सकता है तथा श्रोता-वर्ग की विभिन्न अभिरुचियों के बीच अपना कथन प्रस्तुत करना होता है ।
8. रेडियो शुष्क माध्यम नहीं है, वह जो कुछ भी कहता है उसे मनोरंजनात्मक ढंग से कहना ही उपयुक्त है । तभी लेखक का कथ्य लक्ष्यहीन नहीं होगा ।
9. रेडियो-लेखक को कभी यह नहीं भूलना चाहिए कि उसे श्रोताओं की कल्पना- शक्ति जगाना है ।
10. रेडियो प्रसारण के लिए चाहे किसी भी विधा में क्यों न लिखा जाए प्रसारण की आचार संहिता पालन अनिवार्यत: किया जाना चाहिए ।

16.6 सारांश

इलॉक्ट्राय (रेडियो) माध्यम के लिए समूह-लेखन के अन्तर्गत आपने यह सैद्धान्तिक विवेचन जाना है और निश्चित ही यह आप जान चुके हैं कि इलॉक्ट्राय माध्यम के रूप में रेडियो की कुछ ऐसी अपेक्षाएं हैं जो शब्द-प्रयोग, ध्वनि-प्रभाव तथा तत्संबन्धी संगीत के प्रयोग से प्रभावी होती है । रेडियो के लिए विविध लेखन विधाओं से आपका परिचय हो गया है कि किस प्रकार विभिन्न विधाएं एक दूसरे से भिन्न होकर भी जनसंचार-माध्यम के रूप में विशिष्ट होकर व्यापक क्षेत्र के श्रोताओं के निमित्त समूह-लेखन करने वालों को जागरूक बनाए रखने के लिए तत्पर हैं ।

16.7 उपयोगी पुस्तकें

कुलश्रेष्ठ, विजय	:	जनसंपर्क प्रचार और विज्ञापन, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर
कुलश्रेष्ठ, विजय	:	विज्ञापन सिद्धान्त और प्रयोग :, माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर
कुलश्रेष्ठ, विजय	:	संचार पत्रकारिता, शिवा पब्लिशर्स, उदयपुर
गंगाधर, मधुकर	:	भारतीय प्रसारण विविध आयाम :, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली ।
गुप्त, बृजमोहन	:	जनसंचार विविध आयाम :, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
वरूआ, यू. एल.	:	दिस इज आल इंडिया रेडियो, मिनिस्ट्री ऑफ इनफोर्मेशन एण्ड ब्राकास्टिंग
डॉ गुलाब कोठारी	:	पत्रकारिता जनसंचार और विज्ञापन
अशोक महाजन	:	विज्ञापन

16.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. जनसंचार-माध्यम के रूप में रेडियो इलॉक्ट्राय-माध्यम का महत्व क्यों है-स्पष्ट कीजिए ।
2. रेडियो-लेखन के उपकरण क्या-क्या हैं -स्पष्ट कीजिए तथा रेडियो की भाषागत विशेषताएं बताइए।
3. रेडियो-लेखन की तैयारी आप कैसे करेंगे? उसकी विशेष बातें क्या-क्या हैं?

4. रेडियो -श्रोता समूह के आधार क्या हैं?

इकाई 17 स्तंभ-लेखन

इस इकाई में

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 पत्र-पत्रिकाओं स्तंभों का महत्व

17.2.1 व्यवस्थागत आयाम

17.2.2 विविधता का आकर्षण

17.2.3 दैनिक समाचारपत्रों में स्तंभ

17.3 स्तंभ लेखक और अन्य स्रोत

17.3.1 विभागीय लेखन

17.3.2 पेशेवर लेखक और पत्रकार

17.3.3 विशेषज्ञ

17.3.4 फीचर समितियां

17.3.5 पाठकों से प्राप्त सामग्री

17.4 समाचारपत्रों में स्तंभ लेखन

17.4.1 विचार-प्रधान पृष्ठ

17.4.2 अग्रलेख लेखन और अन्य स्रोत

17.4.3 विशेष आयोजन

17.4.4 रविवारीय और फीचर परिशिष्ट

17.5 नियतकालिक पत्रिकाएं

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.9 निबंधात्मक प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप-

- स्तंभों के बुनियादी उद्देश्य और उनके स्वरूप से परिचित हो जाएंगे ।
- दैनिक पत्रों के स्तंभ नियोजन के अपूर्व महत्व के जानकार हो जाएंगे ।
- स्तंभ-लेखकों के वर्गीकरण और सामग्री स्रोतों से परिचित हो जाएंगे ।
- विचार-प्रधान और समाचार प्रधान स्तंभों की विशेषताएं जान जाएंगे ।
- नियतकालिक पत्रिकाओं के स्तंभों की शैलीगत विशेषताओं से परिचित हो जाएंगे ।

17.1 प्रस्तावना

बीसवीं सदी का अंतिम दशक सूचना-क्रांति का दशक है । ऐसे कई समाचारपत्र हैं जिनकी पांच-पांच लाख या अधिक प्रतियां रोज बिकती हैं । आठ-दस नगरों से अलग-अलग संस्करण प्रकाशित करने वाले अखबार भी हैं । रेडियो की तरंगें देश के हर कोने में गूंजती हैं । टेलीविजन महानगरों की सीमा लांघकर उन सभी ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंच गया है जहां बिजली उपलब्ध है और साधारण टी. वी. गेट खरीदने वाले मौजूद हैं । इंटरनेट अभी केवल कुछ शिक्षित वर्गों तक ही सीमित है जो जन-संचार माध्यमों के स्वरूप और गुणवत्ता को प्रभावित करेगा ।

पिछले पचास वर्षों में जनसंचार-माध्यमों के प्रभाव और पहुंच में वृद्धि के अनेक कारण रहे हैं - लोकतंत्री शासन व्यवस्था, शिक्षा और साक्षरता प्रचार-प्रसार, अनेक वर्गों की आर्थिक स्थिति में सुधार और तकनीकी प्रगति, जिसने कंपोजिंग, मुद्रण और प्रसारण को सरल और सुविधाजनक बना दिया है । इन सबका एक और असर हुआ है कि वे विविध स्तंभों और कार्यक्रमों के माध्यम से जन-जीवन के अधिक निकट आ गए हैं ।

प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति, लोकतंत्री शासन प्रणाली और अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में बदलाव के साथ आर्थिक और सामाजिक जीवन की जटिलताएं और समस्याएं बढ़ रही हैं । उसी अनुपात में तनाव और दबाव भी बढ़ते जा रहे हैं । जनसंचार-माध्यम जो हर तरह की जानकारी के प्रचार- प्रसार में सहायक बनते हैं, उन पर एक अतिरिक्त दायित्व आ जाता है कि वे राजनैतिक, आर्थिक, समाचारों और प्रवृत्तियों के अलावा उन तमाम अन्य क्षेत्रों के बारे में अपने पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों को जानकारी दें जो जन-जीवन के हिस्से बन गए हैं । यही नहीं, पाठकों के निजी सरोकारों से जुड़ना उनकी जिम्मेदारी हो जाती है क्योंकि ये उसी राजनैतिक-आर्थिक-सामाजिक परिवेश की देन हैं जिसमें समाचार माध्यम सांस लेते हैं ।

समाचारपत्र-पत्रिकाएं, रेडियो और टेलीविजन सभी की कोशिश होती है वे अधिक से अधिक उपयोगी और लोकप्रिय बनें । इसका एक आर्थिक पक्ष भी है । पत्र-पत्रिकाओं का जितना बड़ा पाठक वर्ग होता है वे उतने ही अधिक या ऊंची दर पर विज्ञापन पाने के अधिकारी बन जाते हैं । टेलीविजन के विभिन्न कार्यक्रमों को उनकी लोकप्रियता यानी श्रोताओं की आंकी गई संख्या के आधार पर विज्ञापन मिलते हैं । विविध भारती आकाशवाणी का व्यावसायिक चैनल है । महानगरों में एफ एम चैनल भी इसी श्रेणी में आता है ।

जब समाचारपत्र या पत्रिका के पृष्ठों में और किसी पृष्ठ पर उपलब्ध स्थान में विषय सूचक शीर्षक के अधीन पठनीय सामग्री दी जाती हैं तो उसे स्तंभ कहा जाता है । स्तंभ वस्तुत: विषयवार स्थान विभाजन ही तो है ।

इसलिए हम कहते हैं कि अमुक स्तंभ के लिए आलेख, समाचार या फीचर चाहिए । दैनिक समाचार के पहले पृष्ठ पर हर क्षेत्र के महत्वपूर्ण समाचार को स्थान मिल जाता है । वह शहर, प्रान्त, देश-विदेश, खेल या फिल्म का भी हो सकता है बशर्ते कि पृथम पृष्ठ पर स्थान पाने का अधिकारी हो । इस पूस के अलावा हर मृत या उसका कोई भाग किसी न किसी क्षेत्र या विषय के समाचारों के लिए आरक्षित होता है ।

पत्र-पत्रिकाएं क्षेत्र अथवा विषय के अनुसार स्थान का विभाजन करती हैं । उनका समुचित नामकरण भी कर दिया जाता है । रेडियो और टेलीविजन भी अपने कार्यक्रमों का नाम तय करने के अलावा उनका समय या कालावधि भी निर्धारित करते हैं । मुद्रित-माध्यम स्थान विभाजित करता है और उसी नमूने पर इलेक्ट्रॉनिक-माध्यम समय का विभाजन करते हैं । उनके कार्यक्रम स्तंभों के ही प्रतिरूप है । जो अंतर है वह माध्यम के कारण है । रेडियो के समाचार बुलेटिन पांच, दस, पन्द्रह मिनट के होते हैं । सुगम संगीत, सामयिकी, चर्चा आदि का भी निश्चित समय होता है ।

टेलीविजन पर भी निश्चित समयावधि के कार्यक्रम अलग-अलग नामों से आयोजित और प्रसारित किए जाते हैं । सभी टेलीविजन चैनल यही करते हैं ।

17.2 पत्र-पत्रिकाओं में स्तंभों का महत्व

17.2.1 व्यवस्थागत आयाम

समाचारपत्र में कम से कम एक या अधिक से अधिक डेढ़ पृष्ठ ऐसे होते हैं जहां कोई भी समाचार या उसका शेषांश दिया जा सकता है । शेष सभी पृष्ठों या कालमों में सामग्री किसी न किसी शीर्षक के विषय अथवा स्वरूप या क्षेत्र सूचक नाम के अधीन दी जाती है । पत्रिकाओं में भी पठनीय सामग्री प्रकृति अथवा क्षेत्र आदि के अनुसार लगभग निश्चित क्रम या व्यवस्था के अनुसार सजाई जाती है । रेडियो-टेलीविजन में यह आयोजन-संयोजन समयानुसार किया जाता है । प्रातःकालीन कार्यक्रम सुबह के समय ही आएंगे और निश्चित अवधि के होंगे । इसी प्रकार अन्य कार्यक्रमों की अवधि और समय तय किया जाता है । समाचारपत्र-पत्रिकाओं में स्थान विभाजन को स्तंभ कहते हैं और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में टाइम-सलॉट । स्तंभ पठनीय सामग्री को एक अनुशासन में बांधकर प्रकाशन को व्यवस्थित रूप देते हैं । यह उसका भौतिक पक्ष है, व्यवस्थागत आयाम है ।

17.2.2 विविधता का आकर्षण

बीस-पच्चीस वर्ष पहले के और आज के समाचारपत्रों की तुलना करें तो उनमें कई अन्तर दृष्टिगोचर होंगे । आज के बहुप्रचारित अखबार छपाई और साज-सज्जा की दृष्टि से सुरुचिपूर्ण नजर आएंगे । उनमें रंगीन चित्र और पृष्ठ भी मिलेंगे । तीसरा और इनसे अधिक महत्वपूर्ण अंतर आपको अवश्य दिखाई देगा । इतने अधिक स्तंभ और विविधतापूर्ण सामग्री मिलेगी जो बीस वर्ष पूर्व अखबारों में दुर्लभ थी । तब भी समाचारों के अलावा फीचर और अन्य रोचक पठनीय सामग्री होती थी, लेकिन जन-जीवन के सभी पक्षों को समेटने का प्रयास आवश्यक नहीं माना जाता था ।

1982 में रंगीन टेलीविजन की आमद के बाद समाचारपत्रों में आपसी प्रतियोगिता का नया दौर आरंभ हुआ । छोटे अखबार मंझोले और मंझोले अखबार बड़े हो चुके थे । फोटो कंपोजिंग और ऑफसेट की छपाई सर्व सुलभ होती जा रही थी, जिसे अखबारों ने अपनाना शुरू किया । दूसरी ओर टेलीविजन की ओर विज्ञापनदाता आकर्षित होने लगे थे । इसलिए पहले अंग्रेजी के फिर भारतीय भाषाओं के अखबारों ने कंपोजिंग और छपाई की नई टेक्नालॉजी अपनाई । इसी क्रम में रंगीन चित्रों और पृष्ठों का सिलसिला आरंभ हुआ । मनोरंजन, स्वास्थ्य, विज्ञान, रहन-सहन, फैशन, जीवन शैली, कंप्यूटर, मनोविज्ञान, व्यावसायिक प्रशिक्षण, धर्म आदि विषयों की जानकारी विभिन्न स्तंभों के अधीन दी जाने लगी ।

आपसी प्रतियोगिता के कारगर हथियार के रूप में समाचारपत्रों ने वे सभी विषय और स्तंभ अपनाने आरंभ कर दिए जो बीस वर्ष पूर्व तक सामान्य रुचि की पत्रिकाओं और समाचार-प्रधान साप्ताहिकों की विशेषता हुआ करते थे । पाठकों और विज्ञापनदाताओं को आकर्षित करने के लिए अपनाया गया नुस्खा इतना कारगर हुआ कि 1990 - 91 तक 'धर्मयुग' 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'दिनमान' और 'रविवार' जैसी प्रतितित और बहु-प्रचारित पत्रिकाएं निकलना बंद हो गई या समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगी ।

मुझे याद है कि 1988 में जब प्रभाष जोशी के संपादन में इंडियन एक्सप्रेस का 'जनसत्ता' दैनिक निकलता तो कई अर्थों में वह अपने समकालीन अखबारों से अलग था - भाषा, सामाजिक सरोकारों और विशेषतः स्तंभों की दृष्टि से भी । उसमें जन- आंदोलन, सामयिक समस्याओं के विस्तृत विश्लेषण, साहित्य, कला, संस्कृति आदि विषयों पर भी विस्तार से सुन्नियोजित सामग्री दी जाती थी । गपशप का भी स्तंभ था, जिसमें अखबारों के पीछे की भी खबरें होती थी । संपादक का व्यक्तिगत स्तंभ 'कागद कारे' होता था । सबकी खबरें लेने वाले और राजधानी से निकलने वाले दो प्रमुख अखबारों के मुकाबले सीना तानकर खड़ा हो गया । दूसरे अखबारों ने भी अपनी दृष्टि और समझ के अनुसार नए-नए स्तंभ शुरू कर दिये । रंगीन पृष्ठ और चित्र भी छापने लगे।

1990 तक सामान्य रुचि की पत्रिकाओं, जैसे ' धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' तथा समाचार पत्रिकाओं 'दिनमान' और 'रविवार' के दिन लद गए । टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप का 'धर्मयुग' साहित्य, कला, संस्कृति के अलावा सुरुचिपूर्ण लेखों और फीचरों के लिए मध्यवर्ग की सम्मानित और लोकप्रिय पत्रिका थी । 1974 में उसकी प्रसार संख्या लगभग 4 लाख तक पहुंच गयी थी । 'दिनमान' भी इसी ग्रुप का था । वह अपने बौद्धिक और संतुलित दृष्टि से निष्पक्ष तेवर के लिए प्रसिद्ध था । इससे कुछ भिन्न लेकिन जल्दी ही अपनी पहचान बनाने वाला 'रविवार' कलकत्ता से संम्भवत: 1977 में या उसके आसपास निकला था । मगर ये बीसवीं सदी के आखिरी दशक में खड़े नहीं रह सके ।

1889 में तीन ब्रॉडशीट साप्ताहिक निकले - ' दिनमान', 'संडे मेल' और 'संडे आब्जर्वर' । इनका जीवनकाल दो - अढ़ाई वर्ष से अधिक नहीं रहा । दैनिक पत्रों की प्रतियोगिता में ये टिक नहीं सके । कोई भी साप्ताहिक प्रकाशन जो 'इंडिया टुडे ' की तरह विभिन्न स्तंभों के लिए विशिष्ट सामग्री संकलित और प्रायोजित करने के लिए हर सप्ताह प्रचुर धन राशि खर्च न कर सके और बिक्री तथा विज्ञापनों से पर्याप्त कमाई न कर सके तो वह बाजार में टिक नहीं सकता ।

यह सीमित पाठकों की अभिरुचि और 'क्या होना चाहिए?' का मामला नहीं है । पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन मुख्यत: व्यावसायिक गतिविधि है । यदि कोई पत्र या पत्रिका आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं है तो प्रकाशक उसे बंद कर देने के लिए स्वतंत्र है ।

पश्चिमी देशों में भी पत्र-पत्रिकाएं ऐसे ही दौर से गुजर चुकी हैं । अमेरिकी समाचार साप्ताहिक 'टाइम' के प्रकाशकों की एक सचित्र पत्रिका थी 'लाइफ', जो बड़े आकार में निकलती थी । उत्तम छायाचित्र और उम्दा लेख हुआ करते थे उसमें । बहुत नाम था उसका । किन्तुद्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रकाशकों को उसका प्रकाशन बंद करना पड़ा क्योंकि आर्थिक दृष्टि से वह घाटे का सौदा बन गई थी ।

अमेरिका में कई समाचार साप्ताहिक निकलते हैं । इनमें 'टाइम' और ' न्यूजवीक' के एशियाई संस्करण भी निकलते हैं और वे भारत में भी उपलब्ध हैं । ब्रिटेन का 'द इकॉनामिस्ट' साप्ताहिक की

अंग्रेजी भाषी संसार में धाक जमी हुई है । अमेरिका और ब्रिटेन में भी प्रमुख समाचारपत्र सभी तरह के पाठकों के लिए हर प्रकार की सामग्री देने का प्रयास करते हैं । इसलिए उनकी पृष्ठ संख्या भी अधिक होती है ।

भारत में सामान्य रुचि की बहु -प्रचारित पत्रिकाओं के अवसान के साथ विशिष्ट वर्ग के पाठकों के लिए और विशिष्ट विषयों की पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा है । उदाहरण के लिए स्त्रियोपयोगी पत्रिकाओं की संख्या और उनकी प्रसार संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई हैं । ' गृहशोभा', ' मनोरमा', 'गृहलक्ष्मी', 'मेरी सहेली' लाखों की तादाद में बिकती हैं, क्योंकि स्त्री-पाठकों की संख्या बढ़ती गई है । कारण, औरतों में शिक्षा और जागरूकता बढ़ी है और लगभग सभी क्षेत्रों में वे आगे बड़ी हैं । दैनिक पत्रों के पृष्ठों में उनकी रुचि और आवश्यक्ताओं के अनुरूप पर्याप्त सामग्री नहीं होती । हो भी नहीं सकती। इसलिए इस पाठक वर्ग के लिए निकलने वाली पत्रिकाओं की मांग और आपूर्ति बढ़ी है । अंग्रेजीदां आधुनिक स्त्रियों के लिए अंग्रेजी की 'फेमिना' है । स्वास्थ्य संबन्धी पत्रिकाएं भी कई वर्ष पहले से निकलनी शुरू हुई हैं । ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 'अक्षर भारत' निकल रहा है ।

17.2.3 दैनिक समाचारपत्रों में स्तंभ

दैनिक समाचारपत्रों में पाठकों से जुड़ने के लिए अधिकाधिक स्तंभ अपनाकर जनजीवन के हर पहलू से संबन्धित जानकारी देने की होड़ मची है । इस प्रतियोगिता से कुछ वर्गों की पत्रिकाओं की आधार भूमि सिकुड़ गई, मगर समाचारपत्रों की प्रसार संख्या बढ़ती गई । हर प्रदेश मे एक या अधिक समाचारपत्र अनेक केन्द्रों से प्रकाशित होने लगे । 'जनसत्ता' तीन महानगरों -दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और चंडीगढ़ से निकलते है । 'राजस्थान पत्रिका' और 'दैनिक भास्कर' राजस्थान के अनेक नगरों से निकलते हैं । उत्तरप्रदेश के 'जागरण', 'आज' और 'अमर उजाला' का यही हाल है ।

स्तंभों की विविधता का विस्तार देखने के लिए किसी भी बहु प्रचारित अखबार को लिया जा सकता है । नमूने के तौर पर दिल्ली से प्रकाशित नवभारत टाइम्स का रविवार 30 मई, 1999 का अंक लीजिए । इसमें 12 पृष्ठ के अलावा चार पृष्ठ का रविवारीय भी है ।

1: समाचारों के अलावा विशेष स्तंभ है 'नवभारत टाइम्स लाइन' जिसमें पाठकों से 'दूध कैसा और कैसे मिल रहा है? इस प्रश्न पर फोन से पाठकों की राय मांगी गई है जो अगले दिन प्रकाशित की जाएगी । 'ज्ञानोदय' स्तंभों मे उद्‌बोधक आर्षवाक्य हैं ।

2: विज्ञापनों के अलावा 'दिन-प्रतिदिन' स्तंभ के अधीन टेलीविजन कार्यक्रमों की जानकारी, सिनेमा, पंचांग, जन्मदिन (ज्योतिष) और कार्टून पट्टियां ।

3: 'महानगर में आज' (स्थानीय समाचार) धर्म कर्म (प्रवचन अंश) ।

4: से 8 : विज्ञापन और स्थानीय तथा अन्य समाचार ।

9: 'फोकस ' - समसामयिक विषय पर तीन आलेख 'मत-सम्मत' में समसामयिक मुद्दे पर पाठकों के चित्र समेत उनकी राय और पुस्तक-समीक्षा ।

10: विजनेस टाइम्स : वाणिज्य व्यवसाय

11: खेल

12: विश्व कप

रविवार्ता 4 पृष्ठ : पृष्ठ 1 फिल्मी अभिनेताओं पर सचित्र आलेख और रंगीन विज्ञापन । पृष्ठ 2 'खुलामंच' (प्रश्न और उनके उत्तर), 'साप्ताहिक भविष्य', 'खुशहाल बचपन', बाल कहानी, कार्टून पट्टी, जानकारी (कैसे बनी पहली आइसक्रीम), पृष्ठ 3 'फिटनेस' (स्वास्थ्य संबंधी पृष्ठ), 'अन्तर्मन' (रोगों के बारे में डॉक्टर की सलाह), 'संबंधों की दुनिया' (प्रसिद्ध मनोविज्ञानी दारा पाठकों की समस्याओं का निराकरण) और मधुमेह, जोड़ों के दर्द और जिगर पर आलेख । पृष्ठ 4 'फेमिना' - औरतों की रुचि और उनकी समस्याओं पर आलेख और फीचर ।

आप गौर करेंगे कि 'नवभारत टाइम्स' में पाठकों की प्रतिक्रिया और अभिमत प्रकाशित करने के तीन स्तंभ हैं । पाठकों के पत्र, मत-सम्मत और नवभारत टाइम्स लाइन । सामान्य दिनों में संपादकीय पृष्ठ पर पाठकों की आवाज को सर्वोच स्तर पर पहुंचने के लिए 'प्रधानमंत्रीजी' नामक स्तंभ है जिसके अधीन किसी गंभीर समस्या पर पाक का संक्षिप्त पत्र छापा जाता है ।

नैतिक मूल्यों और प्रेरक प्रसंगों की याद दिलाने के लिए 'ज्ञानोदय', 'एकदा' (संस्मरण) और 'अंतर्दृष्टि' (उद्धरण) नामक तीन स्तंभ है । यह धर्म-कर्म स्तंभ के अलावा है । पाठकों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं के निराकरण के लिए विशेषज्ञों की सलाह प्रकाशित की जाती है । मनोरंजन, फैशन, जीवन शैली, सिनेमा पर विशेष ध्यान दिया जाता है ।

नवभारत टाइम्स ही नहीं, अन्य सभी समाचारपत्र भी पाठकों और उनकी समस्याओं तथा अभिरुचियों से जुड़ने के प्रयास में नए-नए स्तंभ चलाते हैं । इसी कोशिश का एक परिणाम यह भी है कि ?? फैशन, जीवन शैली, सौन्दर्य के नाम पर अल्पवसन औरतों की तस्वीरें छापने में प्रकाशकों को संकोच नहीं होता । इसे लोक रुचि (पाठक की पसंद) और व्यावसायिकता का तकाजा माना जाने लगा है ।

टेलीविजन और समाचार दो अलग माध्यम हैं । लेकिन दोनों की आय का मुख्य साधन विज्ञापन है । टेलीविजन अधिक प्रभावशाली माध्यम होने के नाते विज्ञापनदाताओं को अपनी ओर अधिक आकर्षित करता है । इसलिए समाचारपत्र भी रंगीन पृष्ठ, रंगीन चित्र और विविध स्तंभों के जरिए अपनी प्रसार संख्या बढ़ाने की जी-जान से कोशिश करते हैं, जिससे कि विज्ञापन से होने वाले आमदनी बढ़ती रहे । इसलिए टेलीविजन के कार्यक्रम समाचारपत्रों के स्वरूप, ले आउट और स्तंभों को प्रभावित कर रहा है । भाषा और प्रस्तुतीकरण पर इलेक्ट्रॉनिक-माध्यम का असर पड़ रहा है जिसके बारे में आप अन्य पाठों में पढ़ेंगे ।

बोध प्रश्न- 1

3. अपने समाचारपत्र में स्तंभों की सूची बनाइए और बताइये कि मनोरंजन संबंधी कितने स्तंभ हैं ।
4. आपके समाचारपत्र में पाठकों की राय और समस्याओं के निराकरण संबन्धी स्तंभ को कितना स्थान दिया जाता है ।
5. आप कौन-सी पत्रिकाएं पढ़ते हैं और क्यों?

17.3 स्तंभ- लेखक और अन्य स्रोत

हर समाचारपत्र या पत्रिका का स्वरूप निर्धारित करने में तीन बातों की मुख्य भूमिका होती है : उद्देश्य, पाठक वर्ग और प्रकाशक के वित्तीय साधन । समाचार तो संवाद समितियों से मिल जाते हैं, लेकिन यदि दूसरे अखबारों से अलग या अधिक जानकारी देनी है तो संवाददाता नियुक्त किए जाते हैं । इसी प्रकार स्तंभों की व्यवस्था की जाती है । कौन-से स्तंभ होंगे, उनके लिए सामग्री और आलेख कहा से आएंगे, यह संस्था के बजट और पाठक वर्ग के स्तर और उसकी जरूरतों के अनुसार तय होता है ।

हर पत्र-पत्रिका के कार्यालय में पाठकों और लेखकों द्वारा भेजे गये आलेख आते रहते हैं, लेकिन उनके भरोसे स्तंभ नहीं चलाए जा सकते । उन्हें आयोजित करना होता है ।

आलेखों और स्तंभों के लिए सामग्री को प्राप्त करने के अग्रलिखित स्रोत हैं । किस स्रोत का कितना उपयोग किया जाना है, यह प्रकाशक या संपादक तय करता है और तदनुसार योजना बनाता

1. विभागीय लेखन
2. पेशेवर लेखक और असंबद्ध (फ्रीलांस) पत्रकार ।
3. विशेषज्ञ, जिनकी रचनाएं विशेष रूप स आमंत्रित की जाती है ।
4. फीचर समितियां ।
5. पाठकों से प्राप्त पत्र-पत्रिकाएं और स्तंभों के लिए आमंत्रित सामग्री ।

17.3.1 विभागीय लेखन

पत्र-पत्रिकाएं विभागीय लेखन पर कितना निर्भर करती हैं और कितना बाहरी स्रोतों पर, यह प्रकाशन गृह की संपादकीय नीति पर निर्भर करता है । इसे ध्यान में रखते हुए संपादकीय विभाग में नियुक्तियां की जाती हैं । अधिकांश लेख और स्तंभों के लिए सामग्री बाहर से लेनी है तो केवल संयोजन और संपादन भर के लिए पत्रकार नियुक्त किए जाएंगे । समाचार संकलन के वास्ते कुछ संवाददाता भी रखे जाते हैं (कुछ छोटे-बड़े समाचारपत्र ऐसा ही करते हैं, पर सभी नहीं) ।

नवभारत टाइम्स में 1964 में जब संवाददाता ब्यूरों का विस्तार किया गया तो चारों संवाददाता और सहायक संपादक संपादकीय पृष्ठ पर मुख्य आलेख लिखा करते थे । वर्षो यह सिलसिला चला । इन दिनों यह आलेख बाहर के स्तंभकार लिखते हैं । परिस्थिति और आवश्यकतानुसार ये फैसले बदलते रहते हैं ।

हिन्दी के दो लोकप्रिय साप्ताहिक 'दिनमान' और ' रविवार' में (जो अब बंद हो चुके हैं) समसामयिक विषयों के अधिकतर आलेख, फीचर और स्तम्भ संपादकीय विभाग के हुआ करते थे । दिनमान में राष्ट्रीय समाचार, समाचार भूमि, विश्व समाचार, आधुनिक जीवन, आधुनिक विचार, फिल्म चर्चे -चरखे, साहित्य कला, रंगमंच आदि स्तंभों की सामग्री संपादकीय विभाग ही तैयार करता था । विशेष अवसरों पर बाहरी सामग्री का इस्तेमाल इन स्तंभों में हो पाता था । यदा-कदा बाहर के स्तंभकारों का भी उपयोग किया जाता था । अर्थ जगत, विज्ञान सरीखे स्तंभों में दोनों प्रकार की सामग्री होती थी । आवरण-कथा की भी यही स्थिति थी । हालांकि यथासंभव उन्हें संपादकीय विभाग ही तैयार करता था । 'रविवार' भी विभागीय स्रोतों का भरपूर उपयोग करता था ।

इंडिया टुडे के हिन्दी संस्करण में कुछ स्तंभों को छोड़कर समूची सामग्री विभागीय स्रोतों द्वारा तैयार की जाती है -मूलत: अंग्रेजी में, जिसका अन्य भाषाओं के संस्करण के लिए अनुवाद किया जाता है ।

विभागीय लेखन की प्रचुरता के बावजूद 'दिनमान' बाहरी लेखकों, विशेषज्ञों और असंबद्ध पत्रकारों की रचनाओं का स्वागत और उपयोग करता था क्योंकि प्रतिभा और विशेषज्ञता किसी संपादकीय विभाग की बढ़ौती नहीं होती ।

17.3.2 पेशेवर लेखक और पत्रकार

पेशेवर लेखकों से तात्पर्य उन पत्रकारों, शिक्षकों, साहित्यकारों तथा अन्य जानकार लोगों से है जो शौकिया या किन्हीं अन्य कारणों से नियमित या लगभग नियमित रूप से समाचार-माध्यमों के लिए लिखते हैं या लिख सकते हैं । इन्हें स्तंभकार भी कहा जाता सकता है । ये किसी एक या कई विषयों के जानकार होने के अलावा अपनी बात आकर्षक ढंग से कहने की कला में पारंगत होते हैं । पत्र-पत्रिकाएं इनकी रचनाओं का उदारतापूर्वक उपयोग करती हैं ।

कुछ समाचारपत्र अनुभवी और जाने-माने लेखकों को अधिक प्रश्रय देते हैं तो कुछ नई प्रतिक्रियाओं को, नये स्वतन्त्र पत्रकारों को अधिक पसन्द करते हैं ।

17.3.3 विशेषज्ञ

विभिन्न विषयों के प्राध्यापक, विशिष्ट वर्ग की संस्थाओं में कार्यरत विशेषज्ञ, चिकित्सक, साहित्यकार, संगीत-प्रेमी जो अनुरोध करने पर ही यदा-क्या और कभी-कभार नियमित रूप से आलेख और टिप्पणी देते हैं । वे लिखें नहीं तो उनसे बातचीत करके भेंटवार्ता प्रस्तुत की जा सकती है । इन दिनों कारगिल में सशस्त्र घुसपैठ राष्ट्रीय समस्या का रूप धारण कर चुकी है । सभी जनसंचार- माध्यम, भूतपूर्व सेनापतियों और अन्य सामरिक विशेषज्ञों की राय अपने पाठकों और श्रोताओं तक पहुंचाना चाहते हैं ।

पाठकों के स्वास्थ्य, व्यक्तिगत संबन्धों आदि से जुड़ी समस्याओं या जिज्ञासाओं का समाधान करने वाले स्तंभों के लिए वैद्य, चिकित्सक और मनोविज्ञानी को अनुबंधित किया जाता है । इसी प्रकार कृषि, भविष्य (ज्योतिषीय) आदि क्षेत्रों में भी किया जाता है ।

17.3.4 फीचर समितियां

'भाषा' और 'वार्ता ' संवाद समितियों के अलावा अनेक संस्थाएं हैं जो फीचर और लेख सेवा चलाती हैं । कई समाचारपत्र प्रसार संख्या अधिक होने के बावजूद इन्हीं के द्वारा प्रेषित लेख और फीचर छापते हैं । कुछ तो अंग्रेजी स्तंभकारों की रचनाओं के अनुवाद छापने में विश्वास करते हैं क्योंकि वे कम दाम में उपलब्ध हो जाते हैं ।

17.3.5 पाठकों से प्राप्त सामग्री

संपादक के नाम आए पत्रों और नागरिक सुविधाओं से संबन्धित शिकायती पत्रों को छापने की परंपरा पुरानी है । पाठकों से जुड़ने के लिए किसी विषय पर उनकी प्रतिक्रिया आमंत्रित करना 'पाठकों के पत्र' का विस्तार ही है ।

कई पत्रिकाएं पाठकों से अपने स्तंभों के लिए रचनाएं आमंत्रित करती हैं । रचनाएं क्या जीवन के अनुभव या यादगार प्रसंग कहिए । स्त्रियोपयोगी पत्रिकाओं में 'मंडप के नीचे,' 'पहला प्यार', पाती प्रेम भरी, या 'सरिता' में बच्चों के मुख से, ' यह भी खूब रही', ' पासा पलट गया' जैसे स्तंभ पाठकों से प्राप्त सामग्री पर आधारित हैं । जीवन की अंतरंग झकियां और झलकियां प्रस्तुत करने का यह नायाब तरीका है ।

पाठकों का उपयोग महत्वपूर्ण सर्वेक्षणों के लिए भी किया जा सकता है । एक बार 'दिनमान' ने गांधी की प्रतिमाओं की दशा के बारे में पाठकों से लिखने को कहा । सैंकड़ों स्थानों से जानकारी आई-अधिकतर प्रतिमाएं टूटी, गंदी या उपेक्षित दशा में थीं । यह बहुत व्यापक और प्रामाणिक सर्वेक्षण साबित हुआ । इस तरह के और प्रयोग होते रहने चाहिए ।

17.4 समाचारपत्रों में स्तंभ- लेखन

समाचारपत्रों का पहला दायित्व है पास-पड़ौस की, देश-विदेश की घटनाओं की जानकारी देना । उनसे संबंधित समाचार अखबार में सबसे अधिक स्थान पाते हैं । लेकिन समाचारपत्र का इतना ही महत्वपूर्ण दायित्व है उनके तात्कालिक और संभावित प्रभाव की जानकारी देना, विश्लेषण करना, समाचारों का अर्थ खोलना, परस्पर विरोधी खबरों का भ्रमजाल तोड़ना और विभिन्न आर्थिक-राजनैतिक वर्गो के आग्रहों के बीच युक्तिसंगत दृष्टिकोण के प्रतिपादन में सहायक बनाना । इसे विचार पक्ष कह सकते हैं । इस पक्ष को समाहित किए बिना कोई अखबार समाचारपत्र नहीं कहला सकता ।

17.4.1 विचार-प्रधान पृष्ठ

प्रथम पृष्ठ समाचारपत्र का चेहरा है तो संपादकीय पृष्ठ उसका अंतर्मन । यह पृष्ठ संपादकीय नीति, दृष्टिकोण और रुझान तथा समाज के प्रति संवेदनशीलता का दर्पण है । इस पृष्ठ के स्थायी स्तंभ हैं -संपादकीय, सम -सामयिक विषय पर एक प्रमुख विचारोत्तेजक या विश्लेषणात्मक लेख, व्यंग्य रचना और संपादक के नाम पाठकों के पत्र । इस पृष्ठ पर प्रकाशित सभी रचनाएं विचार-प्रधान होती है ।

संपादकीय संपादक या/और संपादकीय विभाग के वरिष्ठ सदस्यों द्वारा लिखे गए संपादकीय समाचारपत्र की नीति, चिंतन और दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं । इन्हें तथ्यपरक, संतुलित, लोकतंत्री मूल्यों से प्रेरित होना चाहिए । कम शब्दों में नीर- क्षी-विवेक के साथ लिखे गए संपादकीयों के साथ अपेक्षा की जाती है कि वे सार्वजनिक हित का ध्यान रखते हुए अपनी बात कहेंगे ।

हर पत्र संपादकीय की शैली और अंदाजेबयां अलग होता है । कोई संपादकीय तथ्यों का विश्लेषण करता है तो कोई प्रवृत्ति का । उसमें दोनों तत्व हो सकते हैं । वह चाहे जैसे लिखा जाए ।

उसे तर्कसंगत और दृष्टि-संपन्न होना चाहिए । पाठकों के सर्वेक्षण के आधार पर माना जाता है कि मुश्किल से पांच-सात प्रतिशत पाठक ही संपादकीय पढ़ते हैं -वे ही जो किसी मुद्दे पर समाचारपत्र

की राय जानना चाहते हैं । शेष या तो अपनी राय को अधिक महत्व देते हैं या संपादकीय पढ़ने का समय उनके पास नहीं होता ।

17.4.2 अग्रलेख और अन्य स्तंभ

संपादकीय पृष्ठ पर प्रकाशित प्रमुख लेख समसामयिक समस्या पर होता है जो संपादकीय विभाग अथवा स्तंभकारों या विशेषज्ञों द्वारा लिखा गया होता है । यह आवश्यक नहीं कि प्रमुख लेख समाचारपत्र की नीति के सर्वथा अनुकूल हो । यह ज्वलंत समस्याओं, उलझे हुए मुद्दों और उनसे जुड़ी प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है -गहराई में उतरता है । वह पाठकों को ऐसा बहुत-कुछ देता है जो समाचार अथवा संपादकीय नहीं दे पाते -वैचारिक सामग्री, विश्लेषण, भूले-बिसरे आवश्यक संदर्भ आदि वह भी सरल, रोचक अथवा पांडित्यपूर्ण शैली में जो विषय और लेखक पर निर्भर करती है ।

इस स्तंभ के लिए कोई भी विषय वर्जित नहीं है । उसे समसामयिक और महत्वपूर्ण होना चाहिए । प्रमुख लेख लिखने के इच्छुक वे ही व्यक्ति सफल हो सकते हैं जो चुने गए विषय के गहरे जानकार हैं और उस क्षेत्र की अद्यतन घटनाओं और प्रवृत्तियों से परिचित हैं । अपने विषय की पुस्तकें और पत्रिकाएं पढ़ने से तथ्य और जानकारियां मिल जाती हैं । लेखक यदि अपने विषय से संबंधित मुद्दों की कतरनें रखे अथवा एक रजिस्टर में घटनाक्रम और नई जानकारी दर्ज करता चले तो संदर्भ खोजने के लिए भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ती । किन्तु इतना काफी नहीं है । विषय या समस्या के भीतर पैठने के लिए चिंतन-मनन और उससे जुड़े प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास भी किया जाता रहे तो स्तंभकार अच्छा लेख तैयार करने में समर्थ हो सकता है ।

शैली भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । शब्दों और पदों का चुनाव स्तंभकार की शब्द-संपदा पर भी निर्भर करता है और स्वभाव पर भी । यथासंभव छोटे वाक्य लिखें । वाक्य बड़े हों तो भी वाक्य रचना सरल होनी चाहिए । भाषा में प्रवाह और रवानगी होनी चाहिए वरना पाठक कुछ पंक्तियों के इसलिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाए तो बहुत सहूलियत हो जाती है -

(1) पहले तय कर लें कि आप अपने लेख में क्या कहना चाहते हैं, क्या प्रतिपादित करना या दिखाना चाहते हैं ।

(2) आरंभ, मध्य और अंत (समापन) की रूपरेखा मन में बना लें अथवा कागज पर लिख कर।

(3) संपादक और पाठक की लेख में दिलचस्पी तभी होगी जब आप कोई नई बात या नए ढंग से कोई बात कह या प्रस्तुत कर पाएंगे । निजी अनुभव या परिवेश का चित्रण भी लेख को जानदार बना सकता है ।

(4) जानकारी और तर्क इस क्रम से पिरोए जाएं कि पाक उसे सहज रूप से पढ़ता चला जाए ।

(5) कई लेखक अपना लेख चुभते हुए सटीक वाक्य उद्धरण या उपाख्यान से आरंभ करते हैं और अंत तक पाठक को बांधे रखते हैं ।

(6) केवल तथ्यों और तर्कों के संयोजन से अच्छा लेख नहीं बनता । अगर स्तंभकार अपने विषय में डूबकर, गहरे उतरकर पूरे मनोयोग से लेखनी उठाएं तो उसकी अंतर्निहित प्रतिमा को निखरने का अवसर मिलता है । व्यक्तित्व की छाप से लेख की पहचान बनती है ।

(7) लेख को दुबारा पढ़ने और यथा आवश्यक्ता सुधार-संशोधन से उसमें निखार आ जाता है ।

लेखन के नियम एक-जैसे ही होते हैं । आपको कोई भी स्तम्भ लिखना हो, उस विषय की जानकारी होनी आवश्यक है । हो सके तो उसी के अनुरूप शैली का अनुसरण किया जाए । हर विषय की शब्दावली और प्रकृति अलग होती है। असल बात यह है कि लेखक की उस विषय या मुद्दे के बारे में क्या दृष्टि है । बाकी बातें उसी के अनुसार तय होती जाती हैं ।

पाठकों के पत्र संपादक के नाम आये पाठकों के पत्र पाठकों के ही होते हैं । लेकिन उनके चयन और संशोधन में स्तंभ-लेखन जैसी सावधानी, प्रौढ़ता, संयम की आवश्यकता होती है । कभी- कभी भाषा-व्याकरण दोष अथवा स्थानाभाव के कारण इतनी कांट-छांट करनी होती है कि समाचार की तरह उनका पुनर्लेखन आवश्यक हो जाता है ।

प्रमुख लेख अगर बुद्धिजीवियों का मंच है तो पाठकों के पत्र का स्तंभ सार्वजनिक मंच है जिसमें आम पाक की मनोभावनाएं व्यक्त होती हैं । वह सरकार, अखबार, समाज, न्याय- अन्याय सभी के बारे में अपनी राय व्यक्ति करता है जिसका यथोचित सम्मान होना चाहिए । इसलिए संपादकीय विभाग के किसी वरिष्ठ सदस्य को इस स्तंभ की जिम्मेदारी सौंपी जाती है ।

17.4.3 विशेष आयोजन

जन-जीवन के विविध क्षेत्रों से जुड़े मसलो की गहराई से जांच -पड़ताल करने, विशेषज्ञों की राय देने के लिए कई समाचारपत्र 'फोकस' या किसी अन्य नाम से पूरा पृष्ठ या उसका काफी बड़ा भाग किसी ज्वलंत प्रश्न या समस्या को समर्पित कर देते हैं । कुछ अखबार 'भेंटवार्ता' या 'बातचीत' का स्तंभ भी कभी नियमित रूप से या यदा-क्या चलाते हैं । यह पृष्ठ या स्तंभ भी विचार-प्रधान होता है, जिसमें विषय के विभिन्न पक्षों का या विभिन्न लेखकों द्वारा विश्लेषण होता है । इनके लिए भी उसी तरह तैयारी की जाती है जैसे कि संपादकीय पृष्ठ के प्रमुख या अन्य लेखों के लिए ।

सम्पादक का निजी स्तंभ : कई संपादक रविवार के संस्करण में, जिस देन संपादकीय नहीं होता, संपादकीय के अनुशासन में न बंधकर अपनी अनुभव यात्रा, मौजूदा परिस्थितियों पर अपनी प्रतिक्रिया पाठकों तक पहुंचाता है । जनसत्ता में प्रभाष जोशी वर्षों से 'कागद कारे' स्तंभ चला रहे हैं । दैनिक हिन्दुस्तान के संपादक 'प्रसंगश:' लिख रहे हैं ।

अंग्रेजी के हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक वी. एन. नारायणन का 'म्यूजिंग्स' नामक स्तंभ हर रविवार को छपता है । इसी अखबार के पूर्व संपादक खुशवंत सिंह भी ' मैलिस टुवर्ड्स नन' स्तंभ चलाते थे । उसका उद्देश्य मनोरंजन और चुहलबाजी था । स्वतंत्र पत्रकार के रूप में उनका यह स्तंभ अंग्रेजी और हिन्दी के अखबारों में स्वाद बदलने के लिए आज भी छपता है ।

संपादक इस स्तंभ को कितना गरिमामय, प्रासंगिक और रुचिकर बनाए रखता है, यह उसकी अपनी क्षमता और लेखन-कौशल पर निर्भर करता है ।

17.4.4 रविवारीय और फीचर परिशिष्ट

रविवारीय परिशिष्ट की परम्परा बहुत पुरानी है । अब उसका स्वरूप बदल गया है -तमाम नए स्तंभ जुड़ गए हैं और परिवार के हर सदस्य के लिए कुछ न कुछ सामग्री देने का प्रयास किया जाता है । यहां तक कि कविता, कहानी भी । वे रंगीन होने लगे हैं । पाठकों को आकर्षित करने और उनकी रुचि के विषयों, खासकर सिनेमा से जुड़ी हस्तियों की तस्वीरें, उनके प्रेम-प्रसंगों की सची- झूठी

खबरों और बयानों के अलावा फैशन, सौंदर्य या पेशों और व्यवसायों से संबंधित आलेख और जानकारी देने का रिवाज हो गया है ।

रविवारीय परिशिष्ट के प्रथम पृष्ठ पर सम-सामयिक विषय पर फीचरनुमा लेख होता है, क्योंकि इसके लिए संपादकीय पृष्ठ की तरह स्थान का बंधन नहीं होता । इसलिए अधिक व्यापक फलक को समेटते हुए सरस शैली के लेख दिए जाते हैं और उनके साथ चित्र भी ।

रविवारीय परिशिष्ट और फीचर पृष्ठों में वह सब जानकारी और स्तंभ समाहित किए जाते हैं जो पहले पत्रिकाओं के लिए छोड़ दिए जाते थे ।

17.5 नियतकालिक पत्रिकाएं

समाचारपत्रों का साम्राज्य फैलता जा रहा है । इसके बावजूद नियतकालिक पत्रिकाओं की उपयोगिता बनी हुई है । कुछ वर्ग या विषय की पत्रिकाओं की प्रसार संख्या तो लाखों में पहुंचगईं है क्योंकि वे पाठकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं । पिछले बीस वर्षो में पत्रिकाओं की दुनिया एकदम बदल गई है जिसके कई कारण हैं ।

दैनिक समाचारपत्र जो रोज निकलते हैं, पास-पडौस के समाचार देते हैं । वे अब जीवन के सभी पक्षों से जुड़े समाचार देते हैं, शिक्षित व्यक्तियों और परिवारों के जीवन के हिस्से बन गए हैं । समाचार रेडियो और दूरदर्शन से भी मिल जाते हैं । इसलिए समाचारों का विश्लेषण करने वाली पत्रिकाओं, दिनमान, रविवार, हिन्दी ब्लिटज, हिन्दी करेंट आदि के दिन लद गए । सामान्य रुचि की पत्रिकाएं जैसे साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग भी बंद हो गई । पारिवारिक पत्रिका 'सरिता' की पहुंच भी पहले जैसी नहीं रह गई है ।

शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण अब स्त्रियां बड़े पैमाने पर काम करने लगी हैं । इसलिए उनकी दिलचस्पी की पत्रिकाओं की संख्या और प्रसार संख्या हर भाषा में बढ़ी है । हिन्दी में गृहशोभा, मनोरमा, गृहलक्ष्मी, मेरी सहेली आदि हैं । स्वास्थ्य संबन्धी पत्रिकाओं का विकास और विस्तार हुआ है । पूंजी निवेश और कंप्यूटर संबन्धी पत्रिकाएं भी बाजार में आ गई हैं । सिनेमा की फिल्मी दुनिया और फिल्मी कलियां पहले से निकल रही हैं ।

17.5.1 समाचार पत्रिकाएं

समाचार पत्रिकाओं की सार्थकता और उपयोगिता बनी हुई है । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'टाइम' और 'न्यूज वीक' तथा अन्य पत्रिकाओं, ब्रिटेन का साप्ताहिक इकनामिस्ट, हांगकांग का 'फारईस्टर्न इकॉनामिक रिव्यू' इसके प्रमाण हैं । हिन्दी में भी ' इंडिया टुडे तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित संस्करणों की लोकप्रियता, इलाहाबाद की 'माया' और अन्य पत्रिकाओं की मौजूदगी से उनकी उपयोगिता और आवश्यकता सिद्ध होती है । कई समाचार और विचार आधारित पत्रिकाएं निकलती है, लेकिन उनकी पहुंच सीमित है । जैसे राजनीति संवाद परिक्रमा जो अपने को राजनैतिक समाचारों तक सीमित रखती है । कुछ विचार प्रधान पत्रिकाएं है जो विशिष्ट वर्ग के पाठकों के ही पसंद आती हैं । सामान्य पाठक तक पहुंचने की सामर्थ्य उनमें नहीं है । इस कारण उनका निजी महत्व कम नहीं होता यह बात अपनी जगह सही है ।

समाचार साप्ताहिक या पाक्षिक इसलिए पड़े जाते हैं कि वे सप्ताह या पखवाड़े भर के मुख्य समाचारों को, चाहे वे प्रादेशिक या राष्ट्रीय महत्व के हों, अथवा विज्ञान, खेल, सिनेमा, कला-संस्कृति से संबंधित, सार रूप में या विस्तृत विश्लेषण के साथ एक जगह पढ़ सकते हैं । कामकाजी और सामाजिक जीवन में आपाधापी बढ़ जाने के कारण लोग समाचारपत्र को अधिक समय नहीं दे पाते । पत्रिका हफ्ते भर फुरसत के समय कभी भी पढ़ी जा सकती है जो एक नया दृष्टिकोण, कुछ नई जानकारी भी परोसती है ।

इन कारणों से उसके स्तंभों के लिए ऐसी लेखन शैली अपनाई जाती है जो कार्य-कारण संबंध को परिप्रेक्ष्य और तात्कालिक तथा दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य को उजागर करें । उद्धरण, चित्र, नक्शे ओर एक अलग नजरिया इस वर्ग के प्रकाशनों को पाठकोपयोगी बनाता है । लेखकों और स्तंभकारों को अपना आलेख तैयार करने और जानकारी को संयोजित करने का अधिक समय मिल जाता है ।

17.5.2 इंडिया टुडे

विषयों के चुनाव, लेखन शैली और अंदाजेबयां की दृष्टि से 'इंडिया टुडे' साप्ताहिक (9 जून, 1999) से कुछ अंश नमूने के तौर पर प्रस्तुत हैं

'नुक्ता चीनी' 'स्तंभ में स्वपनदास गुहा की टिप्पणी :

ये भी वही अम्मा के चेले

कांग्रेसियों की कतार सोनिया के सामने नतशीश हो रही है

यह दलील देने के लिए 10, जनपथ का तलुएचाटु मजमेबाज होना जरूरी नहीं है कि किसी राजनैतिक पार्टी को अपनी पसंद का नेता चुनने का पूरा अधिकार है । इसी तरह यह बताने के लिए किसी का कट्टर विदेशी द्वेषी होना जरूरी नहीं है कि पिछले हफ्ते कांग्रेस महासमिति की बैठक के बाद कांग्रेस तेजी से अन्ना द्रमुक का राष्ट्रीय रूप अख्तियार कर रही है ।

यह समानता बेवजह नहीं है । बेचारे ए. तंबीदुरै पर सर्वोच्च नेत्री, जे. जयललिता के सामने दंडवत् होने पर ताने कसे गए और चेन्नै के पोएस गार्डन के जरिए अटल बिहारी वाजपेयी सरकार को इस्तीफा भेजने के लिए निरीह आर. के. कुमार की खिल्ली उड़ाई गई जो दिल्ली के अकबर रोड पर चले नौ दिन के तमाशे के दौरान वंश की देवी के सामने नतशीश थे? या उन तीन कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों को कैसे देखना चाहिए जिनके कथित त्यागपत्र राजभवन नहीं, बल्कि 10, जनपथ पहुंच गए घुटने टेकने से लेकर आत्मदाह की नौटंकियों को देखकर लगता है कि कांग्रेस पर अन्ना प्रमुख की संस्कृति हावी हो रही है । इमरजेसी की तारीफ में डी. के. बरूआ ने कहा, ' 'इंदिरा ही भारत है '', बोफोर्स विवाद के चरम समय पर कल्पनाथ का कथन है, ' 'उन्होंने (सोनिया ने) इतिहास से विवाह रचाया और उन्हें ऐतिहासिक भूमिका निभानी है । ''

इस पर दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने जड़ा 'गरीब लोग उन्हें इंदिरा गांधी का रूप मानने लगे है ।

'प्रदेश' के अंतर्गत नरेन्द्र कुमार सिंह लिखित 'मालवा का मस्तान' शीर्षक संवाद का आरंभिक अंश

अब्दुल रहीम छिपा उर्फ बुंदले उस्ताद के बेटे मुहम्मद शफी ने शायद कभी सोचा भी नहीं होगा कि उसे ऐसी मुश्किल घड़ियों का सामना करना पड़ेगा । उसके करामाती बाप ने बहुत सावधानी और

जतन से स्वेज नहर के इस पार मादक पदार्थों के व्यापार में अपना मशहूर ब्रांड 'चांद और सितारा' स्थापित किया था । अवैध अफीम का यह ब्रांड शुद्धता का प्रतीक माना जाता था । लेकिन शफी अपने पिता की कामयाबी से संतुष्ट नहीं था । उसे लगा कि उत्पाद को परिष्कृत करके बेचने में ज्यादा मुनाफा है । लिहाजा उसने हेरोइन बनाना शुरू कर दिया । वह गुणवत्ता के लिहाज से उसका उत्पाद दुनिया के कुख्यात अवैध अफीम क्षेत्रों गोल्डन क्रीसेंट, गोल्डन ट्रैंगल में तस्करी होने वाले मादक पदार्थो की श्रेणी में आ गया ।

एक ओर शफी ने सीधे अंतराष्ट्रीय संबंध बनाए तो दूसरी ओर अपने तस्कर कुनबे की तीसरी पीढ़ी यानी अपने बेटों को होटल , खनन और कारोबार जैसे क्षेत्रों में पांव पसारने के लिए प्रेरित किया । उसने विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं को भी साधा, उन्हें पैदा दिया, चुनाव के दौरान उनकी मदद की और उनमें से कुछेक के साथ कारोबार में साझेदारी कर ली और इस प्रक्रिया में इतना सम्मान हासिल कर लिया कि उनमें से एक ने मध्य प्रदेश विधानसभा में उसे 'राजनैतिक कार्यकर्त्ता' करार दिया । मादक पदार्थ विभाग के उपायुक्त विजय कुमार कहते हैं, "वह मंदसौर के हाजी मस्तान के रूप में जाना जाता है " । उसे कोई हाथ तक नहीं लगा सकता । मध्य प्रदेश के मालवा और राजस्थान के मेवाड़ के अफीम उत्पादक इलाकों में मादक पदार्थो के नाजायज धंधे से हर साल तकरीबन 300 करोड़ रु. की काली कमाई होती है ।

लेकिन वक्त बदल गया है शफी अपने बेटे और एक भाई के साथ फरार है । मादक पदार्थों से जुड़े अपराधों की सुनवाई के लिए बनी मंदसौर की विशेष अदालत ने उन्हें 'घोषित अपराधी' करार दिया हे और केंद्रीय मादक पदार्थ ब्यूरो (सीबीएन) ने उनकी गिरफ्तारी पर अच्छे-खासे इनाम की घोषणा की है ।

इस समाचार साप्ताहिक की आवरण कथा 'कारगिल का संघर्ष' है । इसमें मुख्य आलेख कारगिल भीरू उसके प्रतिनिधियों मनोज और हरिंदर बवेजा ने भेजा है और नक्शे के अलावा तीन अन्य संवाद भी हैं जिनसे कि पाठक को मोर्चे पर मौजूदा स्थिति, पाकिस्तान की कूटनीति, भारतीय सैनिकों की मनोदशा और पाकिस्तानियों की प्रतिक्रिया की जानकारी मिल जाए । समाचारपत्रों में कारगिल को लेकर छपने वाले समाचार, लेख और टिप्पणियों का पारायण करने वाले पाठक को हो सकता है कि नया न मिले, लेकिन कितने पाक समाचार का बिना नागा अनुशीलन कर पाए होंगे । उनके लिए कायदे से एक जगह संयोजित आवरण कथा निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होगी ।

पत्रिकाएं पर्यावरण और जीवट से संबंधित चुने हुए ऐसे समाचार देकर संचास्माध्यम होने का धर्म निभा सकती हैं जो राजनीति के घटाटोप में उलझे समाचारपत्रों में उपेक्षित रह जाते हैं । स्थानीय पत्रों में अलवर (राजस्थान) जिले में जलग्रहण क्षेत्र के विकास की कहानी छपी होगी । लेकिन आवश्यक नहीं कि अन्य हिन्दी भाषी क्षेत्रों में यह खबर पहुंची हो । 'विकास' स्तंभ के अधीन उदय साकार और रोहित परिहार का आलेख गैर सरकारी संगठन और स्थानीय लोगों की अकर्मण्यता पर प्रकाश डालता है ।

अभी सुबह के दस भी नहीं बजे हैं और भाओटा कोल्यारा गांव में कीकर के पेड़ों की विरल छांह में भी पारा 40 डिग्री से ऊपर पहुंच चुका है । तपते राजस्थान के अलवर जिले के इस गांव के खुले इलाके में धनोया गुजर दाढ़ी बनाकर नलकूप के पाइप से गिरती पानी की धार में क्यों की तरह

छपाक से कूद पड़ते हैं । बाल्टियों से पानी अपने ऊपर उड़ेलते हुए वे कहते हैं "पानी में मुझे बड़ा मजा आता है ।"

कुछ चीजें तो जीवन में आम हो गई हैं । मसलन, लोग थाली में खाना खाते हैं और बाल्टी में पानी रखा जाता है । क्या सचमुच? 65 वर्षीय धनोया और उनके निर्धन परिवार ने आजादी के बाद से लेकर इस दशक से पहले तक बाल्टी के बारे में जाना-सुना तक नहीं । सच तो यह है कि यहां के लोगों को न तो कभी बाल्टी भर पानी मिलने की नौबत आई, न उनके पास इतना पैसा था कि बाल्टी भर पानी मिलने की नौबत आए, न उनके पास इतना पैसा था कि बाल्टी खरीद सकें । पानी के बिना जैसे सब सूना था । ओढ़ने को रजाई तक न थी । अब? धनोया कहते हैं. "अब हम गद्दे पर सोते हैं ।"

आखिर भाओटा कोल्यारा के लोगों के लिए गद्दे और बाल्टियां इतनी अहमियत क्यों रखते हैं, यह समझाने के लिए धनोया आजादी के पहले के उन दिनों की ओर ले जाते हैं, जब गांव के चारों ओर फैली अरावली पर्वतमाला के जंगलों का सफाया किया गया था । इससे यहां की खेती और अर्थव्यवस्था तबाह हो गई । अमीरों ने पैसा लगाकर कुआ खुदवाया पर पानी नदारद था । परेशान गांववासी शहरों में चले गए । खुद धनोया सालों तक कस्बों में गेहूं और धान के बोरे ढोते रहे । हालात ने 1988 में मोड़ लेना शुरू किया; धनोया ने सुना कि स्वयंसेवी संस्था तरुण भारत संघ (टीबीएस) के कार्यकर्त्ता गांवों के लोगों को अपने पुराने जलग्रहण स्रोतों को पुनर्जीवित और पुख्ता करने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित कर रहे हैं । धनोया बताते हैं," अचानक मुझे एहसास हुआ कि हमारे बुरे दिनों की शुरुआत गांव का तालाब सूखने के साथ हुई थी ।" उसके बाद तो किसी ने पीछे मुड़कर नहीं देखा..।

बोध प्रश्न- 2

1. दैनिक समाचारपत्र के प्रमुख समाचार और पत्रिका (Magazine) में प्रकाशित उसी समाचार के स्वरूप की तुलना कीजिए ।
2. समाचार आधारित पत्रिकाएं क्यों पढ़ी जाती हैं बावजूद इसके कि अन्य स्रोतों से समाचार मिल जाते हैं ।
3. 'पत्रिकाओं के आलेख अधिक रोचक शैली में लिखे जाते हैं ' क्या आप इस कथन से सहमत हैं।

17.6 सारांश

साक्षरता और शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ- साथ तकनीकी प्रगति के परिणाम स्वरूप जनसंचार- माध्यमों की पहुंच बहुत बढ़ गई है । समाचारपत्र समाचारों और समाचार- आधारित फीचरों के अलावा जीवन के हर पहलू के बारे में जानकारी देने लगे हैं । यही सामाजिक जीवन की सभी, यहां तक कि पारिवारिक और व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए विशेषज्ञों की राय भी प्रकाशित की जाने लगी है । समाचारपत्रों ने वे सभी स्तंभ अपना लिए हैं जो पहले केवल पत्रिकाओं के लिए पयोगी माने जाते थे इसकी वजह से सामान्य रुचि की पत्रिकाओं के दिन लद गए हैं ।

समाचारपत्रों की व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के चलते पाठकों को आकर्षित करने की कोशिश के कारण स्तंभों की संख्या बढ़ी है और रंगीन फीचर पृष्ठों का सिलसिला आरंभ हुआ है । रंगीन टेलीविजन प्रसारण शुरू होने के बाद रंगीन विज्ञापन पाने की गरज से हर समर्थ समाचारपत्र रंगीन पृष्ठ छापने

का प्रयास करता है और पाठकों को मनोरंजक सामग्री देता है । विज्ञापनदाता भी उसी जन-माध्यम को या पत्र- पत्रिका को प्राथमिकता देता है जिसकी पहुंच पाठकों और श्रोता-दर्शकों तक अधिक है ।

एक प्रकार की पत्रिकाओं का दायरा सिकुड़ा तो अन्य प्रकार की पत्रिकाएं बाजार मे आ गई । अलग-अलग पाठक वर्ग के लिए अलग-अलग विषयों की पत्रिकाएं निकलने लगी हैं । जैसे स्त्रियोपयोगी पत्रिकाएं । स्वास्थ्य, सिनेमा, क्रिकेट की पत्रिकाएं । इनमें भी स्तंभ होते हैं ।

17.7 शब्दावली

स्तंभ : संपादकीय विभाग हारा आयोजित पत्र-पत्रिकाओं में पठनीय सामग्री की प्रकृति अथवा विषय बताने के लिए निर्धारित नाम, जैसे संपादकीय, अर्थजगत, विश्व परिक्रमा, व्यंग्य आदि । रेडियो और टेलीविजन के कार्यक्रमों के नाम वही भूमिका निभाते हैं जो अखबारों में स्तंभ ।

स्तंभकार : नियमित रूप से किसी स्तंभ-विशेष या विषय पर नियमित रूप से या अक्सर लिखने वाला पत्रकार, लेखक, साहित्यकार अथवा विशेषज्ञ । वह संपादकीय विभाग का सदस्य भी हो सकता है और स्वतंत्र पत्रकार भी ।

रविवारीय परिशिष्ट : समाचारपत्र के साथ लेख, फीचर कहानी, कार्टून आदि समाहित करने वाला विशिष्ट जिसे यथा संभव रोचक बनाने का प्रयास किया जाता है ।

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. फ्रीलांसर एंड स्टाफ राइटर : न्यूजपेपर आर्टिकल्स. -विलियम एल. रिवर्स
2. समाचार, फीचर लेखन और एवं संपादन कला - डी. हरिमोहन
3. मांस कम्यूनिकेशन एंड जर्नलिज्म इन इंडिया-डी. एस. मेहता

17.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. दिनमान, रविवार, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान सरीखी लोकप्रिय पत्रिकाओं के अवसान के कारण बताइए ।
2. दैनिक समाचारपत्रों में जीवन के सभी पहलुओं से संबंधित स्तंभ होते हैं । अपने क्षेत्र या प्रदेश के प्रमुख पत्रों का अध्ययन करके बताएं ।
3. अपने समाचारपत्र के समाचार और विचार प्रधान स्तंभों की समीक्षा कीजिए ।

इकाई 18 व्यंग्य-लेखन

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 व्युत्पत्ति और परिभाषा

18.3 व्यंग्य के प्रेरक तत्व

18.4 व्यंग्य के विविध रूप

18.4.1 व्यंग्य निबन्ध

18.4.2 व्यंग्य कथा

18.4.3 व्यंग्य उपन्यास

18.4.4 व्यंग्य नाटक

18.4.5 व्यंग्य स्तंभ

18.5 व्यंग्य की भाषा

18.6 व्यंग्य का शिल्प

18.6.1 व्यंग्य के माध्यम

18.6.2 शैलियां

18.7 जनसंचार-माध्यमों में व्यंग्य-लेखन का स्वरूप और महत्व

18.8 सारांश

18.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.10 निबंधात्मक प्रश्न

18.0 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप

- व्यंग्य की शाब्दिक व्युत्पत्ति और परिभाषा से परिचित हो जाएंगे ।
- व्यंग्य के प्रेरक तत्वों का वर्णन कर सकेंगे ।
- हास्य व्यंग्य आदि में अंतर समझ जाएंगे ।
- व्यंग्य के विभिन्न रूपों से साक्षात्कार कर लेंगे ।
- व्यंग्य की भाषा शैली के जानकार हो जाएंगे ।
- जनसंचार-माध्यमों में व्यंग्य-लेखन के स्वरूप और महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे ।

18.1 प्रस्तावना

व्यंग्य-लेखन अपने समय से जूझते रहने की निरंतर प्रक्रिया का परिणाम है । विद्रोही तेवर वाले इस लेखन के जरिए वर्तमान, समकालीन परिदृश्य को सामने लाने के लिए गहरी पकड़ और रचनात्मक आकुलता की जरूरत होती है । यह नकारात्मक लेखन नहीं है, बल्कि अपने समय के यथार्थ

को इस तरह प्रस्तुत करने वाला लेखन है कि सकारात्मक पक्ष मजबूत हो सके । व्यंग्य चूंकि अपने भीतर एक शाब्दिक आकर्षण भी रखता है तथा इसका शिल्प पाठकीय दिलचस्पी के सभी आवश्यक तत्वों से युक्त होता है इसलिए जनता और विचार के बीच यह सेतु का कार्य करता है । एक समय में कुछ लोगों दारा व्यंग्य को साहित्यिक दर्जे की पत्रकारिता कहकर खारिज किया जाता रहा है । कहना न होगा कि यह साहित्यिक पत्रकारिता एक ऐसा सशक्त साहित्यिक रूप बनकर उभरी है जो संवादहीनता तोड़ने का हथियार बन सकती है । जनसंचार के माध्यम जब सेक्स, हिंसा तथा पतनशील सामाजिक मूल्यों के बीच उलझे हुए हों तब व्यंग्य की भूमिका और महत्वपूर्ण हो जाती है । तीव्रतर हो गए जीवन की तेजी से उपजती जटिल विसंगतियों पर तत्काल और लगातार हस्तक्षेप करने तथा सामाजिक मोर्चे पर सार्वजनिक जीवन में सक्रिय लोगों एवं व्यवस्था के प्रति जन- भावना की अभिव्यक्ति और दृष्टिकोण की स्पष्टता सार्थक व्यंग्य लेखन की पहली शर्त है, इसलिए व्यंग्य-लेखन सर्वाधिक प्रिय और कारगर विधा सिद्ध हुई है । जनसंचार माध्यम के जरिए न सिर्फ समकालीन जीवन की सच्ची समीक्षा प्रस्तुत कर सकते हैं बल्कि शैलीगत विशिष्टता के चलते जन- अपेक्षाओं का सही चित्र भी प्रस्तुत करते हैं । व्यंग्य की यह क्षमता उसे परिवर्तनकामी जन-समूह का सार्थक अस्त्र बनाती है । यही उसका वास्तविक उद्देश्य भी है । समाचारपत्र-पत्रिकाओं में स्तंभों, संपादकीय अग्रलेखों तथा समाचार प्रस्तुतीकरण की शैलियों में लगातार प्रखर होती जा रही व्यंग्य- चेतना को एक सामाजिक लक्षण की तरह लिया जा सकता है ।

18.2 व्युत्पत्ति और परिभाषा

'व्यंग्य' संस्कृत भाषा का शब्द है जो 'वि' उपसर्ग एवं 'यत्' प्रत्यय में ' अज्ज' धातु लगाने से बना है । मुख्यत: इसका प्रयोग शब्द- शक्तियों के अंतर्गत ही हुआ है । हिन्दी कोषों में इसके जितने अर्थ मिलते हैं, वे भी इसी से संबद्ध है । एक शब्द 'व्यंग्योक्ति' भी मिलता है किंतु यहां 'व्यंग्यार्थ ' और लक्ष्य, गौण या सांकेतिक अर्थ से युक्त नहीं है । रामचन्द्र वर्मा ने व्यंग्य के संदर्भ में ताना या चुट्की का संकेत भी दिया है । उनके मानक हिन्दी कोष के पांचवे खंड में 'सटायर' शब्द के लिए ' व्यंग्य गीत' का भी उपयोग है । कुछ स्थानों पर तो 'व्यंग्य' की बजाय 'व्यंग' भी लिखा मिलता है । जयशंकर प्रसाद के नाटकों के में 'व्यंग' मुद्रित है, किन्तु सर्वमान्य प्रचलित शब्द के रूप में 'सटायर' का हिन्दी पर्याय 'व्यंग्य' ही प्रचलित है ।

ग्रीस में फलों की पहली फसल उतरने पर फलों की फसल को 'लैंकस' कहते हैं । पहली फसल से संबंधित स्वांग या नकल के रूप में ग्रामोत्सव के लिए 'सटायर' शब्द है । सटायर शब्द ग्रीक शब्द - SATRnS से संबंधित नहीं है जिसका अर्थ है अर्द्ध मानव या अर्द्ध पशु । अंग्रेजी शब्द सटायर, लैटिन के 'सैटूरा' से बना मालूम होता है, जिसका अर्थ होता है पूर्ण या भरा-पूरा । इसका प्रचलित अर्थ बाद में हुआ-विविध प्रकार की वस्तुओं का मिश्रण । एक प्रकार का सलाद भी 'सैटूरा कहलाता था । इस तरह 'सटायर' का पहला मौलिक अर्थ सर्वसाधारण की पसंद वाला, विविधतापूर्ण या ग्राम्यवृत्ति से (या अक्खड़ता) संपन्न लिया जा सकता है ।

चैम्बर्स डिक्शनरी में सटायर के लिए व्यंग्य, उपहास, व्यंग्यिका प्रयोग दिए गए हैं । संस्कृत साहित्य में व्यंग्य का उपयोग व्यंग्यार्थ के रूप में ही लिया गया है । तीन शब्द- शक्तियों -अमिधा, लक्षणा तथा व्यंजना में व्यंजना व्यंग्यार्थ से होता है । भोजदेव ने समस्त वाड़मय को तीन भागों में

बांटा- वक्रोक्ति, रसोक्ति तथा स्वभावोक्ति । दंडी ने वक्रोक्ति को वाणी का चमत्कारी रूप कहा है । कुंतक और आनंदवर्द्धन आदि विद्वान भी विक्रोक्ति तथा ध्वनि की महत्ता स्पष्ट करते हैं । वर्तमान में व्यंग्य परिवर्तन की कामना से किए गए ऐसे रचनात्मक प्रयास के रूप में जाना जाता है, जो प्रहारात्मक होने के बावजूद सकारात्मक होता है । अंतर्विरोधों, विरोधाभासों, विकृतियों तथा विडंबनाओं को उसके माध्यम से इस तरह प्रकट किया जाता है कि वास्तविक्लाएं उजागर हो सकें ।

डॉ. प्रभाकर माचवे के अनुसार 'जहां सामान्य से असामान्य हुआ, व्यंग्य आ गया ।' प्रसिद्ध व्यंग्यकार हॉरेज का कथन है कि वे हंसते-हंसते सत्य कथन करते हैं । हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए कहा है कि व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की रचना करता है, विसंगतियों मिथ्याचारों और पाखंडी का पर्दाफाश करता है । व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ठ उदाहरण होता है । शोषित के पक्ष तथा शोषक के विरुद्ध लेखन का यह हथियार मुख्यत: विसंगतियों को प्रकट करने का माध्यम बनता है ।किन्तु विसंगति यहां सापेक्ष शब्द है । अजातशत्रु ने इसके लिए उदाहरण का प्रयोग किया है । एक बेहद मोटा आदमी किसी कॉलेज गर्ल के लिए 'विसंगतिपरक' हास्य का उपादान भी हो सकता है, जबकि दूसरी कॉलेज गर्ल का पिता भी हो सकता ह । नास्तिकों के देश में मंदिर में घंटी बजाना या गंदा नाला बन चुकी गंगा में डुबकी लगाना भी हास्यास्पद हो सकता है । अर्थात् विसंगतियां व्यक्ति, स्थान या स्वभाव की हो सकती हैं । परन्तु कुछ गुण-दुर्गुण ऐसे होते हैं जो इन सबसे ऊपर मानवीय लक्षणों में आते हैं जैसे प्रेम, दया, विश्वास, ईमानदारी आदि । चूंकि समाज व्यवस्था बहुत जटिल होती है इसलिए स्थूल कारण तो हर कोई पक्ड़ लेता है लेकिन सूक्ष्म विसंगति पकड़ने के लिए विशेष दृष्टि की आवश्यकता होती है । जो रचनाकार इन विसंगतियों को गहरी दृष्टि से देख लेता है, वह गहरे व्यंग्य के साथ उन पर प्रहार कर सकता है । इस प्रकार व्यंग्य समाज में बेहतर परिवर्तन की आकांक्षाओं का प्रयोजन बन जाता है ।

'व्यंग्य' को हिन्दी में आमतौर पर अंग्रेजी के 'सटायर' शब्द के पर्याय के रूप में लिया गया हे । इसके कोशगत अर्थो को लेकर काफी भ्रम रहे हैं । डा. हरदेव बाहरी ने विद्यार्थी अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश में व्यंग्य के लिए 'सरकाज्म' तथा 'आइरनी' अंग्रेजी शब्द भी लिए हैं जबकि चैम्बर्स अंग्रेजी हिन्दी कोष में 'सटायर' के अर्थ उपहार, व्यंग्य, व्यंग्य रचना, व्यंग्य लेख तथा व्यंग्यिका शब्द है । 'सटायीरस्ट' के लिए व्यंग्यकार शब्द मान लिया गया है । 'आइरनी' के लिए व्यंग्यार्थ और विडंबना तथा 'विट' के लिए वाग्वैदग्ध्य और 'अमर' के लिए परिहास एवं विनोद शब्दों का प्रयोग होता है । यहीं 'सरकाज्य' के लिए 'कटूक्ति', 'व्यंग्शाख' तथा 'उपहास' अर्थ लिया गया है ।

डॉ. छविनाथ मिश्र के अनुसार जिसे अंग्रेजी में सटायर नाम से जाना जाता है वह विधा संस्कृत साहित्य में हास्य-व्यंग्य के नाम से प्रसिद्ध है । हास्य-व्यंग्य में हास्यात्मक और व्यंग्यात्मक दोनों स्थितियों का समावेश होता है । विक्रोक्ति, उपहास, कटाक्ष, उपालंभ, व्यंग्य आदि शब्द अलग- अलग स्थितियों में प्रयुक्त हुए हैं । भरतमुनि ने हास्य के भी छ भेद किए जो चेहरे, कंठ आदि की अवस्था, मुद्रा, ध्वनि आदि पर आधारित हैं । मूलत: व्यंग्य के लिए हास, उपहास, परिहास, पैरोडी, वक्रोक्ति, प्रहसन, उपालंभ, आक्षेप आदि सहयोगी हो सकते हैं, लेकिन इनमें सूक्ष्म अंतर है ।

कोई भी स्थिति ऐसी हो सकती है कि वह सामान्य से अलग हो और उसमें विद्रूप हो तो हास्य पैदा हो सकता है, किन्तु व्यंग्य हास्य के उस कारण में जाता है और उसके करुणा पक्ष को उद्घाटित

कर देता है । हास्य विकृति का रस लेकर वमन करता है, किन्तु व्यंग्य विकृति के विरुद्ध बौद्धिक प्रतिक्रिया के रूप में सामने आता है । डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी मानते हैं कि हास्य का उद्देश्य मनोरंजन करना है, व्यंग्य का उद्देश्य सुधार करना होता है ।

हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल तथा शरद जोशी ने अलग-अलग स्थानों पर हास्य को शुद्ध मनोरंजन या ठिठोली का साधन माना है जबकि व्यंग्य में सामाजिक चेतना को अनिवार्य कहा है । व्यंग्य में हास्य हो सकता है लेकिन हास्य में व्यंग्य हो, यह आवश्यक नहीं । किसी कुत्ते की पूंछ में पटाखे बांधकर उनके छूटने के बाद हास्यगत मनोरंजन हो सकता है, लेकिन उस कुत्ते की करुण स्थिति तथा ऐसे लोगों की मानसिकता जो इस हास्य का कारण बने हैं, व्यंग्य से ही समझी जा सकती है । व्यंग्य ऐसे मनोरंजन का प्रतिकार करेगा और अमानवीयता के विरुद्ध संकेत देगा । व्यंग्य परिवर्तन की अपेक्षा करता है । आस पास की जिंदगी और जीवन-मूल्यों पर उसकी पैनी दृष्टि होती है । उसमें सामाजिक चेतना का होना अनिवार्य है । व्यंग्य में आक्रोश होता है किंतु यदि वह आक्रोश शुद्ध कटाक्ष में बदल जाए तो अपना उद्देश्य खो देता है । ठीक इसके विपरीत व्यंग्य में विकृतियों का दर्शन हंसा सकता है किन्तु यदि पिटने वाले और पीटने वाले के बीच का अंतर समाप्त हो जाए तब भी व्यंग्य का उद्देश्य नष्ट हो जाता है । यही वजह है कि सामान्य चुटकुले -लतीफों की दुनिया में आदमी हंस सकता है लेकिन वे यदि व्यंग्य की सीमा में प्रवेश कर जाएं तो सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर सवाल खड़ा करने पर सशक्त टिप्पणी देने के माध्यम में बदल जाते हैं ।

18.3 व्यंग्य के प्रेरक तत्व

व्यंग्य में कल्पना या मनोरंजन का स्थान उस तरह नहीं है जिस तरह किसी दूसरे लेखन में हो सकता है । व्यंग्य का यथार्थ के साथ व्यवहार इस तरह होता है कि वह विसंगतियों को सामने ला सके । शोषण, अन्याय, स्वभाव का दोगलापन, अमानवीयता आदि की पहचान करके उसका ऐसा चित्रण किया जाए कि निर्मल मनुष्य और सुन्दर समाज बनाने में मदद मिल सके, यही उसका एकमात्र प्रयोजन होता है । इसलिए, जब भी कोई असंगति या अंतविरोध लेखक के सामने आता है तो वह प्रतिक्रिया में रचनात्मकता की धार तेज करता है । वह क्रांतधर्मी होता है, इसलिए उसे वे सब बातें प्रेरित करती हैं जो क्रांति के लिए आवश्यक हों । जैसे समाजवाद का नारा लगा या 'गरीबी हटाओ' का नारा लगा । लेकिन अर्थशास्त्रियों के विश्लेषण से पता चला कि इस नारे के बाद वास्तव में गरीबी का प्रतिशत बढ़ गया । गरीबों की हालत बिगड़ती गई और पूंजीपतियों के धन में तो वृद्धि हुई ही, अपसंस्कृति के वाहक वर्ग को पर्याप्त पोषण भी मिला । व्यंग्यकार की दृष्टि इस तथ्य पर जाएगी । वह राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत आदर्शों पर लगातार विश्लेषक की तरह नजर रखता है । सामाजिक-आर्थिक विषमताएं गहराई हैं, अन्याय और पाखंड भी बढ़ा है, कुछ शब्द तो अपने आप में ही व्यंग्य के प्रतिरूप बन गए है । जैसे 'नेता' या 'बोफोर्स ' या 'हवाला' । राजनीति अब सेवा नहीं, कैरियर है । आत्मा बेचकर इसमें पेशा करने वालों की भीड़ है । गांवों में विकास का जो पैसा जाता है, वह वास्तविक हकदारों तक पहुंचता नहीं है । सामाजिक स्तर पर नैतिकताओं के अर्थ बदल गए हैं । आर्थिक दौड़ ने पतनशीलता को प्रतियोगिता में बदल दिया है । सामाजिक चरित्रों में आए दोगलेपन से रिश्ते भी व्यापारवाद की चपेट में आए हैं । धर्म को पाखंडियों ने हथिया लिया है और धर्मस्थल उद्योग बन रहे हैं । कार्यालयों की अंदरूनी कार्य -व्यवस्था ऐसी है कि लोग रिश्वत को सेवा- शुल्क मानते हैं ।

'पुलिस की विनम्रता' हास्य और दुःख के लिए उपयोग किया जाने वाला मुहावरा बनकर रह गया है । यहां तक कि सर्वाधिक नैतिकता की उम्मीद जिन वर्गो से की जाती है, वे भी उपदेशों और नेतृत्व की चालबाजियों के शिकार है । न्याय प्रणाली में ऐसे तत्व दिखाई दिए हैं कि कुछ न्यायाधीश तक अपने कार्यों की वजह से व्यवस्था में संदेह बढ़ाने में सहायक हुए हैं । जब विसंगतियां इतनी ज्यादा बढ़ जाती हैं तो सच्चे लेखन का उद्देश्य आम आदमी के पक्ष में सीधा संघर्ष करना हो जाता है । व्यंग्य के ये प्रेरक तत्व, परिवर्तन के सार्थक अभियान की गहरी अपेक्षा करते हैं । जनसंचार-माध्यमों के वे हलके जिनमें इस सार्थक अभियान की आहट सुनाई देती है, निश्चित ही व्यंग्य की सच्ची भूमिका को अपना रहे हैं ।

व्यंग्य की दिशा, प्रभाव, शिल्प तथा कथ्य पर हरिशंकर परसाई ने बहुत विस्तार से विचार व्यक्त किए हैं बावजूद इसके वे व्यंग्य को अलग से विधा मानने को तैयार नहीं हैं । उनका कहना है कि जैसे कहानी, कविता, उपन्यास या नाटक शास्त्रीय विधाएं हैं, उनका एक स्ट्रक्चर है, व्यंग्य का उस तरह कोई स्ट्रक्चर नहीं है । मगर कई स्थानों पर 'मुझे व्यंग्य लिखते हुए इतने साल हो गए जैसे वाक्यों का उन्होंने प्रयोग किया है । वे व्यंग्य को एक 'स्पिरिट' मानते है जो किसी भी विधा में हो सकती है । कविता, कथा, निबंध या रेखाचित्र - किसी में भी । जबकि नरेन्द्र कोहली जैसे रचनाकार ईमानदार और सृजनशील आक्रोश के कलात्मक होने के परिणाम स्वरूप व्यंग्य की विधा के जन्म को मानते हैं । साहित्य की व्यंग्य-विधा वाले प्रश्न की व्याख्या करते हुए वे इसे स्वतंत्र विधा की बजाए एक खास साहित्यिक प्रक्रिया बताते हैं, जो आवश्यकतानुरूप अन्य विधाओं की पद्धतियों को आत्मसात करती है । इस प्रकार भले ही व्यंग्य को शास्त्रकार विधा कहें या न कहें, यह स्पष्ट है कि यह विशेष प्रकार की लेखन-पद्धति है । साहित्यकार की मूल लेखन प्रकृति से इसका गहरा संबंध है । उसकी लेखन शैली, उसे शेष रचनाकारों से अलग खड़ा करती है इसलिए भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवीन्द्र त्यागी या मनोहर श्याम जोशी को पाठक व्यंग्यकार के तौर पर अलग से जानते-पहचानते हैं ।

बोध प्रश्न - 1

1. 'जन- भावना की अभिव्यक्ति ओर सामाजिक चेतना व्यंग्य की जान है '। क्या आप इससे सहमत हैं ?
2. व्यंग्य की सरल परिभाषा बताइए ।
3. व्यंग्य के प्रेरक तत्वों का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।

18.4 व्यंग्य के विभिन्न रूप :

18.4.1 व्यंग्य-निबंध

व्यंग्य-निबंध की एक लचीली प्रकृति होती है । थोड़ा कथात्मक- थोड़ा संस्मरणात्मक, विवरणात्मक, आत्मपरक, वस्तुपरक, विचारात्मक आदि या इन्हें मिलाकर विभिन्न प्रकार से निबंध लिखे जा सकते हैं । निबंध की इस व्यापक संभावना को व्यंग्यमय स्वर के जरिए बहुत प्रखरता के साथ उपयोग किया गया है । आजादी से पहले विभिन्न अंधविश्वासों, रूढ़ियों, गुलामी की जंजीरों, ब्रिटिश व्यवस्था की असलियत तथा क्रांति-विरोधी लोगों आदि पर प्रहार करने के लिए सभी बड़े साहित्यकारों

ने निबंध के जरिए पाठकों से संवाद बनाया और तत्कालीन परिस्थितियों में बहुत महत्वपूर्ण काम किए । आजादी के बाद परसाई, जोशी, शुक्ल आदि प्रमुख रचनाकारों ने मुहावरे गढ़े शिल्प विधान निखारे, दोगले व्यक्तियों को अपना विषय बनाया तथा विशाल पाठक वर्ग खड़ा किया । इनका प्रकाशन व्यंग्य के जरिए पाठकों में सामाजिक चेतना का उदय करने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ । आचार्यरामचन्द्र शुक्ल और हजारीप्रसाद दिवेदी के निबंधों की परम्परा को अलग रूप में परसाई-जैसे रचनाकारों ने नया आयाम दिया ।

18.4.2 व्यंग्य-कथा

कहानी में किसी व्यक्ति, घटना या विचार के आसपास एक ऐसा तानाबाना बुना जाता है कि वह अपने आपमें संपूर्ण चित्र बन जाता है । पात्रों के अंतसंबंध कथाभूमि का विस्तार करते हैं । जिन कहानियों में व्यंग्य की अनिवार्यता स्थापित हो जाती है वे व्यंग्य कथाएं हो सकती हैं, जैसे प्रेमचन्द की 'पूस की रात' या 'कफन' अथवा यशपाल की कहानी ' धर्म रक्षा' के साथ भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' भी एक बड़े व्यंग्य का सृजन करती दिखाई देती है । मोहन राकेश ने कई कहानियां लिखीं लेकिन उनकी रचना में 'मलबे का मालिक' में व्यंग्य बहुत मुखर हुआ है । हरिशंकर परसाई श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, राधाकृष्ण, लतीफ घोंघी आदि ने जब कथा का शिल्प अपनाया तो वे अपने आपमें समकालीन समाज का ऐतिहासिक दस्तावेज बन गए । इंसपेक्टर मातादीन चांद पर, भोलाराम का जीव, वैष्णव की फिसलन, जीप पर सवार इल्लियां आदि सरकारी कार्य- प्रणाली पर लिखी गई अविस्मरणीय व्यंग्य-कथाएं हैं । व्यंग्य-कथाओं में फंतासी का उपयोग भी होता है । अपनी कल्पनाशीलता की वजह से व्यंग्यकार अद्भुत तरीकों से अन्तर्वस्तु को उजागर करना है । विवरण देने का उसका ढंग इतना अलग होता है कि आप बेताल कथा में भी किसी सरकारी दफ्तर की कथा का व्यंग्यात्मक आस्वाद ले सकते हैं ।

18.4.3 व्यंग्य-उपन्यास

उपन्यास का एक निर्धारित समीक्षकीय ढांचा है । पात्र, कथाभूमि, उसके विस्तार तथा निरंतरता के साथ एक लम्बी रचना सामने होती है जिसमें कई उपकथाएं और स्थितियां तथा अनेक चरित्र हो सकते हैं । व्यंग्य-उपन्यास आम उपन्यासों से इसलिए अलग हटकर होता है कि उनमें कथा संयोजन, चरित्र विधान, भाषिक चेतना, प्रसंग संगति आदि सब कुछ व्यंग्य के तंत्र के साथ उपस्थित होते हैं । भगवानदास लिखित उर्दू बेगम (1905) को हिन्दी के पहले व्यंग्य उपन्यासों में माना जाता है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने एक कहानी ' कुछ आप बीती कुछ जग बीती' इसी अंदाज में लिखी । निराला का कुल्ली भाट, रांगेय राघव का हुजूर पांडेय बेचन शर्मा उग्र का कड़ी में कोयला आदि कई उपन्यास हैं जो व्यंग्य की भाव भूमि पर लिखे गए हैं । हरिशंकर परसाई ने अपना लघु उपन्यास रानी नागफनी की कहानी सामंतवादी व्यवस्था के चरित्रों को लेकर लिखा । सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यंग्य-उपन्यासों में श्रीलाल शुक्ल के राग दरबारी का उल्लेख किया जाता है । आज तक इस उपन्यास के कई संस्करण निकल गए हैं । यह उपन्यास शुरू से लेकर अंत तक व्यंग्य से अनुप्राणित ऐसी रचना है जिसमें सामंतवादी ग्रामीण भारत की सच्ची तस्वीर उभरती है । इस उपन्यास का अंतरराष्ट्रीय संस्करण भी आ चुका है । बदीउज्जमा

। (एक चूहे की मौत), नरेन्द्र कोहली (आश्रितों का विद्रोह) मनोहर- श्याम जोशी(कुरू कुरू स्वाहा) आदि कई ऐसे उपन्यास हैं जिनहोने अपने व्यंग्य की शक्ति से पाठकों के बीच महत्वपूर्ण स्थान बनाया ।

18.4.4 व्यंग्य-नाटक

हिन्दी व्यंग्य-नाटकों की उल्लेखनीय परंपरा 'भारत दुर्दशा' से शुरू मानी जा सकती है । संस्कृत नाटकों की परपरा और विदूषकीय प्रयोगों की पृष्ठभूमि में हिन्दी नाटकों को कई प्रयोगों से गुजरना पड़ा । आगे चलकर हास्य की अवधारणा व्यंग्य से सपूंक्त होती गई और अब ऐसे नाटक लोकप्रिय हैं जिनमें परिवेश की विसंगतियों को केन्द्र बनाया गया है । शतुरमुर्ग (डा. ज्ञानदेव अग्निहोत्री), बकरी (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना) शंबूक की हत्या (नरेन्द्र कोहली) किस्सा कुर्सी का (अमृत नाहटा), दुलारी बाई (मणि मधुकर), उत्तर उर्वशी (हमीदुल्ला) अंधों का हाथी तथा एक था गधा उर्फ उलादाद खां (शरद जोशी), नाटक नहीं (लक्ष्मीकांत वैष्णव) आदि अनेक व्यंग्य-नाटक उल्लेखनीय रहे हैं । व्यंग्य- नाटक आम जनता तक सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना का विकास करते हैं । मुक्क नाटकों की एक अन्य परंपरा ने व्यंग्य का खुलकर प्रयोग किया है और इस तरह यह सामाजिक क्रांति की दिशा में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है ।

18.4.5 व्यंग्य स्तंभ

व्यंग्य की भाषा शैली में दिलचस्पी के तत्व होने की वजह से यह पाठकों में तुरंत जगह बना लेता है । पत्र-पत्रिकाओं के आम पाठक के लिए व्यंग्य जहां रम्य प्रतीत होता है, वहीं उसकी भंगिमा, प्रहार की शाक्त की वजह से पाठक को किसी विषय-विशेष पर प्रतिक्रिया करने का सुख लेने में भी मदद करती है । व्यंग्य की इस विशेषता को समझकर समर्थ रचनाकारों ने व्यंग्य स्तंभों को उनकी तात्कालिकता से ऊपर उठाकर एक ऊंचा दर्जा दिलाया है । आजादी से पहले मतवाला में मतवाले की बहक. चलती चक्की और चाबुक नियमित स्तंभ होते थे । इनकी टिप्पणी तीखी और असरदार होती थी । चलती चक्की से टिप्पणीकार कोई समाचार उठाते थे और उस पर व्यंग्य टिप्पणी कर देते थे । कभी इसमें सिर्फ कटाक्ष होता था और कभी व्यंग्य जिससे उस प्रश्न पर लेखक का मत प्रकट होता था । ये टिप्पणियां विविध विषयों पर होती थी । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक सब तरह के समाचारों पर टिप्पणी होती थी । 1904 में बालमुकुन्द गुप्त के. शिवशंभू के चिट्ठे व्यंग्य स्तंभ हिन्दी गद्य की अनूठी रचना है ।

स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी पत्रकारिता में व्यंग्य का स्थान उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण होता गया । धर्मयुग या साप्ताहिक हिन्दुस्तान या सारिका जैसे प्रतिठानी पत्रों ने अपने यहा नियमित स्तंभ ताल-बेताल, बैठे- ठाले रखे । नवभारत टाइम्स और नई दुनिया ने हरिशंकर परसाई तथा शरद जोशी जैसे समर्थ रचनाकारों को अपनी विचारधारा तथा रचनाधर्मिता के लिए स्तंभकार के रूप में प्रस्तुत किया । रविवार जैसी साप्ताहिक समाचार पत्रिका ने किद्दू का निकला चिंतन छापना शुरू किया । दिनमान में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का स्तंभ चरचे और चरखे उल्लेखनीय व्यंग्य स्तंभों में एक रहा है । कथाकार रवीन्द्र कालिया ने दिनमान में ही इतिश्री लिखा, लतीफ घोंघी, मुद्राराक्षस, अजातशत्रु, के. पी. सक्सेना सहित कई अन्य रचनाकारों ने भी नियमित साप्ताहिक व्यंग्य स्तंभ लिखे हैं, जिनकी प्रवृत्ति कमोबेश सशक्त टिप्पणी की रही है । आप पाएंगे कि हर सप्ताह एक विशेष शैली में एक विषय को उठाने की

चुनौती के साथ सामयिकता, स्तंभ का कितना अनिवार्य तत्व होती है । लेकिन पाठकों को यह बहुत आकर्षित करती हैं । दैनिकों में रोजाना ही एक हल्का-फुल्का लघु लेख या कभी-कभी परिहासपूर्ण तीसरा संपादकीय अग्रलेखन छापने की शुरूआत भी (अंग्रेजी के मिडिल और थर्ड एडिट से अभिप्रेरित) इसी लोकप्रियता का एक पहलू है ।

हरिशंकर परसाई और शरद जोशी दोनों ने तात्कालिक टिप्पणियों की क्षणभंगुरता को स्वीकार किया है, लेकिन बावजूद वे इसकी महत्ता को लेखन के उद्देश्य से कम नहीं आंकते । प्रेम जनमेजय की नजर में यह अजब विसंगति है कि हमारे दो वरिष्ठ व्यंग्यकार व्यंग्य की क्षणभंगुरता के प्रति चिंतित भी है, सजग भी है, परंतु उसका विलक्षण साहस के साथ सृजन भी कर रहे हैं । उनके विचार से इसका कारण उनके अंदर बैठा सजग पत्रकार है, जो सामयिक व्यंग्यात्मक कमेंट्स करने को विवश है आज का विसंगतिपूर्ण राजनीतिक जीवन उन्हें विवश कर देता है । व्यंग्यकार ही नहीं व्यंग्य का पाठक भी अपनी आसपास की जिन्दगी और दैनंदिन बढ़ती अव्यवस्था के प्रति इतना जागरूक है कि उसकी मांग का दबाव न तो व्यंग्यकार को चैन से बैठने देता है और न ही संपादक को । लेकिन रोजाना की बातों पर न लिखने का हठ या अमर होने की लालसा एक सच्चे व्यंग्यकार के लिए क्या मायने रखती है? शरद जोशी स्वयं रोज की निहायत छोटी-छोटी बातों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे और यह इसलिए करते थे कि एक लेखक के नाते उनकी यह जिम्मेदारी है । वे कहते थे कि अंगर हम हिन्दुस्तान में अमेरिकन जहाजों के ईधन भरे जाने के समाचार पर लिखते हैं तो वह लिखना इसलिए जरूरी होता है कि छोटे-छोटी बातों से पता लगता है कि हमारा देश तटस्थता की नीति से हटकर प्रो- अमेरिकन होने की दिशा में बढ़ रहा है । और, यह बात बताना शाश्वत साहित्य लिखने से कहीं बड़ा काम है । और उनका विश्वास था कि इन्हीं रोजमर्रो के चिंतनों से एक ऐसा साहित्य विकसित होता है, जो आने वाले युगों तक पढ़ा जाता है । रचनाकारों को आए दिन की समस्याओं पर लिखने से कोई परहेज नहीं करना चाहिए क्योंकि बिना यह किए वे आए दिन की चुनौतियों का पूरी शान से सामना नहीं कर सकते । और यदि वे जनता के सामने नहीं जाएंगे तो उनकी जगह खाली नहीं रहेगी, वह गलत लोगों द्वारा भरी जाएगी । परिक्रमा, नावक के तीर, ताल-बेताल, बैठे-ठाले, प्रतिदिन जैसे स्तंभों के लिए शरद जोशी ने बहुत सारा लिखा है । 'नई दुनिया' में उन्होंने' और शरद जोशी' स्तंभ भी लिखा । अप्रैल, 1985 से वे नवभारत टाइम्स में प्रतिदिन व्यंग्य स्तंभ लिखते रहे । उनका अधिकांश व्यंग्य साहित्य, सामाजिक-राजनीतिक- सांस्कृतिक घटनाओं की व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया है । घटना घटने में देर लगती थी, उसे आधार बनाकर अपना नया व्यंग्य रच डालने में शरद जोशी को देर नहीं लगती थी । अपनी पत्रकार सुलभ सघन प्रतिक्रियामूलक सर्जना की वजह से शरद जोशी के व्यंग्य का महत्व सीमित नहीं हुआ । साप्ताहिक परिक्रमा स्तंभ में पिन से लेकर पेन तक, सुराही से लेकर साबुन तक, अखबार से लेकर हाइड्रोजन तक पर शरद जोशी ने अपनी कलम चलाई है । अनगिनत विषयों की बेहद पैनी परिक्रमा व्यंग्यकार ने की है । शरद जोशी से, जिनमें पत्रकार राजेन्द्र माथुर ने भारतीय अखबार के आर्ट बुकवाल्ड की संभावनाएं देखी थीं, प्रतिदिन लिखवाया गया । इसी प्रतिदिन के बारे में शरद जोशी के देहावसान के बाद राजेन्द्र यादव ने लिखते हुए उसे नवभारत टाइम्स में अपनी अनिवार्यता बताया था और यह कि इस संदर्भ में अपने अंतिम दिनों में शरद जोशी सीधे-साधे मुद्दों पर पैनी टिप्पणी करने लगे थे ।

यह आम पाठक से बैचेन करने वाले मसलों पर, निर्णायक स्वर में संवाद का रूप अख्तियार करने लगा था ।

व्यंग्य लेखन में ताजा मुद्दे होते हैं और चर्चित व्यक्तित्व भी । इससे तिलमिलाहट तथा प्रतिक्रिया तुरंत मिलती है । व्यंग्य की प्रहारात्मकता से विक्षुब्ध पात्र कभी-कभी व्यक्तिगत हमला तक कर बैसे हैं । रचनाकार पर ऐसे कई खतरे होते हैं । हरिशंकर परसाई के व्यंग्य स्तंभों की विवेचना से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य व्यंग्य की स्तंभ परम्परा को बेहतर समझा जा सकता है । परसाई ने अनेक वर्षो तक लगातार पत्र-पत्रिकाओं में स्तंभ लिखे । इन स्तंभो में थे - अरस्तु की चिट्ठी (परिवर्तन, जबलपुर) सुनो भाई साधो (नई दुनिया, इन्दौर), माटी कहे कुम्हार से (करंट, बम्बई), पांचवा कॉलम तथा उलझी-सुलझी (नई कहानियां), और अंत में (कल्पना), ये माजरा क्या है (जनयुग दिल्ली), कबिरा खड़ा बाजार में तथा तुलसीदास चंदन घिसैं (सारिका), पूछिए परसाई से (देशबंधु, रायपुर) तथा हम इस उम्र से वाकिफ है (गंगा) स्तंभ लेखन में परसाई की अद्भुत क्षमता का ही परिणाम है कि लोक कल्पना को पीछे से पढ़ना शुरू करते थे और सुनो भाई साधो के लिए उन्हें पर्याप्त विरोध या यों कहें कि प्रहार से तिलमिलाए दुश्मन मिले ।

स्तंभ अरस्तु की चिट्ठी जबलपुर से प्रकाशित परिवर्तन में छपना शुरू हुआ । स्तंभ के तीखेपन और तेवर के कारण वह बहुत लोकप्रिय हुआ, मगर यही स्तंभ अखबार के बंद होने के कारण बन गया । सारिका में कबीरा खड़ा बाजार में प्रमुख हस्तियों के कबीर के काल्पनिक साक्षात्कार की शैली में लिखा जाता था । जून 1975 में आपातकाल लगा । इस माह के अंक में कबीर का साक्षात्कार बाबू जगजीवनराम से दिया गया था । सेंसर वालों ने सारिका के उक्त अंक के पन्ने काले कर दिए । उल्लेखनीय बात यह है कि कबीर के उस साक्षात्कार में जगजीवनराम का वक्तव्य जो परसाई ने दिलवाया, वह था - अगर जयप्रकाश नारायण का सरकार बनाना पक्का हो जाए, तो मैं उनकी तरफ जाऊं । सब जानते हैं कि जगजीवनराम आपातकाल के बाद कांग्रेस (इ) छोड़कर जयप्रकाश से मिल गए थे । परसाई ने अपने स्तंभों में तात्कालिक महत्व की घटनाओं को यदि उठाया, जो उनके छुपे सूत्रों को स्पष्ट कर, व्याख्या के जरिए सार्वकालिक महत्व का बना दिया । इस दृष्टि से उनके स्तंभ लेखन को सिर्फ सामयिक बताकर छुट्टी नहीं दी जा सकती ।

व्यंग्य के अपने सुपरिचित मुहावरे के साथ ज्ञान और दृष्टि को जोड़कर स्तंभों को स्थायी महत्व प्रदान किया जाता है । यही विशेषता व्यंग्य स्तंभों की लोकप्रियता का कारण रही है ।

व्यंग्य स्तंभ लेखन का स्थान इसलिए भी बहुत महत्वपूर्ण है कि इसके कारण व्यंग्य आम जन तक पहुंच सका । पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से व्यंग्यकार लगातार इस बहाने अपना दृष्टिकोण और विचारधारा प्रस्तुत करते रहे । इस प्रक्रिया के कारण पाठकों से उनका सीधा रिश्ता बना और यदि उनका लेखन तमाम संवेदना, अंतर्दृष्टि तथा परिवेश को पूरी शिद्दत के साथ पकड़ता था तो वे सहज ही उनकी चेतना का अंग बन गए । इन दिनों लगभग प्रत्येक अखबार व्यंग्य-स्तंभ चला रहा है, पर उसमें शुद्ध व्यंग्य या शिल्पविशेष की दृष्टि बमुश्किल दृष्टिगत होती है ।

18.5 व्यंग्य की भाषा

व्यंग्यकार का ध्यान विकृतियों पर होता है और उसका लक्ष्य उनका उन्मूलन है । जिस शल्य चिकित्सा की उससे अपेक्षा की जाती है, वह एक किस्म का रुचिकर उपचार है । पहले रोगी को ऑपरेशन टेबल के लिए तैयार किया जाए ओर फिर चिकित्सा आरंभ हो, यह बात सब समझते हैं लेकिन यहां रोगी मानने को ही तैयार नहीं होता कि उसे रोग भी है । व्यंग्य की भूमिका रोग मुक्ति प्रदाता की भूमिका है । इसमें क्रोध भी शामिल होता है, लज्जा और निंदा के तत्व भी । आक्षेप और कटाक्ष की आवश्यकता होते हुए भी व्यंग्य अप्रत्यक्ष प्रहार की प्राथमिकता लेकर चलता है । इसके लिए वह विविध रूपों का आलबन लेता है । विषयानुरूप शब्द चयन तथा घटनानुसार विवरण खोलने के लिए वाक्य विन्यास करता है । अन्य साहित्यिक रूपों की भाषा से, व्यंग्य की भाषा का स्वरूप उसके उद्देश्य के कारण अलग हो जाता है । मुहावरों, व्यंजनाओं तथा शब्द चित्रण में व्यंग्यभाषा अपने उपकरण सृजित करती है । आनंदवर्द्धन का ध्वनि सिद्धान्त उत्तम काव्य उसे ही मानता है जिसमें व्यंग्यार्थ ही प्रधान चमत्कार होता है । व्यंग्यार्थ को ध्वन्यार्थ, सूचनार्थ, अपेक्षार्थ और प्रतीयमान अर्थ भी कहते हैं । आचार्य मम्मट ने व्यंग्यार्थ की प्राप्ति के लिए वक्ता, ग्राहक, ध्वनि- विचार, वाक्यान्वय, वाक्य, सान्निध्य, प्रकरण, देश, कला आदि की विशिष्टता का ध्यान आवश्यक बताया है । लक्षणा और उससे भी अधिक व्यंजना शब्दशक्ति व्यंग्य का एक उपकरण ही है । इस प्रकार व्यंग्य की भाषा अपने कुछ विशेष गुणों की वजह से अलग प्रभाव की सर्जना करती है ।

दुष्टता का प्रतिकार सीधे विरोध से होता है तो पाखंड का प्रतिकार व्यंग्य से होता है । विसंगति का पर्दाफाश करने की वक्रता, आवरण में छिपे हुए पाखंड को नंगा करने की निष्ठा तथा आक्रमणशीलता व्यंग्य की भाषा में होती है । व्यंग्यकार अपने विशिष्ट भाषा-चमत्कार से संप्रेषणीय भाषा के समानांतर अभिव्यंजक भाषा को लाकर व्यंग्य की भाषा में एक प्रकार की जीवंतता भर देता है । व्यंग्यकार जब अपने अभीष्ट के लिए भाषा से जूझता है तो भाषा की सामान्य संरचना टूट जाती है और उसकी भाषा एक विशेष प्रकार की अर्थशाज्ञत ग्रहण करती है । व्यंग्य की इस शाक्त को डा. नामवरसिंह ने साहित्य के अदर परमाणुयुग एवं भाषा के विस्फोटक प्रभाव जैसे शब्दों से व्यक्त किया है । भाषा इकाइयों के साथ किए जाने वाले असाधारण खिलवाड़ तथा तोड़-मरोड़ की प्रवृत्ति को चेक भाषावैज्ञानिक जान मुकारोवस्की ने पुन: प्रक्षेपण का नाम दिया है ।

व्यंग्य, भाषा को ज्यादा आमफहम, प्रत्यक्ष (डायरेक्ट) और कारगर बनाने की कोशिश करता है । वैसे तो किसी भी साहित्य विधा में भाषा का आदर्श स्वरूप यही होना चाहिए लेकिन व्यंग्यभाषा के लिए तो यह अनिवार्य और अपरिहार्य गुण है । और किसी भी भाषा में आप ललित साहित्यिक शब्दावली से लेखकों के भाषा संबंधी आदर्श से निश्चय ही भिन्न होंगे, या मेरे विचार से, होना चाहिए । जैसे नाई हजामत बनाने से पहले अपने उस्तरे को तेज कर लेता है, और उंगली पर धार की परख भी कर लेता है, उसी प्रकार व्यंग्यलेखक को अपनी भाषा की जांच कर लेनी चाहिए । व्यंग्य-लेखक की भाषा में धार और नोंक दोनों जरूरी हैं । कभी वह नश्तर लगाता है और कभी खजर चुभोता है । यदि उसकी भाषा एकरस और एक ढंग की होगी तो वह यह काम बखूबी नहीं कर सकता ।

अन्य साहित्यकार और व्यंग्यकार की जहां जीवन स्थितियों की मानसिक पकड़ में अंतर होता है वहां उसका भाषा और रचना-प्रक्रिया में भी बड़ा अंतर होता है । व्यंग्यकार अपने विषय को ऐसी

विशिष्ट भंगिमा में प्रस्तुत करता है कि वह हमारी चेतना या संवेदनशीलता को एकदम झटका-सा दे जाती है । यह कार्य वह बिछल योजनाबद्ध रूप में करता है । और स्वाभाविक है कि इसके लिए वह अपनी भाषा की, अपनी शैली की, अपनी भंगिमा की खोज अवश्य करेगा ।

श्यामसुदर घोष ने व्यंग्य की भाषा की कुछ अन्य विशेषताएं इस प्रकार बताई हैं - व्यंग्य भाषा में भाषा का ऊपरी रूप सब कुछ नहीं है । व्यंग्य-भाषा रेगुलर आर्मी का सिपाही न होकर छापामार दस्ते का सिपाही होता है । इसलिए उसकी वदी बहुत ठीकठिकाने की नहीं भी हो सकती है । पहली नजर में जैसे छापामार बिछल अनपढ़ किसान और मजदूर दिखाई देता है वैसे ही व्यंग्य- भाषा भी सामान्य जनभाषा या गंवारू-बाजारू भाषा-सी मालूम हो सकती है । लेकिन जैसे छापामार की जांच उसकी रणनीति और हथियारों की मार से होती है और वही उसे छापामार सिद्ध करती है उसकी वर्दी या कमीज के बिल्ले या स्टार नहीं, उसी प्रकार व्यंग्य-भाषा भी अपने कारगर असर और इस्तेमाल से अपना व्यक्तित्व, चरित्र और सार्थकता सिद्ध करती है ।

व्यंग्य से संलग्न विनोद में इस बात का खतरा लगातार उपस्थित रहता है कि भाषा का इस्तेमाल अर्थहीन रंजन या जुगुप्सा में आनंद खोजने की ओर न मुड़ जाए । इसलिए विकृति के उद्‌घाटन हेतु व्यंग्य की भाषा में अत्यधिक सतर्कता की जरूरत होती है । भाषा की लापरवाही अथवा शब्दों की आवारागर्दी मूल उद्देश्य से भ्रष्ट कर सकती है । अत: व्यंग्य में शब्द, वाक्य एवं निहितार्थो का सिद्धहस्त ही भाषा को साधने में सफल हो सकता है ।

व्यंग्य के लिए कई बार नए शब्द सृजित किए जा सकते हैं (जैसे कुंठायमान हुए), बोलियों तथा बोलचाल के शब्दों को विशेष योजना के साथ भीतर लाया जा सकता है, शब्दों के साथ खेला जा सकता है तथा वाक्यों का गठन इस प्रकार किया जा सकता है कि वह पूरे प्रकरण का वस्तुसत्य शब्द-दर-शब्द खोलता चला जाए । चाहे जो शैली अपनाई गई हो, विवरणों में उतरते हुए व्यंग्यकार भाषा की प्रहार- क्षमता बनाए रखे तभी वह रचना का प्रभाव प्रक्षेपित कर सकता है । अन्य किसी भी रचना की अपेक्षा, व्यंग्य में भाषा अपने संपूर्ण रंगों के साथ प्रकट होती है । वह न सिर्फ कहती है कि बल्कि कहने की बहुआयामी शक्ति का पूरा दोहन भी करती है ।

स्वातंत्र्य-पूर्व हिन्दी गद्‌य व्यंग्य की भाषिक संरचना उद्देश्यगत रूप में तो समान ही थी किन्तु तब मुहावरे, परिस्थितियां और शैली के कुछ अलग रूप मौजूद थे । मतवाला के स्तम्भ या शिवशम्भू के चिट्ठों का स्वाभाविक रूप से परिप्रेक्ष्य अलग था, हालांकि व्यंग्य के मूल भाषिक आधार तो वही होंगे । व्यंग्य-भाषा के दो भाग हो सकते हैं -पहला, ध्वनि या तुकों, शब्दों, वाक्यों और अर्थगत मरोड़ का उपयोग तथा विशिष्ट शब्दयोजना । दूसरा, व्यंग्यशैली के विविध उपकरण यथा अप्रस्तुत, प्रतीक व्यंग्योक्ति आदि का उपयोग ।

स्वतंत्रता के बाद के भारत में स्वप्न-भंग की मानसिक्ला से लड़ रहे नागरिकों का चित्र दिखाई देता है । राजनीति में भ्रष्टाचार, समाज में दोगलापन, सांस्कृतिक मोर्चे पर क्षरण तथा समूची व्यवस्था को लगे धुन ने व्यंग्य को सबसे महत्वपूर्ण दायित्व का अहसास कराया । इन पातल्क्षतशं में व्यंग्यकारों ने अपनी विशिष्ट भाषा- शैली का आविष्कार किया । नए मुहावरे गढ़े गए । हरिशंकर परसाई, शरद जोशी तथा श्रीलाल शुक्ल सहित अनेक श्रेष्ठ रचनाकारों ने भाषा के स्तर पर विलक्षण प्रयोग किए । इस तरह की भाषा की संप्रेषणीयता तो उद्भुत थी ही, उसमें स्थायी मार की शाक्त भी मौजूद थी । इस किस्म की भाषिक संरचना का विकास स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की विसंगतियों का विश्लेषण करने

में मददगार सिद्ध हुआ । स्वीर और भारतेंदु की परंपरा का नए परिप्रेक्ष्य में पुनराविष्कार हुआ । स्वतंत्र भारत में आम आदमी के दुखों को व्यंग्य के माध्यम से केंद्र में लाया गया । आजादी के बाद पहली जरूरत थी आम आदमी की भाषा में बात करना । व्यंग्य ने इस चुनौती को स्वीकार किया । भाषा साथ उद्देश्यपूर्ण खेल करके पाठक से सफल सवांद कायम का कार्य शरद जोशी ने किया है । उनकी विशेषता थी बेहद साफ-सुथरी, कटी-छटी शैली वाली तकनीक के साथ छोटे-छोटे वाक्यों में उस स्थिति की उप-स्थितियां रखना । विरोधाभासों का बगैर किसी श्रम के पाठक- श्रोता की पकड़ में चले जाना । हरिशंकर परसाई के जनधर्मी लेखन ने जिन सच्चाइयों को खोलकर रखा उनके समकालीन शरद जोशी का लेखन भी उन्हीं सच्चाईयों को देखने-परखने का एक समानधर्मी माध्यम था । यही वजह थी कि परसाई और जोशी के लेखन में तुलनात्मक विवेचन जैसी बहसों ने जन्म लिया । किस्म-किस्म के वाक्य आविच्च हुए, जो दोनों के लेखन में छड़ी और जादूगरी के अतर को प्रतिबिंबित करते थे । इस समूची बहस से अनजाने ही व्यंग्य की भाषा तथा उसके स्वरूप पर खुलकर विचार हुआ। आम आदमी के विचारों से सीधे जुड़े लेखन की भाषिक संरचना के सूत्र खुले तथा उसकी महत्ता स्थापित हुई ।

शरद जोशी शब्दों का खेल कितना सार्थक खेलते थे उससे कुछ उदाहरण लें । उन्होंने नवभारत टाइम्स में जो दैनिक व्यंग्य स्तंभ लिखा था- 'प्रतिदिन' उसमें इसकी प्रचुरता थी । उन्होंने एक बार प्रयोग किया बिहार जाकर नरभसाय गए । नर्वस होना अंग्रेजी का शब्द है, जिसका बिहारी उच्चारण नरभस कर दिया जाता है और स्थानीय व्याकरण लगाने से यह नई क्रिया बन गई नरभसाना । बिहार की हालत देखकर व्यंग्यकार ने इस शब्दाविष्कार की अपनी विलक्षण चेतना से उसी अंदाज में प्रयोग करके नरभसाय गए के रूप में व्यक्त कर दिया ।

सन् 1975 के बाद से खासतौर पर भारतीय राजनीति परिवेश में परिवर्तन आया । आपातकाल ने राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना को झकझोर दिया था । इसके साथ ही हिन्दी पत्रकारिता की भाषा में स्वाभाविक व्यंग्य ने अपनी धार मिला दी । यू तो कुल साहित्य में परिस्थितियों का व्यंग्य उभरना ही था लेकिन पत्रकारिता जिस तरह तेजी से प्रतिकृत होती है उसमें शीर्षकों और संपादकीय टिप्पणियों तक की भाषा व्यंग्यमय होने लगी । व्यंग्य के पुट वाले स्तंभों का जोर भी कुछ ज्यादा हो गया । जनाक्रोश तथा जनप्रतिक्रिया का ताप जांचने की यह धारा, व्यंग्य की शक्ति की ओर इशारा करने के लिए पर्याप्त है । इससे भाषा में अद्भुत मुहावरे आए । जैसे पंचवर्षीय योजना बनाने का किसी को उलाहना देने का मतलब हो गया लंबे समय तक चलने वाली प्रभावहीन प्रक्रिया । शब्दों की अर्थवत्ता का इस कदर क्षय हुआ कि नेताजी जैसे शब्दों का अर्थ हेयहास का आलबन देने लगा - वर्ना नेताजी सुभाषचन्द बोस के लिए प्रयुक्त सम्मानजनक संबोधन है ।

आजादी के बाद की विसंगतियां इतनी विकट हैं कि भाषा में व्यंग्यकार को विशिष्ट तेवर अख्तियार करने पड़े । व्यंग्योक्तिया उसकी भाषा में उपजने लगी, जो अपने आप में विराट अर्थ से संयुक्त थी । जैसे अजातशत्रु ने लिखा- प्रजातंत्र जांडिस के पेशाब का सेम्पल हो गया । नरेन्द्र कोहली ने लिखा-स्वतंत्रता जब ऊपर से टपकी तो लोगों ने गांधी टोपी फैलाकर उसे समेट लिया । महात्मा गांधी चूंकि अपने नाम की टोपी नहीं पहनते थे इसलिए उनके हिस्से कुछ नहीं आया । हां, उनके राजनीतिक पुत्रों ने उनकी मूर्ति कंपनी बाग में बनवा दी ताकि वे बाग के फूलों ओंर सैर करने वालों में ही भूले रहें और राजनीति की बात न सोचें । रवीन्द्रनाथ त्यागी ने निष्कर्ष निकाला - शहीद दिवस की भांति शायद हिन्दी दिवस भी उसी दिन मनाया जाता है जिस दिन उसकी मृत्यु हुई हो ।

भाषा के भीतरी सत्व को उभारने में परसाई के लेखन की एक सबसे बड़ी विशेषता सूत्र वाक्य है । ये आप्त वाक्य जीवन की सच्चाइयों और अनुभवों के मेल से निकले हैं । इनमें मौजूदा सच को प्रतिबिंबित करने की अदभुत क्षमता है । स्वातंज्योत्तर गद्य लेखन में यह विशेषता अन्यत्र दुर्लभ है।

कुछ ऐसे ही सूत्र वाक्य उनकी रचनाओं से यहां उद्धृत हैं, जो स्वयमेव इस कथन की पुष्टि करते हैं : -

- धर्म, धंधे से जुड़ जाए, इसी को योग कहते हैं ।
- कई लोगों पर मानवीयता रम के किक की तरह चढ़ती-उतरती है । उन्हें मानवीयता के फिट आते हैं ।
- इज्जतदार ऊंचे झाड़ की ऊंची टहनी पर दूसरों के बनाए घोंसले में अंडे देता है ।

इस तरह के वाक्यों का रचनात्मक सौंदर्य रचना के भीतर ही पूरी ताकत के साथ खुलता है, लेकिन यदि इनका उपयोग आप्त वाक्यों की तरह किया जाए, तो भी वे अपने कालांकित तेवरों के साथ खड़े होते हैं । कबीर और रहीम के नीति विषयक दोहों की तरह इनमें समय का चरित्र और कर्तव्य प्रकट होता है ।

18.6 व्यंग्य का शिल्प

हिन्दी व्यंग्य के विभिन्न रूपों के बारे में हम पूर्व में विस्तार से विवेचन कर चुके हैं जिसके अंतर्गत निबंध, कहानी, उपन्यास, नाटक या स्तंभ आदि के रूप में व्यंग्य-सृजन का पृथक-पृथक आकलन किया गया है । विभिन्न साहित्य रूपों को अपनाते हुए व्यंग्य विकसित हुआ है । आम प्रचलन में जिसे व्यंग्य कह दिया जाता है वस्तुत: वह निबंध का ऐसा रूप होता है जिसमें कभी-कभी कथा- तत्व भी हो सकते हैं । फिर इस प्रकार के लेखन में विविध शैली-प्रयोग भी का प्रयोग होता है । व्यंग्य के शिल्प विधान पर विचार करते हुए प्रथमत: दो प्रकार सामने आते हैं - (1) आत्मस्थ व्यंग्य, (2) परस्थ व्यंग्य।

आश्रय और आलंबन की कसौटी पर किए गए व्यंग्य-भेदों में एक आत्मस्थ व्यंग्य है ऐसे व्यंग्य में व्यंग्यकार अपने ऊपर ही व्यंग्य-प्रहार करता है, भले ही उसका लक्ष्य स्व के बहाने सामान्य' की विसंगतियों पर आक्रमण करना ही हो । व्यंग्यकार नैतिक श्रेख्ता के खोखलेपन को ऐसे व्यंग्य द्वारा उजागर करते हैं इसलिए आत्मस्थ व्यंग्य को श्रेष्ठतर कहा जाता है ।

18.6.1 व्यंग्य के माध्यम

व्यंग्य की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न माध्यम प्रयुक्त होते रहे हैं । उषा शर्मा ने इसके लिए मुख्यत: तीन माध्यम विश्लेषित किए हैं -

1. विदूषिकी या वितृष्णा से परिपूर्ण स्वगत कथन (मोनोलॉग) जिसे कई रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है ।
2. पैरोडी जिसमें किसी विख्यात, शिष्ट और गंभीर रचना या व्यक्ति को आधार के रूप में लेकर उसका अतिरंजित उपहासास्पद वर्णन किया जाता है ।
3. वृत्तांत (नैरेटिव) जिसमें साधारणतया वृत्तान्तकार स्वयं सम्मुख नहीं आता है । वृत्तान्त कथात्मक रूप में भी प्रयुक्त हो सकता है और अन्य किसी साहित्य रूप में भी । व्यंग्य का शिल्पकौशल इसमें निहित है । निबंध, कथा, उपन्यास या किसी भी अन्य साहित्य रूप को

अपनाते हुए भी वह वातावरण, पात्र स्थिति और निष्कर्ष को प्रत्येक वाक्य के साथ पूर्व नियोजित व्यंग्य भावना से पूरमपूर रखता है । एक वाक्य, दूसरे का सहायक होता है । एक मुहावरा, पूरे चरित्र को व्यक्त करने में प्रयुक्त होता है । संक्षेप में, कोई भी शब्द, बिना व्यंग्य प्रयोजन के उपस्थित नहीं होता । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य व्यंग्य में वस्तुगत विकृतियों तथा उनके विन्यास के लिए विभिन्न शैलियां प्रयोग में लाई गई । निबंधों में भी व्यक्तिपरक निबंध थे और वैचारिक भी । कई बार रचनाकर एक पात्र को केंद्र में रखता है लेकिन उस पात्र के बहाने एक संपूर्ण प्रवृत्ति का विश्लेषण करता है जैसे परसाई कृत - ठंडा शरीफ आदमी ।

18.6.2 शैलियां

शैलियों के स्तर पर मुख्यत: निम्नांकित शैलियों अपनाई जाती है । - (1) वर्णनात्मक शैली, (2) विवरणात्मक शैली, (3) पत्रात्मक शैली, (4) साक्षात्कार शैली, (5) फंतासी, (6) मिथकीय प्रयोग, (7) अन्योक्ति, (8) रेखाचित्र, (9) पुराणों या महागाथाओ की शैली अनुकरण तथा पैरोडी की शक्ति का उपयोग आदि ।

वर्णनात्मक शैली सहज-सरल है और व्यंग्यकार अपने पात्रों, वस्तुओं, दृश्यों आदि का तटस्थ भाव से व्यंग्य-भाषा में समावेश करता चलता है । 'रागदरबारी' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है ।

विवरणात्मक शैली में मैं को केंद्र में रखते हुए घटनाओं तथा प्रवृत्तियों का विवरण दिया जाता है । लगभग सभी श्रेष्ठ व्यंग्यकारों ने अपनी स्फुट रचनाओं में इसका प्रचुरता से उपयोग किया है । पत्रात्मक शैली में पत्र लेखन के जरिए सवांद पैदा किया जाता है । शरद जोशी कृत सेवकराम निर्भय के तीन पत्र, रवीन्द्रनाथ त्यागी कृत लेखक के नाम पांच पत्र, श्रीलाल शुदंल का एक शोक प्रस्ताव तथा हरिशंकर परसाई की लिखी अरस्तु की चिट्ठियों में पत्र- शैली मुखर होकर उभरी थी । साक्षात्कार शैली, किसी भी पात्र के संवादों से अन्तर्निहित व्यंग्य को प्रकट करने में उपयोगी साबित होती है । हरिशंकर परसाई ने 'कबिरा खड़ा बाजार में' के अंतर्गत देश-विदेश के बड़े -बड़े नेताओं से भेंटवार्ता लिखी थी । इनके माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक विसंगतियों एवं उन महान चरित्रों के अंतर्विरोधों का प्रकटीकरण हुआ था । मोरारजी देसाई से भेंट में परसाई लिखते हैं - कबीर ने पूछा- मार्क्स को आपने पड़ा है?

मोरारजी भाई सत्यवादी हैं । कहा - नहीं पढ़ा । किताबें पढ़ने में जरा कच्चा हूं । अर्थमंत्री था पर अर्थशास्त्र संबंधी किताबें मैं नहीं पढ़ता था । ज्ञान तो मेरे भीतर ही है ।

कबीर ने कहा - पर गांधीजी कहते थे, स्वराज्य में हर आंख का आंसू पोंछा जाएगा । समाजवाद भी आंसू पोंछता है? मोरारजी भाई ने कहा- गांधी महात्मा थे । कह सकते थे । पर सरकार का काम आंसू पोंछना है क्या? करोड़ों नहीं, अरबों रूमाल बनवाओ आंसू पोंछने के लिए । अरे, सरकार का काम है पुलिस से आंसू की गैस छुड़वाकर और आंसू निकालना ।

फंतासी व्यंग्य का एक जबर्दस्त माध्यम है । इसमें प्रतीकों और बिंब योजनाओं का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग देखा जा सकता है ।

शेरजंग गर्ग के अनुसार फैंटेसी, जिसे हिन्दी में फंतासी कहा जा रहा है, अपने मूल अर्थ में स्वैर कल्पना, स्वप्न-चित्र, भ्रांति, मोह और सनक एवं मौज के पर्याय के रूप में जानी जाती है । फंतासी में चरित्र पूर्णत: यथार्थ नहीं होते, किन्तु उनका चित्रण इस प्रकार किया जाता है कि वे यथार्थ का सम

पैदा करते हैं । यथार्थ स्थितियों और व्यक्तियों पर काल्पनिक चरित्रों के मुखौटे लगाकर युग की विसंगतियों का मुखौटा उतारने का काम फंतासी बखूबी कर सकती है, करती रही है ।

रानी नागफनी की कहानी हरिशंकर परसाई ने मुंशी इंशाअल्ला खां की रानी केतकी की कहानी के ढांचे से अनुप्रेरित फंतासी के रूप में रची है । इसकी भूमिका में परसाई ने कहा है, लोककल्पना से दीर्घकालीन संपर्क और लोकमान्य से परंपरागत विसंगति के कारण फैंटेसी की व्यंजना प्रभावकारी होती है । बदीउज्जमां का उपन्यास ' एक चूहे की मौत' । और बाद में 'छठा तंत्र' भी फंतासी के माध्यम से व्यंग्य सृष्टि करता है । यह उपन्यास स्थिर और खानों में बंटी जिन्दगी तथा दिनचर्या की विसंगतियों और निरर्थकताओ को, प्रतीकों का इस्तेमाल करते हुए वाणी देता है ।

मिथकीय प्रयोगों की शैली परंपरागत विश्वास और काल्पनिक धारणाओं के बहाने समकालीन सत्य उद्घाटित करने में उपयोगी होती है । मिथक में एक नई दुनिया की कल्पना होती है । डा. नगेंद्र के मिथक और साहित्य का संदर्भ देते हुए एएन चन्द्रशेखर रेड्डी ने उद्धृत किया है कि परंपरागत विश्वास के कारण उसे पूर्णत: नकारा भी नहीं जा सकता । जैसे रावण के दस सिर, शेषनाग के फन पर पृथ्वी आदि भ्रमजनक लगते हैं लेकिन ये सब एक सामाजिक परंपरा में सतत प्रचलित होते रहने के कारण हमारी जातीय स्मृति के अंग बन गए हैं । विश्वासों पर आधारित होने के कारण मिथक व्यंग्यकार के लिए उसका काम आसान कर देते हैं । व्यंग्यकार उन प्रसंगों तथा पात्रों को एक संदर्भ में लाकर अपने कथ्य का प्रभावी संप्रेषण कर देता है । राम, कृष्ण, एकलव्य, अर्जुन, यमराज, सुदामा आदि पात्रों के बारे में सर्वव्याप्त धारणाएं उन्हें नए नए संदर्भो में लाने पर व्यंग्य का सशक्त साधन बन जाती हैं । एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया तथा सुदामा के चावल हरिशंकर परसाई की ऐसी ही रचनाएं हैं । सुदामा के चावल में श्रीकृष्ण मंदिर के कर्मचारी रिश्वत में चावल छीन लेते हैं । वानर सेना द्वारा अयोध्या लौटने के बाद घाव दिखाकर मुआवजा लेना, श्वम स्वतंत्रता सग्राम सेनानियों की क्षुद्रता बताता है । अन्योक्ति शैली तो व्यंग्य-संधान के लिए बहुत उपयुक्त रही है । पशु-पक्षियों के बहाने या अन्य कथा सूत्रों के बहाने अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार करना व्यंग्यकारों को प्रिय रहा है । संगत उपमान, संगत साम्य, संगत रूपक तथा संगत विशेषणों की अप्रस्तुत रूप में योजना की जाती है । अंधों का हाथी नामक नाटक स्वातंत्रयोत्तर भारतीय जांच व्यवस्था और आमजन की समस्याओं पर प्रतीक दृष्टि अपनाते हुए अदिवतीय प्रभाव की सर्जना करता है । रेखाचित्र शैली किसी घटना या व्यक्ति का चित्र खींचने में प्रयुक्त होती है । जहां तक प्रतीकों का प्रश्न है जनता कभी बकरी या भेड़ की तरह आई है, नेता भेड़िया, सांप की तरह आया है, शोषक गिद्ध की तरह उभरे हैं और शंबूक जैसे पौराणिक पात्र साधारण जन के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत हुए हैं । पुराणों या प्राचीन धर्म ग्रंथों, महागाथाओ की शैली का रूपबंध अपनाते हुए कुछ कृतियां लिखी गई हैं । इनमें समाज के विभिन्न हिस्सों की कमियों को उपहास का पात्र बनाते हुए व्यंग्य की सोद्देश्यता बनाए रखने का प्रयास किया गया । जैसे शिक्षा क्षेत्र पर अशोक शुक्ल ने प्रोफेसर पुराण लिखा । पुरुषोत्तम अनासक्त ने भोंदू पुराण लिखा । लेकिन एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रयोग किया आबिद सुरती ने काली किताब के रूप में । इसमें बाइबल का रूपबंध अपनाया गया था । शिल्प मामले में श्रीलाल शुक्ल का एक प्रयोग है - दया और बदर की कहानी, एक रिसर्च स्कॉलर की जुबानी । इसमें फुट नोट देने की छद्म रिसर्च परंपरा का जबर्दस्त मजाक उड़ाया गया है ।

अब स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य व्यंग्यकारों में शिल्प कौशल को लेकर विकसित एक और विचार का उल्लेख करना उपयुक्त होगा । श्यामसुंदर घोष ने एक उपन्यास लिखा- एक उलूक कथा । इसे उन्होंने व्यंग्य तंत्र कहा है । उनके अनुसार यह पंचतंत्र के वजन पर गढ़ा गया माना जा सकता है ।

व्यंग्य की शिल्प योजना में शब्द-योजना और वाक्य-विन्यास की विशिष्टता के साथ तीन प्रमुख तत्व हो सकते हैं -

1. पात्र 2. संवाद 3. वातावरण

प्रहार योग्य पात्र, प्रहारक एवं विसंगति खोलने वाले संवाद एवं अंतर्भूत सत्यों को उद्घाटित करते हुए की गई वातावरण सृष्टि इसका आधार बनते हैं । समाज के विभिन्न वर्गों से पात्र आते हैं । व्यंग्य- लेखन में इन पात्रों का नामकरण भी विशिष्ट उद्देश्य योजना से होता है । संवादों को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि वे स्वयमेव पात्र में निहित व्यंग्य-भूमि को उद्घाटित करने में सहायक हो जाएं । वातावरण की सृष्टि तो बहुत बड़ा तत्व होती है ।

यहां कसक व कुरु कुश स्वाहा के विख्यात शैलीकार मनोहर श्याम जोशी के अनूठे शिल्प प्रयोग नेताजी कहिन से नेताजी का एक संवाद उद्धत करके समापन करना उपयुक्त होगा जो आजादी के बाद के वातावरण को चित्रित करने में व्यंग्यशक्ति के भाषाई उपयोग का अन्यतम उदाहरण है । नेताजी अपने दिन की उपलब्धियों पर कह रहे हैं -

आज दिहाड़ी अच्छी रही । दो -चार सउदों की प्रलय-मनरी बातचीत हुई गयी । मयडम के साथ फोटू उतर गया । कस्बा लयवल की पाल्टक्स में वाहूं का महात्म हय । हअरे वहां तो कोई निट्ठला वकील-उकील टाइप टूर पर आए सयन्टर के किसी मनस्टर से चिपक लेता यह फोकट में, तो बाद में यही कहि-कहि से जिनगी बनाय लेता यह कि मन्त्रीजी बुलाये हैं, हम दिल्ली जाय रहे हैं । कउनो सेवा होय तो बतायी जाए ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य व्यंग्य का शिल्प कौशल इन दिल्ली के सौदों तथा दिल्ली के सेवाकाक्षियों का पर्याप्त मान-मर्दन कर सका है, यही तो उसकी सफलता है ।

बोध प्रश्न - 2

1. समाचारपत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य के कौन से रूप साधारणत: नजर आते हैं ।
2. व्यंग्य की भाषा की तीन प्रमुख विशेषताएं बताइए ।
3. व्यंग्य की शैलियों को संक्षेप में बताइए ।

18.7 जनसंचार- माध्यमों में व्यंग्य- लेखन का स्वरूप और महत्व

आजादी के बाद की परिस्थितियां अपने भीतर एक खास तरह की चुनौती लेकर आई थी, लेखक को लेखन के सरोकार में तो पाठकों से उसके रिश्वतों में बदलाव अपेक्षित था । गद्य और पद्य दोनों गे यह परिवर्तन दिखाई दिया, विशेष रूप से साहित्य की भाषा पर उसका प्रभाव पड़ा। नई मजबूरी बिंब और शैलियां बनीं, आज जो भाषा है वह पहले की भाषा से कई मायनों में अलग है जैसे आज हम 'बालक जल क्रीडा कर रहे हैं' जैसे व्यंग्यों का उपयोग सामान्यत: नहीं करते बल्कि हास्यजनक परिस्थितियों के लिए इसका उपयोग हो सकता है । साक्षरता के क्रमिक विकास के बाद लेखन, मनोरंजन या धर्म ध्यान के बाद आगे बढ़कर सामाजिक चेतना के लिए ज्यादा प्रतिबद्ध होने लगा । देवकीनंदन खत्री-जैसे रचनाकारों का प्रकाशित साहित्य लोकप्रियता और भाषा-प्रसार का माध्यम बना, प्रेमचन्द-युग

तक आते हुए हिन्दी के गद्य में तात्विक परिवर्तन आया । आज समाचारपत्रों की संख्या और उनकी अपेक्षाओं की संख्या हजारों गुना बढ़ गई है । सूचना क्रांति हुई है । इसका कारण टेलीविजन के कई चैनल केवल के माध्यम से गांव-गांव तक पहुंच रहे हैं । नई से नई राजनीतिक जानकारी, दुर्घटनाओं की सूचनाएं तथा उपभोक्ता वस्तुओं का प्रचार सब कुछ दूरस्थ गांवों में भी पहुंच गया है । इस प्रकार क्लिंटन के बारे में या सद्दाम हुसैन के बारे में दूर्दूर तक सूचनाएं उपलब्ध हैं । सूचना का यह रिश्ता नए-नए रूप लेता जाता है । आम जन को व्यवस्था के विद्रूप के बारे में जानकारी तो मिलती ही है साथ ही उसकी प्रतिक्रिया भी तीव्र होती है । जनसंचार-माध्यम उसके दैनिक जीवन का अभिन्न अंग हो गए हैं । जब वे संसद में जन- प्रतिनिधियों के बीच मारपीट देखते हैं या अखबारों में किसी मुख्यमंत्री या विधायक के भ्रष्टाचार, कदाचरण आदि के मामले पढ़ते हैं तो सहज ही उसकी तरफ निराशा और क्रोध की मिलीजुली भावना प्रकट होती है । व्यंग्य की परपरा का विवेचन करते समय हम इस बात पर विचार करते हैं कि उसकी सामाजिक सोद्देश्यता कितनी महत्वपूर्ण है । उसकी भाषा शैली आम पाठकों को अपनी तरफ खींचती है तथा यदि वह सस्ते विनोदात्मक मूल्यों से बचा रह सके तो ये व्यंग्य समाज-सुधार के प्रबल साहित्यिक हथियार सिद्ध. होते हैं, । इलेक्ट्रॉनिक-मीडिया पर हास्य- धारावाहिकों का प्रचार-प्रसार हो रहा है । इनमें से कुछ ही जीवन की विसंगतियों को यथार्थ रूप में सामने रख पाते हैं अन्यथा ये फूहड़ मजाक बनकर रह जाते हैं । शरद जोशी ने 'यही है जिन्दगी' नामक सीरियल से एक सोद्देश्य शुरुआत की थी जिसमें मध्यम-वर्गीय विडंबनाओं का चित्रण था । ककाजी कहिन और मुंगेरीलाल के हसीन सपने, उल्टा-पुल्टा आदि जैसे सीरियल क्रमश: राजनीतिक और सामाजिक विद्रूप को भी केंद्र में लेते थे किंतु ऐसा शायद ही हुआ है कि यस मिनिस्टर जैसे व्यंग्य धारावाहिक की हमारे यहां जगह मिली हो । यह एक किस्म की चुनौती है और इसे लेखकों को स्वीकार करना चाहिए । चूंकि दूरदर्शन एक सरकारी माध्यम रहा है इसलिए निश्चित ही व्यवस्था विरोधी व्यंग्य की उसमें सीमाएं थीं । हरिशंकर परसाई के उपन्यास रानी नागफनी की कहानी का रूपान्तरण एक धारावाहिक में किया गया पर वह असर नहीं छोड़ सका । मनोहरश्याम जोशी लिखित धारावाहिक 'नेताजी कहिन' अपने समय में चर्चित व्यंग्य सीरियल था । शरद जोशी लिखित धारावाहिक भी प्रसारित हुआ था । जब निजी चैनलों का अस्तित्व सामने आया है तब उपभोक्ता बाजार की महत्ता भी स्पष्ट होने लगी है । इसकी अपनी सीमाएं होती है और अपने खतरे होते हैं । निजी चैनलों की अपेक्षीकृत अधिक स्वतंत्रता के बावजूद उसका उपयोग हल्के-फुल्के मनोरंजन से ऊपर नहीं किया जा रहा. है । इसके विपरीत पत्र-पत्रिकाओं के संसार के व्यंग्य का महत्व और पाठकीय लोकप्रियता बढ़ती चली गई हैं ।

पाठक के साथ व्यंग्यकार का रिश्ता एकदम सजीव होता है । खासतौर पर स्तंभ के रूप में व्यंग्य- लेखन में ताजा मुद्दे होते हैं और चर्चित व्यक्तित्व भी । इससे तिलमिलाहट तथा प्रतिक्रिया तुरंत मिलती है । व्यंग्य की प्रहारात्मकता से विसुब्द पात्र कमी -कभी व्यक्तिगत हमला कर बैठते हैं । हरिशंकर परसाई पर हुआ हमला इसका प्रमाण है । रचनाकार पर ऐसे कई खतरे होते हैं । अजातशत्रु अपने एक अनुभव के बारे में लिखते हैं, 'बयान जारी है ' 'उल्लास विकास' दैनिक (उल्लास नगर) में एक स्तंभ के रूप में शुरू हुआ था । उसे लेकर बाद में कुछ ऐसा बवाल मचा कि चार किश्तों के बाद अखबार के मालिक ने स्तंभ को बंद करा दिया और ह्यूमर (हल्का-फुल्का हास्य) ही लिखता रहने पर जोर दिया । ह्यूमर से अर्थ संपादक-मालिक की लतीफेनुमा रचना वाली मांग है, जो व्यंग्यकार का अभीष्ट है ही नहीं । ऐसे में पाठकों में लोकप्रिय व्यंग्य-स्तंभों का महत्व अपने आप उभरकर सामने आता है । अपनी-

अभिव्यंजना शक्ति का उपयोग तथा तात्कालिक मुद्दे को उठाकर उसे एक पूरी की पूरी समकालीन सामाजिक सभ्यता और परम्परा के समान्तर परीक्षित कर डालना कोई मामूली बात नहीं है ।

पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर स्तंभ लेखन के जरिए हरिशंकर परसाई तथा शरद जोशी ने पाठकीय चेतना बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । सामयिक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय तथा सामाजिक घटनाओं पर उन्होंने सटीक व्यंग्य-टिप्पणियां दी हैं । व्यंग्य के प्रति समीक्षक दुविधा में पड़े रहे हैं । लेकिन इस बारे में परसाई ने स्वयं कहा है -व्यंग्य लेखन एक गंभीर कर्म हैं । सवाल यह है कि कोई लेखक अपने युग की विसंगतियों को कितने गहरे में खोजता है । उस विसंगति की व्यापकता क्या है और वह जीवन में कितनी अहमियत रखती है । सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है । वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है । अपने से साक्षात्कार कराता है । चेतना में हलचल पैद करता है और जीवन में व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, असामंजस्य और अन्याय से लड़ने के लिए उसे तैयार करता है ।

लेखन, लेखक और पाठकीय लोकप्रियता के तत्व को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी जगत में अपने रचना-पाठ के जरिए नया आयाम देने और सस्ती हास्यप्रियता के ऊपर सार्थकता की स्थापना करने वाले शरद जोशी की टिप्पणी इस सन्दर्भ में और उपयुक्त होगी । । उन्होंने कहा था- व्यंग्य की ओर पिछले सालों से कुछ तालुब से इसलिए देखा जा रहा है कि व्यंग्यकारों ने अपनी रचनाओं को हिन्दी साहित्य के अर्थ में साहित्य होने से बचाया है, ताकि वह अधिक सार्थक, प्रभावशाली और व्यापक हो सके । व्यंग्यकारों को यह कहते हुए शर्म महसूस नहीं होती कि वे एक बड़े पाठक वर्ग द्वारा पढ़े और सराहे गए हैं । यही हमारी कोशिश थी जिसमें हम सफल रहे ।

हरिशंकर परसाई ने चरित्रों, प्रवृत्तियों, घटनाओं तथा दैनिक जीवन के अंतर्विरोधों के साथ व्यवस्था की विसंगतियों को उतनी ही गहराई के साथ रचनाओं में विश्लेषित किया । एक वैकल्पिक व्यवस्था की तरफ वे लगातार संकेत करते रहे और इस तरह आस्थामूलक लेखन करके उन्होंने व्यापक स्तर पर स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी पाठक को प्रभावित और दीक्षित किया । जहां विषयों की विपुलता परसाई के लेखन में है शिल्प की विपुलता शरद जोशी के रचनाकर्म में है । व्यंग्य के तमाम विषय परसाई ने उठाए और शिल्प की सारी संभावनाओं का दोहन जोशी ने किया । श्रीलाल शुक्ल के शेष समस्त अवदान के बावजूद उनका 'रागदरबारी' अप्रतिम व्यंग्य उपन्यास है और आजादी के बाद, आदि से अंत तक व्यंग्य में लिखी गई कोई महारचना उसके कद तक शायद ही पहुंचती हो । नरेन्द्र कोहली में विविधता है, रवीन्द्रनाथ त्यागी में शैली की सरसता है और मनोहरश्याम जोशी अद्भुत तक्नीक के स्वामी हैं । के. पी. सक्सेना के लखनवी हास्य या बरसानेलाल चतुर्वेदी के बनारसी हास्य के मुकाबले शुद्ध व्यंग्य लेखन की सोद्देश्यता और प्रतिबद्धता का लंबा लेखा-जोखा सामने रखा जा सकता है । दैनिकों -साप्ताहिकों के व्यंग्य-स्तंभों की हैसियत सामयिक पत्रकारिता से उठाकर परिवर्तनकामी साहित्य तक ले जाने में व्यंग्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । यह और बात है कि व्यंग्य की निरन्तर बढ़ती पाठकीय लोकप्रियता के दबाव में छद्म व्यंग्य लेखन या फैशनेबुल अथवा नकली लेखन की बाढ़ भी आई है । दूसरी तरफ व्यंग्य के पात्रों की संख्या और विषयों की जटिलता की चुनौती के प्रति अस्सी के दशक के नव व्यंग्यकारों मे अपेक्षित सतर्कता और तेजी नहीं दिखाई दी हैं । हिन्दी की प्रथम श्रेणी की व्यावसायिक पत्रिकाओं के पतन के बाद साहित्य के पाठकों को लेकर एक बहस चली है । जहां तक दैनिकों का सवाल है, उनका प्रसार अस्सी के दशक में बहुत ऊपर गया है । इन दैनिकों में साहित्य की स्थिति वैसी ही है, जैसी हो सकती है यानी जैसे दूरदर्शन या फिल्म पर एक पृष्ठ दिया जाता है,

साहित्य का भी पृष्ठ होता हैं । परन्तु विसंगतियों के प्रति बेचैनी बहुत बढ़ी है और इसके मद्देनजर प्रतिदिन हल्की-फुल्की हास्य-व्यंग्य टिप्पणी दिए जाने का प्रचलन शुरू हो गया है । यही नहीं 'तीसरे संपादकीय ' की जो अवधारणा है उसमें व्यंग्य भाषा का उत्कृष्ट प्रयोग किया जा रहा है । इस तरह, व्यंग्य के पाठक बहुत हैं और उसकी लोकप्रियता, उसकी शक्ति बन सकती है, बशर्ते लेखन में दृष्टि व प्रतिबद्धता हो । यों हिन्दी गद्य में व्यंग्य की वर्तमान स्थिति ठहराव की है जिसमें कुछेक अपवादों को छोड़कर नए शिल्प प्रयोगों अथवा भाषाई मुहावरे की सर्जना के प्रयास कम ही दिखाई देते हैं किन्तु पृष्ठभूमि में स्वातंत्र्योत्तर प्रतिनिधि व्यंग्य-लेखन की बहुत उत्कृष्ट परंपरा हमारे साथ है । यह हमारे समय का सर्वाधिक प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करती है ।

व्यंग्य का मुहावरा अपनी प्रहारात्मकता के लिए वर्तमान समय में सर्वाधिक संगत है । यह प्रहारात्मकता चूंकि विसंगतियों की ओर इंगित करने और नैतिक आदर्शों के पैमाने को साथ लेकर चलती है इसलिए इसे समाज के बड़े समूह को अपनी ओर खींच लेने की तार्किकता प्राप्त है । भाषा के स्तर पर यह जड़ीभूत और अजनबी लगने वाला रूप नहीं है । चूंकि सतर्क भाषाई खेल, विसंगतियों को उजागर करने में सहायक हो सकता है तथा विसंगतियां हास्य की एक धारा को भी उपजा सकती हैं इसलिए लोकप्रियता के तत्व इसमें हैं । वस्तुत: अपने पूरे रचाव में व्यंग्य-लेखन, इस तरह स्तरीयता, लोकप्रियता और सोद्देश्यता की सारी अनिवार्यताएं सहज रूप से लेकर चलता है । अत: बोधगम्यता और सोचने के लिए मजबूर कर देने वाला कथन जनता में परिवर्तनकारी माहौल बनाने के लिए नितांत उपयुक्त उपकरण होगा ।

बल्कि यों कहना चाहिए कि व्यंग्य मौजूदा समय में, व्यंग्य-स्तंभों के जरिए समाचारपत्र-पत्रिकाओं की अनिवार्यता है तो इसलिए कि भागते जीवन की तेजी से घट रही विसंगतियों पर तत्काल प्रतिकूल होने की अपेक्षा की जा रही है । इसलिए दो प्रमुख बातें देखने में आ रही हैं । एक तो नियमित व्यंग्य-टिप्पणी का सम्पादकीय पृष्ठ पर स्तंभ तथा सम्पादकीय अग्रलेखों में एक अग्रलेख व्यंग्य टिप्पणी की भाषा को आत्मसात करता हुआ । यह उस पाठक से प्रतिकृत होने का, उसकी अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति का दबाव है । लेखक या पत्रकार की तल्ली समाचार-कथा-लेखन में भी दिखाई दे रही है और राजनीतिक विश्लेषण वाले स्तंभों में भी । चूंकि अधिकांश पात्र, विसंगतियों के जनक ही हैं, अपनी बात स्पष्ट करने के लिए व्यंग्य भाषा का उपयोग कलमकार अनुकूल पा रहे हैं । राजनीतिज्ञों में भ्रष्टाचार बढ़ रहा हैं तो चुटीले व्यंग्य बाणों के प्रयोग भी उनके ही वक्तव्यों में बढ़ गए हैं । वे व्यंग्य के पात्र हैं, किन्तु वे ही व्यंग्य की भाषा बोलते हैं । सामयिक लेखन और शाश्वत लेखन की परंपरागत नोंक-झोंक अभी लगभग दायरे से बाहर है क्योंकि जीवन की गति और विसंगतियों की गति से व्यंग्य का तालमेल अपेक्षित, अनिवार्यता है । व्यंग्य राजनीतिक, सामाजिक मोर्चे पर सार्वजनिक जीवन में सक्रिय लोगों के क्रियाक्लापों के प्रति जनभावना को अभिव्यक्त करने का माध्यम बन गया है । मौजूदा परिस्थितियों में पहली प्राथमिकता यह है ।

इस पूरे परिदृश्य में व्यंग्य की जवाबदेही और जिम्मेदारी दोनों बढ़ गई हैं । क्योंकि, जब विसंगतियां तथा अनैतिकताएं चरम पर होती है तो वे स्वयं अपना शस्त्र बना लेती हैं । इस स्थिति के आने पर, जिन पर प्रहार किया जाता है वे भी हंसते हैं और इस आलोचना का आनंद लेकर प्रहारक के वास्तविक उद्देश्य को नष्ट करने की कोशिश में सफल हो सकते हैं । यह सवाल उठा भी है कि जब संवेदनशीलता इतनी घट गई है कि घोटालों में आकंठ डूबे मंत्रियों तथा अपराधियों से सांठगांठ करके

खुले आम अनैतिकताओं में लिप्त राजनेताओं, अफसरों, पूंजीपतियों की तिकड़ी का कुछ नहीं बिगड़ता तो लिखने से क्या होगा?

परसाई ने कहा है कि व्यंग्यकार क्रांतिकारी नहीं होता, वह आंदोलन नहीं चलाता, लेकिन परिवर्तन के लिए चेतना जगाने का काम करता है । शरद जोशी को इसमें कोई असहायता नजर नहीं आती थी यदि शोषक सेठ उस पर लिखे गए व्यंग्य लेख का आनन्द लेता है, अपितु उनका विचार था कि जिनके पक्ष में लिखा जा रहा है उन तक अपनी पक्षधरता पहुंचाने का काम यदि लेखक ने सही-सही कर दिया है, तो यही उसकी कर्त्तव्य-सफलता है । किट्ठू पूछते हैं, ।स्थितियां बदल नहीं रहीं तो हम आत्महत्या तो नहीं कर लेंगे । जब ऐसा नहीं किया जा सकता तो लिखना बे - असर मानकर व्यंग्य लेखन कैसे स्थगित किया जा सकता है? शकर पुणतांबेकर कहते हैं, फूल अपनी सुगंध से ध्यान आकृष्ट करते हैं, वे दुर्गंध दूर नहीं कर पाते इसलिए खिलना तो नहीं छोड़ देते । अजात- शत्रु के अनुसार, जो संगठित बुराई है, यह तो संगठित विद्रोह से ही उखड़ेगी । इसलिए आज व्यंग्यकार के सामने व्यंग्य लिखने से भी बड़ा प्रश्न यह है कि वह वातावरण कैसे बनाए? इसके लिए जरूरी है समूह भाषा में लेखन और फिर उस भाषा दारा विचार करने के पीछे विचार सत्य रखने की शैली । जैसे अगर यह कहा जाए कि 'हे आदमी, तू पत्थर की पूजा मत कर' तो यह वाक्य शायद उतना ही विचलित नहीं करता, परन्तु जब कबीर ने कहा कि अगर पत्थर की पूजा से भला होता है, तो मैं चक्की की पूजा करूंगा, जिससे पीस खाए संसार-तो यह तर्क सीधा दिमाग पर दस्तक देता है । यानी, सोचने पर मजबूर करता है । जनता जब भीतर से सोचने -जानने -समझने लगती है तब आक्रोश पुंजीभूत होता है । सच्चाई यह है कि विचार और उनका प्रचार भविष्य को एक निश्चित रूप देते है, और इस भविष्य से सरकारें डरती हैं । चूंकि वैसा भविष्य उसके सदस्यों के खिलाफ होता है । अत: लेखन को हथियार बनाना है तो उसके इतर आग्रहों पर भी ध्यान देना जरूरी है । लेखकीय ईमानदारी इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

व्यंग्य-लेखन के सामने निरंतर एक चुनौती है । विचारधारा के स्तर पर राजनीतिक तंत्रों की स्थिति असमंजस की है । समाजों की दिशाएं अपने अतीत के खौफ चुनकर चाकुओं से लिखने की कोशिशें की जा रही हैं । इंटरनेट पर पूरा विश्व एक दूसरे से जुड़ गया -है लेकिन गांवों में अभी भी कुछ औरतें नंगी घुमाई और जिन्दा जलाई जाती हैं ।

व्यंग्य-लेखन का भावी परिदृश्य इन्हीं चुनौतियों के स्वीकार- अस्वीकार करने से बनेगा । उल्लेखनीय है कि मुख्य धारा का शेष लेखन और पत्रकारिता अपनी भाषा तथा चुनाव में व्यंग्य अपना रही हैं । इस दृष्टि से देखा जाए तो शुद्ध व्यंग्य का स्तर भले ही निराशाजनक हो, व्यंग्य की स्पिरिट पूरे उत्कर्ष पर है । अभिव्यक्ति के स्तर पर व्यंग्य केंद्र में है तो किसी खास रूपाकार में व्यंग्य- लेखन की नई जमीन न टूटने की बात करना परस्पर विरोधी भी लग सकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि व्यंग्य इस सदी का मूल स्वर बनने जा रहा है । हिन्दी गद्य के अन्तर्गत जो भी लिखा जा रहा है, वह व्यंग्य की संप्रेषण- शक्ति को आत्मसात करके ही लिखा जा रहा है ।

कथाकार ज्ञानरंजन ने नीत्शे के हवाले से कहा है कि रचनाकारों को अपने घर ज्वालामुखी के करीब बसाने होंगे ताकि उनके संघर्ष का कोई अर्थ हो और मान हो । हमारी रचनात्मक उपलब्धियां ऐसी हों कि आम आदमी को लगे कि रचना उनके पक्ष में खड़ी हो सकती है ।

18.8 सारांश

व्यंग्य-रचना व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की विसंगतियों, दोगलेपन और झूठे आडंबर की बखिया उधेड़ देती है । इस नाते वह परिवर्तन का जनता का हथियार भी है ।

व्यंग्य किसी विशेष रूप का मोहताज नहीं होता । जैसे कार्टून रेखाओं के द्वारा अपनी बात कह जाता है उसी प्रकार व्यंग्य-लेखक, निबंध लिखे या कहानी, उपन्यास लिखे या नाटक अथवा समाचार पत्र का स्तंभ- वह अपनी बात प्रभावपूर्ण ढंग से कह जाएगा ।

व्यंग्य-रचना में लेखक शब्दों का उपयोग और संयोजन इस का से करता है कि अभिप्रेत अर्थ ध्वनित हो वह भाषा को नए अर्थ से अभिषिक्त करके लक्ष्य तक पहुंच जाता है । व्यंग्यकार अपने विषय को ऐसी भंगिमा में प्रस्तुत करता है कि वह हमारी चेतना को एक झटका दे जाती है । ध्वन्यार्थ और व्यंजना व्यंग्यकार की भाषा का सबसे धारदार हथियार है ।

18.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. परसाई रचनावली-खंड 1 से 6/सम्पादक : कमलाप्रसाद, धनंजय वर्मा, श्यामसुन्दर मिश्र, मलय, श्याम कश्यप /राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली/1985
2. तुलसीदास चंदन घिसै / हरिशंकर परसाई / राजकमल, नई दिल्ली /,86
3. यथा संभव / शरद जोशी / भारतीय ज्ञानपीठ : दिल्ली /1986
4. प्रतिनिधि व्यंग्य / हरिशंकर परसाई / राजकमल, दिल्ली /1985
5. शरद जोशी : एक यात्रा / सं. शशि मिश्र / किताब घर, दिल्ली
6. प्रतिनिधि व्यंग्य / रवीन्द्रनाथ त्यागी / राजकमल, दिल्ली /1989
7. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं / श्रीलाल शुक्ल, / ज्ञान भारती, दिल्ली /1977
8. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं / अमृतराय / ज्ञान भारती, दिल्ली ,/ 1977
9. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं / बरसानेलाल चतुर्वेदी / ज्ञान भारती, दिल्ली / 1977
10. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं / नरेन्द्र कोहली / ज्ञान भारती, दिल्ली / 77
11. कुछ जमीन पर, कुछ हवा में / श्रीलाल शुक्ल / राजकमल, दिल्ली / 1990
12. परेशानियां / नरेन्द्र कोहली / किताब घर, दिल्ली
13. रागदरबारी / श्रीलाल शुक्ल / राजकमल पेपर बैक्स / 1991
14. दो व्यंग्य नाटक / शरद जोशी / राजकमल / 1979
15. मेरी श्रेछ रचनाएं / शरद जोशी / ज्ञान भारती / 1977
16. श्रेस व्यंग्य कथाएं / संपादक कन्हैयालाल नंदन / पराग प्रकाशन, दिल्ली / 1976
17. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं / विवेकी राय / ज्ञान भारती, दिल्ली / 1977
18. कुरु कुरु स्वाहा / मनोहरश्याम जोशी / राजकमल पैपर बैक्स / 1986
19. चोरी न होने का दुख / लतीफ घोंघी / इन्द्रप्रस्थ, दिल्ली / 1984
20. नेताजी कहिन / मनोहरश्याम जोशी / राजकमल पेपर बैक्स, / 1986
21. शंबूक की हत्या / नरेन्द्रकोहली / विवेक प्रकाशन, दिल्ली / 1975

22. आधी वैतरणी / अजातशत्रु / सत्साहित्य, दिल्ली / 1989
23. अजगर करे न चाकरी / सूर्यबाला / भारत प्रकाशन, दिल्ली / 1989
24. अश्वमेध / लक्ष्मीकांत वैष्णव / राजकमल, दिल्ली / 1989
25. मुर्दानामा / लतीफ घोंघी /इन्द्रप्रस्थ, दिल्ली / 1984
26. चरचे और चरखे / सर्वेश्वरदयाल सक्सेना / राजकमल, दिल्ली / 1986
27. राग मिलावट मालकौस / रवीन्द्र कालिया / लोक भारती, इलाहाबादा / 1985
28. भरतपुत्र नौरंगीलाल / अमृतलाल नागर / राजपाल, दिल्ली / 1982
29. तेल की पकौड़िया / प्रभाकर माचवे / वाराणसी / 1962
30. एक और पंचतंत्र / रमेश बक्षी / आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली / 1998
31. विजिट इंडिया / अमृत राय / दिल्ली / 1984
32. उत्तर उर्वशी / हमीदुल्ला / दिल्ली / 1979
33. पदयात्रा / रवीन्द्रनाथ त्यागी / नेशनल, दिल्ली1985
34. पहला पड़ाव / श्रीलाल शुक्ल / संभावना, हापुड़ / 1979
35. यह घर मेरा / श्रीलाल शुक्ल / संभावना, हापुड़ / 1979
36. 'ब' से बैंक / सुरेश कांत / दिल्ली / 1980
37. बेशर्ममेव जयते / प्रेम जनमेजय / पराग,दिल्ली / 1982
38. बागपत के खरबूजे / हरीश नवल / भारतीय ज्ञानपीठ / 1987
39. नरक यात्रा / ज्ञान चतुर्वेदी / राजकमल, दिल्ली / 1994
40. सिद्ध साहित्य / धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद / 1955
41. आंखन देखी / सं. कमला प्रसाद / वाणी, दिल्ली / 1981
42. एशियन ड्रामा / गुन्नार मिर्डल / दिल्ली / 1972
43. एक व्यंग्य यात्रा : शंकर पुणतांबेकर / आलोक सांस्कृतिक अकादमी, जलगांव / 1987
44. सूखे का मंगल गान /जवाहर चौधरी /दिशा, दिल्ली / 1991
45. शिवशंभू के चिट्ठे /बालमुकुंद गुप्त / राजकमल पैपर बैक्स / 1988
46. उत्तर नेहरू चीरतम / फणीश्वरनाथ रेणु / राजकमल, दिल्ली / 1987
47. जो सहमत हैं सुनें /यशवंत व्यास /म.प्र. साहित्य परिषद / 1984
48. हास्यरस / जी.पी. श्रीवास्तव /,गंगा ग्रंथागार, लखनऊ / 1934
49. हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक साहित्य / डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित /अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ / 1947
50. हास्य की रूपरेखा / डॉ. एस. पी. खत्री / हिन्दी प्रचारक पुस्तकालया / वाराणसी / 1956
51. हिन्दी साहित्य में हास्यरस / डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी /हिन्दी साहित्य संसार, नई दिल्ली / 1957
52. हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य / डॉ. प्रेमनारायण टडन / हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ / 1967
53. हिन्दी नाटकों में हास्य तत्व / ,डॉ. शाता रानी / रानी प्रकाशन / इलाहाबाद / 1969

54. आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य / डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी / प्रभात प्रकाशन / दिल्ली / 1973
55. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता / डॉ. शेरगंज गर्ग / साहित्य भारती / दिल्ली / 1973
56. आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य / डॉ. वीरेन्द्र मेहंदीरत्ता / रिसर्च पब्लिकेशन, हई दिल्ली / 1976
57. व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न / डॉ. शेरगंज गर्ग / सामीयक प्रकाशन / नई दिल्ली / 1976
58. हिन्दी नाट्य साहित्य में हास्य-व्यंग्य / डी. सभापति मिश्र / साहित्य रत्नालय, कानपुरा / 1977
59. प्रसाद के नाटकों में हास्य-व्यंग्य / डॉ. प्रेम जन्मेजय / उषा साहित्य सदन, दिल्ली / 1977
60. हिन्दी की हास्य व्यंग्य विधा का स्वरूप और विकास / डॉ. इन्द्रनाथ मदान / हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद / 1978
61. हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य / डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी / अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर / 1978
62. आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप /डॉ. छविनाथ मिश्र / क्लासिकल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली / 1979
63. व्यंग्य क्या व्यंग्य / डॉ. श्यामसुन्दर घोष / प्रभात प्रकाशन, दिल्ली / 1983
64. व्यंग्य का सौन्दर्यशास्त्र / डॉ. मलय / साहित्यवाणी, इलाहाबाद / 1983
65. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबंद साहित्य में व्यंग्य / उषा शर्मा / आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली / 1985
66. हरिशंकर परसाई की दुनिया / डॉ. मनोहर देवलिया / साहित्यवाणी, इलाहाबाद / 1985
67. भारतीय हास्य-व्यंग्य कोश / डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी / किताबघर. दिल्ली / 1987
68. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबंध और निबंधकार / डॉ. बापूराव देसाई / चिंतन प्रकाशन, कानपुर / 1987

18.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. हाल के प्रमुख व्यंग्यकारों और उनकी विशेषताओं का वर्णन करें ।
2. आप जो पत्र-पत्रिकाएं पढ़ते हैं उनमें प्रकाशित व्यंग्य रचनाओं का स्वरूप (निबंध, स्तंभ, कहानी आदि) की दृष्टि से वर्गीकरण करें ।
3. व्यंग्य रचनाकारों की भाषा और भंगिमा पर निबंध लिखे ।

Notes

Notes

Notes

विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की सूची

	पाठ्यक्रम का नाम	अवधि
1.	स्नातक उपाधि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
2.	भोजन एवं पोषण में सर्टिफिकेट	6 माह
3.	कम्प्यूटर ज्ञान एवं प्रशिक्षण का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
4.	सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटिंग	6 माह
5.	पंचायती राज प्रोजेक्ट में प्रमाण-पत्र	6 माह
6.	संस्कृति एवं पर्यटन में प्रमाण-पत्र	6 माह
7.	महिलाओं में वैद्यानिक बोध में प्रमाण-पत्र	6 माह
8.	राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति में प्रमाण-पत्र	6 माह
9.	बी.ए.एफ./बी.सी.एफ. (त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम)	1 वर्ष
10.	एम.ए.(अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, हिन्दी)	2 वर्ष
11.	एम.बी.ए.	3 वर्ष
12.	पी.जी.डी.एच.आर.एम.	1 वर्ष
13.	पी.जी.डी.एफ.एम.	1 वर्ष
14.	पी.जी.डी.एम.एम.	1 वर्ष
15.	पी.जी.डी.एल.एल.	1 वर्ष
16.	टी.एच.एम.	1 वर्ष
17.	डी.एन.एच.ई.	1 वर्ष
18.	डी.सी.ओ.	1 वर्ष
19.	डी.एल.एस.	1 वर्ष
20.	डी.सी.सी.टी.	18 माह
21.	बी.जे.(एम.सी.)	1 वर्ष
22.	एम.जे.(एम.सी.)	2 वर्ष
23.	बी.लिब.	1 वर्ष
24.	पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा	1 वर्ष
25.	बी.एड.	2 वर्ष
26.	पी.एच.डी.	3 वर्ष
27.	पी.जी.डी.ई.एस.डी.	1 वर्ष



पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन 5

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम. जे. एम. सी. - 1

जनसंचार माध्यमों
के लिए लेखन

पत्रकारिता एवं जनसंचार
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन - 5

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

- **प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा**
  कुलपति
  कोटा खुला विश्वविद्यालय
  कोटा
  (अध्यक्ष समिति)
- **डॉ. ए. डबल्यू. खान**
  कुलपति
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
  नई दिल्ली
- **राधेश्याम शर्मा**
  पूर्व-महानिदेशक
  माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
  विश्वविद्यालय, भोपाल(म. प्र.)
- **डॉ. ओ.पी. केजरीवाल**
  महानिदेशक, महानिदेशालय आकाशवाणी
  नई दिल्ली
- **प्रो. ए.के. बनर्जी**
  पूर्व-अध्यक्ष
  पत्रकारिता विभाग
  बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
  वाराणसी
- **प्रो. जे.एस. यादव**
  निदेशक
  भारतीय जनसंचार संस्थान
  नई दिल्ली
- **डॉ. भंवर सुराणा**
  ब्यूरो चीफ/ विशेष संवाददाता
  दैनिक हिंदुस्तान
  जयपुर
- **डॉ. रमेश जैन**
  अध्यक्ष-जनसंचार विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक

डॉ. रमेश जैन- अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ-संपादक एवं भाषा-संपादक

पाठ-संपादक	भाषा-संपादक
जितेन्द्र गुप्ता	**डॉ. विष्णु पंकज**
वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक	वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार
नई दिल्ली	जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.)एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(अकादमिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन - अप्रैल 2012

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित ।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय

एम. जे. एम. सी. -1

जनसंचार -माध्यमों के लिए लेखन

पाठ्यक्रम - प्रथम

खण्ड - 5

5

इकाई 19 सृजनात्मक लेखन	9–25
इकाई 20 आत्मकथा लेखन	26–49
इकाई 21 रिपोतार्ज लेखन	50–70
इकाई 22 समाचार लेखन	71–89
इकाई 23 संपादन के रूप में लेखन	90–103

पाठ लेखक

1. डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
सहआचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

2. डॉ. कैलाश पपने
विशेष संवाददाता
दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली

3. श्याम माथुर
उप संपादक
राजस्थान पत्रिका
जयपुर

4. सुभाष सेतिया
संपादक 'आजकल'
प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
पटियाला हाउस, नई दिल्ली

5. डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार
जयपुर

6. डॉ.लक्ष्मीकांत दाधीच
प्राध्यापक, वनस्पति शास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय कोटा

7. रामकुमार
पत्रकार, लेखक
कोटा

8. दीनानाथ दुबे
पत्रकार, लेखक
कोटा

9. हमीदुल्ला
हिन्दी नाटककार
जयपुर

10. राधेश्याम तिवारी
जनसंचारकर्मी एवं लेखक
जयपुर

11. डॉ. रीतारानी पालीवाल
रीडर, हिन्दी विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

12. श्रीमती सुषमा जगमोहन
संध्या टाइम्स
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

13. डॉ. सुरेन्द्र विक्रम
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग
क्रिश्चियन डिग्री कॉलेज, लखनऊ(उ.प्र.)

14. सत सोनी
संपादक- संध्या टाइम्स
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

15. डॉ. राधामोहन श्रीवास्तव
अध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग
बड़हलगंज, गोरखपुर(उत्तर प्रदेश)

16. डॉ. रमेश जैन
अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खंड एवं इकाई परिचय

'जन संचार माध्यमों के लिए लेखन ' - 5 में कुछ विशिष्ट विधाओं से आपका परिचय कराया जा रहा है । ये विधाएं हैं -सृजनात्मक लेखन, आत्मकथा लेखन, रिपोर्ताज लेखन । उक्त तीनों विधाएं पत्रकारिता का अभिन्न अंग हैं ।

इसके अतिरिक्त इसी खंड में आपका 'समाचार लेखन' और 'संपादन के रूप में लेखन' विषयक इकाई से भी परिचय कराया जा रहा है । समाचार लेखन और संपादन के रूप में लेखन एक विशिष्ट कला है । जनसंचार पाठवक्रम के विद्यार्थियों के लिए इन्हें जानना आवश्यक है ।

जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन- 4 में आप जनसम्पर्क के लिए लेखन, मुद्रित माध्यमों के लिए समूह लेखन, इलाक्ट्रॉय (रेडियो) माध्यम के लिए समूह लेखन, स्तंभ लेखन एवं व्यंग्य लेखन इकाइयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर चुके हैं ।

हम आशा करते हैं कि जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन की 27 इकाइयों का अध्ययन करने के बाद आप 'जनसंचार लेखन-कला' से अच्छी तरह परिचित हो जाएंगे । साथ ही आप कुशलता एवं सफलता भी प्राप्त करेंगे ।

इकाई 19 सृजनात्मक लेखन का अर्थ एव स्वरूप, विविध आयाम, लेखन एवं राजनीति, सृजनात्मक लेखन का स्थान, सृजनात्मक लेखन और पत्रकार, प्रमुख विधाएं -उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, आत्मकथा और जीवनी, यात्रा वृतांत, शब्द और रेखाचित्र, व्यंग्य, निबंध आदि की विस्तृत विवेचना की गई है ।

यह इकाई आपको सृजनात्मक लेखन में सहायक होगी ।

आत्मकथा लेखन इकाई 20 है । प्रस्तुत इकाई के प्रमुख बिन्दु है - आत्मकथा : अर्थ एवं परिभाषा, आत्मकथा एवं अन्य विधाएं, आत्मकथा लेखन का विकास, आत्मकथा का वर्गीकरण, वर्गीकरण का आधार, रचनागत वैशिष्ट्य, सामग्री चयन, प्रस्तुति एव शिल्प ।

यह इकाई आपको आत्मकथा लेखन के संदर्भ में यथेष्ट जानकारी देगी । इससे आप आत्मकथा एवं जीवनी में अंतर कर सकेंगे ।

इकाई 21 'रिपोर्ताज लेखन' के बारे में है । इस इकाई में 'रिपोर्ताज लेखन' के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है । प्रस्तुत इकाई में रपट, रिपोर्ताज जनसंचार की महत्वपूर्ण विधा, रिपोर्ताज अर्थ एवं परिभाषा, रिपोर्ताज के तत्व, विशेषताएं, हिन्दी रिपोर्ताज का विकास, विकास क्रम, सामग्री चयन, संयोजन, लेखन आदि की विस्तार से चर्चा की गई है ।

यह इकाई जनसंचार के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगी । आज रिपोर्ताज को पत्र-पत्रिकाओं में व्यापक स्थान मिल रहा है । टेलीविजन और रेडियो भी रिपोर्ताज विधा को अपने कार्यक्रमों में संमिलित कर रहे हैं ।

इकाई 22 समाचार लेखन की है । इस इकाई में समाचार लेखन कला का विश्लेषण किया गया है । समाचार क्या है ? समाचार आमुख लेखन, समाचार का विस्तार, समाचार का शीर्षक, समाचार में संवाददाता का नाम, रेडियो, टेलीविजन, नियतकालीन पत्र-पत्रिकाएं आदि बिन्दुओं पर यथेष्ट जानकारी दी गई है ।

'समाचार लेखन' जनसंचार के विद्यार्थियों के लिए महत्वपूर्ण इकाई है । इसमें व्यावहारिक प्रशिक्षण जरूरी है, तभी पारंगतता एव कुशलता प्राप्त की जा सकती है ।

'सपादन के रूप में लेखन' इस खंड की अंतिम इकाई- (23) है । संपादन के रूप में लेखन एक कठिन एव दुरूह कार्य है । इस आसानी से या सरलता से संपन्न नहीं किया जा सकता है । इसके लिए कठोर परिश्रम एव अनुभव की आवश्यकता है ।

इकाई 19 सृजनात्मक लेखन

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 सृजनात्मक लेखन की परिभाषा

19.3 सृजनात्मक लेखन के विविध आयाम

19.4 सृजनात्मक लेखन और राजनीति

19.5 सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता

19.6 आधुनिक पत्रकारिता में सृजनात्मक लेखन का स्थान

19.7 सृजनात्मक लेखन और पत्रकार

19.8 सृजनात्मक लेखन की प्रमुख विधाएं

19.8.1 उपन्यास

19.8.2 कहानी

19.8.3 कविता

19.8.4 नाटक

19.8.5 आत्मकथा और जीवनी

19.8.6 यात्रा वृत्तान्त

19.8.7 शब्द चित्र या रेखाचित्र

19.8.8 व्यंग्य

19.8.9 निबंध

19.9 सारांश

19.10 निबंधात्मक प्रश्न

19.11 उपयोगी पुस्तकें

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- सृजनात्मक लेखन की परिभाषा समझा सकेंगे,
- सृजनात्मक लेखन का दायरा जान जाएंगे,
- सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता का सम्बन्ध समझ जाएंगे,
- सृजनात्मक लेखन और राजनीति का रिश्ता बता सकेंगे,
- पत्रकारिता में सृजनात्मक लेखन का स्थान जान जाएंगे,
- सृजनात्मक लेखन के विविध रूपों को जान जाएंगे।

19.1 प्रस्तावना

सृजनात्मक लेखन पत्रकारिता का अभिन्न अंग है। सृजनात्मक लेखनविहीन पत्रकारिता की कल्पना नहीं की जा सकती है। यदि यह कहा जाए कि सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता एक– दूसरे के पूरक हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जो छात्र–छात्राएं पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं, उनके लिए सृजनात्मक लेखन के बारे में जान लेना आवश्यक हीं नहीं अनिवार्य भी है।

पत्रकारिता का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के अभूतपूर्व प्रसार–प्रचार के बावजूद मुद्रित माध्यमों का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। पत्र– पत्रिकाओं की संख्या और उनकी प्रसार संख्या में इधर काफी बढ़ोत्तरी हुई है। यद्यपि पिछले एक दशक में अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद हो गया, जिनमें दिनमान, रविवार, धर्मयुग, सारिका, माधुरी साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पराग, वामा, चौथी दुनिया, संडे मेल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। दूसरी ओर इसी दौरान दिल्ली प्रेस से प्रकाशित सरिता, गृहशोभा, चंपक, वूमन इरा आदि और राजनीति से जुड़ी इंडिया टुडे, माया और अंग्रेजी की फ्रंटलाइन, द वीक, संडे इत्यादि पत्रिकाओं की प्रसार संख्या में बढ़ोतरी हुई है। पत्र–पत्रिकाओं की प्रसार संख्या में वृद्धि इस बात का प्रमाण है कि दूरदर्शन और आकाशवाणी जीवन के विविध पहलुओं के बारे में जानकारी पाने की पाठकों की जिज्ञासा को शांत करने में विफल रहे हैं और वे प्रतिदिन प्रातः काल समाचार पत्रों की उसी तह प्रतीक्षा करते हैं, जिस प्रकार उन्हें सुबह की चाय की प्रतीक्षा रहती है। इसी तरह हर हफ्ते और पखवाड़े पत्रिकाओं की प्रतीक्षा रहती है। 'प्रेस इन इंडिया, 1997' के अनुसार 'देश भर में विभिन्न भाषाओं की 52 पत्रिकाओं की प्रसार संख्या (हरेक की) एक लाख से पांच लाख तक है।'

स्पष्ट है कि पत्र–पत्रिकाओं से पाठक को जो प्राप्त होता है, वह दूरदर्शन और आकाशवाणी से नहीं मिल पाता। पत्र–पत्रिकाओं में पाठकों को समाचार और समाचार विश्लेषण के अलावा विविध विषयों से संबंधित सृजनात्मक रचनाएं भी पढ़ने को मिलती है, जिससे न सूचना पाने की आवश्यकता पूरी होने के साथ ही उनकी भावात्मक और ज्ञान पिपासा भी शांत हो जाती है। दूरदर्शन अपने दिन भर के कार्यक्रमों में जो विविध सामग्री देता है, उसकी सीमित उपयोगिता होती है। फिर दूरदर्शन के सामने सारे दिन बैठ पाना न तो सम्भव है और न ही स्वास्थ्यप्रद। पत्र–पत्रिकाओं को घर के अलावा कार्य पर जाते समय बस में, कार में और खाली समय में कार्यालय और दुकान में भी पढ़ा जा सकता है।

पत्र–पत्रिकाओं में पाठक को विविध सामग्री एक स्थान पर पढने को मिल जाती है। राजनीति खेल, फिल्म, वाणिज्य, अर्थजगत, साहित्य, कला, संस्कृति, विज्ञान, प्रौद्योगिकी इत्यादि विषयों से संबंधित अपनी रुचि की सामग्री पाठक एक स्थान पर पा सकता है। दूरदर्शन और आकाशवाणी भी अपने दिन भर के कार्यक्रमों में इस जरूरत को एक हद तक ही पूरा कर पाते हैं। पत्र–पत्रिकाओं में पाठक को समाचार विश्लेषण के साथ ही सृजनात्मक लेखन की विविध विधाओं से संबंधित सामग्री भी पढ़ने को मिल जाती है।

19.2 सृजनात्मक लेखन की परिभाषा

सृजन का अर्थ है कुछ उत्पन्न करना, तदनुसार सृजनात्मक लेखन से तात्पर्य ऐसे लेखन से है, जिसमें कुछ ऐसा सृजन किया गया हो, जिस पर लेखक की निजी छाप हो। मूलत : साहित्यिक रचनाएं सृजनात्मक लेखन के दायरे में मानी जाती है। कहानी, उपन्यास, कविता, संस्मरण आत्मकथा, यात्रावृत्तांत, रेखाचित्र, व्यंग्य, ललित, निबन्ध सृजनात्मक लेखन की विभिन्न विधाएं रही है। किन्तु पत्रकारिता विकास के इस चरण में पहुंच गई है जहां उसका एक हिस्सा सृजनात्मक लेखन के दायरे मे आता है। साहित्य, कला, संस्कृति के अलावा राजनीति, फिल्म, खेल, मनोरंजन अर्थ, व्यापार, प्रौद्योगिकी, विज्ञान आदि विषयों पर लिखे गए विश्लेषणात्मक आलेख भी सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र में आते हैं क्योंकि संवेदनशीलता और आत्मीयता के साथ सामाजिक और व्यापक सरोकारों से जोडकर लिखा गया हो।

संक्षेप में, पत्र –पत्रिकाओं में विभिन्न प्रकार के समाचारों और समाचार विश्लेषणों से संबंधित जो लेख, फीचर आदि प्रकाशित होते हैं, वे प्राय : सृजनात्मक लेखन के दायरे में आ जाते हैं। वस्तुतः सृजनात्मक लेखन वह विधा है, जिसके विविध रूपों के माध्यम से लेखक अपने विचार, अनुभव और अन्वेषण को अभिव्यक्ति देता है। प्रसिद्ध साहित्यकार और कथा–पत्रिका 'सारिका' के पूर्व संपादक कमलेश्वर के अनुसार 'घटनाएं नई नहीं होतीं, मानवीय संबंध भी नए नहीं होते, मनोवेग और आंतरिक उद्वेग भी अछूते नहीं होते, पर इन सबकी एक नई दृष्टि से अन्विति ही नया प्रभाव छोड़ती है।' और यह नया प्रभाव ही सृजनात्मक लेखन की कोटि में आता है चाहे वह पत्रकारिता के क्षेत्र में हो या अन्यत्र।

पत्रकारिता में जो सृजनात्मक लेखन होता है, उसका अधिकांश समसामयिक संवेदना से जुड़ा होता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि उसका अतीत और इतिहास से कोई संबंध नहीं होता। 'समसामयिक भी रूपान्तरित होता। स्वस्थ दृष्टि यही प्रतीत होती कि समसामयिक को परम्परा से काटकर न देखा जाए, बल्कि यह माना जाए कि समकालीन संवेदना परंपरा को अग्रसरित करती है। साहित्य सृजन के स्फीत क्षणों में संवेदना अतीत और समसामयिक के बीच भेद करके नहीं चलती' (हिन्दी कहानी : फिलहाल), लेखक : डी. चद्रभान रावत और डी. रामकुमार खंडेलवाल। श्रेष्ठ सृजनात्मक लेखन में समकालीन यथार्थ के साथ अतीत का बोध तथा भविष्य के लिए संदेश भी निहित होता है। फिर वह चाहे उपन्यास हो, कहानी हो, कविता हो अथवा कोई और विधा। समकालीन संदर्भ से जुड़ा सृजनात्मक लेखन ही पाठकों के बीच लोकप्रिय होता है। अतीत की स्मृति का पुट और भविष्य के प्रति संचेतना सोने में सुहागे का काम करती है।

सृजनात्मक लेखन पत्रकारिता का, विशेषकर स्वतन्त्र पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है और रहेगा। पत्र–पत्रिकाओं में विभिन्न क्षेत्रों के समाचारों पर आधारित रचनाएं कितनी भी सृजनात्मक हों, उनकी एक सीमा होती है। वे कहानी, कविता का स्थान नहीं ले सकती। पाठक कुछ ऐसा भी पढ़ना चाहता है, जिसमें पैठकर वह ज्ञान के मोती चुन सके। दूसरे शब्दों में, उसकी वैचारिक क्षुधाको साहित्यिक लेखन ही शांत कर पाता है। इसलिए पत्र–पत्रिकाओं में साहित्यिक रचनाओं को यथेष्ट स्थान दिया जाता है।

19.3 सृजनात्मक लेखन के विविध आयाम

सृजनात्मक लेखन का क्षेत्र अब बहुत व्यापक हो गया है। अब वह साहित्यिक लेखन तक ही सीमित न रहकर ज्ञान–विज्ञान के सभी क्षेत्रों में विस्तार पा गया है। अन्वेषणात्मक पत्रकारिता, आर्थिक पत्रकारिता, विज्ञान पत्रकारिता, संदर्भ पत्रकारिता जैसे विभिन्न क्षेत्र भी सृजनात्मक लेखन के विकासशील दायरे में आ गए हैं। जिस रचना में लेखक का अपना व्यक्तित्व और अनुभव प्रतिबिंबित होता हो, जो मानवीय संवेदना और सरोकारों से युक्त हो, सौम्य शैली प्रस्तुत की गई हो, वह रचना सृजनात्मक लेखन की कोटि में आती है।

साहित्यिक लेखन के द्वारा लेखक समाज को ऐसा बहुत कुछ दे सकता है, जो सम्भवतः पत्रकार नहीं दे सकता और थोड़ा लिखकर भी साहित्य जगत में अमर हो सकता है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी एक या दो कहानी लिखकर ही कहानीकारों के बीच अपना विशिष्ट स्थान बना गए। जब भी हिन्दी कहानी की चर्चा होती है, गुलेरीजी की 'उसने कहा था' कहानी का उल्लेख अवश्य किया जाता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रतिदिन कुछ न कुछ लिखते रहने वाले पत्रकार को साहित्यकार की तरह याद किया जाएगा। जो पत्रकार याद किए भी जाते है उनमें से अधिकतर पत्रकार होने के साथ ही साहित्य सृजक भी होते है। अपने जीवनकाल में अपनी अलग पहचान बना लेने वाले पत्रकार भी बहुधा कालान्तर मे विस्मृति क गर्भ में समा जाते है। पत्रकारिता अगर लोकतंत्र का चतुर्थ स्तंभ है, तो साहित्य समाज का दर्पण है। इस नाते देश– समाज में घटित हो रही घटनाओं को अधिक सूक्ष्मता से देखना और फिर अधिक कौशल के साथ उनका निरूपण करना साहित्यकार का उत्तरदायित्व है।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. रामकुमार वर्मा ने साहित्यकार के उत्तरदायित्व को रेखांकित करते हुए लिखा है.. 'साहित्यिकों का यह कर्त्तव्य है कि वे ऐसे कथानकों की सृष्टि करें, जो स्वस्थ मनोरंजन करते हुए देश के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सकें – 'सत्य का स्वप्न'। पंडित चंद्रशेखर पांडेय और डॉ. शांतिकुमार नानूराम व्यास ने इसी बात को और स्पष्ट करते हुए लिखा है. 'किसी राष्ट्र या जाति का वास्तविक इतिहास उसका साहित्य है। साहित्य ही समाज की तत्कालीन चिंताओं, धारणाओं, भावनाओं, आकांक्षाओं और आदर्शो का संपुटित चित्र हमारे सम्मुख करता है' – 'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा'।

साहित्य एक सतत् विकासमान प्रक्रिया है, जो समकालीन घटनाओं को अधिक संवेदना के साथ समेटती चलती है। यह कार्य पत्रकारिता भी करती है, किन्तु उसका प्रभाव साहित्य जितना टिकाऊ नहीं होता क्योंकि उसकी आधार भूमि स्थूल होती है। तात्कालिक घटनाएं, प्रवृत्तियां और प्रतिक्रियाएं उसका सहारा बनती हैं। वह सत्ता पलट सकती है, परन्तु मतदाताओं के मन पर कोई ऐसा स्थायी प्रभाव नहीं डाल पाती, जो इस बात की गारन्टी दे सके कि पदच्युत शासक या पार्टी की सत्ता में वापसी नहीं होगी। उदाहरण के लिए आपात्काल (जून, 1975– जनवरी, 1977) की घटनाओं ने तत्कालीन कांग्रेस सरकार के विरुद्ध जो जनाकोश पैदा किया था, पत्रकारों ने उसे अपनी लेखनी की धार से इतना पैना बना दिया था कि तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और उनके पुत्र संजय गांधी भी चुनाव हार गए। किन्तु यह प्रभाव टिकाऊ सिद्ध नहीं हुआ। जनता पार्टी सरकार की विफलता, प्याज और सोने के मूल्य में अप्रत्याशित वृद्धि 1960 के मध्यावधि चुनाव के मुद्दे बने और कांग्रेस की धमाकेधार वापसी

हुई। 1977 से 1980 के बीच पत्रकारों ने क्या–क्या लिखा, उसे जानने के लिए किसी समाचारपत्र के संदर्भ में विभाग में बैठकर शोध कार्य करना होगा। किन्तु साहित्यिक लेखन के रूप में आपात्काल और उससे जुड़ी घटनाओं के बारे में जो कुछ लिखा गया, वह हमारे साहित्य में सदैव सुरक्षित रहेगा। वह पत्रकारिता जैसा तात्कालिक प्रभाव भले ही न डाल पाया हो, किन्तु उसका महत्व चिरस्थायी बना रहेगा। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि पत्रकारिता में समकालीन घटनाओं के साथ उतार–चढाव आता रहता है, जबकि सृजनात्मक लेखन हमारे अंतर्मन में पैठकर एक टिकाऊ प्रभाव स्रोत छोड़ जाता है। स्वर्गीय शरद जोशी, हरिशंकर परसाई आदि के राजनीतिक व्यंग्यों का महत्व और पैनापन प्रभाव कभी धूमिल नहीं पड़ेगा।

19.4 सृजनात्मक लेखन और राजनीति

सृजनात्मक लेखन और राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। समकालीन घटनाएं सृजनात्मक लेखन को प्रभावित करती हैं। राजनीतिक घटनाचक्र का भी सृजनात्मक लेखन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। आज राजनीति व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बन गई है। व्यक्ति उससे सीधा भले ही न जुड़ा हो, किन्तु उसके दैनंदिन जीवन में राजनीति का दखल स्पष्ट देखा जा सकता है। राजनीति किसी भी देश के समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, खेल, मनोरंजन आदि क्षेत्रों की गतिविधियों को गहराई से प्रभावित करती है। इन सब चीजों से व्यक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वह हर घड़ी यह जानने के लिए उत्सुक बना रहता है कि सरकार उसके जीवन को प्रभावित करने वाले क्षेत्रों में क्या करने जा रही है और उसके किसी निर्णय से उसका जीवन किस हद तक प्रभावित होगा। महंगाई, बेरोजगारी, अशिक्षा, सामाजिक कुरीतियों इत्यादि से जूझने के लिए राजनेता जो निर्णय करते हैं, उन पर व्यक्ति की निगाह सतत टिकी रहती है।

सृजनात्मक लेखक हमारे बीच का ही व्यक्ति होता है। वह इस सबसे असंपृक्त बना नहीं रह सकता। अपने परिवेश से कटकर वह साहित्य सृजन नहीं कर सकता। साहित्यकार की कृतियो में उसके परिवेश की स्पष्ट छाप होती है। किन्तु घटनाओं को देखने–परखने की उसकी अपनी दृष्टि होती है। उनको अभिव्यक्ति देने का उसका अपना अंदाज होता है। वह अपनी बात सीधे न कह कर अलंकृत शैली में कहता है, जिसे समझने में थोड़ी देर तो लग सकती है, किन्तु समझ में आने के बाद वह हमारे मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ जाती है।

राजनीति व्यक्ति के जीवन में इस हद तक रच –बस गई है कि वह चाहकर भी स्वयं को उससे अलग नहीं कर पाता। आज व्यक्ति के जीवन के हर अंग का राजनीतिकरण हो गया है, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि राजनीति का सृजनात्मक लेखन पर भी व्यापक प्रभाव पड़ता है। मुंशी प्रेमचंद के अनेक उपन्यासों पर महात्मा गांधी द्वारा प्रेरित आंदोलन की परछाई साफ नजर आती है – सेवासदन, सूरदास, गोदान आदि उपन्यास इसके ज्वलंत प्रमाण है। बंकिमचन्द्र का आनन्द मत इसी श्रेणी में आता है जिसने क्रांतिकारियों और स्वाधीन भारत को 'वंदे मातरम्' जैसा राष्ट्रगीत दिया। क्या उपन्यास, क्या कहानी, क्या कविता, क्या संस्मरण, क्या निबंध, साहित्य की सभी विधाओं पर राजनीति का प्रभाव देखा जा सकता है.. कही कम, कहीं अधिक। गांव की पंचायत से लेकर संसद तक की राजनीति सृजनात्मक लेखन पर छाई रहती है। आपात्काल से पहले संसद में टिप्पणी करते हुए कवि रमेश कौशिक ने लिखा था–

संसद
एक दलदल है,
जहां बैठा हर मेंढ़क,
कमल है।

संसद के यथार्थ को अभिव्यक्ति देने वाली कवि कौशिक की यह काव्य– टिप्पणी इतनी तीखी थी कि तत्कालीन शासक तिलमिला उठे और उन्होंने सरकारी अधिकारी कौशिक के खिलाफ विभागीय कार्रवाई किए जाने का आदेश दे दिया। किन्तु क्या आज भी संसद का यही यथार्थ नहीं है? अरस्तू के अनुसार 'मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है' और हम जिस युग में रह रहे हैं, वह राजनीति का ही युग है। हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी में राजनीति के दखल का अनुमान इस सर्वविदित तथ्य से लगाया जा सकता है कि आज राजनीति की पैठ विज्ञान, साहित्य, धर्म, व्यापार, उद्योग, अर्थव्यवस्था, सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश इत्यादि सभी क्षेत्रों में हो गई है। सच तो यह है कि सृजनात्मक लेखन में राजनीतिक चेतना का समाहार एक अपरिहार्य स्थिति बन गयी है।

बोध प्रश्न–1

1. सृजनात्मक लेखन से आप क्या समझते हैं।
2. पत्रकारिता की आधारभूमि स्थूल घटनाओं और तथ्यों पर क्यों टिकी होती है।
3. साहित्य पर राजनीति के प्रभाव के उदाहरण बताइए।

19.5 सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता

अब हम आते हैं सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता के सम्बन्ध पर। यों तो सृजनात्मक लेखन एक अलग स्वतंत्र सत्ता है और उसका अपना पाठक संसार है, किन्तु पत्रकारिता से उसका गहरा संबंध है। नए लेखक के लिए पत्रकारिता वह प्रथम सोपान है, जिस पर पांव रखकर वह सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है और अततः एक स्थापित, लब्धप्रतिष्ठ लेखक बन जाता है। दूसरी ओर सृजनात्मक लेखन की विभिन्न विधाओं को प्रकाशित करके पत्र–पत्रिकाएं अपने पाठक जगत का विस्तार करती है। लोग पत्र– पत्रिकाओं को समाचार जानने के लिए ही नहीं पढते हैं, वे उनमें ऐसी रचनाओं की भी तलाश करते हैं जो उनके साहित्य प्रेम और रसोद्रेक की कामना को तृप्त करने वाली हो। प्रसिद्ध पत्रकार– साहित्यकार हेरम्ब मिश्र ने पत्रकारिता : संकट और संत्रास में लिखा है :

"साहित्य और पत्रकारिता के बारे में प्रारंभ से ही एक विवाद चला आ रहा है। कुछ लोगों ने इन्हें एक दूसरे का पूरक माना है तो कुछ ने इस पर– बल दिया है कि इनकी पृथक सत्ताएं मानी जानी चाहिए; पृथक सत्ता मानने वालों को तो उन स्थलों पर भी भेद दिखाई देता है जहां उनका प्राय : मिलन होता है। जो कुछ भी हो, अनेक चोटी के साहित्यकारों और पत्रकारों ने भी यही कहा है कि 'सर्वोत्तम पत्रकारिता साहित्य है और सर्वोत्तम साहित्य पत्रकारिता है। 'एच डब्ल्यू मसिंघम को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए बर्नार्ड शात ने जो शब्द कहे थे वे यही बताते हैं कि कुशल पत्रकार साहित्यकार से भिन्न नहीं है और साहित्य का काम संसार को ठीक – ठीक देखना और परखना है तो पत्रकारिता का भी पहला काम यही है'।"

श्यामाप्रसाद प्रदीप ने साहित्य और पत्रकारिता के बीच शैलीगत विभाजन रेखा खींचते हुए लिखा है... 'साहित्य शैली में चरमावस्था यानी चरमोत्कर्ष (क्लाइमेक्स) अंत में होता है और पत्रकारिता शैली

में आरंभ में'। बहरहाल, इस बारे में दो राय नहीं हैं कि सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता के बीच घनिष्ठ संबंध है। पत्रकारिता को सृजनात्मक लेखन का प्रथम सोपान मानना उचित ही है। साहित्य समाज का दर्पण है, तो पत्रकारिता उस दर्पण को प्रांजल बनाए रखने का साधन है। जो लोग पुस्तकें नहीं खरीद पाते, वे पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यिक रचनाएं पढ़कर अपनी ज्ञान –पिपासा शांत करते हैं। जी. एफ. मैट के अनुसार 'पत्रकारिता ही वह माध्यम है, जो मानव जीवन के सभी पहलुओं को आलोकित करने वाले विचारों और सूचनाओं को सुरुचिपूर्ण ढंग से संकलित, संपादित और प्रकाशित करता है। वह जनमानस को प्रभावित करने, दिशा देने तथा लोकरुचि को परिष्कृत करने का कार्य करता है' – ('न्यू सर्वे ऑफ जर्नलिज्म')। यह कार्य सृजनात्मक लेखक भी करता है।

आज पत्रकारिता भले ही व्यवसाय बन गई हो, किन्तु मूल रूप में यह व्यवसाय नहीं थी। पत्रकारिता वास्तव में जन–शिक्षण का एक सशक्त माध्यम है और इस रूप में इसका महत्व आज भी कम नहीं हुआ है। साहित्य भी जन–शिक्षण का दायित्व निभाता है। साहित्यकार अपने जीवन के खट्टे –मीठे अनुभवों को उपन्यास, कहानी, कविता, व्यंग्य इत्यादि सृजनात्मक विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करके समाज का मार्गदर्शन करता है। राष्ट्रकवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने इस संदर्भ मे लिखा है – 'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए'। वास्तव में साहित्य और पत्रकारिता परस्पर प्रतिद्वंद्वी न होकर एक दूसरे के पूरक है और दोनों का ही लक्ष्य एक स्वस्थ समाज की स्थापना करना है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि पत्रकारिता साहित्य को संवाहिका है, जो साहित्य रचना और समाज के कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

19.6 आधुनिक पत्रकारिता में सृजनात्मक लेखन का स्थान

आधुनिक पत्रकारिता का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। उसमें आज जितनी विविधता देखने को मिलती है, उतनी दो – ढाई दशक पहले नहीं थी। आज का पाठक मे पहले से कहीं अधिक जागरूक है और वह पत्र– पत्रिकाओं से यह अपेक्षा करता है कि वे उसकी हर जरूरत को पूरा करें। वह चाहता है कि देश–विदेश की राजनीति, समाज, अर्थजगत, व्यापार, फिल्म, कला, आदि क्षेत्रों के समाचारों के साथ ही उसे ज्ञान–विज्ञान, प्रौद्योगिकी, परमाणु ऊर्जा, सैन्य विज्ञान इत्यादि विषयों से संबंधित जानकारी एक साथ उपलब्ध हो। इन सब विषयों में सृजनात्मक लेखन भी हो रहा है। पत्र–पत्रिकाएं उसे प्रकाशित करके अपने लाखों – करोड़ों पाठकों तक पहुंचाते हैं और पाठक अपनी– अपनी रुचि के अनुसार उसे पढ़ते हैं। आधुनिक पत्रकारिता की पहुंच आम पाठक से लेकर विशेषज्ञ पाठकों तक है। पहले साहित्य, कला, ज्ञान–विज्ञान जैसे विशेष पत्रिकाओं तक ही सीमित होते थे, किन्तु आधुनिक पत्रकारिता ने उन्हें दैनिक समाचारपत्रों का भी अंग बना दिया है।

पहले दैनिक समाचारपत्र केवल एक दिन प्राय: रविवार को परिशिष्ट प्रकाशित करते थे, जिनमें मूलत: सृजनात्मक लेखन को स्थान मिलता था। अब सप्ताह मे दो से लेकर चार तक परिशिष्ट प्रकाशित किए जाते हैं, जिनमें विभिन्न विषयों से संबंधित गंभीर और खोजपूर्ण आलेखों को स्थान मिलता है। कहानी, उपन्यास अंश, व्यंग्य, संस्मरण जैसी साहित्यिक सामग्री के साथ ही प्रौद्योगिकी आदि से संबंधित शोधपूर्ण आलेख और सरस फीचर भी आज की पत्रकारिता के महत्वपूर्ण अंग बन गए हैं। इससे सृजनात्मक लेखन को उल्लेखनीय प्रोत्साहन मिला है। वस्तुस्थिति यह है कि विभिन्न विषयों से संबंधित

आलेखों से विहीन पत्र–पत्रिकाएं समुचित लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर पाती हैं। सच तो यह है कि सृजनात्मक लेखन के बिना पत्रकारिता आधी– अधूरी रह जाती है। आज सृजनात्मक लेख विहीन पत्रकारिता की कल्पना भी नही की जा सकती है। आधुनिक पत्रकारिता मे सृजनात्मक लेखन का स्थान न केवल महत्वपूर्ण है, बल्कि अपरिहार्य हो गया है।

19.7 सृजनात्मक लेखक और पत्रकार

सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता की तरह साहित्यकार और पत्रकार के बीच भी घनिष्ठ संबंध है। दोनों की लेखन शैली और स्वरूप अलग– अलग होने के बावजूद एक ही व्यक्ति दोनों विधाओं में पारगत हो सकता है। ऐसे अनेक–नाम गिनाए जा सकते हैं। इस संदर्भ मे 'दिनमान' के पूर्व संपादक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' और रघुवीर सहाय, धर्मयुग के पूर्व – संपादक धर्मवीर भारती, बाल पत्रिका पराग के पूर्व –संपादक हरिकृष्ण देवसरे, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कन्हैयालाल नंदन (जो बाद में 'सारिका', 'दिनमान' और 'संडे मेल' के संपादक भी रहे), 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के पूर्व – संपादक मनोहरश्याम जोशी, 'सारिका' के पूर्व और 'दैनिक भास्कर' के वर्तमान संपादक कमलेश्वर, 'वामा' की पूर्व –संपादक मृणाल पांडे, नंदन के संपादक जयप्रकाश भारती आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा इलाचंद्र जोशी, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, हिमांशु जोशी, रमेश बतरा, सुरेश उनियाल, वीरेन्द्र जैन, महेश दर्पण इत्यादि अनेक नाम हैं, जिन्होंने जितनी सफलता से साहित्य सृजन किया या कर रहे हैं, उतनी ही सफलता उन्हें पत्रकारिता के क्षेत्र में भी मिली है। यहां यह नहीं भूलना चाहिए कि नवभारत टाइम्स के पूर्व – संपादक स्व. राजेन्द्र माथुर और जनसत्ता के संस्थापक–संपादक प्रभाष जोशी पारंपरिक अर्थ में साहित्यकार भले ही न हों, उनकी अधिकांश लेखन शैली, भावभूमि, मानवीय संवेदना और व्यंजनापूर्ण भाषा के लिए सदैव याद किया जाएगा। पुस्तकालय में श्री माथुर की ग्रंथावली आर जोशीजी की पुस्तकें आपको मिल जाएंगी।

सृजनात्मक लेखक और पत्रकार के बीच कोई निर्णायक विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती और न ही यह कहा जा सकता है कि उनमें कौन छोटा है और कौन बड़ा। डॉ. अर्जुन तिवारी ने साहित्यकार और पत्रकार के कार्य को समरूप बताते हुए उन्हें शैली की भिन्नता के आधार पर अलग– अलग माना है। उनका मत है कि "पत्रकार समास शैली का अभ्यस्त होता है और साहित्यकार व्यास शैली अर्थात् अलंकृत शैली में अपने विचार करता है। "किन्तु इस समानता के बावजूद एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि एक सृजनात्मक लेखक अच्छा पत्रकार भी हो सकता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि एक पत्रकार अच्छा साहित्यकार भी हो। संभवत : इसीलिए कहा गया है कि साहित्यिक प्रतिभा ईश्वर की देन है। पत्रकार अपने संपादन कौशल से साहित्यिक प्रतिभा मंडित व्यक्ति के लेखन को उसकी भाषा को परिमार्जित कर सकता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी (सरस्वती) ऐसे ही संपादक थे। गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' को संपादित करके उन्होंने सरस्वती में छापा था। लेकिन अपना पत्रकारिता के बल पर कोई पत्रकार साहित्यकार नही बन सकता। हां, अगर उसमें साहित्य सृजन के बीज है, तो वह प्रयास करके उन्हें अंकुरित और पल्लवित कर सकता है और स्वयं को साहित्यकारों की जमात मे स्थापित कर सकता है।

कभी – कभी इसके विपरीत भी देखने को मिलता है, किन्तु उसे अपवाद ही माना जाना चाहिए। हिन्दी साप्ताहिक 'दिनमान' में आधा दर्जन से अधिक साहित्यकार थे, जिनमें अज्ञेय, रघुवीर सहाय,

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा जैसे मूर्धन्य कवि– कथाकार भी थे। इन साहित्यकारों ने हिन्दी पत्रकारिता में 'दिनमान' को एक नई पहचान दी। हिन्दी पत्रकारिता को नई भाषा शैली और नया मुहावरा दिया। किन्तु 'दिनमान' को संवारने – निखारने वाले साहित्यकार उस दौर में अपने सृजनात्मक लेखन के साथ पूरा –पूरा न्याय नही कर पाए। कुछेक का तो सृजनात्मक लेखन प्राय: अवरुद्ध हो गया।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि साहित्यकारों और पत्रकारों के रास्ते अलग–अलग हैं। वस्तुत: दोनों एक ही राह के राही हैं, कलम के सिपाही है। उन्हें एक दूसरे का पूरक कहना हो अधिक उचित होगा। पत्रकारिता में आकर साहित्यकार दैनिक जन–जीवन के अधिक पहुंच जाता है। वह सामाजिक–राजनीतिक कुरीतियों पर सीधी चोट करता है। दूसरी ओर पत्रकार भी साहित्यकार से बहुत कुछ सीखता है। साहित्यकार के शिल्प का बेहतर उपयोग करने लगता है।

बोध प्रश्न–2

1. सर्वोत्तम पत्रकारिता साहित्य के समकक्ष मानी जाती है। उदाहरण सहित बताइए।
2. कुछ ऐसे पत्रकारों के नाम बताइए जो साहित्यकार न होते हुए भी पत्रकारिता में सृजनात्मक लेखन के लिए जाने जाते है।
3. सिद्ध कीजिए कि पत्रकार और साहित्यकार दोनों मानवीय जीवन की सच्चाइयों और सरोकारों के सिपाही हैं और भाषा के साधक।

19.8 सृजनात्मक लेखन की प्रमुख विधाएं

आइए, अब सृजनात्मक लेखन की कुछ प्रमुख विधाओं के बारे जानकारी प्राप्त करें। सृजनात्मक लेखन को मोटे तौर पर उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, आत्मकथा, शब्दचित्र व्यंग्य, यात्रा– वृत्तांत, निबंध इत्यादि नाम दिए जा सकते हैं। ये सभी सृजनात्मक लेखन की लोकप्रिय विधाएं है। यहां हम इन विधाओं को संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे।

19.8.1 उपन्यास

सृजनात्मक लेखन की विविध विधाओं में उपन्यास एक लोकप्रिय विधा है। वह मानवीय चेतना के विभिन्न सोपानों को अभिव्यक्ति देने वाला एक सशक्त माध्यम है। संस्कृत साहित्य में जो स्थान महाकाव्य का है, हिन्दी साहित्य में वहीं स्थान उपन्यास को प्राप्त है। अंग्रेज़ लेखक राल्फ फाक्स ने उपन्यासकार को 'नये समाज का महाकवि' कहा है। उपन्यास को सृजनात्मक लेखन लोकतांत्रिक विधा कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। समकालीन जीवन ओर परिवेश का यथार्थ उपन्यास मे संपूर्ण अभिव्यक्ति पाता है।

उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'अस' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है रखना। 'अस' धातु में 'उप' और 'नि' उपसर्ग लगाकर उपन्यास शब्द बनाया गया है, जिसका अर्थ है 'उपस्थापन', उपन्यास के संदर्भ में इसका अर्थ हुआ किसी कथावस्तु को सम्यक् रूप से स्थापित करना। उपन्यास को गद्य शैली में लिखी गयी 'पर्याप्त लंबी कथा' भी कहा जा है। उपन्यास में कथानायकों की संपूर्ण जीवन– गाथा का चित्रण होता है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने उपन्यास को इस प्रकार परिभाषित किया है.. 'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है। (साहित्यालोचन) ।

हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों में लल्लूलाल के 'प्रेमसागर' (1803) सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' और इंशा अल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी' (1800–1810) का उल्लेख किया जाता है। किन्तु अब यह प्राय: मान लिया गया है कि हिन्दी का प्रथम उपन्यास लाला श्रीनिवास लिखित 'परीक्षा गुरू' (1882) है। उपन्यास की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अधिकतर पत्र– पत्रिकाएं उपन्यास को धारावाहिक के रूप में प्रकाशित करते है। भले ही आज के व्यस्त जीवन में पाठक के पास पूरा उपन्यास एक बार मे पढने का समय न हो, वह उसे किस्तों में पढ़कर पूरा आनन्द प्राप्त करता है। हिंदी की अनक लोकप्रिय साप्ताहिक – पत्रिकाओं ने सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के उपन्यासों को धारावाहिक प्रकाशित किया है, जिसे पाठकों ने पसंद किया है।

19.8.2 कहानी

आकार और गरिमा की दृष्टि से भले ही उपन्यास का स्थान प्रथम हो, किन्तु लोकप्रियता के पैमाने के अनुसार कहानी को प्रथम स्थान प्राप्त है। भाग –दौड़ भरे जीवन मे उपन्यास पढने की फुर्सत ही कहा मिल पाती है। उपभोक्तावाद ने व्यक्ति के जीवन को कमाने – खाने के सीमित दायरे मे समेट दिया है और अब उसके पास इतना समय कहां बच पाता है कि वह महाकाव्य और उपन्यास जैसे महाग्रंथ पढ सके। कहानी अगर बहुत लम्बी नही है, तो उसे कमाते – खाते भी पढा जा सकता है। नाश्ते की मेज पर या कार्यालय जाते हुए बस आदि मे बैठकर भी क्हानी पढी जा सकती है। यही कारण है कि पत्र–पत्रिकाओं में कहानी को महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ हैं। 'इंडिया टूडे' जैसी राजनीतिक पत्रिका भी अपने हर अंक में एक कहानी अवश्य प्रकाशित करती है। कई कहानी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही है। रविवारीय परिशिष्ट में कहानी देने का चलन है।

कहानी हमारे दौर की सबसे सशक्त विधा है। प्रभाव की दृष्टि से एक अच्छी कहानी अनेक लेखों पर भारी पड सकती है। कहानी में थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहा जा सकता है। उपन्यास अगर सागर है, तो कहानी गागर में सागर है। लेखक को एक कहानी लिखकर जितना सुख मिलता है, उतना कई लेख लिखकर भी नहीं मिल पाता है। कहानी की संरचना में तीन प्रमुख घटक होते हैं... कथावस्तु, पात्र और देशकाल। कहानी का तानाबाना कुछ ऐसा होता है, जिसमें उसके पात्रों का द्वंद्व अथवा संघर्ष उभरकर पाठकों के सामने सजीव हो उठता है। पाठक को ऐसा लगता है कि कहानीकार ने उसके मन के द्वंद्व और उसके जीवन की ही किसी घटना को शब्दबद्ध किया है। जो कहानी ऐसा प्रभाव नहीं डाल पाती, उसे अच्छी कहानी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

कहानी हमारी बौद्धिक क्षुधा को शांत करती है। उससे हमें आत्मिक और मानसिक तृप्ति तो मिलती ही है, वह हमें जीवन जीने की कला भी सिखाती है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार 'यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजक बनाने के लिए, मन मे सुंदर भावों को जागृत करने के लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं। प्रेमचन्द को वस्तुत: कहानी का सत्य, शिवं, सुन्दरम् स्वरूप ही अभीष्ट था। पिछले पांच दशकों मे कहानी कई रूपों में लिखी गई और उसके हर रूप को स्थापित करने के लिए आंदोलन चलाए गए। पहले कहानी 'नई कहानी' बनी, फिर 'सचेतन कहानी' और 'अकहानी' के दौर से गुजरकर उसने 'समानान्तर कहानी' का चोला पहना। उसके बाद 'समकालीन कहानी' का दौर आया। किन्तु कहानी हर दौर में कहानी ही बनी रही और देखते

ही देखते वह साहित्य की सर्वमान्य विधा बन गई। सृजनात्मक लेखन की यह विधा अल्पकाल में ही आकार–प्रकार की विविधता में इतनी समृद्ध हो गई कि उसे परिभाषित करना कोई आसान काम नहीं रह गया। फिर भी, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कहानी वह सहज अभिव्यक्ति है, जो पाठक के मन पर सीधा प्रभाव डालती है।

कहानी लिखते समय तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है 1. कथावस्तु ऐसी चुनी जाए, जो हमारे अपने बीच की हो, दूर देश की परी कथा न लगे। 2. चरमोत्कर्ष की ओर कहानी का विकास इस तरह किया जाए कि उसे पढ़ते हुए अंत का आभास मिलने लगे। 3. तदनुसार कहानी का अंत स्वाभाविक हो, ऊपर से थोपा हुआ न लगे। आदि से अंत तक कथावस्तु की परिकल्पना करके और रूपरेखा बनाकर कहानी का लिखना आरंभ करना चाहिए।

19.8.3 कविता

सृजनात्मक लेखन की आदि विधा है कविता। मानवीय संवेदना को कम से कम शब्दों में जितने प्रभावशाली ग से कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सकता है, उतने सशक्त ढंग से साहित्य के किसी अन्य माध्यम से व्यक्त करना संभव नहीं हो पाता। कवि की विशेषता है कि वह दूसरों के प्रति आत्मीय होता है, किन्तु उसकी आत्मीयता एकपक्षीय नहीं होती। कवि दूसरों से भी आत्मीयता की अपेक्षा करता है। आत्मीयता का यही आदान – प्रदान कविता को संवेदनशील तथा ग्राह्य बनाता है।

कहा जाता है कि हर व्यक्ति जन्मजात कवि होता है, लेकिन हर व्यक्ति कवि नहीं बन पाता। कवि के रूप में स्थापित वहीं हो पाता है, जो संवेदनशील होने के साथ ही अपने परिवेश और समकालीन यथार्थ के प्रति सतत् जागरूक हो, क्योंकि अपने परिवेश से कटकर कोई कवि पाठकों से आत्मीयता स्थापित नहीं कर सकता। साथ ही कवि की दृष्टि इतनी सूक्ष्म और तीक्ष्ण होनी चाहिए कि वह अदृश्य को भी देख सके। इसीलिए तो कहा गया है... 'जहां न पहुंचे रवि, वहां पहुंचे कवि।

19.8.4 नाटक

जब कोई कथानक संवाद शैली में लिखा जाता है, तो वह नाटक कहलाता है। नाटक में प्राय: तीन अंक होते हैं। प्रत्येक अंक में एक से अधिक दृश्य हो सकते है। नाटक का एक प्रमुख पात्र सूत्रधार होता है, जिसे नाटक का नियामक कह सकते हैं। संस्कृत नाटकों में सूत्रधार की परिकल्पना नट और नटी के रूप मे भी की गई है। नाटक में पात्रों की कोई सीमा नहीं होती। नाटककार नाटक के कथानक के अनुरूप पात्रों का सृजन करता है और पात्रों के परस्पर संवाद के सहारे कथानक को आगे बढाता है। संवादों की संक्षिप्तता और चुटीलापन अच्छे नाटक की पहचान है। संवादो के बल पर नाटक के पात्र दर्शकों और पाठकों से सीधा संवाद स्थापित कर लेते हैं। तीन अंक वाले नाटकों के अलावा नाटक का एक और रूप भी होता है, जिसे एकांकी कहते हैं। इसमें एक अंक होता है, इसीलिए इसे एकांकी कहते हैं। एकांकी आकार मे छोटा होता है और नाटक की तुलना में उसके पात्र भी सीमित होते हैं। एकांकी में दृश्य भी कम होते हैं। कुछ एकांकी एक दृश्य वाले और कुछ एक से अधिक दृश्य वाले होते हैं।

कथ्य की दृष्टि से एकांकी की तुलना कहानी से की जा सकती है। कहानी की तरह एकांकी का भी कथ्य सुगठित होता है और वह प्राय: किसी एक घटना अथवा चरित्र विशेष को लेकर लिखा

जाता है। एकांकी में कथावस्तु को अधिक विस्तार देने का अवसर नहीं है। प्रसिद्ध नाटककार– साहित्यकार डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार–'एकांकी में एक घटना होती है और वह नाटकीय कौशल से चरम सीमा पर पहुंचती है। एकांकी मे उसके प्रमुख पात्र का पूरा जीवन समाहित नहीं होता बल्कि उसके जीवन की किसी एक घटना का चित्रण होता है। इस मापदंड से भी एकांकी कहानी के अधिक निकट है। किन्तु कहानी और एकांकी मे एक मूलभूत अन्तर यह है कि कहानी किसी भी कथ्य को लेकर लिखी जा सकती है, परन्तु हर कथ्य को एकांकी की कथावस्तु नहीं बनाया जा सकता है। एकांकी वस्तुत: शैली शिल्प उपकरणों में जकडा सृजनात्मक लेखन है।

एक और महत्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य है। यह मानना उचित नहीं होगा कि संवाद शैली में लिखा गया हर कथ्य नाटक या एकांकी बन जाता है। कहानी भी संवाद शैली में लिखी जा सकती है और लिखी जाती है। नाटक या एकांकी की अपनी कुछ विशेषताएं होती हैं, जो उन्हें कहानी से अलग करती है। एक अच्छा नाटककार कथावस्तु, पात्र क्रिया, स्थिति इत्यादि को लेकर एक ऐसी रचना करता है, जो सृजनात्मक लेखन की अन्य विधाओं से भिन्न होती है। नाटक में कथावस्तु, क्रिया व्यापार, चरित्र–चित्रण और स्थिति निरूपण के अलावा पात्रों के अन्तर्द्वद्व का भी विशेष स्थान होता है, जो उसे अधिक प्रभावशाली बनाता है।

जहां तक नाटक और पत्रकारिता के सम्बन्ध का प्रश्न है पत्रकार समाचार, आलेख अथवा फीचर में नाटकीय तत्व का उपयोग करके उसे प्रभावशाली बनाने का प्रयास करता है। अन्य सुविधाओं के विपरीत पत्र–पत्रिकाओं में नाटक का प्रकाशन ना के बराबर होता है, क्योंकि आकार बड़ा होने के कारण पूरा नाटक एक साथ प्रकाशित करना संभव नहीं हो पाता और उसे धारावाहिक के रूप मे शायद ही कोई पढना चाहेगा। हां, पत्र–पत्रिकाओं मे एकांकी कभी–कभी प्रकाशित किये जाते हैं।

19.8.5 आत्मकथा और जीवनी

आत्मकथा और जीवनी दोनों का सम्बन्ध किसी व्यक्ति की जीवनी कथा से है। जब कोई व्यक्ति अपनी जीवन था स्वयं लिखता है, तो वह आत्मकथा कहलाती है और जब उसे कोई अन्य व्यक्ति लिखता है, तो उसे जीवनी कहा जाता है। जीवन के अंतिम दौर में प्राय: प्रत्येक महापुरुष अपनी आत्मकथा लिखना चाहता है, क्योंकि तब तक वह बहुत सारे अनुभव एकत्र कर चुका होता है। जीवन के अनेक खट्टे–मीठे अनुभव उसे जीवन की वास्तविक से रूबरू करा चुके होते हैं। वह उन अनुभवों को पाठकों के साथ बांटना चाहता है। किन्तु जब उन अनुभवों को शब्दबद्ध करता है, तो उसके सामने वह पूरा देश–काल होता है जिसका वह साक्षी रहा है, जो उसके अपने व्यक्ति चित्र में रच बस चुका होता है। समकालीन परिस्थितियां व्यक्ति के चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कहा जाता है कि मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। आसपास का परिवेश भूमिका और राजनीतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक घटनाचक्र व्यक्ति के जीवन को अत्यधिक प्रभावित करता है। बिरले लोग ही ऐसे होते हैं, जो समय की धारा अपने अनुकूल बना सकते हैं, अन्यथा अधिकतर लोग तो समय की धारा के अनुकूल ही बहने वाले होते हैं। आत्मकथा लेखक अपने परिवार, अपने जीवन मे घटित होने वाली घटनाओं को तो देखता ही है, अपने काल की अन्य घटनाओं पर भी उसकी नजर रहती है और वह उनसे प्रभावित भी होता है। जिंदगी के लम्बे दौर में अनेक लोग उसके सम्पर्क में आते हैं और

उनके गुणावगुणों से उसका साक्षात्कार होता है। अत: जब वह व्यक्ति अपनी आत्मकथा लिखता है, अपना और अपने परिवार का परिचयात्मक विवरण भर नहीं लिखता। वह समकालीन परिस्थितियों और अपने युग के प्रभावों के सामने एक पूरे युग का चित्र प्रस्तुत करता है।

व्यक्ति की जीवन गाथा मात्र एक अच्छी आत्मकथा नहीं हो सकती। उसमें काल बोध होना ही चाहिए। आत्मकथा में व्यक्ति के जीवन का अंतरंग परिचय तो होता ही है, साथ ही वह समकालीन घटनाओं और व्यक्ति के चरित्र का दर्पण भी होता है। अगर कोई व्यक्ति अपने जीवन की उपलब्धियों और गुणों का वर्णन करने के उद्देश्य से आत्मकथा लिखता है, तो उसको आत्मश्लाघा की संज्ञा ही दी जा सकती है। आत्मकथा संपूर्ण तो तभी कही जा सकती है, जब व्यक्ति अच्छाइयों के साथ अपनी बुराइयों का भी चित्रण करे। आत्मकथा आत्मप्रशंसा भर नहीं होती, आत्मपरीक्षण होती है। उसका क्षेत्र अतीत की स्मृतियों में सिमटकर नहीं रह जाता। उसका कैनवस बहुत व्यापक होता है। वह व्यक्ति की अपनी खोज होती है, जिसमें उसके दौर की उन परिस्थितियों, समाज और व्यक्तियों का सजीव चित्रण होता है, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसके जीवन को प्रभावित करते हैं। आत्मकथा में व्यक्तिगत संस्मरणों का उल्लेख भर नहीं होता, समकालीन सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक परिस्थितियों का भी चित्रण होता है।

महापुरुषों की आत्मकथाएं पाठकों को प्रेरणा देने वाली होती हैं, किन्तु यह उचित नहीं होगा कि प्रेरणा देने के उद्देश्य से आत्मकथा लिखी जाए। अगर यह उद्देश्य लेकर आत्मकथाकार अपना जीवन वृत्तान्त लिखेगा, तो वह अपने जीवन के अनेक पहलुओं पर पर्दा पड़ा रहने देना ही श्रेयस्कर मानेगा, जो वस्तुत: आत्मकथा का अभीष्ट नहीं होता।

जैसा कि आरंभ में कहा गया है कि जब किसी महापुरुष की जीवनगाथा को कोई अन्य व्यक्ति लिखता है, तो वह जीवनी कहलाती है। जीवनी लेखक के अपने व्यक्तित्व की झलक भी आ जाती है। किन्तु किसी व्यक्ति के जीवन की घटनाओं को दूसरा व्यक्ति जिस रूप में देखता है, उसी रूप में वह अपने लेखन में उसका वर्णन करता है। आत्मकथा और जीवनी में यह मूलभूत अन्तर होता है।

19.8.6 यात्रावृत्तांत

आदिकाल से व्यक्ति भ्रमण–प्रिय रहा है। जब उसके पास रहने का कोई ठिकाना नहीं था, तब वह भोजन की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण करता था। वह उसकी विवशता थी। किन्तु जब वह घर बसाकर रहने लगा तब भी उसने अपनी यह यायावरी प्रवृत्ति छोड़ी नहीं। नए स्थान देखने की ललक उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने लगी। मानव की यही प्रवृत्ति आज भी बनी हुई है। वह अब प्रदेश और देश की सीमाएं लांघकर विदेश–भ्रमण भी करने लगा है और उसकी यह ललक उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। अब वह तीर्थाटन करता है, पर्यटन– स्थलों और पुरातात्विक महत्व के स्थान देखने के लिए सफर करता है। इन यायावरों में जो सृजनशील होते हैं, वे प्रकृति के सौन्दर्य को एक विशेष दृष्टि से देखते –परखते हैं और फिर अपने सौन्दर्य बोध के स्तर के अनुरूप यात्रा वृत्तान्त में उसका चित्रण करते हैं।

पहाड़ों पर कठिन चढ़ाई चढ़ना, वन–प्रांतरों में निर्भीक होकर विचरण करना भी पर्यटकों का शौक होता है। कभी–कभी तो जान जोखिम में डालकर भी वे अपना यह शौक पूरा करते हैं। किन्तु यात्रा वृत्तान्त लिखने के लिए पर्यटन के प्रति विशेष आकर्षण ही पर्याप्त नहीं होता। इसके लिए

सृजनात्मक लेखन की प्रतिभा का होना आवश्यक है। विश्व में जो भी प्रमुख यायावर हुए हैं, उनमें सृजनात्मक लेखन की प्रतिभा अवश्य रही। फिर वे चाहे विदेशी फाहियान, हवेनसांग, इब्नबतूता रहें हो अथवा अपने देश के सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय और राहुल सांकृत्यायन रहे हों।

अच्छे वृत्तान्त लिखने के लिए तीक्ष्ण दृष्टि और वस्तुओं को गहराई से जानने की उत्कृष्ट भावना का होना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है भाषा पर अधिकार। श्रेष्ठ शब्द–चयन और सरल तथा बोधगम्य शैली यात्रा वृत्तान्त को सजीव बना देती है। किसी स्थान का वर्णन करते समय जो दिखाई दे रहा है, उसके बारे में लिखना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उस स्थान के संपूर्ण परिवेश में पूरी तरह रच–बस जाना बहुत आवश्यक है। मोती गहरे पानी में पैठकर ही निकाला जा सकता है।

यातायात में द्रुतगामी साधनों की उपलब्धता से पर्यटन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। अब लोग आनन–फानन में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं। वे दिन अब लद गए हैं, जब जीवन के अंतिम दिनों में लोग घर–परिवार के लोगों से अंतिम विदा लेकर तीर्थाटन के लिए निकलते थे। अब तीर्थ भी पर्यटन स्थल बन गए हैं और हर आयु वर्ग के स्त्री–पुरुष पर्यटन पर जाने लगे हैं। अवकाश के दिन बिताने के लिए पर्यटन आज का सर्वोत्तम साधन बन गया है। यह सच है कि जिस अनुपात में पर्यटक बढे हैं, उस अनुपात में यात्रा वृत्तान्तों का लेखन नहीं हो रहा है, किन्तु यह मानना होगा कि अब यात्रा वृत्तान्त पहले से कहीं अधिक लिखे जाने लगे हैं। आज लोग एक– दूसरे के बारे में अधिक से अधिक जानना चाहते हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों ने लोगों और स्थानों के बीच की दूरी को बहुत कम कर दिया है। अपने परिवेश मे ही सिमट रहने वाले लोग अब दूसरों में भी दिलचस्पी रखने लगे हैं और वे प्राप्त जानकारी को और आगे बढ़ाने में रुचि लेते हैं। परिणामत: यात्रा वृत्तान्तों के लेखन और पठन के प्रति लोगों की रुचि भी बढ़ी है।

एक श्रेष्ठ यात्रा वृत्तान्त की कसौटी निर्धारित करना आसान काम नही है, किन्तु यह कहा जा सकता है कि उसे स्थान, व्यक्ति और घटना मात्र के विवरण तक सीमित करना उचित नहीं है। उसमें कथातत्व, कवित्व, नाटकत्व आदि गुणों का समावेश होना चाहिए। ऐसा यात्रा वृत्तान्त कोई सरल, सृजनशील व्यक्ति ही लिख सकता है।

19.8.7 शब्दचित्र या रेखाचित्र

किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना का शब्दों के माध्यम से चित्र प्रस्तुत करना शब्दचित्र अथवा रेखाचित्र कहलाता है। यह अंग्रेजी शब्द स्केच का पर्यायवाची है। यह शुद्ध कला के रेखाचित्र के समकक्ष है। कलाकार अपनी तूलिका के माध्यम से किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना का सजीव चित्र बना देता है। साहित्यकार यही कार्य शब्दों के माध्यम से करता है। कलाकार रेखाओं के माध्यम से अपने चित्र में एक पूरी कहानी कह देता है, तो साहित्यकार कम से कम शब्दों में किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना विशेष को इस तरह प्रस्तुत करता है, मानो जिसके बारे में शब्दचित्र प्रस्तुत किया गया, वह जीवंत हमारे सामने खड़ा हो। शब्द लाघव और प्रभावशाली चित्रण शब्दचित्र या रेखाचित्र की प्रमुख विशेषता है।

अच्छा शब्दचित्र लिखने के लिए आवश्यक है कि जिस व्यक्ति, वस्तु अथवना घटना के बारे में लिखा जाए, उससे लेखक का घनिष्ठ परिचय हो। अनजान अथवा अल्पत्रज्ञात व्यक्ति वस्तु या घटना

के बारे में लिखना असंभव नहीं, तो कठिन कार्य अवश्य है। जिसे लेखक निकट से जानता है, जिसके गुण– अवगुणों से वह सुपरिचित है, उसी को शब्दचित्र में उतारना उसके लिए सुग्राह्य होगा।

साम्य की दृष्टि से शब्दचित्र अथवा रेखाचित्र को कहानी, संस्मरण और वर्णनात्मक निबंध की कोटि में रखा जा सकता है। किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना का भावपूर्ण विवरण प्रस्तुत करने पर यह विधा बहुत कुछ निबन्ध का रूप ले लेती है, किन्तु जब किसी को केन्द्र बनाकर शब्दचित्र लिखा जाए, तो वह कहानी के अधिक निकट पहुंच जाता है। उस कसौटी पर महादेवी वर्मा के शब्दचित्र खरे उतरते हैं। उन्हें पढ़ते समय ऐसा लगता है, मानो कहानी पढ़ रहे हों। शब्दचित्र और कहानी की तुलना करने पर हम पाते हैं कि शब्दचित्र के लिए कथावस्तु कोई अनिवार्य शर्त नहीं है, जबकि कहानी का प्रमुख आधार कथावस्तु ही होती है। कहानी में पात्रों के चरित्रों का चित्रण और चरित्र विकास की प्रक्रिया के दौरान आरोह–अवरोह का होना भी आवश्यक होता है। शब्दचित्र के लिए यह आवश्यक घटक नहीं है।

हिन्दी में शब्दचित्र या रेखाचित्र का इतिहास लगभग 50 वर्ष पुराना है अर्थात् प्राय: स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ही शब्दचित्र लिखने की ओर लेखक प्रवृत्त हुए और इस दौर में अनेक शब्दचित्रकारों ने अपनी कलम का जादू चलाया और शब्दचित्र को साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित किया। शब्दचित्र लिखते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वर्ण्य व्यक्ति, वस्तु और घटना को कम से कम शब्दों में प्रस्तुत किया जाए। आत्मीयता से लिखा गया शब्दचित्र साहित्य की अनमोल धरोहर होता है।

19.8.8 व्यंग्य

व्यंग्य लेखन साहित्य की एक प्रभावशाली विधा है। व्यंग्यकार अपने शिकार पर ऐसा तीर छोड़ता है कि वह तिलमिला कर रह जाता है। इस दृष्टि से व्यंग्य को कार्टून के निकट माना जा सकता है। व्यंग्यचित्रकार (कार्टूनिस्ट) अपने विषय का ऐसा चित्र बनाता है, जिसमें चित्रित व्यक्ति का संपूर्ण व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है और वह उसकी आकृति को ऐसा रूप देता है कि देखने वाला हंसी से लोटपोट हो जाता है। व्यंग्यचित्र में चित्रित व्यक्ति घायल–सा अनुभव करता है। व्यंग्य का असर भी ऐसा ही होता है।

व्यंग्य को कहानी, उपन्यास, कविता आदि की तरह किसी निश्चित परिभाषा में नहीं बांधा जा सकता है। साहित्य की किसी भी विधा में व्यंग्य लिखा जा सकता है। कहानी भी व्यंग्य से भरपूर हो सकती है और कविता, उपन्यास भी, यहां तक कि निबंध में भी व्यंग्य–बाण छोड़े जा सकते हैं। कविता तो व्यंग्य का सशक्त माध्यम है। हमारे समग्र संत साहित्य में व्यंग्य की छटा यत्र–तत्र–सर्वत्र देखने को मिलती है। कबीर का काव्य तो व्यंग्य का उपवन है। महाकवि सूरदास का 'भ्रमरगीत' भी उत्कृष्ट व्यंग्य रचना है। 'भ्रमरगीत' में गोपियों ने अपने व्यंग्य–वाणों से कृष्ण–सखा उद्धव को छलनी करके रख दिया है।

व्यंग्य को सान पर चढ़ाने का श्रेय भारतेंदु युग को दिया जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचनाएं 'अंधेर नगरी' और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' श्रेष्ठ व्यंग्य कृतियां हैं। व्यंग्य कविता लेखन के क्षेत्र में बरसानेलाल चतुर्वेदी, बेढब बनारसी, काका हाथरसी, गोपालप्रसाद व्यास, सुरेन्द्र शर्मा, हुल्लड

मुरादाबादी, अशोक चक्रधर आदि ने देश के स्वाधीन होने के बाद के कवियों में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। गद्य विधा के व्यंग्यकारों में शरद जोशी, हरिशंकर परसाई, रवीन्द्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, नरेन्द्र कोहली इत्यादि उल्लेखनीय नाम है। ये सब वर्तमान युग की देन है। बरसानेलाल चतुर्वेदी, बेढब बनारसी, गोपालप्रसाद व्यास आदि कुछ ऐसे नाम भी हैं, जिन्होंने गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में व्यंग्य लेखन किया है।

अच्छी व्यंग्य रचना की पहचान है कि वह 'बिहारी सतसई' के दोहों की तरह दिल में सीधी उतर जाने वाली हो। व्यंग्य में प्राय: व्यक्ति के मनोभावों, आचरण आदि और समाज की विषमताओं पर प्रहार किया जाता है। इस संदर्भ में व्यंग्य हास्य–विनोद पूर्ण रचनाओं से सर्वथा भिन्न है। व्यंग्य पाठक का मनोरंजन तो कराता ही है, वह उसका ध्यान व्यक्ति विशेष के चरित्र और सामाजिक कुरीतियों की ओर भी आकृष्ट करता है। व्यंग्यकार राजनीतिक उठापटक को भी अपने व्यंग्य लेखन का विषय बनाता है।

व्यंग्य लेखन के लिए आवश्यक है कि व्यंग्यकार अपने विषय का सूक्ष्म निरीक्षण करे और उसके उस पहलू पर शब्द प्रहार करे, जिसका सरोकार संबद्ध व्यक्ति के अलावा समाज से भी हो। आज सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में जो आपाधापी मची हुई है, उसको लेकर सशक्त व्यंग्य लिखे जा सकते हैं। नैतिक पतन, क्षुद्र स्वार्थ और उपभोक्ता संस्कृति ने व्यक्ति को व्यंग्य का विषय बना दिया है। अब व्यंग्यकारों को विषय तलाशने के लिए अतिरिक्त श्रम नहीं करना पड़ता। आज का दौर व्यंग्य लेखन के लिए उर्वरा भूमि प्रस्तुत करता है।

19.8.9 निबंध

सृजनात्मक लेखन की एक और महत्वपूर्ण विधा है निबंध। निबंध के बारे में कहा गया है – 'गद्य कवीनां निकषं वदंति' अर्थात् गद्य लेखन यानी निबंध कवि की कसौटी कही जाती है। निबंध से ही मिलता–जुलता लेख होता है। यों तो निबंध और लेख दोनों ही गद्य शैलियां है, किन्तु इनके बीच एक झीना–सा अंतर है। निबंध में विषय वर्णन के साथ ही लेखक की पसंद–नापसंद और उसके व्यक्तित्व का चित्रण होता है। उसमें एक से अधिक विषयों को भी समाहित किया जा सकता है, जबकि लेख एक निश्चित विषय के इर्दगिर्द ही सीमित रहता है। प्रसिद्ध निबंधकार बाबू गुलाबराय ने निबंध को परिभाषित करते हुए लिखा है– 'निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगीत और संबद्धता के साथ किया गया हो। 'लेख में प्राय: ये गुण नहीं होते। उसमें आत्मीयता तथा भावुकता के अभिव्यक्त करने का अवसर कम ही होता है। मूल विषय तक सीमित लेख ही उत्कृष्ट माना जाता है, उसमें विषयांतर करने का अवसर नहीं होता। निबंध में जहां विचारों की गहराई होती है, वहीं लेख जानकारी से परिपूर्ण होता है। निबंध विचारों का भंडार होता है, जबकि लेख ज्ञान का सागर। निबंध में विचारों की अभिव्यक्ति पर कोई अंकुश नहीं होता है। लेख में सूचना प्रधान होती है और विचार गौण।

19.9 सारांश

आइए देखें इस पाठ में आपने क्या पढ़ा और कितना याद रखा। पाठ के आरंभ में आपने पढ़ा कि कौन–सा लेखन सृजनात्मक लेखन की श्रेणी में आता है और पत्रकारिता में उसका क्या महत्व है। पाठ की प्रस्तावना में आपने यह भी पढ़ा कि दूरदर्शन और आकाशवाणी के व्यापक प्रसार के बावजूद मुद्रित माध्यम (प्रिंट मीडिया) का महत्व कम नहीं हुआ है बल्कि पाठक अब पत्र–पत्रिकाओं से पहले से अधिक सामग्री की अपेक्षा करने लगा है जिसके कारण पत्रकारिता का क्षेत्र और भी व्यापक हो गया है। अब पत्र– पत्रिकाओं में समाचारों के अलावा विभिन्न विषयों से संबंधित पाठ्य सामग्री भी पढ़ना चाहता है। आपने यह भी जाना कि पत्रकारिता में सृजनात्मक लेखन से हमारा तात्पर्य किस प्रकार के लेखन से है और पत्र– पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाला सृजनात्मक लेखन क्या होता है और इस संदर्भ में आपने सृजनात्मक लेखन के विविध आयामों के बारे में भी जाना।

आपने यह भी अध्ययन किया कि राजनीति सृजनात्मक लेखन को किस तरह और किस सीमा तक प्रभावित करती है। सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता आधुनिक पत्रकारिता में सृजनात्मक लेखन का स्थान सृजनात्मक लेखन और पत्रकार आदि के बारे में जानकारी भी आपने प्राप्त की। सृजनात्मक लेखन की प्रमुख विधाओं से भी आपका संक्षिप्त परिचय हुआ। पत्रकार के रुप में इन जानकारियों का उपयोग करके आप न केवल एक अच्छे पत्रकार बन सकते हैं, बल्कि साहित्य सृजन की दिशा में भी अग्रसर हो सकते हैं।

19.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. सृजनात्मक लेखन को परिभाषित करते हुए पत्रकारिता के क्षेत्र में उसका महत्व स्पष्ट कीजिए।
2. सृजनात्मक लेखन अन्य लेखन से भिन्न है, इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. राजनीति का व्यक्ति के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? वह सृजनात्मक लेखन को किस सीमा तक प्रभावित करती है?
4. कहानी की परिभाषा दीजिए कहानी के चरमोत्कर्ष से क्या तात्पर्य है?
5. सृजनात्मक लेखन की प्रमुख विधाओं का संक्षेप में परिचय दीजिए।
6. व्यंग्य और हास्य में क्या अंतर है? अच्छे व्यंग्य की क्या पहचान है?

19.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. हिन्दी कहानी : फिलहाल, लेखक : डॉ. चन्द्रभान रावत और डॉ. रामकुमार खंडेलवाल
2. सत्य का स्वप्न, लेखक : डॉ. रामकुमार वर्मा
3. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, लेखक पंडित चन्द्रशेखर पांडेय और डॉ शांतिकुमार नानूराम व्यास
4. साहित्यालोचन, लेखक बाबू श्यामसुन्दर दास
5. हिन्दी पत्रकारिता का वृहद् इतिहास – अर्जुन तिवारी
6. वृहद् हिन्दी पत्र – पत्रिका कोष – डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित
7. हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रमेश जैन
8. 'न्यू सर्वे ऑफ जर्नलिज्म' – जी. एफ. मैट

इकाई 20 आत्मकथा लेखन

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 आत्मकथा: अर्थ एवं परिभाषा

20.2.1 आत्मकथा: अर्थ

20.2.2 आत्मकथा: परिभाषा

20.2.3 आत्मकथा के अनिवार्य गुण

20.2.3.1 उत्तम स्मृति

20.2.3.2 अपने प्रति तटस्थता

20.2.3.3 स्पष्टवादिता

20.2.3.4 अति समर्थन से मुक्ति

20.2.3.5 सार्वजनिक महत्व के विवेक की समृद्धि

20.2.3.6 आकर्षक प्रतिवेदन शैली

20.3 आत्मकथा एवं अन्य विधाएं

20.3.1 आत्मकथा और जीवनी

20.3.2 आत्मकथा और संस्मरण

20.3.3 आत्मकथा और डायरी

20.3.4 आत्मकथा और पत्र

20.4 आत्मकथा लेखन का विकास

20.4.1 प्रथम चरण (1600–1875 ई.)

20.4.2 द्वितीय चरण (1876–1925 ई.)

20.4.3 तृतीय चरण– (1926–1950 ई.)

20.4.4 चतुर्थ चरण (1951–196० ई.)

20.4.5 पंचम चरण– (1961 –1999 ई.)

20.5 आत्मकथा का वर्गीकरण

20.5.1 अंतरंग

20.5.2 बहिरंग

20.5.3 मिश्रित वर्ग

20.5.4 आत्मकथा–वर्गीकरण का आधार

20.5.4.1 धार्मिक आत्मकथाएं

20.5.4.2 राजनीतिक आत्मकथाएं

20.5.4.3 समाजपोषित आत्मकथाएं

20.5.4.4 साहित्यिक आत्मकथाएं
20.6 आत्मकथा का रचनागत वैशिष्ट्य
20.6.1 अन्तर्वस्तु
20.6.1.1 अहंयुक्ता
20.6.1.2 व्यक्तिगत कमजोरियों का उत्सर्ग
20.6.1.3 आत्म–स्वीकृति
20.6.1.4 पूर्वाग्रहयुक्ता
20.6.1.5 सत्य आकलन
20.6.1.6 विनम्रता
20.6.1.7 उत्तरोत्तर निजता का लोप
20.7 सामग्री चयन एवं प्रस्तुति शिल्प
20.7.1 सामग्री चयन
20.7.2 प्रस्तुति शिल्प
20.7.2.1 भाषा
20.7.2.2 शैली
20.8 सारांश
20.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
20.10 निबंधात्मक प्रश्न

20.0 उद्देश्य

अभी तक आपने साहित्यिक विधाओं के विभिन्न प्रकारों के लेखन के संबंध में अध्ययन किया है। इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि

- आत्मकथा का अर्थ क्या है तथा इसे किस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है?
- आत्मकथा और जीवनी में क्या अन्तर है तथा अन्य विधाओं से कैसे भिन्न है?
- आत्मकथा का उद्भव एवं विकास कब और कैसे हुआ?
- आत्मकथाओं के विविध प्रकार क्या हैं?
- आत्मकथा लेखन कैसे किया जाता है, और
- आप अपनी आत्मकथा लिखने की पूरी तैयारी कर सकते हैं?

20.1प्रस्तावना

20.1.1 संचार माध्यम और आत्मकथा

जनसंचार का जैसे–जैसे विस्तार होता गया है, उसमें अनेक विधाओं का विस्तार होता गया है। आज मुद्रित माध्यम के रूप में अनेकानेक विधाओं में पर्याप्त लेखन हो रहा है। पहले श्रुत परम्परा में ही लोग प्रवचन देते थे, अपनी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति को अपनी हस्तलिपि में अंकित करते थे।

आज प्रचुर मात्रा में हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। मुद्रित माध्यम के प्रचलन से पूर्व ही हमारे यहां आत्मकथा लेखन आरंभ हो चुका था। सत्रहवीं शताब्दी में बनारसीदास जैन दारा लिखित "अर्द्धकथा" (1641) इसका प्रमाण है। यही नहीं हिन्दी के आधुनिक काल में भारतेंदु युग तक आते– आते स्वामी दयानंद सरस्वती का आत्मचरित (1860), सीताराम सूबेदार लिखित, "सिपाही से सूबेदार तक" (1861) आत्मकथाएं लिपिबद्ध हो चुकी थीं। उन्नीसवीं शताब्दी में मुद्रणालय भारत में आ चुका था। अत अंतिम दो आत्मकथाएं मुद्रित रूप में प्रकाशित हो चुकी थी। सन् 1876 में भारतेंदु हरिश्चंद्र की आत्मकथा "एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती" प्रकाशित हुई। इसी अवधि में राधाचरण गोस्वामी का "जीवन चरित्र" और प्रताप नारायण मिश्र का "जीवन वृत्तांत" प्रकाशित हो चुका था। सन् 1901 में अंबिका दत्त व्यास का "जीवन वृत्तान्त" भी प्रकाशित हो गया था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आत्मकथा लेखन परंपरा भारत में सत्रहवीं शताब्दी से ही प्रचलन में रही है। मुद्रित माध्यम या जनसंचार माध्यम के आगमन से यह विधा मुद्रित रूप में उन्नीसवीं शती के आरंभ में आ चुकी थी।

20.1.2 आत्मकथा: एक स्वतंत्र विधा

आत्मकथा आज स्वतंत्र विधा के रूप में पूर्णत: विकसित हो चुकी है। इसमें आत्मिक निर्भरता आवश्यक है और लेखक का अहम् भी कहीं न कहीं अभिज्ञापित हो जाता है। लेकिन प्रयत्नपूर्वक अहंज्ञापन के स्थान पर लेखक आत्मकथा लेखन का निर्णय करते समय अपना "स्व परीक्षण" करता है। अत: "स्व" की प्रचंडता वह छोड़ देता है, सहजता ग्रहण कर ही आत्मकथा लिखी जाती है।

आत्मकेंद्रित लेखन प्रक्रिया के निष्कर्ष पर आत्मकथा अब स्वतंत्र विधा के रूप में और अधिक महत्ता प्राप्त कर गई है। इसे अहम् यात्रा का आंकलन भी कहा जा सकता है जिसमें निजी जीवन की घटनाओं का यथातथ्य और औचित्यपूर्ण उल्लेख होता है।

20.2 आत्मकथा : अर्थ एवं परिभाषा

20.2.1 आत्मकथा : अर्थ

आत्मकथा मूलत: अंग्रेजी शब्द "ऑटोबायोग्राफी" के पर्याय के रूप में हिन्दी में प्रचलित हुआ है। संस्कृत कोश में इस "आत्मकथा" शब्द का अभाव है। वहां "आत्मवृत्तम" और "आत्मचरितम्" शब्द अवश्य मिलते हैं। ये शब्द आत्मकथा के समानार्थी रूप में स्वीकार किए जा सकते हैं।

"ऑटोबायोग्राफी" जैसे अंग्रेजी शब्द के लिए हिन्दी में प्रचलित शब्द है – आत्मकथा, आत्मवृत्त, आत्मगाथा, आत्मचरित, आत्मचरित्र चित्रण, स्वकथा, आत्मजीवन, आत्म वृत्तान्त, आत्मने पद, आत्म कहानी, आपबीती, मेरी कहानी, रामकहानी, अपनी कहानी, जीवन यात्रा, अपनी खबर आदि। लेकिन आज मुद्रित माध्यम में सर्वाधिक प्रचलित शब्द "आत्मकथा" को ही व्यापक स्वीकृति प्राप्त है।

वृहत् हिन्दी कोशकार के अनुसार आत्मकथा शब्द का विग्रह किया गया है– आत्मन+कथा। "आत्म" शब्द "आत्मन" का समासरूप में व्यवहृत शब्द है जिसका अर्थ है– अपना, निज का, आत्मा का, मन का, तथा "कथा" का अर्थ है –जीवन कहानी। अत: आत्मकथा का अर्थ हुआ "स्वलिखित जीवन कथा"। उर्दू में इसके लिए "खुदनविस्तसवानेह उमरी" शब्द प्रचलित है। इसमें "खुदनविस्त" फारसी भाषा

का शब्द है और "सवानेह उभरी" अरबी भाषा का है। फारसी में "नविस्तन" या "नविस्ता" शब्द है जिनका अर्थ होता है –लिखना और लिखा हुआ। अरबी भाषा में शब्द है –सानेहा (एकवचन) जिसका अर्थ है –घटना। इसी सानेहा का बहुवचन है सवानेह। अरबी शब्द "उमर" से "उमरी" बना है। अत: दोनों भाषाओं मिश्रित शब्द बना– 'खुदनविस्तसवानेह उमरी'। इसका अर्थ हुआ–जीवन की घटनाओं का खुद से लिखा हुआ रूप।

20.2.2 आत्मकथा: परिभाषा

कैसल्स एनसाइक्लोपीडिया ऑव लिटरेचर (संपादक एस. एच. स्टेनवर्ग) के अनुसार "आत्मकथा लेखक के जीवन का आत्मकथन है जिसमें जीवनी से अधिक सत्यापन की संभावनाएं रहती हैं।" ब्रिटानिका विश्वकोश के अनुसार ऐसी जीवनी, को "अनुभूतियों का उद्रेकपूर्ण दस्तावेज" कहा गया है। विलियम टेलर ने आत्मकथा के लिए "सैल्फ बॉयोग्राफी" या "ऑटोबायोग्राफी" शब्द का प्रयोग किया है। शूमेकर की दी गई परिभाषा है – "घोषित सच में रहस्यात्मकता या कल्पनात्मकता के समावेश के साथ एकमात्र सृजन कहा गया है तथा इसे पत्र, डायरी और जर्नल से अलग बताया

हिन्दी साहित्य कोशकार के अनुसार–"आत्मकथा लेखक के अपने जीवन का संबद्ध वर्णन है।" "हिन्दी विश्वकोशकार के अनुसार– "आत्मकथा के द्वारा लेखक अपने जीवन का सिंहावलोकन करता है।" उक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "आत्मकथा लेखक के आत्म या "स्व" या "अहं" की वह कसौटी है जिसमें असंलग्नता अनुभव करते हुए लेखक आत्मालोचन करता है तथा जीवन के उचित और अनुचित विवरणों का साहस के साथ आंकलन करता है।

> आत्मकथा अपने अन्दर के सत्य का सामना है जो अपनी अहंता, अपनी स्वीयता और अपनी आत्मा के प्रति असंलग्न रहकर अपने जीवनक्रम में किए गए प्रत्येक उचित– अनुचित कृत्यों का साहसपूर्ण आंकलन है। इसमें लेखक दर्पण के सामने तो होता ही है और अपने चेहरे को देखता ही है, पर मात्र उतना ही नहीं वह चेहरे से अधिक हृदय के उद्वेलन उद्वेग और कलुष तक को सामने रखने में नहीं झिझकता है। इस प्रकार लेखक अपने जीवन के कार्यकलापों का यथार्थपरक उल्लेख अपनी सर्जनात्मक क्षमता के वैशिष्ट्य के साथ करता है।

20.2.3 आत्मकथा के अनिवार्य गुण

परिभाषाओं के आधार पर आत्मकथा के कतिपय गुण सामने आ जाते हैं जिसमें अपने जीवन का सत्यापन, अनुभूतियों के उद्रेक का संयोजन घोषित का रहस्य एवं कल्पना मिश्रित उल्लेख, जीवन का सिंहावलोकन और आत्मालोचन आदि गुणों का उल्लेख मिलता है।

'हिन्दी विश्वकोशकार' के अनुसार आत्मकथा के निम्नलिखित गुण हैं:

1. उत्तम स्मृति
2. अपने प्रति तटस्थता
3. स्पष्टवादिता
4. अति आत्म समर्थन से मुक्ति
5. सार्वजनिक महत्व के विवेक की समृद्धि
6. आकर्षक निवेदन शैली

यद्यपि कोशकार इनकी गणना भर कराके चुप लगा गए हैं। लेकिन इन गुणों की अपेक्षाओं के सम्बन्ध में भी कुछ व्याख्या आवश्यक प्रतीत होती है तभी आत्मकथा के संदर्भ मे इन गुणों की आन्तरिक संलग्नता (इन्वाल्वमेंट) चरितार्थ होगी। अत: यहां उन गुणों की क्रमश: व्याख्या की जा रही है।

20.2.3.1 उत्तम स्मृति

आत्मकथाकार का पहला अनिवार्य गुण उसकी उत्तम कोटि की स्मृति है। बिना उत्तम कोटि की स्मृति के लेखक को अपने निजी जीवन की छोटी–छोटी बातों और घटनाओं का स्मरण रहना कठिन होता है। जब स्मरण ही नहीं रह सकता है तो किसी घटना का यथार्थपरक या तथ्यपरक उल्लेख कठिन कार्य होगा। ऐसी स्थिति मे आत्मकथा मे कल्पनाशीलता की आवश्यकता नहीं होती। कल्पनाशील रचना आत्मकथा न होकर कोई कथा या कहानी ही हो सकती है। अत: जीवन की प्रत्येक घटना या अवसर और उस अवसर पर लेखक की स्वयं की क्रिया –प्रतिक्रिया क्या रही थी, उसकी स्मृति उत्तम रूप में रखकर ही अपनी ईमानदारी युक्त आत्मकथा लिखने की प्रक्रिया अपनाई जा सकती है।

20.2.3.2 अपने प्रति तटस्थता

आत्मकथा लेखक "स्व" का उल्लेख कर रहा होता है लेकिन 'स्व' में आत्मप्रशस्ति का स्थान शून्य है। आत्मप्रशस्ति से मुक्त आत्मकथा लेखक को अपनी कमजोरियाँ, भूलों और जीवन में आने वाले विभिन्न प्रकार के समझौतों का उल्लेख एक तटस्थ दृष्टा की भांति करना होता है। ऐसी स्थिति में अहं की अभिव्यक्ति से भी परे रहना वांछनीय होता है। तभी आत्मकथा आत्मकथा बन सकती है क्योंकि वह व्यक्ति (लेखक) के मन का एक ऐसा विशिष्ट दस्तावेज है जो साधारणीकरण की प्रक्रिया में एक विशिष्ट व्यक्ति के मन को समष्टि मनों में तिरोहित करने की सामर्थ्य रखता है। अत: यह नितांत अनिवार्य है कि इस साधारणीकरण की प्रक्रिया की समग्रता के लिए आत्मकथा लेखक अपने प्रति तटस्थ रहे।

20.2.8.3 स्पष्टवादिता

आत्मकथा लेखक के लिए आत्मकथा लेखन में स्पष्टवादी होना भी विशेष गुण है। यद्यपि उसे यह पता है कि आत्मकथा का प्रकाशन होते ही यह सार्वजनिक हो जाएगी, अत: डायरी में जितना स्पष्ट और तथ्यात्मक स्थितियों का उल्लेख हो सकता है, उतना भले ही स्पष्ट नहीं लिखा जाए, पर यह अपेक्षा की जाती है कि आत्मकथा लेखक स्वयं से धोखा नहीं करता। इसलिए जो कुछ भी उसके जीवन में घटित होता है, या घटित हो चुका है, उसके लिए वह पूरा ईमानदार होकर स्पष्टवादी अंकन करता है। इस कारण ही आत्मकथन में पारदर्शिता आती है। व्यक्ति मन के जीवन मोहों, पूर्वाग्रहों, भूलों, अपेक्षाओं. निराशाओं अनपेक्षित क्रियाकलापों का भले ही कितना ही उलझाव क्यों न रहे आत्मकथांकन में स्पष्ट चित्रण किया जाता है क्योंकि लेखक खुद से कोई दुराव नहीं रखता है।

20.2.3.4 अतिसमर्थन से मुक्ति

आत्मकथा का 'आत्म' से जितना गहरा संबंध है, लेखक की उसके साथ उतनी ही संलग्नता होती है और आत्मकथाकार अपने जीवन में घटित होने वाले प्रत्येक कार्य के साथ आत्म समर्थन ही

सिद्ध करता है। यदि उसमें निर्लिप्त भाव होता तो निश्चित ही उसमें आत्म संबंधों का स्फुरण नहीं होता। लेकिन जब दायित्व आत्मकथा लेखन का आता है तो ऐसी स्थिति में उसे आत्मसमर्थन से मुक्त होने का अनिवार्य गुण ग्रहण करना होता है अन्यथा वह अपने कृतित्व के प्रति ईमानदार नहीं हो सकता। यही कारण है कि जीवन सत्यों के निरूपण में आत्मकथाकार की लेखन संबंधी अंतर्वृत्ति में उसे आत्म समर्थन के प्रति विमुखता धारण कर लेना ही अपेक्षित गुणात्मकता की वृद्धि करना है।

20.2.3.5 सार्वजनिक महत्त्व के विवेक की वृद्धि

आत्मकथा में सब कुछ होता है। आत्मकथन और अपने जीवन को केन्द्र में रखकर प्रत्येक घटना का चित्रण ही प्रधान रूप में होता है लेकिन उसमें गुणात्मक संवृद्धि तभी हो सकती है, जब आत्मकथाकार अपने इस कृतित्व को आत्मश्लाघात्मक और आत्मोत्कर्ष का शिखरस्थ सिद्ध न कर उस समग्र कृतित्व को सार्वजनिक महत्व के सरोकारों में समन्वित करके देखे। ऐसी स्थिति में आत्मकथा लेखक में सार्वजनिक महत्व के विवेक की समृद्धि होने का गुण विकसित होता है और वह अपने "स्व" विवेक को "पर" के प्रति संलग्नता मे व्यवहृत देखता है। इस प्रकार उसके विवेक में समष्टिपरकता का गुण विस्तार पाता है।

20.2.3.6 आकर्षक निवेदनशैली

आत्मकथाकार अपने जीवन की घटित घटनाओं और स्थितियों को जो उसकी नितांत अपनी हैं, सार्वजनिक करने की स्थिति उचित क्यों समझता है? आत्मचित्रण और उसकी छवियां बहुमुखी होती हैं जिनमें निजता तो होती है, पर वह निजता सार्वजनीनता के परिप्रेक्ष्य मे समाहित होने की सम्भावनाएं पैदा करती हे तभी आत्मकथाकार अपना अन्त: जगत दूसरे के समक्ष रखता है। निश्चित ही हरिवंशराय बच्चन के शब्दों मे अहं स्फोटित मन की छटपटाहट है जिस के लिए वे कहते है – 'मुझे कई वर्षो से लग रहा था कि जब तक मैं अपने अंतर मे निरंतर उठती हुई स्मृतियों को चित्रित न कर डालूंगा तब तक मेरा मन शांत नहीं होगा। "यही कारण है कि इस छटपटाहट और आकुलता को आत्मकथा–लेखक आकर्षक शब्दचयन और शैली में निवेदन की अभिव्यक्ति देता है।

आत्मकथा है तो सर्जनात्मक अभिव्यक्ति ही और सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है संप्रेषणीयता जो लेखक और पाठक के मध्य सेतु बनती है। फिर क्या यह आवश्यक ही है कि पाठक लेखक के आत्मवृत्त को पढ़े ही ? पाठक किसी रचना को पढता तभी है, जब सामान्य या सरसरी दृष्टि डालने पर उसमें कुछ आकर्षण अनुभव करता है। यही कारण है कि आत्मकथाकार संस्मरणात्मक, वर्णनात्मक तथा आत्मचरितात्मक शैलियों के माध्यम से आकर्षण उत्पन्न करता है और इस आकर्षण में भी एक ऐसा निवेदन सूत्र निर्वाह करता चलता है कि पाठक उस पढ़ने की तत्परता अनुभूत करने लगता है।

बोध प्रश्न – 1

1. आत्मकथा की परिभाषा दीजिए।
2. 'आत्मकथा अपने अन्दर के सत्य का सामना है' –इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।
3. आत्मकथा को घोषित सत्य क्यों कहा गया है?
4. आत्मकथा के अनिवार्य गुण स्पष्ट कीजिए।

5. आत्मकथा में स्पष्टवादिता क्यों होनी चाहिए?
6. आत्मकथा में तटस्थता क्यों आवश्यक है?

20.3 आत्मकथा एवं अन्य विधाएं

आत्मकथा और जीवनी को एक ही कहा गया था क्योंकि लेखक अपने जीवन कृत्यों को केन्द्र बनाकर आत्मकथा लिखता है और किसी भी दूसरे व्यक्ति के जीवन कृत्यों को केन्द्र बनाकर "जीवनी" लिखता है जो किसी अन्य का जीवन चरित्र है, लेखक का स्वयं नहीं है। लेकिन वास्तविकता यह है कि आत्मकथा जीवनी नहीं है। अपने जीवन की घटनाओं का स्वलिखित विवरण आत्मकथा है और दूसरे के द्वारा लिखित विवरण ही जीवनी है।

अत: अनुषंगी विधाओं से आत्मकथा का स्पष्ट अन्तर यहां प्रस्तुत किया जा रहा है :–

1. आत्मकथा और जीवनी
2. आत्मकथा और संस्मरण
3. आत्मकथा और डायरी
4. आत्मकथा और पत्र

20.3.1 आत्मकथा और जीवनी

आत्मकथा और जीवनी में पर्याप्त अन्तर है। वैसे दोनों ही विधाओं में व्यक्तिगत मानव अस्तित्व का पुन: सृजन करती है तथा अनुभव का गुणात्मक रूप प्रस्तुत करती है। स्टाफर की मान्यता है कि जीवनी और आत्मकथा का अन्तर मात्र औपचारिक है। इन दोनों के बीच के अंतर को मुख्यत: "तकनीकी" एवं "सार्वनामिक" मान सकते हैं। हिन्दी साहित्य कोशकार के अनुसार– 'किसी व्यक्ति के जीवन वृत्तान्त को जीवनी कहते है जो अंग्रेजी के पर्याय "बायोग्राफी" से जानी जाती है। सामान्यत: जीवनी में व्यक्ति के कार्यो का वर्णन होता है।

आत्मकथा में अपने तथ्यों के लिए मूलत: अपनी स्मृति को आधार बनाना होता है तथा अपने विगत जीवन और बीती घटनाओं को बार–बार अपनी चेतन स्मृतियों तक लाना होता है तथा उन घटनाओं को अनुभूत करना होता है। जीवनीकार अपने नायक के जीवन की एक घटना का दूसरी घटना से सापेक्षिक संबंध जोड़ता है तथा उसकी स्थिति दर्शक की होती है, नायक की नही।

जीवनीकार स्वयं घटना स्थल पर उपस्थित रहकर परिस्थिति विशेष को आत्म कथाकार से सर्वथा भिन्न रूप में अनुभव करने के लिए स्वतंत्र है। आत्मकथाकार प्रत्यक्ष मानवीय विषयों से संबंधित निजी घटनाओ पर भी तीखेपन और नि:संगता से प्रकाश नहीं डाल पाता है जितना जीवनीकार। इतना ही नहीं आत्मकथा जहां 'स्व' (नायक) के जीवनकाल में रची जा सकती है, वहां जीवनी (नायक के) जीवनकाल के बाद भी लिखी जा सकती है और लिखी जाती है।

> आत्मकथा स्वयंलिखित स्व–इतिहास है और अपने संकलित तथ्यों सामग्रियों उद्देश्य और नायक के प्रति लेखकीय सहानुभूतिपूर्वक लिखा गया इतिहास जीवनी है। इतना सत्य है कि तथ्यों के सत्य निरुपण की दृष्टि से आत्मकथाकार और जीवनीकार इतिहासकार के अधिक निकट हैं।

आत्मकथा और संस्मरण में स्थूल रेखाओं से ही विभाजन करना संभव है, पर पहचान करके अंतर स्पष्ट कर पाना कठिन है। पाश्चात्य आलोचक पॉस्कल के अनुसार– "आत्मकथा और संस्मरण को स्थूल रेखाओं से विभाजित कर पाना दुष्कर कार्य है औंर शायद कोई एक स्पष्ट विभाजन रेखा खींची भी नहीं जा सकती।" संस्मरण के लिए विवरण, वृत्तान्त, चरित्र, वृत्त, व्यक्तिगत परिचय, व्यक्तिगत ज्ञान, आत्मचरित्र, जीवन चरित्र आदि शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं जिनका अंग्रेजी पर्याय "मेमोयर" है जबकि स्मृति, संस्मृति, पूर्व स्मृति, संस्मरण, संस्मृत घटना, याद किया हुआ तथ्य, स्मरणकारी लक्षण का अंग्रेजी पर्याय रेमिनेन्सेज है। हिन्दी में दोनो के लिए संस्मरण, प्रयुक्त होता है।

संस्मरण लेखक जो स्वयं देखता है, जिन तथ्यों को स्वयं अनुभूत करता है, उसी का वर्णन करता है। हिन्दी साहित्य कोशकार के अनुसार– "संस्मरण अपने समस्या के इतिहास को लिखते हुए भी इतिहास के वस्तुपरक रूप से अलग होते हैं। संस्मरण मे संस्मरण लेखक की अपनी अनुस्मृतियाँ, भावनाओं और संवेदनाओं का मिश्रण अनायास ही ऐतिहासिक तथ्यो से हो जाता है।" संस्मरणों में लेखक का ध्यान अपने पात्र या नायक के बाह्य परिवेश या निकट आए व्यक्तियों को अंकित करने पर केंद्रित होता है, स्वयं लेखक को अंकित नही करता है। आत्मकथाकार संक्रातिकालीन गतिविधियों, प्रभावित करने वाली घटनाओं और उनकी प्रतिक्रियाओं का सहती हुई अपनी निजी मन:स्थितियों का विश्वसनीय आधार प्रस्तुत करता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आत्मकथा किसी बिन्दु पर संस्मरण होती है और संस्मरणों का आत्मकथात्मक सूचनाओं पर आधारित होना अनिवार्य भी है। अतीत की स्मृति से संबद्ध रखने के कारण आत्मकथा का संस्मरण की सीमा में रहना अपेक्षित है किन्तु यह संपूर्ण निजी जीवन वृत्त का कालक्रमानुसार स्मरण है, किसी विशेष काल खण्ड मे घटित और अनुभूत घटना का ही स्मरण है, व्यक्ति का नहीं।

> आत्मकथा मे सारी क्रिया– प्रतिक्रियाओं का बिन्दु "स्व" होता है, वहां संस्मरणों में यह बिन्दु "पर" होता है जिसका लेखकीय व्यक्तित्व से कभी निकट और कभी दूर का संबंध होता है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आत्मकथा संस्मरणों से अलग मात्र बीती घटनाओं की प्रस्तुति और विवरण नहीं बल्कि पूरे बीते हुए अपने जीवन को पुन: जिए जाना है और उस जीवन का एकछत्र नायक आत्मकथाकार ही होता है। संस्मरण से पाठक घटनाओं और सार्वजनिक महत्व के व्यक्तियों और क्रियाक्रलापों की आत्मीय सूचनाओं के साथ–साथ लेखक के अपने दृष्टिकोण की अपेक्षा करते है।

20.3.3 आत्मकथा और डायरी

प्रतिदिन के अनुभवों के यथार्थ रूप मे डायरी मे किये गए आंकलन को "डायरी" नामक विधा के रूप मे जाना गया है। यह शब्द लैटिन भाषा के शब्द "डाइटम" से डाइज बना जिसका अर्थ एक दिन(ए डे) होता है और उस दिन का जो लेखा–रखा रखा जाता है, उसे डायरी कहते है। हिन्दी मे भी डायरी शब्द का प्रचलन है। यद्यपि डायरी के हिन्दी पर्याय दैनंदनी, दैनिकी भी प्रचलित है। यह डायरी लेखन

प्रतिदिन की आत्मकथा है, प्रतिदिन के अनुभवी पर लिखी गई डायरी वास्तव मे "व्यक्ति के खुद के जीवन के प्रतिदिन की क्रिया के द्वारा संरक्षित" स्वरूप है जो अब विधा के रूप में जाना गया है।

'हिन्दी साहित्य कोश' के अनुसार– 'डायरी के माध्यम से लेखक के सद्य: स्फुरित भावों तथा विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है। 'डायरी लेखक अपने निजी अनुभवों को बडी ईमानदारी के साथ प्रथम पुरुष मे अंकित करता है और उसका स्वरूप सत्य होता है। अन्य विधाओं में लेखक कल्पना का आश्रय ले सकता है, पर डायरी लिखते समय दिनभर के कार्य कलापों का सत्य अंकन ही करता है। उस क्षण लेखक अपने आपसे सीधा साक्षात्कार करता है इसलिए डायरी में दुराव नहीं करता। वह निजी सम्पत्ति एवं निजता का यथार्थ होता है। इस निष्कर्ष पर आत्मकथाकार भी निजता या "स्व" का उल्लेख करता है। जिसके संबंध में हरिवंशराय बच्चन ने कहा है कि– "बहुत स्वाभाविकता से लिखी जाने पर भी आत्मकथा प्रकाशित करने के ध्येय से लिखी गई थी और उसने निश्चय ही मेरी स्वाभाविकता को परिसीमित किया है। प्रस्तुत डायरी प्रकाशित करने के ध्येय से नहीं लिखी गई थी, मैं केवल उतना दावा कर सकता हूं कि इसमे मैं अपने अधिक स्वाभाविक रूप में आपके सामने हूँ।"(प्रवास की डायरी, अपने पाठकों से)। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है –डायरी मेरे मानसिक जीवन के लगभग सात मूल्यवान वर्षो का सच्चा आत्मचरित्र है, जो आज नहीं लिखा जा रहा, बल्कि उसी कच्चे–पक्के रूप में है, जिसमे यह तभी लिखा गया था। इसकी अपूर्णता और सच्चाई मे ही इसका महत्व है। "राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार– "डायरी हो या आत्मकथा, आदमी अपने सही रूप को उस तरह आंक नहीं सकता, जिस तरह उसे कोई तटस्थ व्यक्ति आंक सकता है। हम हर समय कोई न कोई मुखौटा लगाकर चलते हैं। "लेकिन इतना सब कुछ होते हुए डायरी निजी जीवन से संबंधित होकर भी देश, काल और परिवेश से प्रभावित और प्रतिक्रिया संपन्न होती है।

> डायरी और आत्मकथा जैसी दोनों विद्याएं लेखक कि अंतरंगता से परिपूर्ण होती हैं लेकिन फिर भी दोनों में औपचारिक अंतर हैं। आत्मकथा जहां संपूर्ण जीवन को एक विशिष्ट समय के एक विशिष्ट क्षण में देखती है और उसकी (जीवन की) समीक्षा करती हैं। डायरी व्यक्तित्व की कितनी ही प्रकाशिका क्यों न हों, पर वह अपने लिखे जा रहे कल के क्षण की श्रृंखला में दोलायमान रहती है। डायरी लेखक उन स्थितियों, बातों और भावनाओं को निबद्ध करता है जो उस विशिष्ट क्षण में महत्वपूर्ण लगती है। यही नहीं, डायरी में लेखक सामान्यतः तत्कालीन क्षणों के ताजा अनुभव अंकित करता हैं, कभी–कभी बीतें क्षणों में लेखक घटनाओं और फुटकर कार्यकलापों को मोड़कर या काट–छांटकर एकीकृत रूप में समग्रता में रूपायित करता है, अत: वह आत्मकथाकार द्वारा जीवन पर पुनर्विचार और जीवन का प्रतिबिंबन होता है, मगर डायरी में जीवन को उसकी समग्रता और नियमितता में नहीं देखा जाता।

20.4.3.4 आत्मकथा और पत्र

पत्र आत्मकथा नहीं, होते पर पत्रों में 'आत्म' की अभिव्यक्ति प्रखर रूप में निहित होती है। पत्र मे निहित आत्मीयता से पत्र लेखक के व्यक्तित्व की पहचान होती है। पत्रों की आत्मकथात्मकता,

निजता, संवेदनशीलता और मनःस्थितियों को बेजोड अभिव्यक्ति और उसकी प्रवहमानता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रेमचन्द के पत्रों क संबंध मे अमृतराय ने कहा है चिट्ठियां किसी का भी आइना होती है उस आदमी की तबियत का, मुंशी जी की चिट्ठियां तो और भी, जिनमें किसी तरह की बनावट या तकल्लुफ नहीं है। कागज उठाया ओर लिख दी एक चिट्ठी कि जैसे आमने–सामने बैठे बाते कर रहे हो, (प्रेमचंद की चिट्ठी पत्री–अमृतराय)।

एक सामान्य आत्मकथा तो एक संपूर्ण जीवन का सारांश है। आत्मकथा एक व्यक्ति के जीवन के बडे महत्वपूर्ण भागों का मूल्यांकन होती है लेकिन पत्र पत्रलेखक के अंतरंग संसार में ले जाने का उसकी मनोवैज्ञानिक मानसिक स्थितियों से संबंधित स्पष्टोक्तियां ही होते हैं तथा उनकी प्रवृत्तिगत असंबद्धता के कारण उन्हें 'आत्मकथा' कदापि नहीं कहा जा सकता। पत्रों की महत्ता का उल्लेख करते हुए जानकीवल्लभ शास्त्री ने लिखा है–कौन जाने, कब ये पत्र उनके दीप्तदृप्त जीवन के आसपास झुके हुए धूमिल आकाश को गहन, आत्मप्रकाश से उद्भासित करने में आंशिक सहायता प्रदान करें। (निराला के पत्र, 1971)

> पत्र की एक विशेषता यह है कि पत्र आत्मीय भावना से किसी विश्वसनीय व्यक्ति को लिखे जाते हैं। अतएव उनमें कोई दुराव–छिपाव नहीं रहता। उसके साथ ही उनमें सादगी स्वाभाविकता निष्कपटता का निर्वाह होता है तथा लिखने वाले के व्यक्तित्व की गहरी छाप लिए होते हैं। यही कारण है कि आत्मकथात्मकता से परिपूर्ण होकर भी–पत्र कभी आत्मकथा जेसी विधा नहीं होते है।
>
> आत्मकथा एक आत्मिक निर्भरता की मांग है। आत्मकथा लिखने का निर्णय स्वयं में जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है क्योंकि उसमें आत्मकथाकार को निश्चित ही 'स्व' परीक्षण का निर्मम काम करना होता है तथा अपनी स्वीयता का औचित्य समर्थन भी प्रदर्शित करने की अनिवार्यता निर्दिष्ट करनी होती है

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि आत्मकथा और आत्मकथात्मक अन्य समकक्षीय विधाओं में स्पष्टत: अन्तर देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न–2

1. आत्मकथा और जीवनी में अंतर बताइए।
2. आत्मकथा और डायरी का अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. आत्मकथा और पत्र का अंतर है?
4. आत्मकथा और संस्मरण में अंतर बताइए।

20.4 आत्मकथा लेखन का विकास

प्रथम आत्मकथा का परिचय हमें सत्रहवीं शताब्दी में बनारसीदास जैन द्वारा लिखित "अर्द्धकथा" (1641) से मिलता है। उसके बाद से अद्यतनकाल तक– आत्मकथा साहित्य के विकास को निम्नलिखित चरणों में रखा जा सकता है -

1. प्रथम चरण सन् 1600 – 1875 ई.
2. द्वितीय चरण सन् 1876 – 1925 ई.

3. तृतीय चरण सन् 1926 – 1950 ई.
4. चतुर्थ चरण सन् 1951 – 1960 ई.
5. पंचम चरण सन् 1961 – 1999 ई.

20.4.1 प्रथम चरण–सन् 1600–1875 ई.

1.	बनारसीदास जैन	1641 ई.	अर्द्धकथा
2.	स्वामी दयानन्द सरस्वती	1860 ई.	आत्मचरित
3.	सीताराम सूबेदार	1961 ई.	सिपाही से सूबेदार तक

20.4.2 द्वितीय चरण–सन् 1876–1925

4.	भारतेंदु हरिश्चन्द्र	1876 ई.	कुछ आप बीती, कुछ जग बीती
5.	राधाचरण गोस्वामी	–	जीवन चरित्र
6.	प्रतापनारायण मिश्र	–	जीवन वृत्तांत
7.	अंबिकादत्त व्यास	1901 ई.	निज वृत्तांत
8.	सत्यानन्द अग्निहोत्री	1910	मुझमें देव जीवन का विकास
9.	भाई परमानन्द	1922 ई.	आप बीती (मेरी राम कहानी)
10.	स्वामी श्रद्धानंद पथिक	1924 ई.	कल्याण मार्ग का पथिक

20.4.3 तृतीय चरण– सन् 1926– 1950 ई.

11.	श्रीधर पाठक	1926	स्वजीवनी (मुक्त वृत्त)
12.	रामप्रसाद बिस्मिल	1927	आत्मकथा
13.	लाला लाजपतराय	1932	आत्मकथा
14.	प्रेमचंद (सं.)	1932	आत्मकथांक, हंस
15.	रामविलास	1933	मैं क्रांतिकारी कैसे बना
16.	पं. लज्जारम मेहता	1933	आप बीती
17.	अक्षयवट मिश्र विप्रचन्द	1937	आत्मचरित चंपू
18.	राजाराम अग्रवाल	1937	मेरी कहानी
19.	स्वामी सत्यभक्त	1940	आत्मकथा
20.	रामनाथ सुमन	1940	मेरी मुक्ति की कहानी
21.	परमेश्वरी दया	1940	मेरी मुक्ति की कहानी
22.	गुलबराय	1940	मेरी असफलताएं
23.	श्यामसुंदरदास	1941	मेरी आत्मकहानी
24.	स्वामी वेदानंदतीर्थ	1943	जीवन की भूलें (आत्म संस्मरण)
25.	मूलचन्द्र अग्रवाल	1944	पत्रकार की आत्मकथा
26.	चंद्रभूषण वैश्य	1945	अपनी बातें

27. हरिभाऊ उपाध्याय	1945	साधना के पथ पर (अहिंसा के अनुभव)
27. अ इंद्र विधावाचस्पति	1945	जीवन की झांकियां
28. राहुल सांकृत्यायन	1946	मेरी जीवन यात्रा–1
29. डॉ. राजेन्द्रप्रसाद	1947	आत्मकथा
30. सन्यासी भवानीदयाल	1939	प्रवासी की आत्मकथा
31. वियोगी हरि	1948	मेरा जीवन प्रवाह
32. गणेशप्रसाद वर्णी	1949	मेरी जीवन गाथा–प्रथम भाग
33. नंदलाल शर्मा निर्वासित	1949	मेरी बात
34. राहुल सांकृत्यायन	1950	मेरी जीवन यात्रा भाग–2

20.4.4 चतुर्थ चरण– सन् 1951– 1960 ई.

35. कमलाप्रसाद वर्मा	1951	भूली भागती यादें
36. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक	1951	स्वतंत्रता की खोज (मेरी आत्मकथा)
37. यशपाल	1951	सिंहावलोकन, भाग 1
38. यशपाल	1951	सिंहावलोकन भाग 2
39. जैनेन्द्रकुमार	1952	अपनी बात
40. क्षेमेन्द्र सुमन (सं.)	1952	जीवन स्मृतियां (साहित्यकार के आत्मचरित)
41. स्वामी सहजानन्द सरस्वती	1952	मेरा जीवन संघर्ष
42. शांतिप्रिय द्विवेदी	1952	परिव्राजक की प्रजा
43. देवेन्द्र सत्यार्थी	1953	चांद सूरज के विरन
44. कालीदास कपूर	1953	मुदर्रिस की रामकहानी
45. यशपाल	1955	सिंहावलोकन भाग–3
46. आचार्य नरेन्द्रदेव	1956	मेरे संस्मरण
47. रामनरेश त्रिपाठी	1956	कलाकार के आत्म संस्मरण
48. उदयशंकर भट्ट	1956	कलाकार के आत्म संस्मरण
49. जगन्नाथप्रसाद मिलिंद	1956	कलाकार के आत्म संस्मरण
50. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	1956	कलाकार के आत्म संस्मरण
51. छविनाथ पाण्डेय	1956	अपनी बात
52. राधेश्याम कथावाचक	1956	मेरा नाटक काल
53. सेठ गोविन्ददास	1958	आत्म निरीक्षण–पहला भाग–प्रयत्न
54. सेठ गोविन्ददास	1958	आत्म निरीक्षण–पहला भाग–प्रयत्न (प्राप्यशा)
55. सेठ गोविन्ददास	1958	आत्म निरीक्षण–तीसरा भाग–नियतप्ति

56. डॉ. देवराज उपाध्याय	1959	बचपन के वो दिन
57. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	1959	मेरी अपनी कथा
58. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	1960	अपनी खबर
59. शिवपूजन सहाय	1960	मेरा बचपन
60. गणेशप्रसाद वर्णी	1960	मेरी जीवन गाथा (द्वितीय भाग)
61. सुमित्रानंदन पंत	1960	साठ वर्ष: एक रेखांकन

20.4.5 पंचम चरण–सन् 1961 से 1999 ई.

62. आचार्य चतुरसेन	1963	मेरी आत्म कहानी
63. संत राम बी.ए.	1963	मेरे जीवन के अनुभव
64. कपिलदेव नारायणसिंह सुहृद	1965	बीती बातें
65. आनन्दशंकर माधवन	1965	प्रथमयाम
66. भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र	1966	जीवन के चार अध्याय
67. राहुल सांकृत्यायन	1967	मेरी जीवन यात्रा, भाग (3)
		1967 भाग 4, भाग 5
68. आबिदअली	1968	मजदूर से मिनिस्टर
69. हरिवंशराय 'बच्चन'	1969	क्या भूलूं क्या याद करूँ
		1970 नीड़ का निर्माण फिर
70. डॉ. देवराज उपाध्याय	1970	यौवन के द्वार पर
71. चतुर्भुज शर्मा	1970	विद्रोही की आत्मकथा
72. जनकधारी प्रसाद	1970	कुछ अपनी कुछ देश की
73. निराला (प्रस्तोता–सूर्यप्रसाद दीक्षित)	1970	निराला की आत्मकथा
74. वृंदावनलाल वर्मा	1971	अपनी कहानी
75. मोरारजी देसाई	1972	मेरा जीवन वृत्त (भाग 1)
76. मोहन राकेश	1973	आत्मकथा
77. प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय	1973	विदा, बधु विदा
78. पोद्दार रामावतार 'अरुण'	1974	अरुणायन:एक आत्मकथा
79. पृथ्वीराज कपूर	1974	कुछ यादें (आप बीती)
80. बलराज साहनी	1974	मेरी फिल्मी आत्मकथा
81. मोरारजी देसाई	1974	मेरा जीवन वृत्तान्त (भाग–2)
82. हरिवंशराय 'बच्चन'	1977	बसेरे से दूर
83. हंसराज रहबर	1979	मेरा सात जनम
84. रामविलास शर्मा	1983	घर की बात
85. आचार्य शिवपूजन सहाय	1985	मेरा जीवन

86. रामदरश मिश्र	1985	जहां मैं खड़ा हूं (प्रथम), रोशनी की पगडंडिया (द्वितीय), टूटते बनते दिन (तृतीया), उत्तर पथ (चतुर्थ)
87. हरिवंशराय बच्चन	1986	दस द्वार से सोपान तक
87. अ. डा. जयगोपाल	1986	मेरी जीवन यात्रा
88. यशपाल जैन	1987	मेरी जीवनधारा
89. नगेन्द्र	1988	अर्धकथा
90. शानी	1988	आत्मकथा
91. अमृतलाल नागर	1988	टुकड़े–टुकड़े दास्तान
92. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	1989	तपती पगडंडियों पर पदयात्रा
93. छैल बिहारी गुप्त 'राकेश'	1989	देखे सत्तर शरद वसंत
94. भोलानाथ तिवारी	1989	हार नहीं मानी
95. रमेश बक्षी	1989	सूरज में लगा धब्बा
96. रामदरश मिश्र	1991	सहचर है समय (पंचम)
97. गोपालप्रसाद व्यास	1995	कहो व्यास कैसी कटी
98. रामवृक्ष बेनीपुरी	1995	मुझे याद है
99. काका हाथरसी	1995	मेरा जीवन एक वन
100. मदनगोपाल	1994	आत्मकथा
101. धर्मेन्द्र गुप्त	1994	मैं सरकारी जासूस था।

20.5 आत्मकथा का वर्गीकरण

आत्मकथा का वर्गीकरण कर पाना कठिन कार्य है क्योंकि स्वयं के माध्यम से स्वयं की विषयवस्तु का वर्णन करने वाली आत्मकथाओं को पाठक कौतूहल, मानवीय संवेदनशीलता और जिज्ञासा से देखता है तो दूसरी ओर आत्मकथाकार के लिए निर्मम एवं भयावह स्थितियों का सृजनकर्त्ता जो संकट झेलकर खुद के बहाने अपने परिवेशगत चरित्रों, सामाजिक रूढ़ियों, राजनीतिक आंदोलनों, सांस्कृतिक क्रिया–प्रतिक्रियाओं, शिथिलताओं का अंकन करता है। अत: आत्मकथा का वर्गीकरण कर पाना एक दुष्कर कार्य हो जाता है।

ऐसी स्थिति में आत्मकथाओं का वर्गीकरण उनके मूलभूत दृष्टिकोण के आधार पर निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है :

1. अंतरंग आत्मकथा
2. बहिरंग आत्मकथा
3. मिश्रित वर्ग

20.5.1 अंतरंग आत्मकथा

इस वर्ग की आत्मकथाओं का मूल दृष्टिकोण निजी अथवा नितांत वैयक्तिक होता है। आत्मकथाकार आद्यंत आत्मकथा में अपनी अंतरंगता का निर्वहन करता चलता है। हरिवंशराय बच्चन

की आत्मकथा (चार खंडों में प्रकाशित) में प्राय: नितांत निजी घटनाओं, निजी अनुभूतियो को सहज एव स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी गई है। अत: उनकी आत्मकथा को अंतरंग वर्ग में रख सकते हैं। अंतरंग आत्मकथाओं मे आत्मकथाकार अनायास ही अपने अंतर्मन और बीते हुए जीवन की एकाकी यात्रा अपनी आत्मकथा के माध्यम से नितांत निजता के स्तर पर करता है। विष्णुकांत शास्त्री ने भी बच्चन की आत्मकथा के विषय मे ऐसे ही घोषणा की है –"हिंदी मे को प्रधानता देने वाली आत्मकथा लिखने को शुरुआत बच्चन जैसे संवेदनशील एवं प्रत्यक्ष जीवन प्रेरित अनुभूतियों के गायक कवि द्वारा हुई।"

आचार्य शांतिप्रिय द्विवेदी आर बलराज साहनी की आत्मकथाएं भी अन्तरंग आत्मकथाएं हैं।

20.5.2 बहिरंग आत्मकथा

बहिरंग आत्मकथा अंतरंग आत्मकथा के विपरीत अपने मूलभूत दृष्टिकोण में समाज, सभा राष्ट्र राजनीति संबंधी कार्यकलापों से जुड़ी रहती है। अधिकांश राजनीतिक कार्यो से जुडा व्यक्ति या धार्मिक कार्यो के प्रति समर्पित समाज सुधारक अपनी आत्मकथा के बहाने अपने समकालीन समाज, व्यक्ति के साथ–साथ परिवेशगत सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक गतिविधियों का ऐसा वर्णन करता है, जिसमें उसका निजी आत्मकथांश लुप्त प्राय: होता है। साहित्यिक क्षेत्र मे बहिरंग आत्मकथा लिखी जा सकती है। इसका श्रेष्ठ उदाहरण बाबू श्यामसुन्दर दास की "मेरी आत्मकहानी" है।

बाबू श्यामसुन्दर दास ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना, तत्काल हिंदी की उपेक्षित स्थिति और सभा द्वारा किए गए कार्यो के विवरण के साथ सभा के लिए की गई अपनी सेवाओं का उल्लेख किया है –"इसी वर्ष में सभा ने हिंदी पुस्तकों की खोज का सूत्रपात किया उसने भारत गवर्नमेंट, संयुक्त प्रदेश गवर्नमेंट, पंजाब गवर्नमेंट तथा बंगाल की एशियाटिक सोसायटी से प्रार्थना की कि संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकों के साथ हिन्दी पुस्तकों की भी खोज की जाए। संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट ने बनारस के संस्कृत कॉलेज में रक्षित हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की एक सूची बनाकर भेजी। भारत और पंजाब गवर्नमेंटों ने कुछ नहीं किया। बंगाल की एशियाटिक सोसायटी ने दो वर्ष तक यह काम कराया, पीछे से उसे बंद कर दिया। "उक्त आत्मकथांश में निजता या अंतरंगता का कोई सूत्र उपलब्ध नहीं होता है।

इसी प्रकार डॉ. राजेन्द्रप्रसाद की 'आत्मकथा' देश की तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों से जुड़ी हुई आत्मकथा है, जिसमें संकलित निजी और व्यक्तिगत प्रसंग भी बहुत तटस्थता लिए हुए हैं। इस आत्मकथा में अंतरंग का तत्व प्राय: लुप्त है। सीधी सपाट शैली में डॉ. राजेन्द्र– प्रसाद ने तत्कालीन घटनाओं और स्थितियों के पूरे विवरण दिए हैं।

20.5.3 मिश्रित वर्ग

इसका अर्थ यह नहीं कि बहिरंग आत्मकथा वर्ग में अंतरंगता का कोई अवसर नहीं होता है। वास्तविकता यह है कि आत्मकथा होती ही अंतरंग और बहिरंग है। जब सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थितियों की अभिव्यक्तियों में आत्मकथाकार व्यस्त होता है तो इस व्यस्तता में भी अंतरंगता से नितांत शून्य नहीं हो जाता। इसलिए बहिरंग वर्ग की आत्मकथाओं में भी निजी अभिव्यक्तियां आश्चर्यजनक रूप से बड़ी ही भावुकता के साथ बुनी जाती रहती हैं। उदाहरण के लिए भवानी दयाल संन्यासी की आत्मकथा "प्रवासी की आत्मकथा" का यह अंश आत्मकथाकार की पत्नी की मृत्यु पर सरल अभिव्यक्ति

के साथ उपलब्ध है– "जगरानी की जुदाई की वेदना से मैं चेतनाहीन हो गया, मेरे हौसले पस्त हो गए, अरमानों की लड़ी टूट गई। इस वज्राघात को मैं बर्दाश्त न कर सका और ऐसा बीमार पड़ा कि बचने की कोई आशा न रह गई।"

इसी प्रकार अतल आत्मकथाओं के वर्ग में भी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थितियों की चेतन दृष्टि उपलब्ध होती है। बलराज साहनी की अंतरंग वर्ग की आत्मकथा "मेरी फिल्मी आत्मकथा" में भी तत्कालीन सामाजिक स्थिति अत्यंत स्वाभाविक रूप से वर्णित है – "पर पुलिस और अफसरी दहशत अपनी सीमा पार कर चुकी थी। मनुष्य के साथ केवल व्यवहार ही पशुओं वाला नही किया जाता था, बल्कि उसे पशु बना देने की, उसके अंदर से सारी सभ्यता और मनुष्यता खत्म– करने की उस निजाम ने पूरी योजना बना रखी थी। हर प्रकार की बदचलनी, जहालत और जुल्म को शह दी जाती थी। शरीफों के लिए इज्जत से गुजारा करना प्रतिदिन मुश्किल होता जा रहा था। जो इसका विरोध कर सकते थे, वे धन, दौलत के लालच में रावलपिंडी और लाहौर उस बडे शहरों को भाग जाने के मौकों की तलाश में रहते थे।"

20.5.4 आत्मकथा वर्गीकरण का आधार

आत्मकथाओं का अन्य कोई वर्गीकरण किया जाए तो संभवत: आत्मकथाकारों की सामाजिक स्थिति और कार्यकलापों का व्यवसाय के आधार पर किया जा सकता है लेकिन यह वर्गीकरण बहुत ही स्थूल कहा जाएगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सृजनशीलता और व्यवसाय अथवा सामाजिक और विविध गतिविधियों से भिन्न –भिन्न रूपों में अपनी संलग्नता रखता है। इसलिए किसी भी आत्मकथा लेखक के आधार पर वर्गीकरण कर पाना अत्यंत कठिन काम है क्योंकि कोई भी आत्मकथा लेखक किसी एकांगी पक्षधरता के कठघरे में नहीं बंधते है।

प्रत्येक वर्गीकरण की अपनी सीमाएं होती है तथा विवेचन और विश्लेषण की अनिवार्यताएं भी होती हैं। अत: यहां आत्मकथाओं का एक स्थूल वर्गीकरण कतिपय मुख्य प्रवृत्ति–पोषण के आधार पर निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है –

1. धार्मिक आत्मकथाएं
2. राजनीतिक आत्मकथाएं
3. समाज पोषित आत्मकथाएं
4. साहित्यिक आत्मकथाएं

20.5.4.1 धार्मिक आत्मकथाएं

धार्मिक आस्थाओं में भारतीय जनजीवन की विश्वसनीयता बडी गहरी है क्योंकि भारतीय जनजीवन में दीर्घकाल से प्रबल धर्मचेतना विद्यमान है जिसके स्थूल रूप तो अनेक है, पर मानवीय धरातल पर ये धार्मिक आस्थाएं पारस्परिक मोह और सौहार्दयुक्त है। इसलिए भारत को मिश्रित संस्कृतियों का उपमहाद्वीप माना जाता है। ईश्वर तक पहुंचने के अनेक मार्ग है। इसलिए विभिन्न धार्मिक आस्थाओं के आधार पर कई लोगों ने अपनी आत्मकथाएं प्रस्तुत की है। अपने युग की धार्मिक मान्यताओं, अंधविश्वासों और सामान्य लोगों की व्यक्तिगत तेजस्विता के आधार पर कई आत्मकथाकारों ने विशेषकर स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानंद, आनंद भिक्षु सरस्वती, चंद्रभूषण वैश्य, गणेशप्रसाद वर्णी, स्वामी सहजानन्द सरस्वती, राजा राममोहनराय आदि ने धार्मिक भावनाओं से परिपुष्ट आत्मकथा–लेखन किया है।

20.5.4.2 राजनीतिक आत्मकथाएं

राजनीति का प्रभाव लेखन की समस्त विधाओं पर रहा है तो आत्मकथाकार उस प्रभाव से मुक्त कैसे रह सकता था? राजनेताओं की राजनीतिक गतिविधियों में व्यस्तता की निरंतरता बनी रहने पर जब कभी उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखी हैं तो उनमें उनकी राजनीतिक चेतनाओं का प्रवेश हुए बिना कैसे रह सकता था? यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि भारतीय राजनीतिज्ञों ने राजनीति को विशिष्ट काल खंडों में चित्रित और व्याख्यायित करने का अवसर अपनी आत्मकथाओं में पाया है। अत: राजनीतिक आत्मकथाओं का एक स्थूल वर्ग बनाये जाने की औचित्य सिद्ध होता है।

राजनीतिक आत्मकथाओं में आत्मकथा का स्वरूप मात्र आत्मकथाकार के जीवन चित्रण पर ही आधारित न होकर उसके अपने व्यक्तिगत एवं समष्टिगत जीवन की तुला राजनीति ही बनानी पड़ती है। यही कारण है कि वह राजनीतिज्ञों की आत्मकथा न रहकर उनकी पदकथा का पर्याय बन जाती है।

राष्ट्र की नियति को व्यक्ति और व्यक्ति को प्रभावित करने वाली राजनीति का आख्यान करने वाली आत्मकथाएं लिखने वालों में गांधी, नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, यशपाल, रामप्रसाद बिस्मिल, सेठ गोविन्ददास, जानकीदेवी बजाज, सत्यदेव परिव्राजक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

20.5.4.3 समाज पोषित आत्मकथाएं

ऐसी आत्मकथाएं जिनमें आत्मकथाकार अपनी जीवनकथा तो आरंभ करता ही है, पर उसमें सामाजिक उत्कर्ष का विवरण उनके अपने केंद्र में अथवा परिवेश में विद्यमान रहता है। यह भी कहा जा सकता है कि समाज के लिए समर्पित सृजनशील व्यक्तियों ने जब – जब आत्मकथाएं लिखी है, उनमें मात्र धर्म नहीं, समाज की भूमिका प्रखर बनी है। स्वामी दयानंद सरस्वती को लिखित आत्मकथा जीवन चरित के अतिरिक्त स्वामी श्रद्धानन्द, साधु शांतिनाथ, आनन्द भिक्षु सरस्वती, सहजानन्द सरस्वती आदि ने धार्मिकता के प्रसंगों के साथ समाज, समाजोत्थान की चिंता भी अभिव्यक्त की है। आर्यसमाज के संन्यासियों की ये आत्मकथाएं एक ओर धार्मिकता की आख्याएं देती है तो उत्तरोत्तर सामाजिक परिस्थितियों से भी जुडती है। अत: यह जा सकता है कि ये आत्मकथाकार व्यष्टिनिष्ठ आत्मकथाकार होकर भी सामाजिकता के मुखापेक्षी रहे हैं और मानवीय व्यापारों का सूक्ष्म निरीक्षणात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए आत्मकथा लेखन मे लीन हुए हैं।

इस दृष्टि से साहित्यिक आत्मकथाओं के तीन वर्ग किए जा सकते है – कवियों द्वारा लिखित आत्मकथाएं, कथाकार और आलोचकों की आत्मकथाएं, कवि क्षेत्र मे बनारसीदास जैन, भारतेंदु हरिश्चंद्र, हरिवंशराय 'बच्चन', वियोगी हरि, सुमत्रिनंदन पंत, प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय, पोद्दार रामावतार 'अरुण' की आत्मकथाएं हैं। कथा के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, अज्ञेय, देवेंद्र सत्यार्थी, सेठ गोविन्ददास, कृष्णा सोबती, मोहन राकेश, जैनेंद्रकुमार, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', आचार्य चतुरसेन, शिवपूजन सहाय, वृंदावनलाल वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आलोचना क्षेत्र में आत्मकथाकारों ने अपनी व्यक्तिनिष्ठ चेतना एव विशिष्ट अहं से युक्त सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय देते हुए आत्मकथाएं लिखी है। इनमें बाबू गुलाबराय, श्यामसुन्दरदास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डॉ. देवराज उपाध्याय, छैलबिहारी गुप्त 'राकेश' के नाम उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न–2

1. आत्मकथा का वर्गीकरण कीजिए।
2. टिप्पणी लिखिए:
   (क) धार्मिक आत्मकथाएं
   (ख) राजनीतिक आत्मकथाएं
   (ग) साहित्यिक आत्मकथाएं
3. मिश्रित आत्मकथा किसे कहते हैं स्पष्ट कीजिए।

20.6 आत्मकथा का रचनागत वैशिष्ट्य

आत्मकथा की सर्जना के कठोर नियम निर्धारित नहीं किया जा सकते हैं। कारण यह है कि सर्जनात्मक विधा को नियमों की सीमाएं बांध कर नहीं रख सकती हैं। आत्मकथा में लेखक की अन्तःप्रेरणा की प्रमुख भूमिका होती है। अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि अन्य विधाओं से आत्मकथा की पृथकता स्पष्ट करने के लिए उसके स्वरूप को निम्नलिखित तत्वों के आधार पर मूल्यांकन करने का प्रयास किया जाए।

1. अन्तःवस्तु
2. प्रतिपाद्य
3. भाषा
4. शैली

20.6.1 अन्तःवस्तु

आत्मकथा लेखन का निर्णय लेखक को विशेष मन: स्थिति में लेना होता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के कुछ क्षण बहुत गोपन होते हैं तथा उन्हें ईमानदारी के साथ पाठकों के समक्ष रखने का निश्चय करना साहस का काम होता है। लेखक अपनी लेखन प्रक्रिया के कारण अपनी पहचान बनाता है तथा उसका अपना स्वाभिमान, अहं, बड़प्पन, पद, साहित्य में स्थान तथा अपने जीवन के अनन्य गोपन क्षणों को अगोपन करने या सभी के समक्ष रखते हुए निर्लिप्त भावाभिव्यक्ति करना विशेषकर अपने प्रति ईमानदार होना है तथा आत्मकथा लिखकर पाठकों के प्रति ईमानदार बने रहने का दायित्व उठाना है। अत: आत्मकथा लेखन में अन्त: वस्तु निर्धारण के लिए निम्नलिखित विशेषताओं की परिपालना आवश्यक है –

1. अहंमुक्तता
2. व्यक्तिगत कमजोरियों का उत्सर्ग
3. आत्मस्वीकृति
4. पूर्वाग्रह मुक्तता
5. सत्य आंकलन
6. विनम्रता
7. उत्तरोत्तर निजता लोप।

20.6.1.1 अहंमुक्तता

आत्मकथा लेखन वास्तव में आत्म परीक्षण है। यह 'आत्म' परीक्षण तभी उपयुक्त, सार्थक और सर्वग्राही बन सकता है, जब लेखक का अहं किसी भी प्रकार से उसमें आड़े न आए। आत्मकथा लेखन में व्यक्ति के जीवन मोहों से मुक्त होकर सामने आना होता है। यह सभी संभव है जब लेखक

अपने अहं को भूलाकर 'स्व' का निरपेक्ष विश्लेषण करने बैठे। अत: आत्मकथा अहं मुक्ति के लिए एक सर्जनात्मक सत्याग्रह है।

इस सम्बन्ध में मोरारजी भाई की आत्मकथा 'मेरा जीवन वृत्तान्त' की प्रस्तावना में अंकित भावों का उल्लेख अधिक सार्थक प्रतीत होता है – 'जाने–अनजाने लोभ या ममत्व में खिंचकर लिखने में किसी पर अन्याय हो जाने की संभावना ने लेखक को आत्मकथा लिखने में न पड़ने को प्रेरित किया। इस संपूर्ण झिझक और ऊहापोह के बाद भी 1966 में अपने अनुभवों को लिखने का फैसला करता लेखक इस जागरूकता के साथ है कि जो प्रसंग और अनुभव मुझे बराबर याद हैं तथा जिनमें कोई भी गलत स्मृति रहने की संभावना नहीं है, ऐसे प्रसंग और अनुभव मुझे उस जीवन– वृतांत में लिखने हैं, जिससे कि मैं ममत्व से आकृष्ट होकर किसी असत्य में न बह जाऊं।"

20.6.1.2 व्यक्तिगत कमजोरियों का उत्सर्ग

आत्मकथा व्यक्ति के मन का सहज स्वरूप या कहा जाए कि सच्चे रूप को उद्घाटित करने की कलात्मक प्रस्तुति है। जब तक आत्मकथा लेखक स्वयं अपनी व्यक्तिगत कमजोरियों को उत्सर्ग करने का संकल्प नहीं करता है, तब तक निश्चित ही वह सबसे और अपने आपसे खुद को छिपाने का ही प्रयास करने में व्यस्त रहता है। घटित के संबंध में जितना दूसरे जानते है, उससे अधिक लेखक स्वयं जानता है और उसे सामने रखने में उसे अपनी व्यक्तिगत कमजोरियों, भूलों, आसक्तियां, संलग्नताओं के प्रति गहरी निर्लिप्तता तभी आ पाती है, जब वह अपनी कमजोरियों को उत्सर्ग देता है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी इसी प्रकार की व्यक्तिगत कमजोरियों का उत्सर्ग करते हुए "अपनी खबर" में लिखा है– "फिर भी मैं बिगड़ा नहीं, ऐसा कहना "बनना" होगा, जो मेरी बान नहीं, बाना भी नहीं।... यानी खरबूजे से खरबूजा रंग पकडता ही था, इस तरह राममनोहरदास की रास मंडली जबर्दस्त पॉप पार्टी भी थी। मेरा ख्याल है, इश्क क्या है, इसका पता मुझे इसी मंडली में बारह साल की वय में लग गया।"

20.6.1.3 आत्मस्वीकृति

आत्मकथा की अन्तःवस्तु की विशेषता लेखक की आत्म स्वीकृति है। जीवन की विविध परेशानियों और सुविधाओं, कठिनाइयों और महत्वाकांक्षाओं पर हावी होते समय या परिस्थितियों की आत्मस्वीकृति देना सामान्य रूप से लेखक के लिए अन्यत्र कठिन हो सक है, पर आत्मकथा लिखते समय आत्म स्वीकार या कन्फेशन की उसे आवश्यकता होती है। लेखक उससे विमुख नहीं हो पाता। जिन स्थितियों में आत्मकथाकार निकला और जो कर गुजरा है, उसकी आत्मस्वीकृति आत्मकथा की विशेषता है।

हरिवंशराय 'बच्चन' ने आत्मकथा के एक खंड "बसेरे से दूर" में "रोटी कमाने के ईमानदार, स्वच्छ और सुविधाजनक साधन के रूप में अपनाए गए अध्यापन के प्रति" उदात्त आदर्शवादिता की भावना से न जुड़ने की आत्मस्वीकृति दी है–उन दिनों एक सफल अंग्रेजी अध्यापक बनने और दिखने की भी धुन मुझ पर इस कदर सवार थी कि मेरा हिन्दी का कवि मेरे अंग्रेजी के लैक्चरर के लिए एक

दहशत देह काम्पलैक्स यानी कुंठा बन गया था। मैं कोशिश करता, मैं सतर्क रहता कि अपनी चाल–ढाल, बाल से हिन्दी का कवि बिल्कुल न दिखूं –कवि मेरे यौवन में प्राय: बालों से पहचाना जाता था–बाल कवियों के कई चेहरे मेरी आंखों के सामने से गुजर गए हैं।"

20.6.1.4 पूर्वाग्रह मुक्ता

आत्मकथा की अन्तःवस्तु की तैयारी में लेखक को किसी के प्रति पूर्वग्रह नहीं रखने की विशेषता सहज स्वीकृति पाती है। हो सकता है कि किसी के प्रति किसी कारण से कोई पूर्वाग्रह पोषित हो गया हो लेकिन आत्मकथा में उस व्यक्ति विशेष के प्रसंग में पूर्वाग्रह पल्लवित नहीं होना चाहिए तभी आत्मकथा की सर्वग्राह्यता बनी रहेगी। जीवन में ऐसे क्षण आते हैं, जब किसी के प्रति पूर्वाग्रह की मनोवृत्ति बन जाती है, पर उसे ग्रंथि बनाकर आत्मकथा में आधार बनाना अच्छे आत्मकथाकार का लक्षण नहीं होता है।

20.6.1.5 सत्य आंकलन

आत्मकथा मूलतः आत्म विश्लेषण है, आत्म निरीक्षण भी है तो उसके आकलन में असत्य का अंकन संभव नहीं है और आत्मकथाकार असत्य से साक्षात्कार करके उसे आत्मकथा में रख भी नहीं पाएगा क्योंकि आत्मकथा में वह अपने पूरे जीवन का सर्वेक्षण करता है तथा समग्र अतीत पर दृष्टि डालते हुए अपनी परिपक्व एवं तटस्थ दृष्टि से जीवनक्रम के मार्ग में आने वाली स्थितियों का सत्य लिखता है क्योंकि डायरी की भांति आरंभ मूल्यांकन के निष्कर्ष पर आत्मकथा में भी वह दुराव नहीं रख सकता।

सामान्यत: यह स्वीकार करने में किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती कि आत्मकथा लेखन के लिए गहरे जीवनानुभव और विशेष मनःस्थिति, घटनात्मक चयन–कौशल, अपने समग्र जीवन की आलोचना से ही सब कुछ ग्रहण करना है तो आत्मकथाकार के लिए असत्य कथन का अवसर ही नहीं रहता।

20.6.1.6 विनम्रता

अन्यत्र भी उल्लेख कर आए हैं कि आत्मकथाकार आकर्षक निवेदन शैली अपनाता है। आत्मकथाकार अपने जीवन के विगत वर्षो के परिप्रेक्ष्य में जब अपनी लेखनी उठा रहा है तो वह पर्याप्त परिपक्व चिंतन और तटस्थ भाव से सम्पन्न है तो उसमें अहं विलोपन स्वत: आ जाएगा और उस स्थिति में वह कभी भी अपनी विनम्रता का परित्याग नहीं कर सकेगा।

इसका आभास उसके समक्ष आत्मकथा लेखन आरंभ करते समय ही होता है कि वह आत्मकथा लेखन जिनके समक्ष प्रस्तुत करने जा रहा है तो उसे विनम्रतापूर्वक ही उसके समक्ष प्रस्तुत करना और आत्मकथा के माध्यम से पुन: प्रस्तुत होना भी है तो यह अपेक्षा ही है कि अपनी अहंता दिखाकर अपनी आत्मकथा पढने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। अत: आत्मकथा लेखक की वह विशेषता ही है कि उसे ऐसी भाषा और शब्दावली ग्रहण करनी होगी जिसमें उसकी विनम्रता परिलक्षित होती हो।

20.6.1.7 उत्तरोत्तर निजता का लोप

आत्मकथा–लेखक को अन्तःवस्तु का संयोजन इस प्रकार करने की अपेक्षा है कि आत्मकथा प्रस्तुति में उसकी निजता इस प्रकार पुंजीभूत हो जाए कि आत्मकथाकार की निजता मात्र उसकी निजता न दिखे। यद्यपि अनेक प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर अपना विगत वह प्रस्तुत कर रहा है तो यह उसकी निजता का ही अंग है, पर जिनके समक्ष वह अपनी निजता रख रहा है, उन्हें बाध्य कैसे कर सकता कि मेरी आत्मकथा पढ़ो या पढ़नी होगी। इसी कारण इस विशेषता का उल्लेख किया जा रहा है कि उसके परिपक्व और तटस्थ मनःस्थिति से उसकी निजता आत्मकथा के माध्यम से समष्टिपरक रूप ग्रहण करती जाए–इसके लिए उसका सार्थक प्रयास होना चाहिए। यह तभी संभव है जब वह उत्तरोत्तर आत्मकथा में समष्टिगत वैशिष्ट्य का विकास करता जाए तो निजता लुप्त ही हो जाएगी।

20.7 सामग्री चयन, प्रस्तुति एवं शिल्प

20.7.1 सामग्री चयन

आत्मकथाकार अपने जीवन के सुदीर्घ फलक पर घटित विगत की अनेकानेक घटनाओं में से ऐसी घटनाओं का चयन करता है जो निजता की व्याख्या में उसकी नितांत अपनी होती है, परन्तु डायरी के पृष्ठों में लिखित निजता में भिन्न होती है और जिसे दूसरे को कहने और सुनाने में संकोच नहीं होता है। आत्मकथा समग्र जीवन को एक विशेष समय पर जाकर संकलित और अभिव्यक्ति देने का ही प्रयास है तो आत्मकथाकार को उस संपूर्ण में से भी विशेष क्षणों के जीवन सत्यों, घटनाओं या स्थितियों को अपनी अंतरंगता से लाकर ऐसी स्थिति में रखने के लिए चयन करने की अपेक्षा हो जाती है, जहां कुछ विशिष्ट ही रखा जाए, शेष अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया जाए।

इस संदर्भ में अपेक्षित है कि आत्मकथाकार–

1. सामग्री चयन में जीवन के वे कृत्य चयन करें जो प्रेरणादाई हों और विषम परिस्थितियों में होते हुए भी किसी न किसी प्रकार प्रेरक रहे हों।
2. निजता की गोपनीयता आत्मकथा मे सार्वजनिक होती है तो चारित्रिक विषमताओं का ऐसा उद्घाटन न किया जाए जो समाज और पाठक में विघटनात्मक मनोदशा का पोषक हो।
3. पाठक प्राय: आत्मकथा में वर्णित स्थितियों के समक्ष अपने आपको देखता है तो उस आत्मकथाकार की निजता का प्रारूप ऐसा और उस प्रकार हो जो उसे तुलनात्मक स्तर पर संवेदनशील बनाएं।
4. आत्मकथाकार इतिहासकार नहीं है और घटना के सत्य– असत्य का मूल्यांकन करने का अवसर उसे मिला है, पर अपने समय जिसे आत्मकथाकार का भोगा हुआ समय का इतिहास वह इस प्रकार प्रस्तुत करता है जिसमें सामाजिक सौहार्द, राष्ट्रीय हित की प्रधानता और पारस्परिक सौमनस्य बनाए रखने के अवसर उत्तरोत्तर विकासोन्मुखी रखते हैं।

20.7.2 प्रस्तुति शिल्प

आत्मकथा की प्रस्तुति में भी लेखकीय निजता विद्यमान है। सभी लेखक जिस प्रकार समान नहीं होते तो उसी प्रकार आत्मकथा की प्रस्तुति भी समान नहीं हो सकती। यही कारण है कि आत्मकथा

की प्रस्तुति में भी वैयक्तिक्ता उभरती है। आत्मकथाकार राजनीतिक है, समाज सुधारक वर्ग का है या धार्मिक सद्भाव का प्रचारक या कुछ साहित्यिक सर्जनात्मक चेतना से संपन्न है तो उसी आधार पर आत्मकथा की प्रस्तुति में भिन्नता आएगी। जहां तक शिल्प का प्रश्न है, इसके अंतर्गत आत्मकथाकार को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है –

1. भाषा 2. शैली

20.7.2.1 भाषा

आत्मकथाकार की भाषा के विषय में स्वतंत्र रूप से कोई विचार कर पाना इसलिए कठिन है क्योंकि आत्मकथाकार महज आत्मकथा लेखक ही नहीं है, वह और कुछ भी लिखता रहा है। यहां यह भी स्पष्ट करना उचित होगा कि यह कदापि संभव नहीं है कि यकायक किसी को सपना आए या उद्‌बोधन प्राप्त हो कि चलो आत्मकथा लिखो और वह लिखना आरंभ कर देगा। यह सुनिश्चित है कि लेखनी और लेखन से उसका परिचय पहले से है और वहां परिपक्व होने के उपरांत उसके चिंतन की परिणति आत्मकथा लेखन की प्रेरणा बनी है। अत: इसे आत्मकथाकार को अपनी भाषा पर अधिकार तो पहले ही है, बस आवश्यक है तो इतना है कि :

1. आत्मकथा की भाषा में सर्जनात्मकता का निर्वाह होना चाहिए।
2. शब्द चयन में पांडित्य प्रदर्शन की अपेक्षा बोधगम्यता होनी चाहिए। पाठक को शब्दकोश न उठाना पड़े।
3. भाषा के प्रचलित स्वरूप के साथ अति क्षेत्रीय शब्दावली से बचा जा सके तो अच्छा है! यदि कहीं आंचलिकता स्पर्श है तो क्षेत्रीय भाषा की शब्दावली ग्रहण की जा सकती है।
4. भाषा ऐसी होनी चाहिए जो पाठक को अर्थजाल में उलझाकर न रख दे।
5. भाषा, बिम्ब विधायनी हो जो घटनाओं के ऐसे बिम्ब खड़ी करती चले कि पाठक् के समक्ष सब कुछ चित्र के रूप में प्रस्तुत हो सके।
6. वाक्य रचना छोटी और यथासम्भव मिश्रित वाक्यों से बचकर हो।
7. कृत्रिम भाषा से बचना ही उचित है।

उदाहरण–1. मेरी यह वृत्ति आज तक कायम है, इसका मुझे परम संतोष है। इसी से आज तक मेरी मानसिक स्वस्थता बनी हुई है। सिफारिश से काम कराना भ्रष्टाचार का ही एक अंग है, ऐसा मैं बाल्यावस्था से ही मानता आया हूं। आज तो मैं यह भी मानने लगा हूं कि यह भ्रष्टाचार का अत्यन्त विषैला अंग है।

उदाहरण–2. मांगलिक वस्त्रों को होली में होमते समय मन में झिझक तो हुई पर बाद में मन पका कर लिया और सोच लिया कि इन कपड़ों के जलाने से उम्र थोड़े ही कम होती है। ये कपड़े घर में कैसे रखे जा सकते हैं? पाप को घर में कोई थोड़े ही रखता है? विवाह के समय सिर पर जो छत्र लगाया जाता है, उसे कैसे जलाया जाए। जब हम स्वराज्य लेने चले हैं तब छत्र तो शुभ है। मैंने उसे मगनवाड़ी के कुएं में गिरा दिया (जानकीदेवी बजाज : मेरी जीवन यात्रा, पृ.59)

20.7.2.2 शैली

आत्मकथा लेखन में विभिन्न प्रकार की शैलियां अपनाई जा सकती है लेकिन सर्वाधिक सहज शैली है वर्णनात्मक। इस शैली के माध्यम से आत्मकथाकार अपने पाठकों को निरंतर अपने साथ रखता है लेकिन कोरी वर्णनात्मक शैली भी उबाऊ हो सकती है। अत: आत्मकथाकार को संस्मरणात्मक शैली का प्रयोग भी यथा अवसर करना उपयुक्त है।

इसमें दो मत नहीं हो सकते कि यदि आत्मकथाकार के पास रोचक, जीवंत और मार्मिक शैली का अभाव है तो वह अपने पाठक को बांध नहीं सकता है।

20.8 सारांश

'आत्मकथा' स्वतंत्र एवं पूर्णत: विकसित विधा है। आत्मकथाकार अपना स्वपरीक्षण करता है, निजी जीवन की घटनाओं का यथातथ्य और औचित्यपूर्ण उल्लेख करता है।

आत्मकथा जीवनी नहीं है, संस्मरण नहीं है, न डायरी है और न पत्र। अपने जीवन की घटनाओं का स्वलिखित विवरण 'आत्मकथा' है और दूसरे द्वारा लिखित विवरण ही 'जीवनी' है। आत्मकथा में सारी क्रिया–प्रतिक्रियाओं का बिन्दु 'स्व' होता है और संस्मरणों में यह बिन्दु 'पर' होता है जिसका लेखकीय व्यक्तित्व से कभी निकट और कभी दूर का संबंध होता है 'डायरी' और आत्मकथा दोनों विधाएं लेखक की अंतरंगता से परिपूर्ण होती है। 'पत्र' आत्मकथा तो नहीं होते पर पत्रों में 'आत्म' की अभिव्यक्ति निहित होती है। आत्मकथात्मकता से परिपूर्ण होकर भी पत्र कभी आत्मकथा जैसी विधा नहीं होते हैं।

आत्मकथा के अनिवार्य गुण हैं– उत्तम स्मृति अपने प्रति तटस्थता स्पष्टवादिता अति आत्मसमर्पण से मुक्ति सार्वजनिक विवेक की समृद्धि तथा आकर्षक निवेदन शैली।

आत्मकथा को तीन वर्गों –अंतरंग आत्मकथा, बहिरंग आत्मकथा तथा मिश्रित वर्ग में विभाजित कर सकते हैं। धार्मिक राजनीतिक समाज पोषिती और साहित्यिक आत्मकथाएं वर्गीकरण के आधार हो सकते हैं।

आत्मकथा में लेखक की अंतः प्रेरणा की प्रमुख भूमिका होती है। विनम्रता के साथ निजता का लोप होता है। आत्मकथाकार इतिहासकार नहीं होता है।

आत्मकथा की भाषा में पांडित्य–प्रदर्शन की अपेक्षा बोधगम्यता आवश्यक है। क्षेत्रीय भाषा की शब्दावली का समावेश संभव है। वर्णनात्मक शैली के साथ–साथ संस्मरणात्मक शैली का प्रयोग करना आत्मकथा में उपयुक्त है।

20.9 उपयोगी पुस्तकें

1. डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया एवं रचना भाटिया : साहित्य मे गद्य की नई विविध विधाएं तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
2. डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया : हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएं प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
3. डॉ. विनीता अग्रवाल : हिन्दी आत्मकथाएं सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली
4. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (सं.) : हिन्दी साहित्यांश, भाग 2
5. डॉ. शांति खन्ना : आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य सन्मार्ग,

प्रकाशन दिल्ली–7

6. डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान : आधुनिक हिन्दी साहित्य विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
7. डॉ. हरवंशलाल शर्मा (संपादक) : हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (भाग 14)

20.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आत्मकथा का अर्थ और परिभाषा देते हुए उसके अनिवार्य गुण स्पष्ट कीजिए।
2. आत्मकथा की समकक्षीय विधाओं का अंतर स्पष्ट करते हुए आत्मकथा की महत्ता बताइए।
3. आत्मकथा का वर्गीकरण एक कठिन कार्य है– स्पष्ट करते हुए यदि आप आत्मकथा का वर्गीकरण प्रस्तुत करना चाहे तो उसका उल्लेख कीजिए।
4. आत्मकथा के रचनागत वैशिष्ट्य पर सारगर्भित लेख लिखिए।
5. आत्मकथा के सामग्री चयन तथा प्रस्तुति शिल्प पर अपने विचार लिखिए।

इकाई 21 रिपोर्ताज लेखन

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.1.1 रपट

21.1.2 रिपोर्ताज: जनसंचार की महत्वपूर्ण विधा

21.2 रिपोर्ताज: अर्थ, परिभाषा एवं महत्त्व

21.2.1 रिपोर्ताज: अर्थ एवं परिभाषा

21.2.2 रिपोर्ताज के तत्व

21.2.2.1 वस्तुनिष्ठता

21.2.2.2 संलग्नता

21.2.2.3 मानवीय संवेदनशीलता

21.2.2.4 समसामयिकता

21.2.2.5 कलात्मक प्रस्तुति

21.2.2.6 रिपोर्ताज का महत्तव

21.3 रिपोर्ताज विशेषताएं

21.3.1 यथातथ्यता

21.3.2 जीवंतता

21.3.3 कथात्मकता

21.3.4 नाटकीयता

21.3.5 रोचकता

21.3.6 रसात्मकता

21.3.7 मर्मस्पर्शता

21.3.8 कलात्मकता

21.4 हिन्दी रिपोर्ताज का विकास

21.4.1 रिपोर्ताज का उद्भव

21.4.2 हिन्दी रिपोर्ताज का विकासक्रम

21.4.2.1 उद्भावकाल

21.4.2.2 विकासकाल

21.4.2.3 विस्तारकाल

21.4.2.4 आधुनिककाल

21.4.2.5 अद्यतनकाल

21.5 रिपोर्ताज का सामग्री–संयोजन एवं लेखन

21.5.1 रिपोर्ताज लेखन की तैयारी

21.5.2 सामग्री संकलन

21.5.3 रिपोर्ताज लेखन
21.5.3.1 समस्या निर्धारण
21.5.3.2 प्रासंगिकता
21.5.3.3 पाठक वर्ग
21.5.3.4 प्रस्तुति
21.6 सारांश
21.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
21.8 निबंधात्मक प्रश्न

21.0 उद्देश्य

आप इस इकाई से पूर्व जनसंचार–माध्यमों के लिए कई विषयों पर लेखन की प्रविधि समझ चुके हैं तथा अपनी सर्जनात्मक क्षमता का स्वमूल्यांकन भी कर चुके हैं। इस इकाई से आपजान सकेंगे–

- रिपोर्ताज क्या है? उसके तत्व एवं विशेषताएं क्या हैं?
- अन्य लेखन विधाओं से वह भिन्न कैसे है?
- रिपोर्ताज की विषयवस्तु क्या होती है?
- रिपोर्ताज का उद्भव कब और कैसे हुआ?
- रिपोर्ताज की शिल्पगत विशेषताएं क्या हैं? और
- हिन्दी रिपोर्ताज लेखकों से तथा लेखन–कला से भी आप परिचित हो सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

स्वातंत्र्योत्तरकाल में हिन्दी में कई नई विधाएं विकसित हुई। यद्यपि इलाक्ट्रॉय माध्यम के प्रथम चरण रेडियो की स्थापना से ही हिन्दी सृजन क्षेत्र में व्याकुलता बढ गई थी कि अब तो साहित्य मर जाएगा। साहित्य शाश्वत सर्जनात्मक विधा है, वह मर नहीं सकता। कालांतर में रेडियो के लिए कई विधाओं के सर्जक के रूप में हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी लेखनी की क्षमता का परिचय दिया। यद्यपि आकाशवाणी केन्द्रों पर साहित्यकारों, कवियों और रंगकर्मियों को उच्च पद देकर उनको रेडियो तकनीक के आत्मसात करने का जो अवसर दिया, उसके परिणाम सुखद निकले। रिपोर्ताज को प्रिन्ट–मीडिया में ही नहीं बल्कि इलाक्ट्रॉय–मीडिया में भी व्यापक स्थान मिल रहा है। पाठक एवं श्रोता इसे पसंद कर रहे हैं।

21.1.1 रपट

समाचार विधा या प्रिंट मीडिया एवं इलाक्ट्रॉय–मीडिया में संवाददाताओं को कई बार किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति की सभा उत्सव। समारोही घटना को 'कवर' करने को कहा जाता है या किसी समाचारदाता (रिपोर्टर) को 'कवरेज' के लिए लगाया जाता है, जो वह "कवर" या "कवरेज" करके लाता है उसे "रपट" या "रिपोर्ट" कहा जाता है। रिपोर्ट का हिन्दी पर्याय "रपट" कई अर्थो में सर्वाधिक उपयुक्त शब्द है, पर यह मूल रूप से ही समाचारयुक्त है और इसमें समाचार संकलन के छः ककारों (क्या, कहां, कौन, कब, क्यों और कैसे) की पूर्ति होना आवश्यक होता है।

21.1.2 रिपोर्ताज : जनसंचार की महत्त्वपूर्ण विधा

रिपोर्ताज जनसंचार क्षेत्र की महत्वपूर्ण विधा है। इसे पत्रकारिता की देन कहा जाता है। उसमें किसी घटना, युद्ध, भूचाल, अकाल, बाढ़, दुर्घटना आदि का तथ्यपरक मार्मिक विवरण प्रस्तुत किया जाता है। विवरण समाचार में भी होता है, पर उनमें संवाददाता को मार्मिकता लाने की आवश्यकता नहीं है। घटनास्थल पर जाकर उसके संबंध में सारे तथ्य एकत्र करके तुरंत प्रकाशनार्थ प्रेषित किया जाता है। जिस प्रकार समाचार के लिए तात्कालिकता आवश्यक होती है, उसी प्रकार रिपोर्ताज में भी तात्कालिकता आवश्यक होती है। इसके लिए प्रत्यक्ष रूप विधान की आवश्यकता होती है क्योंकि सामने आंखों से जो देखा जा रहा है, उसका तथ्य एवं तटस्थ भाव से उल्लेख किया जाता है।

21.2 रिपोर्ताज : अर्थ, स्वरूप एवं महत्व

21.2.1 रिपोर्ताज : अर्थ एवं परिभाषा

सामान्यत: रिपोर्ताज का संबंध 'रिपोर्ट' अथवा "रपट" से लिया जाता है। हिन्दी साहित्य कोशकार के अनुसार "रिपोर्ट" का ही कलात्मक रूप रिपोर्ताज है। मूल रूप से "रिपोर्ताज" फ्रेंच भाषा का शब्द है, जिसके मूल में पत्रकारिता से संबंधित "रिपोर्टिंग" भाव निहित है। फ्रेंच का "रिपोर्ताज" शब्द हिन्दी में यथारूप "रिपोर्ताज" के रूप में अपना लिया गया है और इसका हिन्दी में आयात अंग्रेजी भाषा प्रयोग के स्तर पर ही हुआ है। हिन्दी में इसे "सूचनिका" भी कहा गया। लेकिन यह इतना कृत्रिम है कि सही भावार्थ नहीं प्रकट करता है।

डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया का मत है कि वह अंग्रेजी शब्द "रिपोर्ट" से नहीं, उसके समानार्थी शब्द "रिपोर्ताज" से विकसित है, जिसमें किसी घटना का यथातथ्य वर्णन किया जाता है। घटना का यथातथ्य विवरण कलात्मक तथा रस संवेदयात्मक रूप में दिया जाता है। शैली कथात्मक अवश्य होती है, पर यह कथा नहीं होती। विवरण डायरी पर आधारित हो सकता है, पर यह डायरी नहीं है। (साहित्य में गद्य की नयी विधाएं, पृ. 11)

हिंदी विद्वानों ने रिपोर्ताज की परिभाषाएं अनेक रूप में प्रस्तुत की हैं। आचार्य भगीरथ मिश्र ने इसे 'सूचनिका' कहा, लेकिन वह सर्वग्राह्य नहीं हो सका। डॉ. जीवनप्रकाश जोशी ने रिपोर्ताज की परिभाषा इस प्रकार की है – 'संवाददाताओं की रिपोर्ट जब अपनी शैली में कुछ साहित्यकता का समावेश कर लेती है, तब वह रिपोर्ताज कहलाती है। 'डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान ने कहा है – 'किसी घटना का अपने सत्य रूप में वर्णन जो पाठक के संमुख घटना का चित्र सजीव रूप में उपस्थित कर प्रभावित कर सके, रिपोर्ताज कहलाता है।'

डॉ. ओमप्रकाश सिंहल ने परिभाषा दी है कि जिस रचना में वर्ण्य विषय का आंखों देखा हाल तथा कानों सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाए कि पाठक की हत्तंत्री के तार झंकृत हो उठें और वह और भूल न सकें उसे रिपोर्ताज कहते हैं। डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ ने रिपोर्ताज की परिभाषा (गत पाठों में) देते हुए लिखा है – "रिपोर्ताज जनसंचार माध्यम की ही नहीं हिन्दी साहित्य की ऐसी नवीन विधा है जिसमें लेखक प्रत्यक्ष तथ्यों को गहरी मानवीय संवेदना के साथ चित्रात्मक रूप में प्रस्तुत कर उसे समाचार से अधिक ग्रहणशील और मर्मस्पर्शी बना देता है।"

रिपोर्ताज न समाचार है, न फीचर और न संस्मरण। न वह डायरी है, न यात्रा वृत्तान्त। वह घटना का किसी स्थिति का तथ्यात्मक आंकलन है जिसमें आंकलन आंकलनकर्त्ता की हार्दिक संवेदना, मर्मस्पशिता और प्रस्तुति की भावमय कलात्मकता विद्यमान रहती है।

21.2.2 रिपोर्ताज के तत्व

डॉ. सत्येन्द्र ने कहा है – "पत्रकार को किसी घटना या स्थिति पर अपने पत्र को एक रिपोर्ट देनी थी, पर वह वस्तुनिष्ठ विवरण से अधिक उससे संलग्न और उस पर मंडराती मानवीय संवेदनाओं से तादात्म्य कर स्थिति या घटना को धुरी बनाकर मानवीय सवेदशीलता का चित्रण करने लगा तो उसकी वह रचना 'रिपोर्ताज' बन गई।"

डॉ. सत्येन्द्र के उक्त कथन के आधार पर रिपोर्ताज के निम्नलिखित तत्व बताए जा सकते हैं –

1. वस्तुनिष्ठता
2. संलग्नता
3. मानवीय संवेदनशीलता
4. समसामयिकता
5. कलात्मक प्रस्तुति

21.2.2.1 वस्तुनिष्ठता

रिपोर्ताज में घटना विशेष या स्थिति विशेष के प्रति लेखक की वस्तुनिष्ठ दृष्टि होना अनिवार्य तत्व है। उसके बिना, घटना या स्थिति विशेष का सत्य उद्घाटित नहीं हो सकता। वस्तुनिष्ठ होने के कारण ही रिपोर्ताज लेखक तथ्य और सत्य का समन्वयकारी स्वरूप अपने पाठक अथवा श्रोताओं के समक्ष रख सकता है। ऐसा करते समय उसे समाचार संकलन के छः ककारों पर केंद्रित होने के स्थान पर मात्र चार ककारों से ही वस्तुनिष्ठता सिद्ध करने में सफलता मिल जाएगी। ये चार ककार है–क्या हुआ, कहां हुआ, क्या हुआ और कैसे हुआ। जबकि समाचार में कौन और क्यों के उत्तर भी अपेक्षित होते हैं। रिपोर्ताज चूंकि किसी घटना का यथातथ्य निरूपण संलग्नता के साथ कलात्मक और कथात्मक होता है तो वहां कल्पना का स्थान नहीं होता, पर तथ्य एव सत्य की वस्तुनिष्ठता ही अनिवार्य हो जाती है।

21.2.2.2 संलग्नता

घटना या स्थिति विशेष के प्रति जहां संवाददाता या रिपोर्टर तटस्थ होकर छः ककारों के उत्तर या समाधान देकर अपने कार्य की इतिश्री समझकर समाचार लेखन करता है, वहीं रिपोर्ताज लेखक घटना या स्थिति विशेष के साथ अपनी मानवीय संलग्नता की प्रत्यक्ष अनुभूति पाता है अन्यथा वह भी समाचार सामग्री संकलन या दायित्व पूरा कर निश्चिंत हो जाता है। घटना कैसी भी हो, दुर्घटना भी हो, बाढ़ या भूकंप हो, रेल दुर्घटना हो या चार–पांच मंजिला भवन का धराशायी होना या अग्निकांड, रिपोर्ताज लेखक अपनी संलग्नता अनुभव करके जब तथ्य संकलित करेगा तो उसमें निश्चित ही मार्मिक एवं भावनात्मक पक्ष स्वतः मिश्रित होते जाएंगे। अतः घटना अथवा स्थिति के साथ लेखक की संलग्नता अवश्य होनी चाहिए। पत्रकार या संवाददाता की तटस्थ दृष्टि संकलन की वृत्ति यहां अनावश्यक है।

21.2.2.3 मानवीय संवेदनशीलता

रिपोर्ताज का तीसरा तत्व उसकी मानवीय संवेदनशीलता है। रिपोर्ताज लेखक मे जब तक मानवीय संवेदना निहित नहीं होगी, घटना के तथ्य संकलन की वस्तुनिष्ठता के प्रति उसका व्यवहार संवाददाता की तटस्थता कभी भी अपेक्षित नहीं होती है। अत: मानवीय संवेदनशीलता के साथ तथ्य ग्रहण और उनका उल्लेख ही उसे समाचार की भांति बासी होने से बचाता है और कभी–कभी रिपोर्ताज साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है। यह तभी संभव है, जब तथ्यगत सत्यता की मानवीय संवेदनशीलता की परख की जाए।

21.2.2.4 समसामयिकता

अच्छे रिपोर्ताज का चतुर्थ तत्व समसामयिकता है लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह सामयिक समाचार देने के लिए तत्पर हुआ है। रिपोर्ताज अपने समय का दस्तावेज बनकर भविष्य के लिए स्थाई महत्व का बन जाता है कारण यह है कि अपने समसामयिक संदर्भ को–लेकर लिखे गए रिपोर्ताज की घटनाएं पुरानी भले ही हो जाएंगी पर समाचार की भांति बासी नहीं होंगी, भविष्य में भी पाठकों के लिए वे रोमांचकारी, मार्मिक होगी क्योंकि अपने समसामयिक यथार्थ का वस्तुनिष्ठ रूप होंगी। रांगेय राघव ने सन् 1942 में बंगाल के अकाल के प्रत्यक्ष दृष्टा के रूप में समसामयिक परिवेश में भयंकर अकाल में जकड़े हुए बंगाल के लोगों के साथ सुबह शाम और रातें गुजारी थीं तब लिखा गया रिपोर्ताज" तूफानों के बीच" आज भी साहित्य की स्थाई निधि है।

21.2.2.5 कलात्मक प्रस्तुति

रिपोर्ताज का पांचवां तत्व उसकी कलात्मक प्रस्तुति से संबंधित है, जिसे डॉ. सत्येन्द्र ने "चित्रण" कहकर स्पष्ट किया है। उनका आशय निश्चित ही रिपोर्ताज की चित्रात्मक शैली से रहा है। इस कलात्मक प्रस्तुति में थोड़ी–सी कथात्मकता, वर्णनात्मकता, नाटकीयता के समावेश के साथ भाषा एवं शैली का वह कौशल भी संमलित है, जो किसी रिपोर्ताज को रिपोर्ताज बनाता है। डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय का यह कथन उल्लेखनीय है –रिपोर्ताज लेखन प्रक्रिया रिपोर्ताज लेखन के समय उपयुक्त शब्दों को स्वत: चेतना में अवतरित कर देती है। बाह्य प्रत्यक्ष घटना विद्युत की तरह झटके दे देकर उसका श्रेष्ठ रचनात्मक तत्व कोंचकर बाहर निकाल देती है तभी उसमें कलात्मक प्रस्तुति की अनिवार्यता सिद्ध होती है।

21.2.2.6 रिपोर्ताज का महत्व

आज रिपोर्ताज साहित्य एवं पत्रकारिता की महत्वपूर्ण विधा है। यह जनसंचार के अन्य इलॉक्ट्राय माध्यम (रेडियो तथा टेलीविजन) के लिए भी सक्षम विधा के रूप में अपना स्थान बना चुकी है। इसका मूल कारण यही है कि रिपोर्ताज समसामयिक घटनाओं पर लिखे जाते हैं तथा वे पाठकों के लिए रोचक होते हैं। लेखक घटनास्थल पर स्वयं पहुंचकर घटना का सत्यापन और प्रामाणिकता अंकित करता है। इस कारण रिपोर्ताज अपनी महत्ता प्रतिपादित करता है। रिपोर्ताज के महत्व का दूसरा कारण यह भी है कि रिपोर्ताज मानवीय संवेदनाओं से संबंधित होता है, अत: शीघ्र ही उसकी ओर आकर्षित होता है। कभी–कभी वह पाठक को क्रियाशील भी बनाता है।

बोध प्रश्न –1

1. रिपोर्ताज किसे कहते हैं?
2. रिपोर्ताज की परिभाषाएं दीजिए।
3. रिपोर्ताज की वस्तुनिष्ठता स्पष्ट कीजिए। (पचास शब्दों में)
4. रिपोर्ताज के तत्व स्पष्ट कीजिए।

21.3 रिपोर्ताज की विशेषताएं

रिपोर्ताज के पांच तत्वों की चर्चा अभी की गई है। वैसे तो ये तत्व भी रिपोर्ताज की विशेषता के रूप में हमारे सामने आते हैं लेकिन उसके साथ–साथ रिपोर्ताज की इन विशेषताओं में वे तत्व समाहित होकर निम्न प्रकार से प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

1. यथातथ्यता
2. जीवंतता
3. कथात्मकता
4. नाटकीयता
5. रोचकता
6. रसात्मकता
7. मर्मस्पर्शिता
8. कलात्मकता

21.3.1 यथातथ्यता

यथातथ्यता रिपोर्ताज की प्रमुख विशेषता है और वही उसे सभी विधाओं से पृथक रख पाती है। इसी विशेषता को इंगित करते हुए डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान का मत है "कहानी सत्य घटना पर आधारित हो सकती है और कल्पना पर भी, किन्तु रिपोर्ताज नितांत सत्य घटना को ही वर्ण्य –विषय बनाकर चलता है। लेखक अपनी भावनाओं के अनुरूप उस घटना मे केवल रंग भर देता है।"

घटनात्मक सत्य को रिपोर्ताज लेखक चित्रात्मक रूप में पाठकों तक पहुंचाता है तथा इसके लिए निष्पक्ष चित्रण करने के लिए पर्याप्त संतुलन रखने की आवश्यकता भी होती है। समाचार में घटनात्मक सत्य के संदर्भ की ओर संकेत करते हुए डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ ने कहा है कि– "रिपोर्ताज की यथातथ्यता समाचार की यथातथ्यता की भांति रूक्ष नहीं होती, समाचार में तो निरपेक्ष सत्य भावहीन रहता है, पर रिपोर्ताज का सत्य भावपूर्ण ढंग से पाठकों तक पहुंचता है।

रिपोर्ताज एक प्रकार से आंखों देखी घटना का आधार लिए होता है पर उसके लिखने में घटना से सम्बद्ध समस्या के संबंध में गहन जानकारी सहज संवेदनात्मक स्तर पर जुटाई जाती है जिसमें तथ्य निरूपण पर आंच नहीं आती है। ऐसी स्थिति में रिपोर्ताज लेखक दो स्थितियों के लिए सक्रियता दिखाता है। पहली स्थिति घटना का यथातथ्य विवरण प्रस्तुत करने की तत्परता और इसमें वह किसी प्रकार की चूक नहीं करता। दूसरी स्थिति यथातथ्य विवरण को उत्साहपूर्वक प्रस्तुत करने की अपनी त्वरा। यही कारण है कि इस त्वरा की सहज संवेदनीयता के कारण यथातथ्यता समाचार का रूप ग्रहण नहीं करती है। उदाहरणार्थ–

मौत जिसने ठोकर मारकर बंगाल की पसलियों को तोड़ दिया और हंस दी, जब लाभ के रुपयों से निरंतर खन–खन का महानाद गूंजने लगा। बंगाल की भूमि को शस्य श्यामला बनाने वाली गंगा और ब्रह्मपुत्र का कलकल डूब गया उस ध्वनि में। गला भींच दिया किसी ने कवि ठाकुर का, अवरुद्ध

श्वास छटपटा उठी। सप्तकोटि जनता और कराही पर ध्वनि भीषण मांसापारी जीवों की तरह कच्चा चबा जाने के लिए मंडराने लगी।

(रांगेयराघव:बंगाल का अकाल)

21.3.2 जीवंतता

किसी भी रचना की वह प्राणवत्ता जो पाठक को निरन्तर एक स्फूर्ति देती रहती है, जीवंतता कहलाती है। रिपोर्ताज की दूसरी विशेषता यह जीवंतता है। यह जीवंतता ही पाठक में निरंतर एक उत्साह का संचार करती रहती है, जिसके कारण पाठक रुचिपूर्वक संपूर्ण रिपोर्ताज का अध्ययन करता है। यह रिपोर्ताज की जीवनी शक्ति जितनी गहरी होगी उतनी ही उस रिपोर्ताज की संप्रेषणीयता अधिक होगी और साहित्य की यह संप्रेषणीयता ही उसे आनंद प्रदायिनी बनाती है।

रिपोर्ताज लेखक किसी भी जड़ और शुष्क घटना को अपनी साहित्यिक कला से चेतन एवं सरस बनाकर प्रस्तुत करता है, तो वही उसकी जीवंतता या सजीवता है। जीवंतता या सजीवता के अभाव में रिपोर्ताज में शुष्कता, नीरसता और ऊब की प्रचुरता होगी और पाठक उसे एक ओर रख देगा या पृष्ठ पलटकर आगे बढ़ जाएगा। उदाहरणार्थ–

इसी शिविर में मंगोलपुरी की सात वर्षीय महिन्दरकौर मिलीं। उन्हें अब सिर्फ अपनी मानसिक दृष्टि से अविकसित अट्ठारह वर्षीय बेटी सुरिंदर कौर का सहारा रह गया है, जिसकी उम्र भर की जिम्मेदारी अब उन्हें अकेले उठानी है। कुछ कहने से पहले ही वह फूट पड़ीं। अपने दो दिवंगत जवान बेटों की तस्वीरों को दोनों हाथों में लेकर और स्वर्गीय पति के स्कूटर लाइसेंस में जड़ी तस्वीर को कंधे पर रखकर उन्होंने उसी तरह अपना चित्र खिंचवाने पर जोर दिया। फिर पूछा–मैं क्या करुं बताओ? कभी घर से बाहर कदम नहीं रखा और अब कहा जा रहा है कि कुछ काम सीखकर अपने पैरों पर खड़ी हो जाओ। मैं घर लौटना चाहती हूं मगर वहां जाकर मां–बेटी खाएगी क्या?

(रुद्र शुक्ला: वहां चूल्हा कौन जलाए: दिनमान, 85)

21.3.3 कथात्मकता

रिपोर्ताज में एक ही या अनेक घटनाएं गुंथी रहती हैं। इसलिए इसमें कोई न कोई छोटी बड़ी कहानी अवश्य होती है। रिपोर्ताज लेखक का उद्देश्य कहानी कहना नहीं होता लेकिन कथात्मकता की तीसरी विशेषता के प्रयोग के आधार पर वह घटना विशेष को अधिक प्रभावी बनाता है। छोटी–छोटी कथात्मक बातों से लेखक ऐसे चित्र खींचता है, जिसे पाठक उस घटना के बारे में सोचने के लिए विवश हो जाता है। उदाहरणार्थ–

रूपलाल हंस पड़ा। वह कह रहा है – "तुम क्या जानो? तुमने क्या मुझे तब देखा, जब मैं भूखा था? वह अट्टहास कर उठा। तब? आसमान में न तारे थे, न पैरों के नीचे जमीन। चारों और अंधेरा नजर आता था। मैं प्राण बाला को प्यार करता था और संसार ने गरीबी के कारण सदा यह समझा कि मेरा प्यार, प्यार नहीं, मेरा स्वार्थ था। एक नियम, सचमुच। किन्तु जिस दिन मैंने अपने हाथों से अपनी बहू और बच्चों का खून किया था उस दिन मेरा कोई नहीं था, मैं किसी का नहीं था। मैं रूपलाल की छाया भी नहीं था। बाबू उस दिन मैं भूखा था।

(एक रात: रांगेयराघव ग्रंथावली, खण्ड– 8)

21.3.4 नाटकीयता

रिपोर्ताज की चौथी विशेषता नाटकीयता है। जिस प्रकार नाटककार अपने नाटक के कथाक्रम में पात्र की वेशभूषा, उसकी मुख मुद्रा उसके तेवर, उसके आगमन–बर्हिगमन आदि पर सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार रिपोर्ताज लेखक को भी यह सब इसलिए करना आवश्यक हो जाता है कि घटना स्थल पर अपनी अनुपस्थिति में भी पाठक अपने अन्तश्चक्षुओं के सामने उस घटना को देखने में समर्थ हो जाता है। यह कहा जा सकता है कि रिपोर्ताज पढ़ते समय पाठक जितना साधारणीकृत हो जाता है वह रिपोर्ताज की अन्तर्निहित नाटकीयता का परिणाम है।

रिपोर्ताज लेखक ऐसा दृश्यविधान और विषयवस्तु प्रस्तुति की प्रविधि अपना लेता है जिससे पाक को सभी कुछ अपनी आखों के सामने घटित होता दिखाई देता है। नाटक में जिस प्रकार प्रतीत होता है कि कुछ घटने जा रहा है तभी कोई व्यवहार या व्याघात होता है और पाक को यह लगता है कि अब वह नहीं होगा तो यह निश्चित ही नाटकीय विडम्बना (ड्रामेटिक आइरनी) है। उदाहरणार्थ –

अचानक दरवाजे पर तेज कदमों से किसी के आने की आवाज हुई। एक झटके से दरवाजा खुला–दृश्य में जिस उत्प्रेरक (कटलिक एजेन्ट) चरित्र संजय गांधी का अचानक प्रवेश हुआ, उससे उसी क्षण दृश्य में एक आमूल परिवर्तन हो गया।

श्री संजय ने पूर्ण विश्वास से कहा– अब तक आप लोगों को जो कुछ करना था वह कर लिया। मैं सब कुछ चुपचाप देख रहा था। अब आप लोग यहां से जा सकते हैं। यह मेरी मां, मैं हूं इनका पुत्र संजय गांधी। यह कहते हुए पुत्र ने मां के त्यागपत्र को फाड़ते हुएकहा– अब मैं अपनी मां की देखभाल खुद करुंगा। धन्यवाद। अब तक मैं दर्शक था, अब लोग मुझे देखेंगे। लोग सोचते थे, मेरी मां अकेली है। मैं हूं अपनी मां के साथ।

(डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल: आधी रात से सुबह तक)

21.3.5 रोचकता

कोई भी रचना या आलेख क्यों न हो बिना रोचकता के वह सारहीन, अनाकर्षक और रुचिहीन हो जाता है, फिर पाठक उस पर एक दृष्टि भर डालता है लेकिन इसके विपरीत लेखक जब उसमें रोचकता भरता है तो पाठक में निरंतर रचना पढने की उत्सुकता एव रुचि जागृत रहती है। इस रोचकता का सीधा तात्पर्य पाठक की उस पठन रुचि से है, जिसके कारण पाठक आनंदित हो उठता है।

रिपोर्ताज लेखक सत्य और तथ्य की पूर्णत: रक्षा करते हुए जब किसी घटना या स्थिति का उल्लेख इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि उसमे रोचकता भर उठे तो। निश्चित ही वह सफल रिपोर्ताज कहा जाता है। पाठक तभी एक के बाद एक पृष्ठ पढता चला जाता है। उदाहरणार्थ–

वह पल भर दरवाजे के पास खड़ी रही, फिर धीरे–धीरे आगे बढ़ी। मैं चीखना चाहता था। मगर गला जवाब दे गया। वह हमारे बिल्कुल पास ही आकर खड़ी हो गई और जडें जमीन पर रख दीं। अपने तीन उंगुलियां वाले हाथ मुंह के पास ले जाकर कुछ इशारा किया, खाना मांगने का। मेरी जान मे जान आई। वह भूखी है। तब तो जरूर आदमी होगा। आजकल भूख आदमियत की पहचान बन गई है। (धर्मवीर भारती : मुर्दो का गांव : हंस, मार्च 88)

रिपोर्ताज का छठा गुण रसात्मकता है। उसका तात्पर्य है कि वह सरसता जिसकी अनुभूति से पाठक आनंद से भर उठे। किसी घटना या दृश्य को प्रस्तुति में रिपोर्ताज लेखक शैली और शिल्प

के माध्यम से मृदुता और सरसता का संचार करता है तो उससे रिपोर्ताज में रसात्मकता आ जाती है। उदाहरणार्थ–

छोटे बड़े अनेक विद्यार्थियों ने आकर हमे घेर लिया। अनेक अधरों पर एक तरल हंसी थी, पर आंखों मे भय–उदासी की छाया भी एक अद्भुत वास्तविकता थी। दीपक की शिखा जल रही थी किन्तु निर्धूम नहीं, निशंक नहीं। क्षण भर पहले ही तो वह तो तूफान से कांप उठी थी, बुझते–बुझते बची। मैंने सोचा और समझा कि ये बालक इसलिए नहीं मुसकरा रहे हैं कि उन्हें उस अकाल के भयानक पिशाच से लड़कर बच रहने का गर्व था, बल्कि इसलिए कि उनके सामने आज ऐसे मनुष्य खड़े थे,जिन्होंने मनुष्य बने रहने के अधिकार को स्वीकार किया है, उस समय जबकि अपने उनके नहीं थे।

(रांगेय राघव ग्रंथावली: बांध भंगे दाओ)

21.3.7 मर्मस्पर्शिता

रिपोर्ताज की सातवीं विशेषता मर्मस्पर्शिता है। जब कोई रिपोर्ताज लेखक अपने शब्दों से पाक के मन–प्राणों को अपनी दुःखातिरे की अभिव्यक्ति देता है तो वह निश्चित ही मर्मस्पर्शी बन जाता है। अपने रिपोर्ताज में लेखक कई स्थलों पर मार्मिक कथन प्रस्तुत करता है। ऐसे मार्मिक स्थल रचना की संप्रेषणीयता बढ़ा देते हैं। मार्मिक वर्णन प्रणाली का अवसर हिन्दी की अन्य कई विधाओं में मिलता है, लेकिन रिपोर्ताज में मर्मस्पर्शिता की विशेषता बढ़ने का कारण यह है कि लेखक घटना के यथातथ्य चित्रण को सार्थक बनाता है। लेखक अपनी आंखों देखी मर्मस्पर्शी घटना को प्रस्तुति से पाठकों को भी मर्माहित कर देता है। उदाहरणार्थ–

"इस गांव में आज घरों पर किसकी दृष्टि ठहरेगी, भैया! इधर देखो, वे जो छाया में सो रही हैं–चुपचाप, वे मिट्टी की कच्ची कब्रें, गिनकर देख लो, अगर पांच सौ दिखाई पड़े और एक–एक ही आदमी दफनाया गया हो, यह भी कोई जरूरी नहीं है। यह है हम मुसलमानों की बात और अगर तुम सुनना चाहते हो हिन्दू क्यों नहीं मरे तो जाकर शीतलक्खा की धारा से पूछो कि क्यों तू शिद्धिरगंज के सैकड़ों किसानों को बहा ले गई, जिनकी हड्डियों तक का आज पता नहीं है?"

21.3.8 कलात्मकता

रिपोर्ताज की आठवीं विशेषता उसकी कलात्मकता है। किसी भी वस्तु को उसके सर्वोत्तम रूप में प्रस्तुत करना ही कलात्मकता है। रिपोर्ताज में लेखक के शब्द और शैली, घटनाक्रम को सर्वोत्तम प्रस्तुति ही उसकी कलात्मकता है। रिपोर्ताज की कलात्मकता में लेखक की सूक्ष्म निरीक्षणता, उसकी भावुकता तथा शब्द चयन का योगदान रहता है। रिपोर्ताज लेखक कभी भी समाचार की भांति रिपोर्ताज सामग्री को बासी नहीं होने देता है क्योंकि वह अपनी गहरी संवेदनशीलता से उसे लिखता है। इस दिशा में बंगाल के अकाल पर लिखे गए रांगेय राघव के रिपोर्ताज महत्वपूर्ण उपलब्धि माने जा सकते हैं, जिनमें मानवीय संवेदना के साथ वे केवल भूख से तड़पते बंगाल के व्यक्तियों का ही शब्द चित्र नहीं है अपितु लाशों पर मंडराते गिद्धों, अन्न के लिए अस्मत बेचती नारियों, मुनाफाखोर धन्ना सेठों की लालचग्रस्त आखों, अफसरों की लापरवाह मुख मुद्राओं और सरकार के दंभों का जीता जागता चित्रण (विश्वंभरनाथ उपाध्याय, आलोचना 46) है। उदाहरणार्थ -

गर्व से मेरी छाती फूल उठी। कौन कहता है कि बंगाल मर गया है? जहां भूख और बीमारियों से लडकर भी मनुष्यों के बालकों में क्रांति को चिरंजीवी रखने का अपराजित साहस है वह राष्ट्र कभी भी नहीं मर सकेगा। हड्डी– हड्डी से लड़ने वाले यह योद्धा जीवन की महान शक्ति को अभी तक अपने में जीवित रख सके हैं। संसार कहता है कि स्टालिनग्राड के लोग खंडहरों में से लड़े थे और उन्होंने दुश्मन के दांत खट्टे कर दिए। उन्होंने बर्बरता की धारा को रोककर भारत को गुलाम होने से बचा लिया। किन्तु मैं पूछता हूं क्या शिद्धिरगंज दूसरा स्टालिनग्राड नहीं?

एक अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत है –

आटा, दाल, चावल, तरकारी और शक्कर का दाम कल जो था, वह आज नहीं। यानी बढ़ गया है। कुर्ते, कमीज, कोट, पतलून, कुहनियों पर या कंधे से एक–एक कर फट चुके हैं। दूध, मक्खन, मलाई, तेल, साबुन, जूते और डबल रोटी में जितना खर्च होता जाता है, उसके बाद बीमे के प्रीमियम, स्कूल की फीस और मकान का किराया देने के बच नहीं रहता। मगर हम अपने सौजन्य, दया, क्षमा, शील, स्नेह में एक रत्ती कम नहीं हुए हैं। आपसे जब मिलेंगे, तपाक से नमस्ते करेंगे और पूछेंगे– 'मजे में तो हैं?' और आप जवाब दें, इसके पहले ही कह देंगे 'जी' आपकी दया से सब चैन चान है। नमस्ते।

(रघुवीर सहाय : सीढ़ियों पर धूप में)

दोनों उदाहरण रिपोर्ताज की कलात्मकता के हैं। पहले में कारुणिकता, ओज और दूसरे में समसामयिक परिस्थितियों का व्यंग्यात्मक संदर्भ निहित है।

बोध प्रश्न–2

1. रिपोर्ताज की विशेषताएं बताइए। (250 शब्दों में)
2. रिपोर्ताज में यथातथ्यता का क्या अर्थ होता है?
3. रिपोर्ताज में कथात्मकता क्यों आवश्यक है?
4. रिपोर्ताज की क्लात्मकता से क्या आशय है?

21.4 हिन्दी रिपोर्ताज का विकास

21.4.1 रिपोर्ताज का उद्भव

रिपोर्ताज का उद्भव बीसवीं शताब्दी के आरंभ में द्वितीय विश्वयुद्ध से माना जाता है। कुछ विद्वान उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में हुए व्यापक औद्योगीकरण के समय हुआ था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही प्रथम विश्वयुद्ध (1914) और द्वितीय विश्वयुद्ध (1936) तथा रूसी क्रांति के समय रिपोर्ताज का उद्भव मानते हैं क्योंकि घटनाओं के नव्यतमरूप में तथ्यों के साथ प्रकाशित करना ही महत्वपूर्ण था। जॉन रीड ने "रूसी क्रांति का अमर दस्तावेज", "दस दिन : जब दुनिया हिल उठी (टेन डेज दैट शुक द वर्ल्ड)" रिपोर्ताज का श्रेष्ठ उदाहरण है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार– "सोवियत लेखकों ने साहित्य को अपने प्राणों से भी ज्यादा महत्वपूर्ण समझा और दूसरे सिपाहियों की तरह वे अपने मोर्चे पर डटे रहे। कई लेखकों की जानें भी गई, परन्तु उन लोगों ने जो रिपोर्ताज लिखे हैं, उनमें महायुद्ध का सजीव साहित्य और इतिहास दोनों है।"

(डॉ. रामविलास शर्मा: कथा विवेचना और गद्य शिल्प)

21.4.2 हिन्दी रिपोर्ताज का विकास क्रम

हिन्दी रिपोर्ताज का आरंभ सन् 1922 से माना जाना चाहिए। सन् 1922 में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने "बनारस का बुद्धवामंगल" नामक रिपोर्ताज लिखा। यद्यपि कुछ विद्वान इसे प्रथम रिपोर्ताज नहीं मानते हैं, पर रिपोर्ताज की प्रथम झलक का उसमें अभाव नहीं है। हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक कालक्रम में आधुनिककाल के द्विवेदी युग की समाप्ति से हिंदी रिपोर्ताज का आरंभ माना जा सकता है। डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ ने हिन्दी रिपोर्ताज के कालक्रम का निर्धारण निम्नलिखित रूप में किया है –

1. उद्भव काल सन् 1922 से 1935 ई.
2. विकास काल सन् 1936 से 1949 ई.
3. विस्तारकाल सन् 1950 से 1965 ई.
4. आधुनिक काल सन् 1966 से 1989 ई.
5. अद्यतनकाल सन् 1990 से अंतिम शती तक।

21.4.2.1 उद्भवकाल

सन् 1922 में प्रकाशित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' के "बनारस का बुद्धवामंगल" में रिपोर्ताज की विशेषताएं उपलब्ध होती हैं। अत: इससे ही हिन्दी रिपोर्ताज का उद्भव माना जाना उचित होगा। यद्यपि विद्वान पश्चकालीन रिपोर्ताज से हिन्दी रिपोर्ताज का आरंभ मानते है,। लेकिन 'प्रेमधन' के बाद सन् 1926 में चंडीप्रसाद सिंह का "युवराज की यात्रा" (खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर) का प्रकाशन हुआ और उसके पश्चात् सन् 1927 में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर द्वारा लिखित 'गुरुकुल कांगड़ी की रजत जयन्ती' रिपोर्ताज प्रकाशित हुआ। 'वेदों की खोज' शीर्षक से अन्य रिपोर्ताज प्रकाशित हुआ। 'विशाल भारत' के अप्रेल, 1930 के अंक में मदनमोहन चतुर्वेदी के "सत्याग्रह" और मई में 'डांडी में सत्याग्रह शिविर' प्रकाशित हुए। मई, 1930 के ही अंक में 'विशाल भारत' ने रामानंद चट्टोपाध्याय का रिपोर्ताज "ढाके का उपद्रव" प्रकाशित हुआ। अन्य रिपोर्ताज "एक तस्वीर दो पहलू" (1932) और "एक रात की बात" (1934) तक आते–आते हिन्दी रिपोर्ताज प्रतिष्ठित हो चुका था। इस प्रकार उद्भवकाल अपनी उचित सक्रियता लिए हुए है। सन् 1935 के 'विश्वमित्र' में रामनाथ सुमन लिखित "द्वी एशिया में क्या हो रहा है" भी सामयिक रिपोर्ताज है। भले ही उसे विशुद्ध विधा के रूप में आज अस्वीकार किया जाए। इस अवधि में 'हंस' और 'विशाल भारत' ने रिपोर्ताज को स्थापित विधा के रूप में प्रतिष्ठित होने का अवसर दिया। 'हंस' में "सामयिक" नामक स्तंभ में छोटे–छोटे रिपोर्ताज प्रकाशित होते थे। कालांतर में उसे "समाचार और विचार" (1934) स्तंभ और अंत में "अपना देश" (1944) स्तंभ के रूप में प्रकाशित किया जाने लगा था। वास्तविकता यह है कि रिपोर्ताज विधा समय की आवश्यकता और युगीन परिस्थितियों के कारण उद्भव में आई है। इस संबंध में हिंदी साहित्य के वृहत इतिहासकार के स्तंभकार ने लिखा है कि –"जब परंपरागत विधाएं कलाकार की भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति नहीं कर पातीं तो नवीन विधाओं की खोज की जाती है। इसी के परिणामस्वरूप रेखाचित्र, एकांकी, रिपोर्ताज, डायरी आदि की नवीन विधाओं का प्रयोग किया गया है।" (चतुर्दश भाग, खंड छः, पृष्ठ 445)

21.4.2.2 विकासकाल

सन् 1936 से हिन्दी रिपोर्ताज का विकास काल माना जा सकता है। यद्यपि इस काल में प्रेमचंद के अवसान से 'हंस' के प्रकाशन में व्यवधान आया था। सन् 1936 तक इस विधा की सम्यक प्रतिष्ठापना हो चुकी थी। ''रूपाभ'' द्वारा भी रिपोर्ताज प्रकाशन का अवसर दिया गया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रिपोर्ताज के उद्भव एवं विकास में 'हंस', 'विशाल भारत' और 'रूपाभ' पत्रिकाओं की भूमिका विस्मृत नहीं की जा सकती।

सन् 1936 में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का राजनीतिक रिपोर्ताज का संग्रह, ''लखनऊ : कांग्रेस के उन दिनों में'' प्रकाशित हुआ। सन् 1938 में 'रूपाभ' पत्रिका में शिवदानसिंह चौहान के रिपोर्ताज ''लक्ष्मीपुरा'' ने सभी का ध्यान आकर्षित किया। वे इससे पूर्व ''मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई'' शीर्षक से 'हंस' के ''अपने देश'' स्तंभ में रिपोर्ताज लिख रहे थे। गतिविधि पर पूरा प्रकाश डाला है। स्वतंत्रता की पुकार के साथ बंगाल के अकाल, गांधीजी की रिहाई, एयरी के भाषण की चर्चा इन रिपोर्ताजों में है।

जून, 1938 के 'चांद'. में प्रकाशित ''हम और हमारे कुंभ मेले'' को रिपोर्ताज कहा जा सकता है। इसी अंक में भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव का रिपोर्ताज ''पेरिस की प्रदर्शनी'' भी प्रकाशित हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य ही सन् 1943–44 में भयंकर अकाल पड़ा। आगरा से रांगेय राघव डॉक्टरो के दल के साथ वहां गए तथा बंगाल के अकाल के मार्मिक रिपोर्ताज प्रस्तुत किए। ''विषादमठ'' (बंकिमचंद्र चटर्जी के उपन्यास आनंदमठ के समानांतर प्रतिक्रिया में) उपन्यास भी उन्होंने रिपोर्ताज शैली में ही लिखा। आपके अकाल संबंधी कई रिपोर्ताज उस कालावधि में 'हंस' और 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुए। उनके लिए रामगोपाल सिंह चौहान का मत था कि ''रांगेय राघव की कलम में शक्ति है, भाषा में आग है, वर्णन में हृदय की मार्मिक पकड़ है, परिस्थितियों के जाल में फंसी जनता के संघर्ष की गति को समझने की जागरूकता है, जीवन की विवशताओं से तमसावृत्त समय के परिदृश्य में प्रकाश देख पाने की पैनी दृष्टि है और पाठक के मन प्राण को उद्वेलित कर अपनी रचनाओं से जीवन के प्रति सचेत करने की चेतना है।''

इसी समय अकाल संबंधी रिपोर्ताज के अतिरिक्त भी हंस के लिए अन्य रिपोर्ताज भी लिखे। इनमें पहला रिपोर्ताज– 'उपचेतना का तांडव'। इसके अनेक चित्र–स्वतन्त्रता का आंदोलन, मुन्नी की पढ़ाई, भिखारी का आगमन, सांप्रदायिक दंगों की विभीषिका तथा अभावग्रस्त अवचेतन मन का चित्रण है जो पूर्णत: असंबद्ध होते हुए भी एक दूसरे से किसी न किसी प्रकार उलझा हुआ है। उनका एक अन्य रिपोर्ताज ''यह ग्वालियर'' है जिसमें दमन एव अत्याचार का सजीव चित्रण किया गया है।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का एक फीचर ''ऊपर की बर्थ पर'' (1945) ''महान सांस्कृतिक महोत्सव में'' (1945) तथा ''मेरे मकान के आसपास'' इसी वर्ष प्रकाशित हुए। इस रिपोर्ताज में मिश्रजी सर्वसुलभ भाषा में लोक संस्कृति के उज्जवल पक्ष को देखकर गदगद होते हैं, वहीं वे नागरीय संस्कृति के बढते प्रभाव से उस पक्ष का अभाव अनुभव करते हैं।'' अपने भंगी भाइयों के साथ'' और ''पहाड़ी रिक्शा में'' में समाज के पतित वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति के दर्शन होते हैं जिसमें सहारनपुर जिले की स्थानीय बोली का उपयोग भी किया गया है।

इसी अवधि में 'हंस' के फरवरी, 45 के अंक में धर्मवीर भारती का रिपोर्ताज "मुर्दो का गांव" प्रकाशित हुआ तो दूसरा रिपोर्ताज ललितमोहन अवस्थी का 'जिंदगी' मार्च, 1945 के 'हंस' में प्रकाशित हुआ था जिसमें तत्कालीन राजनीतिक अवस्था का चित्र था कि "कांग्रेस और लीग, भारतीय जनशक्ति के दो टुकड़े अब भी अलग हैं। तभी यह गतिरोधक है, तभी यह दमन है, तभी यह विदेशी–सहकार अपना फौलादी पंजा जमाए है। "सन् 1946 में रांगेय राघव के रिपोर्ताजों का संग्रह "तूफानों के बीच" प्रकाशित हुआ।

जून, 1947 के हंस में "नजरबंदियों की जान के साथ खिलवाड़" नामक रिपोर्ताज प्रकाशित हुआ जो फतेहगढ की सैंट्रल जेल में भूख हड़ताल कर रहे कैदियों पर निर्मम लाठी प्रहार पर अपना रोष प्रकट करता है। मार्च, 1948 के अंक में प्रकाशचंद्र गुप्त का ऐतिहासिक रिपोर्ताज "स्वराज्य भवन" प्रकाशित हुआ और नवम्बर, 1949 के 'हरा' में रामकुमार का रिपोर्ताज "बस स्टेंड" प्रकाशित हुआ। प्रकाशचंद्र गुप्त ने इसी अवधि में "अलमोडे का बाजार" और "महाकुंभ" घटना प्रधान रिपोर्ताज 'हंस' के लिए लिखे।

21.4.2.3 विस्तार काल

स्वतंत्रता प्राप्ति और उसके बाद शरणार्थी समस्या, सांप्रदायिक दंगों से देश स्तब्ध रह गया। लेखक और लेखनी भी स्तब्ध थी। मुद्रित माध्यम भी विकलांगता से गुजर रहा था। सन् 1950 के आते–आते अस्त–व्यस्त समाज और व्यवसाय संयत हुए। मुद्रित माध्यमों के ताले खुले तोडॉ. धर्मवीर भारती ने सन् 1950 में कुमाउं की पर्वतीय यात्राओं एवं क्षेत्र की नैसर्गिक सुंदरता के आधार पर रिपोर्ताज "ठेले पर हिमालय" संग्रह प्रस्तुत किया। सबसे पहले कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का रिपोर्ताज 'कुम्भ महान' (1950) प्रकाशित हुआ जिसका महत्व इसलिए भी है कि इसमें जनता के अध विश्वासों से उत्पन्न अंध भक्ति का चलचित्रात्मक चित्रण है।

रिपोर्ताज लेखक मिश्र से मेले की छोटी से छोटी बात छिपी नहीं रह सकी है। वे भंगड़ी साधुओं की "चिलम चमेली, फूंकदे ठेकेदार की हवेली" जैसे कथन पर भी ध्यान केंद्रित करते हैं तो कथावाचक पंडित के चारों ओर खड़ी उस भीड़ पर भी दृष्टि डालते हैं जो पंडित के शब्द न सुनाई देने पर भी उसके आस–पास से हटती नहीं है। इसके पश्चात् "लाल किले की ऊंची दीवार से" और "लाल मंदिर की छाया में" उनके दो महत्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं जिनका विषय राजनीति और इतिहास है। "राबर्ट नर्सिंग होम में" रिपोर्ताज में मिश्र जी ने मदर टैरेसा के समर्पित जीवन की झांकी प्रस्तुत की है। सन् 1952 में हिन्दुस्तान में उनका रिपोर्ताज "सद्भाव एवं राष्ट्रीय एकता का प्रतीक गुघाल मेला" प्रकाशित हुआ।

इस अवधि में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का नाम बड़ी प्रखरता के साथ उभरता है। "नया पथ" पत्रिका के प्रकाशन से 1953–55 की अवधि में अच्छे रिपोर्ताज का प्रकाशन हुआ। "खून के छींटे: इतिहास के पन्नों पर" रिपोर्ताज का संग्रह ऐसा है जिसमे उपाध्यायजी ने प्रागैतिहासिक काल की घटनाओं को भी अपनी कल्पना की आंखों से देखा है। इस संग्रह में उनके आठ रिपोर्ताज हैं–नारी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र–दास, अंत्यज और लेखक। इन रिपोर्ताजों से पौराणिक प्रसंगों की स्वाभाविक तथा तत्कालीन वास्तविकताओं की प्रस्तुति विशिष्ट है।

भगवतशरण उपाध्याय के बारह प्रसिद्ध रिपोर्ताज "ठूंठा आम" में संकलित हैं जिनमें से सम्भावि युगे युगे, टूटे सूत, अभिसार, आकर्षण, कोलाहल में एकाकी, कबीर अमेरिका में उल्लेखनीय हैं।

भदंत आनंद कौशल्यायन का संग्रह "देश की मिट्टी बुलाती है" में सामाजिक एवं सांस्कृतिक रिपोर्ताज हैं। भदंत संस्कृति के उज्ज्वल पहलू के पक्षधर रहे हैं।

सन् 1953 में ही शांतिप्रिय द्विवेदी रचित "प्रतिष्ठान" भी रिपोर्ताज संग्रह है जिसमें व्यंग्यात्मक शैली है। सन् 1957 में रामकुमार के रिपोर्ताज संग्रह "यूरोप के स्कैच" अपनी चित्रात्मकता के साथ प्रकाशित हुए हैं। सन् 1957 में ही अमृतलाल नागर ने गांव–गांव घूमकर सन् अठारह सौ सत्तावन की क्रांति की प्रामाणिक जानकारी के आधार पर लिखे रिपोर्ताज "गदर के फूल" संग्रह में प्रकाशित हुए। सन् 1958 में रामनारायण उपाध्याय का रिपोर्ताज संग्रह 'गरीब और अमीर पुस्तकें" नाम से प्रकाशित हुआ। उपाध्यायजी के कुछ रिपोर्ताज महत्वपूर्ण है–यदि दैनिक अखबार न होते, मेम्बर महिमा, नए देश में, नववर्ष समारोह और बीसवीं सदी। इन रिपोर्ताजो में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग मिलता है।

सन् 1960 में रघुवीर सहाय के कुछ रिपोर्ताज "सीढ़ियों पर धूप में" संकलन में प्रकाशित हैं जो कविता, कहानियों तथा रिपोर्ताज के संग्रह ही हैं। इनमें रिपोर्ताज "हिंदी संपादक से भेंट" और "ईमानदारी" व्यंग्य प्रधान हैं। निर्मल वर्मा रचित "चीड़ों पर चांदनी" (1964), जलती झाड़ी (1965), हर बारिश में (1970) भी रिपोर्ताज प्रवृत्ति के अधिक निकट हैं। हर बारिश में संकलित "अंग्रेजों की खोज में" और "प्राग एक स्वप्न" रिपोर्ताज के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

इसी अवधि में लक्ष्मीचंद्र जैन द्वारा लिखित रिपोर्ताज संग्रह "कागज की किश्तियां" और "नए ढंग" अपनी सूक्ष्म दृष्टि में विलक्षण रहे हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क के "कलम घसीट" में 'पहाड़ों का प्रेममय संगीत', 'है कुछ ऐसी बात जो चुप हूं', सफलतम रिपोर्ताज हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने उपन्यासों– "मैला आंचल" और "परती परिकथा" में रिपोर्ताज शैली ही अपनाई है। "एक्लव्य के नोट्स" आपका रिपोर्ताज है जो "संकेत" में संकलित है। "कागज की नाव" रेणुजी का एक अन्य रिपोर्ताज है। प्रभाकर माचवे ने "जब प्रभाकर पाताल गए" में रिपोर्ताज शैली का प्रयोग किया है तथा बालकृष्ण राव ने छठे दशक में 'कल्पना' के लिए "कमलाकांतजी ने कहा" शीर्षक से रोचक रिपोर्ताज लिखें। 'माध्यम' के संपादनकाल में "गोप्ती प्रसंग" स्तंभ रिपोर्ताज शैली में ही प्रस्तुत किया जाता था। सन् 1964–65 में पाकिस्तान के आक्रमणकाल में और फिर सन् 1971 में बगंलादेश विभाजन काल में रिपोर्ताजों ने फिर अपना कौशल प्रस्तुत किया है।

सन् 1971 के बांगलादेश मुक्ति अभियान के लिए रिपोर्ताज लेखन में डॉ. धर्मवीर भारती ने "मुक्त क्षेत्रे युद्ध क्षेत्रे" नाम से स्तंभ लिखा। वे स्वयं बांगलादेश के मुक्ति अभियान के मोर्चे पर रहे। इन रिपोर्ताजों में युद्ध से संबंधित व्यक्तियों के मानवीय पक्ष का मार्मिक चित्रण है। इसी अवधि में शंकरदयाल सिंह की पुस्तक "युद्ध के चौराहे तक" तथा "युद्ध के आसपास" युद्धकालीन परिवेश के रिपोर्ताजों के संग्रह हैं।

विष्णुकांत शास्त्री बांगलादेश में स्वयं उपस्थित रहे तथा वहां से धर्मयुग के लिए रिपोर्ताज लिखते रहे जो 1973 में बांगलादेश के संदर्भ में' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं जिनमें मुक्तवाहिनी के सैनिकों

दारा अपनी मातृभूमि को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए जूझने के राजीव चित्र हैं। युद्ध करते मुक्तिवाहिनी के सैनिकों का वर्णन करते हुए लेखक की भाषा भी ओजपूर्ण एवं प्रवाहयुक्त है। इस पुस्तक के रिपोर्ताजों को अमेरिकी अस्त्र–शस्त्रों से सज्जित खूंखार पाकिस्तानी सेना का सामना करने वाली मुक्तिवाहिनी की अदम्य वीरता का दस्तावेज कहा जा सकता है। रामकुमार का रिपोर्ताज "पहाड़, चीड़ और बर्फ" 1976 के धर्मयुग में प्रकाशित हुआ। बाद में उन्होंने 'रोमांरोला के घर में' रिपोर्ताज संग्रह भी प्रकाशित कराया। सन् 1975 में राष्ट्र पर लगाए गए आपातकाल पर अपनी सशक्त लेखनी से नाटककार–कहानीकार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने "आधी रात से सुबह तक" (प्रकाशन 1977) रिपोर्ताज लिखे। इस अवधि में यूरोपीय अनुभवों के आधार पर श्रीकांत वर्मा के रिपोर्ताजों का संग्रह "अपोलो का रथ" प्रकाशित हुआ।

विवेकीराय ने रिपोर्ताज विधा को नया मोड़ दिया है। उनके रिपोर्ताज धर्मयुग, कादंबिनी, ज्ञानोदय, साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि में प्रकाशित होते रहे। सन् 1977 में "जुलूस रुका है" शीर्षक से उनका संग्रह हुआ, जिसमें बाईस रिपोर्ताज संगृहीत हैं। इसी अवधि में फणीश्वरनाथ रेणु का रिपोर्ताज संग्रह 'ऋण–जल धन–जल' (1977) प्रकाशित हुआ जिसमें सन् 1975 में अचानक आई बाढ़ और सन् 1966 में बिहार में पड़े सूखे से संबंधित पांच रिपोर्ताज हैं। मणिमधुकर का 'पिछला पहाड़ी' (1977) महत्वपूर्ण रिपोर्ताज संग्रह है। सन् 1981 में शिवसागर मिश्र का रिपोर्ताज संग्रह "वे लड़ेंगे हजार साल" प्रकाशित हुआ जिसमें उन भारतीय रणबांकुरों की विजयगाथा है जिन्होंने पाकिस्तान की सेना से लोहा लेकर उसके नेताओं के हजार साल लड़ते रहने के इरादों को मात्र बाईस दिनों में चकनाचूर कर दिया था। शिवानी के रिपोर्ताजों की कृति "यांत्रिक" इसी वर्ष प्रकाशित हुई है।

सन् 1982 में प्रकाशित "आदमी से आदमी तक" में भीमसेन त्यागी के रिपोर्ताज है। इनकी विशेषता यह है कि वे रोजमर्रा की जिन्दगी के आसपास की सामान्य घटनाओं का कलात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं। इस अवधि में ठाकुरप्रसाद सिंह का "अकाल की शताब्दी" अत्यंत मर्मस्पर्शी रिपोर्ताज संग्रह है। मणिमधुकर का रिपोर्ताज संग्रह "सूखे सरोवर का भूगोल" (1981) मरूभूमि के जीवन संघर्ष और मानवीय संवेदना का संस्पर्श लिए हुए हैं। इसी अवधि में ललित शुक्ल के रिपोर्ताजों का संकलन "सोजा लोबो" प्रकाशित हुआ जिसमें मनुष्य की संगति–विसंगति पर नौ रिपोर्ताज हैं। "सोजा लोबो" पुर्तगाली शब्द है, जो समुद्र के किनारे ताड़ पत्रों और बेंत से बना होटल होता है।

बलराम के रिपोर्ताज संकलन 'प्रतिध्वनियां' (1985), और 'अनचाहे सफर' (1988) हैं। राजस्थान में मणिमधुकर के अतिरिक्त रिपोर्ताज में डॉ. सत्यनारायण का 'इस आदमी को पढ़ो' श्रेष्ठ रिपोर्ताज संग्रह है। इस अवधि में नासिरा शर्मा "ज्वालामुखी का निहत्था उद्गार: ईरान" रिपोर्ताज विधा का यथार्थ चित्रण लिए हुए है। लक्ष्मीचंद्र जैन द्वारा लिखित "असीम आकाश के बियावान में" में सर्वथा पृथक् विषय लेकर लिखा गया रिपोर्ताज संग्रह है।

21.4.2.5 अद्यतन काल

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में रिपोर्ताज लेखन एवं प्रकाशन का क्रम जारी है लेकिन साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, साप्ताहिक दिनमान, पाक्षिक सारिका एवं कई मासिक पत्रिकाएं बंद हो चुकी हैं। इस दशक में गिरिराज शाह के दो रिपोर्ताज संग्रह "चुटपुटकुले" तथा "लड़ाई जारी है" (दोनों

ही सन् 1991) महत्वपूर्ण है। ललित शुक्ल का "पार्वती के कंगन" (1991) दूसरा रिपोर्ताज संग्रह है जिसमें तेरह रिपोर्ताज हैं।

इस अद्यतनकाल में पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले रिपोर्ताज–लेखकों में प्रफुल्लकुमार सिंह मौन, आर. इमरोज, रसूल अहमद शेख, फूलचंद मानव, द्रोणवीर कोहली, सावित्री परमार, सुधीर सेन, कैलाश नारद, कन्हैयालाल नंदन, करणीदानसिंह राजपूत, देवेन्द्र रस्तोगी, हरिसिंह राणा, मणि मधुकर, वीरेन्द्र शुक्ल, रमेशदत्त शर्मा, नंदिता हक्सर, विजय अग्रवाल, कमलेश भारती, मुद्राराक्षस, खुशवंत सिंह, गबरसिंह रावत, सुरेशव्रत राय, चंद्रशेखर दुबे, डॉ. सत्यनारायण आदि के नाम उल्लेखनीय है।

21.5 रिपोर्ताज का सामग्री–संयोजन एवं लेखन

21.5.1 रिपोर्ताज–लेखन की तैयारी

रिपोर्ताज–लेखन बंद कमरे में नहीं किया जा सकता। घटना–स्थल पर जाना अनिवार्य है इसलिए समाचारपत्र के संवाददाता या रिपोर्टर होने पर संपादक द्वारा निर्देश किये जाने या मुक्त लेखक (फ्रीलांसर) होने पर स्वयं स्थान या घटना स्थल पर जाने की व्यवस्था अनिवार्यतः करनी होती है।

जाने से पूर्व आपको यह भी निर्णय करना होता है कि–

1. क्या आपको घटना स्थल के संबंध में आरंभिक जानकारी है?
2. वहां पहुंचकर आपको किन– किन लोगों से मिलकर तथ्य संकलन करना है?
3. क्या उस घटना या स्थल के संबंध में पत्रों में प्रकाशित समाचार तथा अन्य संबंधित रिपोर्ट, पुस्तक या दस्तावेज पहले देखे हैं?
4. क्या ऐसे व्यक्ति, अधिकारी या स्रोत की सूची आपके पास है, जो घटना से संबंधित प्रामाणिक और उपयोगी जानकारी दे सकते हैं?

यह निर्णय कर लिए जाने पर सबसे पहला प्रयास यह होगा कि–

(क) घटना से प्रभावित लोगों से मिलकर घटना का पूरा विवरण जान लें।

(ख) घटनास्थल के परिवेश का पूरा अध्ययन कर आवश्यक टिप्पणियां लिख लें।

(ग) संबंधित अधिकारियों एवं लोगों से मिलें जो उस घटना के विभिन्न पहलुओं पर रोशनी डाल सकें।

(घ) ऐसे तथ्य एवं प्रसंगों का संकलन करें जिनसे रिपोर्ताज मार्मिक बन सके।

(ङ) संबंधित स्थल एवं प्रभावित लोगों के छायाचित्र रिपोर्ताज की प्रामाणिकता सिद्ध करने हेतु ले लें।

यदि आवश्यक हो तो साक्षात्कार भी लें ताकि प्रमाणों का उल्लेख किया जा सके। जिन लोगों या अधिकारियों से मिलने की आवश्यकता एवं साक्षात्कार लेना है, वे सूचनाएं दें, यह आवश्यक नहीं है। अतः आवश्यक ही नहीं अनिवार्य यह है कि स्वयं घटनास्थल का सूक्ष्म निरीक्षण तथा उपलब्ध दस्तावेजों और सूत्रों से विश्वसनीय तथ्य संकलित करें। हो सकता है कि संबंधित व्यक्ति या अधिकारी अपने बचाव के लिए गलत सूचनाएं दें। ऐसी स्थिति में तथ्यों की प्रामाणिकता के लिए अन्य लोगों

से भी जानकारी लें, उनसे बातचीत में उपयुक्त जानकारी से पूर्व की जानकारी की जांच की जा सकती है।

21.5.2 सामग्री संयोजन

घटना स्थल से लौटने के बाद जो सामग्री और तथ्य संकलित किए हैं, उसे ध्यानपूर्वक पढने के उपरांत तार्किक रूप से क्रमबद्ध रूप में रखकर उसके केंद्रीय भाव को समझें। फिर उसकी प्रारंभिक रूपरेखा तैयार करें। प्रभावकारी रिपोर्ताज बनाने के लिए प्रभावित लोगों की बातें उन्हीं के शब्दों में लिखें तथा रिपोर्ताज लिखने के लिए अपनी शैली और भाषा को भी प्रभावी बनाए।

21.5.3 रिपोर्ताज लेखन

रिपोर्ताज लेखन आरंभ करने से पूर्व आपको यह ध्यान रखना चाहिए कि आप किस पत्र या पत्रिका के लिए रिपोर्ताज तैयार कर रहे हैं तथा उसका पाठक वर्ग किस आयु और समाजवर्ग से है तथा रिपोर्ताज की प्रासंगिकता है या नहीं ? ऐसी स्थिति में निम्नांकित बातों पर ध्यान देना अनिवार्य है–

1. समस्या निर्धारण
2. प्रासंगिकता
3. पाठक वर्ग
4. प्रस्तुति

21.5.3.1 समस्या निर्धारण

रिपोर्ताज लेखन से पूर्व एकत्रित सामग्री से यह निष्कर्ष निकालें कि आप किस समस्या पर रिपोर्ताज लिखने जा रहे हैं। अगर समस्या का निर्धारण नहीं कर पाएं तो आप तथ्यों का विवरण भर दे पाएंगे। इसलिए केंद्रीय समस्या का निर्धारण कर लेना उचित होगा। वैसे तो घटना स्थल की यात्रा के साथ ही समस्या निर्धारण हो जाता है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक होता है कि पूरा रिपोर्ताज तैयार होने पर उद्देश्य परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़े।

21.5.3.2 प्रासंगिकता

समस्या निर्धारण के साथ ही रिपोर्ताज लिखने की प्रासंगिकता भी निर्धारित हो जाती है कि आप किस ज्वलंत समस्या या प्रश्न की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। इसलिए रिपोर्ताज की प्रासंगिता पर ध्यान केंद्रित करने की तथा उसकी समसामयिकता पर भी ध्यान केंद्रित करने की अनिवार्यता पालन करनी है। सामान्य रूप से व्यक्ति या पाठक जिन समस्याओं से जूझ रहे हैं, उस संबंध में ही घटित किसी घटना की प्रासंगिकता और समसामयिकता इसलिए सिद्ध होती है कि पाठक इसमें रुचि रखेंगे।

21.5.3.3 पाठक वर्ग

सभी पाठक रिपोर्ताज में रुचि लेंगे–यह आवश्यक नहीं है। सबकी अपनी–अपनी रुचियां होती हैं। सामान्यत : पाठकों की रुचि का अध्ययन किए बिना रिपोर्ताज लिखने का श्रम व्यर्थ होता है। पत्र या पत्रिका का पाठक वर्ग निश्चित होता है। फिर पत्र–पत्रिका के साथ उससे जुड़े हुए आयु वर्ग एवं लिंग भेद को भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है। तभी रिपोर्ताज का विषय निर्धारण पाठकों के आधार पर करना होता है। गुल रिपोर्ताज लेखक या फ्रीलांसर के लिए पाठक वर्ग और पत्रिका के चयन पर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है।

21.5.3.4 प्रस्तुति

रिपोर्ताज लेखन से पूर्व उसका आकार और पत्र–पत्रिका के पाठक वर्ग के निर्धारण किये जाने के उपरांत उसकी प्रस्तुति का कलात्मक होना अनिवार्य है। इसके लिए निम्नलिखित पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. आरंभ
2. मध्य भाग
3. समापन
4. शीर्षक
5. भाषा–शैली

1. आरंभ

रिपोर्ताज का आरंभ करने के लिए उसकी अंतःवस्तु और लेखक की शैली का निर्धारण आवश्यक है। सामान्य रूप से रिपोर्ताज के लिए यात्रा की अनिवार्यता है तो आरंभ यात्रा प्रसंग से ही होना उपयुक्त है, यथा–

> रेल रुक गई। हम लोग बेहद फुर्ती से सामान उतारने लगे। एक बक्स, एक बिस्तर, एक बक्स, एक बिस्तर... दवाओं के बड़े–बड़े बक्स... सब... कुल एक–डेढ़ मिनट भूइयां लंबी लंबी सांसे लेता मुस्कराता जाता था। वह अपनी समी उच्चारण की अंग्रेजी में कहने लगा–सब उतार लिया। सब, मगर गाड़ी अभी तक खड़ी है जसवंत अभी तक अदद गिन रहा था। उसने एक–एक ही सिर उठाकर कहा–अरे हां, गाड़ी तो अभी तक खड़ी है।
>
> (रांगेय राघव ग्रंथावली, भाग–8)

एक अन्य आरंभ द्रष्टव्य है–

> कहीं पितृविहीन अबोध बच्चियां या दहाड़ें मार रही हैं कहीं मातृविहीन मासूम बच्चें चिंघाड रहे हैं। कोई अपना सब कुछ लुटजाने की याद करके जार–जार हो रहा है, कोई भीगी आंखों से गुमशुदा परिवार के लौट आने की झूठी आशा को कसकर सीने से चिपकाए है, आंखों में दिल्ली वाला सैलाब आ गया है, बंद हो भी कैसे?
>
> (प्रेमकुमार : सुलगता अलीगढ़ : उठो, देव जाग गए हैं, सारिका, 1 अगस्त 1978)

2. मध्य भाग

रिपोर्ताज को आगे बढ़ाना या विस्तार देना कम महत्वपूर्ण नहीं है। उत्तम आरंभ करके मध्य को भूल जाना निश्चित ही पाठक को भ्रम में डल देगा। अत: मध्य भाग पर ध्यान दिया जाना भी उतना ही अनिवार्य है। सामग्री अधिक हो तो उसे उतना ही रखना आवश्यक जो रिपोर्ताज की आकार सीमा के लिए उपयुक्त है। मध्य भाग के लिए एक के बाद दूसरी घटना को प्रसंगों के आधार पर क्रमबद्ध रखना ही उचित होगा। उदाहरण के लिए–

> मैं देख रहा था जिनके शरीर में केवल हड्डियां ही शेष थी आज भी उनमें जीवित रहने का साहस था। अकाल आया बीमारी आई और फिर दूसरे अकाल की गहरी आधी भी क्षितिज पर सिर उठाने लगी है, किन्तु अविचलित है यह। किसलिए?

इसीलिए न कि यह जनता किसी से भी दब नहीं सकती एक दिन विजेताओं ने इन्हें कुचला था आज भी मनुष्य का स्वार्थ और भीषण व्यापार इन्हें निचोड़ रहा है किन्तु यह तो अभी तक अदम्य अविजेय है। (रांगेय राघव : अदम्य जीवन)

3. समापन

रिपोर्ताज समाप्ति भी उतनी ही प्रभावशाली होनी चाहिए जितना उसका आरंभ। समाप्ति बहुत कुछ रिपोर्ताज के आरंभ और विकास (मध्य) पर निर्भर करती है। अंत किसी प्रसंग या किसी वैचारिक टिप्पणी अथवा निष्कर्ष के साथ किया जा सकता है लेकिन यह ध्यान रखना है कि पाठकों को यह अनुभव हो कि रचना पूरी हो गई है। उदाहरण के लिए:–

पागल चला गया। बीमार जोर से कराहने लगा। स्त्री देखती रही। एकाएक जोर की हिचकी आई और बीमार के प्राण पखेरू उड़ गए। स्त्री जोर से चिल्ला उठी–डॉक्टर, अंधेरा छाया जा रहा है चारों ओर। मैं क्या करूं डॉक्टर? कौन उठाएगा इसे?

डॉक्टर देख रहा था दूर, ऊपर सहानुभूतिहीन तारे निकल आए थे। नीरव, निर्मल अंधकार झुकता आ रहा था पृथ्वी पर

4. शीर्षक

रिपोर्ताज का शीर्षक कलात्मक होना चाहिए। यह कहा जा सकता है कि रिपोर्ताज का शीर्षक भी फीचर की भांति संबद्ध, रोचक, कथ्यपूर्ण होना चाहिए, कुछ शीर्षक दृष्टव्य हैं -

अंधेरे में एक चीख
अंग्रेजों की खोज में
हर बारिश में
रक्तदान बनाम खून बेचने का धंधा
इंद्रधनुषी छवियां: रामगढ, शेखावाटी की हवेलियां
लखपतियों का नगर: नवलगढ
मौत की पटरियों पर भारतीय रेल
नारी निकेतन: नारकीय निकेतन

5. भाषा शैली

रिपोर्ताज की प्रस्तुति लेखक की निजता की पहचान होती है जो वास्तव में विषय के अनुरूप शब्दचयन यानी भाषा और कथ्य की त्वरा यानी शैली पर करती है। अत: रिपोर्ताज की भाषा न निबंध की भांति क्लिष्ट और पांडित्य प्रदर्शनकारी होनी चाहिए और न शैली दुरस्त। भाषा में सरल शब्द चयन एवं प्रवाहमय शैली होनी चाहिए।

शाम होते ही यहां की ज़िंदगी करवट बदलती है। दिन भर की तपिश के बाद हवा में हल्की सी खुनब महसूस होती है और सडकों पर रौनक बढ़ने लगती है–उजडे हुए रईस और बेकारी से सताए हुए शायर दिलफेंकपतंगबाज और खुद अपने से ज्यादा अपने परिंदों से प्यार करने वाले कबूतरबाज यहां कंधे से कंधा छीलते हुए चलते हैं।

(भीमसेन त्यागी : आदमी से आदमी तक)

एक अन्य उदाहरण–

> किसे रहता है अपना इतिहास याद? इतिहास याद भी रहे तो उसे कौन जीए? आहाड़ की भील सभ्यता शताब्दियों पहले दफन हो गई धूल कोट में। सोई पड़ी रही। किसे पता था कि मोहनजोदडो से भी डेढ़ हजार वर्ष पूर्व हमारी भील संस्कृति अपनी योग्यता और कलात्मक चेतना के शिखर पर थी। पता नहीं कब सब कुछ बादल गया इस धूलकोट में। यहीं तांबा गलाया जाता था, चांदी का शुद्धिकरण किया जाता था–आज कोई नहीं जनता।
>
> (विजय कुलश्रेष्ठ : धूलकोट के क्रोड में सोई सभ्यता)

उपयुक्त उदाहरणों से रिपोर्ताज की भाषा एवं शैली के गुणों से आप परिचित हो चुके हैं।

बोध प्रश्न –3

1. घटना स्थल की यात्रा में रिपोर्ताज लेखक को किन बातों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए?
2. रिपोर्ताज–लेखन से समस्या निर्धारण क्यों आवश्यक है?
3. रिपोर्ताज–लेखन से पहले पाठक वर्ग पर विचार करना क्यों आवश्यक है?
4. रिपोर्ताज की भाषा संबंधी विशेषताएं बताइए।
5. रिपोर्ताज का आरंभ और अंत कैसा हो– स्पष्ट कीजिए।

21.6 सारांश

रिपोर्ताज न लेख है, न कहानी है पर कहानी जैसी कथात्मकता लेकर और सत्य का उल्लेख करने वाला आत्मीय आलेख है। इसका विकास आज द्वितीय विश्वयुद्ध की रिपोर्टिंग से माना जाता है। रिपोर्ताज समस्या प्रधान समसामयिकता युक्त रोचक, रसात्मक और मर्मस्पर्शी संक्षिप्त आलेख है जो पाठक को आकर्षित करता है। लेकिन यह सत्य है कि रिपोर्ताज–लेखन के लिए लेखक को स्थल या घटना की स्वयं जांचकर के वांछित संदर्भों के विषय में सामग्री संकलन साक्षात्कार द्वारा प्रमाण एकत्र करने होते हैं। उसे अपनी कथा को शैली में इस प्रकार प्रस्तुत करना पड़ता है कि पाठक वर्ग उसे पढे बिना छोड न पाए रिपोर्ताज के विषय समसामयिक स्तर पर अनेक हो सकते हैं। पत्रकार या मुक्त लेखक (फ्रीलांसर) के लिए कोई भी ज्वलंत समस्या रिपोर्ताज का आधार हो सकती है। उसकी प्रस्तुति कलात्मक, आकर्षक तथा उचित शीर्षक से होनी चाहिए।

21.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया एवं रचना भाटिया : साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएं
2. डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया : हिंदी साहित्य की नवीन विधाएं
3. डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया : हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास : (भाग 14, सं. डॉ. हरवंशलाल शर्मा)
4. डॉ. वीरपाल वर्मा : हिंदी रिपोर्ताज

21.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. रिपोर्ताज क्या है, परिभाषा देते हुए उसके तत्व बताइए।

2. अच्छे रिपोर्ताज की विशेषताएं बताइए।
3. हिंदी रिपोर्ताज के विकास पर अपने विचार लिखिए।
4. रिपोर्ताज–लेखन की तैयारी कैसे की जाती है?
5. अपने आसपास की किसी सामयिक समस्या पर एक रिपोर्ताज लिखिए।
6. अपने गांव या नगर के पास की घटना पर 250 शब्दों का रिपोर्ताज लिखिए।

इकाई 22 समाचार लेखन

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.1.1 समाचार क्या है?

22.1.2 समाचार के तत्त्व

22.2 समाचारपत्र में लेखन

22.2.1 समाचार आमुख लेखन

22.2.2 समाचार का विस्तार

22.2.3 समाचार का शीर्षक

22.2.4 समाचार में संवाददाता का नाम

22.3 नियतकालीन पत्रिकाएं

22.3.1 समाचार लेखन

22.3.2 शीर्ष लेखन

22.4 रेडियो

22.5 टेलीविजन

22.6 समाचारों की भाषा

22.7 सारांश

22.8 शब्दावली

22.9 उपयोगी पुस्तकें

22.10 निबंधात्मक प्रश्न

22.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आपको समाचार की अवधारणा और विशेष रूप से समाचार लेखन से अवगत कराया जाएगा। इसमें आप यह भी जान पाएंगे कि समाचारपत्रों, रेडियो और टेलीविजन के समाचार लेखन में क्या–क्या समानताएं और क्या–क्या अन्तर हैं। अंत मे इस इकाई में समाचारों की भाषा पर भी चर्चा की गई है। इस इकाई को पढने के बाद आप समाचार लेखन के बारे में निम्न बिन्दुओं से अच्छी तरह परिचित हो जाएंगे

- समाचार कैसे लिखे जाते हैं?
- समाचार लेखन की संरचना कैसी होती है?
- मुद्रित माध्यम, रेडियो और टेलीविज़न के लिए समाचार लेखन में क्या अन्तर होता है? और
- समाचार की भाषा कैसी होती है?
- एक अच्छा समाचार लेखन कैसे होता है?

22.1 प्रस्तावना

पिछले खण्डों में आपने जनसंचार थी विभिन्न विधाओं के लेखन के बारे में जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में आप जनसंचार माध्यमों के लिए समाचार लेखन के बारे में जानेंगे। समाचार लेखन के विषय में जानने से पहले हमें यह मालूम होना चाहिए कि समाचार क्या होते हैं क्योंकि इस प्रकार के लेखन का कथ्य समाचार की हमारी अवधारणा से ही बनता है। जनसंचार के साधन व प्रौद्योगिकी / यांत्रिक माध्यम हैं जिनकी मदद से संदेश वृहत जनसमूह तक प्रेषित किए जाते हैं। इसमें हम समाचार लेखन के बारे में विस्तार से चर्चा करते समय विभिन्न संचार माध्यमों की विशेषताओं का उल्लेख भी करेंगे। विभिन्न संचार माध्यमों के लिए किए जाने वाले समाचार लेखन और उसकी भाषिक और शैलीगत संरचना की समीक्षा इस इकाई का एक महत्वपूर्ण अंग है।

22.1.1 समाचार क्या है?

किसी भी समाज में या उससे बाहर घटित होने वाली हर वह घटना समाचार है जिसकी जानकारी वह समाज अपने लिए आवश्यक मानता है। अक्सर यह पाया गया है कि लोगों को यह जानने की उत्सुकता होती है कि उनके पडौस में क्या हुआ उनके शहर में कौन–सी नई घटना घटी, देश में क्या हो रहा है और अन्य देशों में क्या हो रहा है? एक सामाजिक प्राणी होने के नाते हम यह भी जानना चाहते हैं कि हमारे आसपास के या हमारी रुचियों से जुड़े लोग क्या कुछ नया कर रहे हैं। हमारी इन सभी जिज्ञासा और उत्सकुताओं का समाधान हैं समाचार।

प्रो. विलियम ब्लेयर ने समाचारों को परिभाषित करते हुए कहा है कि समाचार वह है जिसमें अनेक व्यक्तियों की रुचि की कोई सामयिक बात होती है। वह आगे कहते हैं कि सवश्रेष्ठ समाचार वह है जिसमें बहुसंख्यक लोगों की रुचि हो। समाचारों की और भी कई परिभाषाएं दी गई हैं। कोई कहता है कि ऐसी कोई घटना जिसमें लोगों की दिलचस्पी हो समाचार है तो कोई कहता है कि पाठक जिसे जानना चाहते हैं वही समाचार है।

परिभाषाएं और भी दी जा सकती हैं लेकिन यहां उद्देश्य मात्र इतना ही है कि आप यह जान सकें कि तकरीबन कौशल–सा लगने वाला यह कर्म अनेक प्रकार के सिद्धान्तों और अवधारणाओं से निकलने वाली दृष्टि से निष्पादित होता है। तात्पर्य यह है कि सूचनाएं जब किसी समाचार संगठन या समाचारपत्र से होती हुई लोगों तक पहुंचती हैं तब इनके चयन की प्रक्रिया के लिए हमें समाचार की एक निश्चित अवधारणा बनानी पड़ती है जो इस चयन का आधार बनती है। प्रतिष्ठित पत्रकार चेलापति राव के अनुसार समाचार की नवीनता इसी में है कि वह परिवर्तन की जानकारी दे। यह परिभाषा विकास पत्रकारिता से उपज कर समाचारपत्रों के सभी पहलुओं को आत्मसात कती प्रतीत होती है। एक अन्य विद्वान् का मानना है कि समाचार वह है जिसे कोई दबाना चाह रहा हो क्योंकि शेष सब विज्ञापन है।

22.1.2 समाचार के तत्व

कोई भी घटना समाचार बनने योग्य है कि नहीं यह इस बात से तय होता है कि उसमें समाचार के तत्वों में से कितने तत्व मौजूद हैं। जैसे हर कोई जानना चाहता कि उसके आसपास क्या घटा, जो घटा वह अभी तुरंत घटा या कुछ समय पहले, वह कितनी छोटी या बड़ी घटना थी। इस लिहाज से

समाचार के तत्वों में निकटता, तात्कालिकता, उसका परिमाप, विचित्रता और महत्व प्रमुख हैं। इसके अलावा सूचना, नयापन और मानवीय अभिरुचि भी समाचार के तत्व माने जा सकते हैं।

कुल मिलाकर किसी भी समाज में हर वह बात जो उस समाज के लोग जानना चाहते हैं समाचार बनने योग्य हो सकती है। जैसे किसी विकासशील देश में लोगों की दिलचस्पी विशेषकर इस बात में हो सकती है कि देश में चल रही किसी परियोजना में कितनी प्रगति हुई है और अगर नहीं हो पाई है तो उसके कारण क्या हैं। इस तरह की सूचनाओं को हम विकास समाचारों की श्रेणी में रख सकते हैं।

22.2 समाचारपत्र में लेखन

सच है कि समाचार लेखन का व्यापार सबसे पहले समाचारपत्रों से ही आरंभ हुआ। बाद में जब संवाद एजेंसियां बनी तो वे भी समाचार लेखन में अखबारों का ही ध्यान रखती थीं। लेकिन पिछले पचास वर्षो में रेडियो और टेलीविजन के समाचारों के सशक्त माध्यम बन जाने के बाद स्थिति बदली है। संवाद एजेंसियां अब केवल लिखित समाचार ही नहीं अपितु दृश्यों को प्रसारित करने के प्रयास करती हैं और कुछ एजेंसियां तो केवल दृश्य पर ही अपनी ध्यान केंद्रित कर रही हैं। एक ओर जहां रायटर, आजोंस प्रेस जैसी अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां लिखित और दृश्य–श्रव्य माध्यम में समाचार पहुंचाती हैं वहीं भारत में प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया ने ऐसा करने के प्रयास किए हैं। विज न्यूज और एशिया विजन ऐसी संस्थाएं है जो केवल दृश्य–श्रव्य समाचारों पर ध्यान केंद्रित कर रही है।

समाचार लेखन की प्रक्रिया और सिद्धान्त को समझने के लिए यह आवश्यक है कि मुद्रित माध्यमों के लिए समाचार लेखन की संरचना और उसके तत्वों को ठीक से समझ लिया जाए। इसीलिए इस इकाई का आरंभ हम समाचारपत्रों के लिए किए जाने वाला समाचार लेख से कर रहे हैं।

22.2.1 समाचार आमुख लेखन

अन्य सभी प्रकार के लेखन की तरह ही समाचार लेखन में भी हमें मुख्यत: तीन प्रमुख भाग दिखलाई पड़ते हैं। आमुख, विस्तार और अंत केवल समाचार लेखन के ही तीन हिस्से नहीं है, किसी भी प्रकार के लेखन में और यहां तक कि बोलते हुए भी हम अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से तभी कह पाते हैं जब हम उसे इन हिस्सों मे बांट लेते हैं। समाचार लिखने में आमुख लेखन सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि किसी भी समाचार में आमुख ही वह एक मात्र अंश है जिसे पढने के साथ समाचार का सार अथवा उसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष या प्रभाव की जानकारी हो जाती है। अधिक से अधिक जानकारी समेटकर लंबे आमुख लिखने की परंपरा का अपवाद स्वरूप ही अनुसरण किया जाता है। वाक्य रचना और भाषा भी इतनी सरल होनी चाहिए कि साधारण पाठक को भी समाचार का सार या मर्म तुरन्त समझ में आ जाए।

कहानी और नाटक में चरमोत्कर्ष बीच में या कहीं और आता है। लेकिन समाचार में सबसे पहले। समाचार के मुख्य तत्व आरंभ में ही लिखे जाते हैं और गौण या ब्यौरे की बातें बाद में। इसे उल्टे पिरामिड का सिद्धान्त कहते हैं। समाचार के मामले में लेखन की शुरुआत में भी हम आधार तैयार करते हैं। लेकिन यह आधार समाचार के अंत में होने के बजाय आरंभ में होता है। समाचार के इस प्रकार के सार लेखन में नीरसता से बचने और समाचार के किसी पक्ष विशेष को उजागर करने के लिए आमुख लेखन के कई तरीके ईजाद किए गए हैं। आमुख लेखन के इस पक्ष को समझने में छ: ककार

की अवधारणा से मदद मिलती है। कब आमुख वह है जिसमें हम घटना के समय पर विशेष बल देते हैं, कहां आमुख वह है जिसमें हम घटना के स्थान को प्रमुखता प्रदान करते हैं। इसी तरह क्या, क्यों, कैसे और किसने जैसे प्रश्नों को प्रमुखता देने वाले आमुख भी लिखे जाते हैं।

विभिन्न प्रकार के आमुखों के कुछ उदाहरणों के माध्यम से आमुख के प्रकारों को समझा जा सकता है।

'किसने' आमुख–पाक ने आज दावा किया कि उसने कारगिल क्षेत्र में घुसपैठियों के खिलाफ कार्रवाई में जुटे भारत के दो मिग विमानों को मार गिराया। पाक के सैन्य अधिकारियों के मुताबिक इन दो विमानों में से एक पायलट को पैराशूट से जमीन पर उतरते ही गोली से उड़ा दिया गया और दूसरे को युद्धबंदी बना लिया गया है। एक विमान और पायलट का शव अभी पाक सैनिकों के कब्जे में हैं।

'कहां ' आमुख –जयपुर, 23 मई। राजस्थान के सीमांत जिले जैसलमेर व बाडमेर में तेज चक्रवाती हवाओं व वर्षा से सैंकड़ों कच्चे मकान क्षतिग्रस्त हो गए और भेड़ें बड़ी संख्या में मर गई।

'क्या' आमुख–नई दिल्ली, 16 मई। कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी के खिलाफ पार्टी में बगावत हो गई है। तीन वरिष्ठ पार्टी नेताओं कार्य समिति सदस्यों –शरद पंवार, पी.ए संगमा व तारीक अनवर ने सोनिया गांधी के 'विदेशी मूल' पर प्रहार करते हुए उनके प्रधानमंत्री पद की दावेदारी पर आपत्ति जताई है।

अक्सर देखा गया है कि हिन्दी के समाचारपत्रों में कहां और किसने के जवाब से आरंभ होने वाले आमुख ज्यादा होते हैं। लेकिन इन दिनों यह भी दिखलाई पड़ता है कि विभिन्न टेलीविजन चैनलों से प्रतिद्वंद्विता की वजह से समाचार लेखन के तरीके में भी लचीलापन आया है और विभिन्न समाचारपत्र कई प्रकार के सुंदर आमुख लिख रहे हैं। ऐसा ही एक आमुख देखिए :

नई दिल्ली : विश्वकप क्रिकेट की शुरूआत होते ही राजधानी के लोगों पर 'क्रिकेट का बुखार' चढ़ गया है। दिल्ली की सड़कें सूनी रहीं और बाजारों में नाम मात्र की भीड़ रही। कई दुकानदारों ने तो मैच के वक्त अपनी दुकानों को ही बंद करने का फैसला कर लिया। पूरे शहर में कफ्र्यू का सा माहौल रहा। लोगबाग अपने काम धंधे छोड़कर क्रिकेट मैच देखने में जुटे रहे।

(नवभारत टाइम्स, 16 मई, 1999)

उत्सुकता आमुख– नई दिल्ली, 27 मई (ई.एन.एस.)। प्रसार भारती निगम में विचित्र स्थिति पैदा हो गई है। वाजपेयी सरकार ने इसके कार्यवाहक मुख्य कार्यकारी अधिकारी डॉ. ओ. पी. केजरीवाल को हटाने का फैसला तो कर लिया है पर प्रसार भारती कानून के तहत उनके उत्तराधिकारी का चयन नहीं कर पाई है। (जनसत्ता, 28 मई, 1999)

इसके अलावा और भी कई तरह से आमुख दिए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए कई बार समाचार की शुरुआत किसी नेता या महत्वपूर्ण व्यक्ति के भाषण से लिए गए उद्धरण से करते हैं। अमूमन ऐसे उद्धरण उस व्यक्ति के भाषण का निचोड़ होते हैं। इन्हें हम अपनी सुविधा के लिए उद्धरण आमुख कह सकते हैं। इसी प्रकार कई बार समाचार का आरंभ किसी प्रश्न से होता है जिसका उत्तर ही नीचे दिया गया समाचार का विस्तार होता है। दुर्घटना से संबंधित समाचार के आमुख में हताहतों की संख्या पहले वाक्य में ही बता दी जाती है।

22.2.2 समाचार का विस्तार

समाचार का सार या महत्वपूर्ण पहलू आमुख में बता देने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि घटना को विस्तार से बताया जाए। फिर यह भी जरूरी हो जाता है कि समाचार को वहीं पूर्णता प्रदान की जाए और वहीं समाचार का अंत कहलाएगा लेकिन यहां हमें यह याद होना चाहिए कि समाचार के अंत में और अन्य प्रकार के लेखन के उपसंहार में बहुत अंतर होता है। जिस विलोम या उलटे पिरामिड की बात किए बिना पहले समाचार लेखन को समझाना संभव नहीं था वह भी अब दम तोड़ता नजर आ रहा है। पिछले कुछ समय से समाचार लेखन में काफी मुक्त लेखन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है और इसकी वजह संभवत: टेलीविजन समाचार लेखन का प्रभाव है।

रेडियो तो कई कारणों से समाचारपत्रों की भाषा से प्रभावित रहा लेकिन टेलीविज़न ने और वह भी पिछले एक दशक में समाचारपत्रों की भाषा, उसके लेखन और उसकी सज्जा को बेहद प्रभावित किया। यही वजह है कि अब अखबार समाचार लेखन में ऐसे कई प्रयोग कर रहे हैं जो आमुख, विस्तार और अंत ही नहीं अपितु विलोम पिरामिड के सिद्धान्त के कठोर अनुशासन की अवहेलना करते हैं।

इसलिए हम यह कह सकते हैं कि समाचार की संरचना में दो अंग होते हैं अर्थात् आमुख और देह यानि काया। आमुख समाचार का वह अंश है जिसमें समाचार को एक वाक्य या एक पैरा में सार रूप में दिया गया हो। समाचार की देह (काया) वह अंश है जिसमें समाचार से जुड़े अन्य आवश्यक तत्व दिए गए हों। मगर काया लिखने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें दिए गए तथ्य ऐसे क्रम में दिए जाएं कि समाचार काटने की आवश्यकता पड़ने पर समाचार के अंत से कुछ अंश निकालने के बाद भी महत्वपूर्ण तथ्य बच रह सकें। आदर्श समाचार लेखन तो वह है जिसमें संपादन होने की दशा में भी पाठक को समाचार की शक्ल और देह दोनों पूर्ण प्रतीत हों। निम्नलिखित उदाहरणों में उपरोक्त नियमों के अनुपालन और अवहेलना के साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं–

उदाहरण–1

जयपुर, 23, मई। राजस्थान के सीमांत जिले जैसलमेर व बाडमेर में तेज चक्रवाती हवाओं व वर्षा से सैकडों कच्चे –पक्के मकान क्षतिग्रस्त हो गए और भेड़ें बड़ी संख्या में मर गई।

बाड़मेर जिले के गडरा रोड, रामसर, जैसलमेर के सम क्षेत्र में, निम्बा, बिनाकाहुडी, मीदार, कमाल की बस्ती आदि गांवों में घर क्षतिग्रस्त हुए हैं। जैसलमेर के पुराने किले की निगरानी के लिए एक कार्यदल नियुक्त किया गया है। पहले से ही चेतावनी दिए जाने के कारण अभी तक कहीं जनहानि की कोई घटना नहीं हुई है।

गुजरात के तटवर्ती क्षेत्रों में अवश्य कुछ लोगों मारे जाने के समाचार हैं। बंदरगाहों में मछली पकड़ने वाली दस–बारह नौकाओं के डूब जाने की आशंका व्यक्त की गई है।

(हिन्दुस्तान, 14 मई, 1999)

उदाहरण–2

वैसे तो सूचना और प्रसारण मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव आर. आर. शाह का नाम केजरीवाल के उत्तराधिकारी के रूप में चल रहा है पर बताया जाता है कि प्रसार भारती कानून में ऐसा प्रावधान नहीं है।

इस कानून के मुताबिक सी.ई.ओ. की नियुक्ति एक समिति करती है। इस समिति में उपराष्ट्रपति, भारतीय प्रेस कौंसिल के चेयरमैन और सरकार का एक नुमाइंदा होता है।

प्रसार भारती कानून को लागू करने का निर्णय प्रधानमंत्री इंद्रकुमार गुजराल ने किया था। 1997 में एक अध्यादेश जारी करके उन्होंने 72 साल के अपने पसंदीदा एस.एस.गिल को सी.ई.ओ. बनवा दिया था। (जनसत्ता, 28 मई, 1999)

समाचार लेखन में अक्सर दो विभिन्न स्रोतों से प्राप्त समाचार को समाहित कर एक खबर बनाने का काम भी किया जाता है। ऐसी स्थितियों में उपसंपादक केवल समाचार का आमुख अथवा मुखड़ा लिखता है और उसके बाद विभिन्न एजेंसियों से आए समाचार तारतम्य के साथ दे दिए जाते हैं। इसी प्रकार का एक उदाहरण यहां दिया जा रहा है–

इटावा, 23 मई (जनसत्ता)। समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय महासचिव और राज्यसभा सदस्य रामगोपाल यादव के एक बेटे अनुपम (26) ने शराब के नशे में अपने छोटे भाई आशीष (23) की गोली मारकर हत्या कर दी। पुलिस ने आज उसे गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। आशीष की शादी अभी तीन महीने पहले ही हुई थी।

यून्यू के मुताबिक जिला अधिकारी के.के. त्रिपाठी ने यहां बताया कि सांसद रामगोपाल यादव ने अपने बडे बेटे अनुपम पर छोटे बेटे आशीष यादव की हत्या करने का आरोप लगाते हुए सिविल लाइन थाना में प्राथमिकता दर्ज कराई। इसके आधार पर अनुपम यादव को आज सिविल लाइन पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

उन्होंने बताया कि भाई की हत्या करने वाले सांसद –पुत्र से पुलिस ने हत्या में प्रयुक्त डबल बैरल बंदूक भी बरामद कर ली है। जनसत्ता के मुताबिक सांसद के चचेरे भाई पूरनसिंह ने सिविल लाइन थाने में इस घटनाक्रम का मामला दर्ज कराया है। इसमें 315 बोर की रायफल साफ करते समय गोली चलने से बिल्लु उर्फ आशीष की मौत होना बताया गया है। वैसे चर्चा यह भी है कि वारदात से पहले दोनों भाइयों मे कहा–सुनी हो जाने के कारण बिल्लु को गोली मारी है।

22.2.3 समाचार का शीर्षक

शीर्षक का काम ही समाचार की अस्मिता बनाना है। जैसे व्यक्ति की पहचान उसके मुख से होती है उसी प्रकार समाचार की पहचान उसका शीर्षक कराता है। अखबार में शीर्षक लेखन का काम सबसे चुनौतीपूर्ण और दुष्कर है। मगर समाचार लेखन में सबसे अधिक सृजनात्मकता भी इसी काम में है। समाचार के शीर्षक पाठकों को न केवल समाचार की ओर आकृष्ट करते हैं बल्कि वह पूरे अखबार के प्रति पाठक की रुचि बनाने में भी सहायक होते हैं।

समाचार शीर्षक किसी समाचार पत्र की संपादकीय दृष्टि के परिचायक भी होते है। नीचे दिए गए उदाहरणों में दर्शाया गया है कि कई बार समाचार का चरित्र ही ऐसा होता है कि अधिकांश समाचारपत्रों को एक जैसा शीर्ष देना पड़ता है, लेकिन यह भी सच है कि किसी भी घटना को देखने के कई नजरिए और परिप्रेक्ष्य हो सकते हैं जो अक्सर अखबार के नजरिए ओर उसकी विचारधारात्मक प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। शीर्षक लिखने में सबसे बड़ी चुनौती यह होती है कि इसमें नपे–तुले शब्दों में समाचार के साथ संगीत बैठानी पड़ती है। इस बात का महत्व इसलिए और बढ़ गया है कि समाचारपत्रों में समाचार कॉलम में छपते हैं और शीर्षक को अव्वल तो समाचार से अलग दर्शाने के लिए और फिर उसके महत्व को ध्यान में रखते हुए काफी बड़े आकार के फीट से दिया जाता है। यह बात और है कि छपाई की आधुनिक प्रौद्योगिकी में जब से कंप्यूटर का प्रचलन बढ़ा है तब से शीर्षक लेखन की चुनौतियां कुछ कम हुई हैं। पहले जहां शीर्षक लेखन में महारत हासिल करने के लिए हमें शब्दों को एक या आधी

मात्रा वाले अक्षरों के संदर्भ में देखना पड़ता था वहां आजकल फोंट के आकार को छोटा–बड़ा करके कॉलम में ढालना आसान हो गया है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि पत्रकारिता के प्रशिक्षार्थी को पुरानी पद्धति नहीं सीखनी चाहिए, बल्कि सच तो यह है कि अगर आप मात्राओं के अनुसार एक, दो या तीन कॉलम में सटीक बैठने वाले शीर्ष लिखना जानते हैं तो कंप्यूटर में काम करने में आपको आसानी रहेगी।

नीचे दिए गए उदाहरणों के जरिए हम समाचार शीर्षक लिखने के विभिन्न तरीकों के अलावा उनके आकार और कॉलमों में विस्तार तथा शब्दावली से समाचारपत्र के दृष्टिकोण का अंतर समझ सकते हैं। बड़े समाचारों के शीर्षकों के साथ सहायक शीर्षक भी दिए जाते हैं।

1.सोनिया का कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा

(चार कॉलम में फैली हुई)

विदेशी मूल मुद्दे पर फैसला जनता को करना है – वाजपेयी

(दो कॉलम) (जनसत्ता 18 मई, 1999)

2. सोनिया का कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा

* कार्य समिति ने इस्तीफा नामंजूर किया *तीन कार्य समिति सदस्यों का पत्र खारिज

(छः कॉलम में फैली हुई)

3. असंतुष्टों के खिलाफ कार्रवाई न करने का संकेत दिया गोविंदाचार्य ने

(दो कॉलम में फैली हुई)

(जनसत्ता 23 मई, 1999)

4. भाजपा नेतृत्व ने उप्र में विवाद का हल करने के लिए लक्ष्मण रेखा खींची

पार्टी नेताओं को आपत्तिजनक बयान देने पर कड़ी कार्रवाई का सामना करना होगा: गोविंदाचार्य

(दो कॉलम) (जागरण, 23 मई, 1999)

5. इराक पर फिर अमेरिका हवाई हमला

(एक कॉलम)

6. सरकार पेटेंट समेत 3 अध्यादेश जारी करेगी

(दो कॉलम)

7. दिल्ली पुलिस ने सात लुटेरे पकड़े, चार कारें बरामद

(तीन कॉलम)

(जागरण, 6 जनवरी, 1999)

8. घुसपैठियों के खिलाफ कार्यवाई में भारत के दो विमान धराशायी

पाक का दावा– दोनों उसने गिराए, भारत ने पाक को कड़ी चेतावनी दी और देशवासियों से न घबराने को कहा

(पांच कॉलम)

(जनसत्ता, 28 मई, 1999)

ऊपर दिए गए उदाहरणों में आपने पाया होगा कि कुछ समाचार तो ऐसे होते हैं जिनके शीर्षक तकरीबन एक ही से होते हैं भले ही किसी भी अखबार में छपे हों। यह हो सकता है कि दो समाचारपत्र एक ही तरह से लिखे शीर्षक का प्रयोग दो अलग–अलग स्थानों पर और अलग–अलग आकार में कंपोज करके दो भिन्न अर्थ या प्रभाव पैदा करें। साथ ही ऊपर दिए गए उदाहरण यह भी दर्शाते हैं कि विभिन्न समाचारपत्रों में एक ही तरह से लिखे गए समाचारों को दिए गए शीर्षकों से समाचार को एकदम अलग अर्थ दिया जा सकता है। कई बार ऐसे शीर्षक समाचारपत्र की पक्षधरता भी दिखलाते हैं।

22.2.4 समाचार में संवाददाता का नाम (बाइ लाइन) और तिथि पंक्ति (डेट लाइन)–

हालांकि ये समाचार की संरचना के बहुत ही सामान्य और साधारण पहलू हैं लेकिन इनका महत्व भी कम करके आंकना उचित नहीं। तिथि पंक्ति आमुख के प्रारंभ में दी जाती है जिसमें घटना का स्थान, तारीख और समाचार के स्रोत का उल्लेख रहता है। समाचार स्रोत से यहां तात्पर्य उन संवाद एजेंसियों से होता है जिनसे ली गई जानकारियों पर समाचार आधारित है जैसे भाषा, वार्ता, रायटर, एपी आदि। जो समाचार समाचारपत्र के संवाददाता भेजते हैं उनमें से कुछ में संवाददाता का नाम जाता है। ऐसे में यह नाम तिथि पंक्ति से भी पहले लिखा जाता है और इसे बाइ लाइन कहते हैं। 'बाइ लाइन' इसलिए कहा जाता है कि यह बतलाती है कि समाचार किसने भेजा जिसे 'हम हिन्दी में द्वारा पंक्ति' कह सकते हैं।

उदाहरण–

भीषण ट्रेन – हादसे में 400 मरे, 800 घायल

अवध – असम एक्सप्रेस और ब्रह्मपुत्र मेल में टक्कर

गाइसाल, 2 अगस्त। पश्चिमी बंगाल के पूर्वोत्तर सीमांत रेलवे के न्यू जलपाईगुड़ी–माल्दा खंड के गाइसाल स्टेशन पर आज तड़के 1.55 बजे तेज रफ्तार से आ रही अवध–असम एक्सप्रेस और ब्रह्मपुत्र मेल की आमने–सामने की भिड़ंत में कम से की 400 यात्रियों की नींद में ही मृत्यु हो गई और करीब 800 अन्य घायल हो गए। इस हादसे में दोनों ट्रेनों की बुरी तरह कुचल गई 13 बोगियों में से 4 में बचावकर्मी देर रात तक पहुंच नहीं सके थे जिनमें करीब 250 यात्रियों के फंसे होने से मृतक संख्या 500 से अधिक रहने की आशंका है। रेलमंत्री नीतिश कुमार ने प्रत्येक मृतक के आश्रित को 4 लाख रुपये के मुआवजे का ऐलान किया है। रेल मंत्रालय ने दुनिया के रेल इतिहास की इस भीषणतम रेल त्रासदी की मुख्य सुरक्षा आयुक्त एम.मणि से जांच कराने की घोषणा की है। राष्ट्रपति के.आर.नारायणन

ने रेल दुर्घटना पर गहरा शोक व्यक्त करते हुए रेल यात्रियों की सुरक्षा के उपायों में बेहतरी पर बल दिया है।

न्यू जलपाईगुड़ी जंक्शन से 80 कि.मी. दूर हुए इस हादसे में सैन्य और अर्द्धसैनिक बलों के करीब 100 कर्मियों को ले जा रही अवध–असम एक्सप्रेस की एक बोगी टुकड़े–टुकड़े हो गई। बचाव अभियान की निगरानी कर रहे पं.बंगाल के नागरिक सुरक्षा राज्यमंत्री सुकुमार मुखर्जी ने दुर्घटना की मृतक संख्या 500 से अधिक होने की आशंका व्यक्त की है। एक–दूसरे में घुसकर बुरी तरह नष्ट 4 बोगियों को अलग–अलग करने तथा 10 अन्य बुरी तरह क्षतिग्रस्त बोगियों को पटरियों से हटाने के लिए देर रात विशाल क्रेनें दुर्घटनास्थल पर लाई गई हैं। भाग्यशाली यात्रियों की तलाश और फंसे शवों को निकालने के लिए बचावकर्मी देर रात तक डिब्बों को काटने में जुटे हुए थे।

सोनिया चुनाव लड़ेगी, क्षेत्र का निर्णय बाद में

नई दिल्ली, 2 अगस्त (एजेंसी)। कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी ने आज आखिरकार अटकलबाजियों पर विराम लगाते हुए घोषणा कर ही डाली कि वे लोकसभा का आगामी चुनाव लड़ेंगी पर संसदीय क्षेत्र के बारे में बाद में निर्णय किया जाएगा। श्रीमती गांधी ने कहा कि उन्हें इस बात की कतई परवाह नहीं है कि भाजपा उनके विदेशी मूल की होने को चुनावी मुद्दा बनाने जा रही है।

कांग्रेस अध्यक्ष ने 'स्टार न्यूज' को उक्त जानकारी देते हुए कहा कि उनके चुनाव लड़ने के निर्णय से पार्टी कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ेगा, खासकर उत्तरप्रदेश में। एन.डी.टी.वी. की प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार सोनिया ने एक प्रश्न के जवाब में कहा, हां, मैं चुनाव लड़ने जा रही हूँ लेकिन किस क्षेत्र से लड़ेगी, इस बारे में उनका कहना था कि अभी तय नहीं किया गया है।

बोध प्रश्न–1

1. आमुख लेखन के लिए किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
2. समाचार में विस्तार लेखन के ढांचे में विलोम पिरामिड का सिद्धान्त क्या है?
3. समाचार के शीर्षक से अखबार की राजनैतिक सामाजिक पक्षधरता कैसे प्रकट होती है?
4. शीर्षक का काम ही समाचार की अस्मिता बनाना है सिद्ध करें?

22.3 नियतकालीन पत्रिकाएं

22.3.1 समाचार लेखन– नियतकालीन पत्रिकाएं पाठकों के लिए उस कमी को पूरा करती है जो समाचारपत्रों की खबरों में इसलिए रह जाती हैं क्योंकि उनके पास किसी समाचार के पूरे विकास पर ध्यान देने का समय कई बार नहीं होता। इसके अलावा अधिकतर यह माना जाता है कि समाचारपत्रों में समाचार लेखन में वस्तुपरकता होनी चाहिए। अत: समाचारपत्रों में घटना के तथ्य तो आ जाते हैं लेकिन उनका विश्लेषण नहीं हो पाता। नियतकालीन पत्रिकाएं इस कमी को पूरा करती हैं। आजकल टेलीविजन समाचारों के प्रभाव की वजह से समाचारपत्रों ने भी विस्तृत समाचार और कई बार तो समाचार विश्लेषण भी देने आरंभ कर दिए है। नियतकालीन पत्रिकाओं में समाचार लेखन में विचार, सूचनाओं का विश्लेषण, घटनाओं की गहराई तक जाकर उनका उल्लेख होता है। साथ ही इसमें लेखक या पत्रिका की पक्षधरता भी स्पष्ट उजागर होती है। इसके लेखन में भी समाचारपत्रों की तरह शीर्षक लेखन का

महत्व होता है, लेकिन जहां अखबारों के शीर्षक के टाइप आकारों में बहुत अधिक विविधता होती है वही पत्रिकाओं में इसकी उतनी गुंजाइश नहीं होती।

पत्रिकाओं के लिए लेखन में पत्रकार को भाषा के स्तर पर भी काफी स्वतंत्रता होती है। वह समाचार को फीचर के रूप में प्रस्तुत कर सकता है और अपने लेखन को अधिकाधिक व्यक्तिगत बना सकता है। इसमें विभिन्न प्रकार के उद्धरण और प्रमाण देने की गुंजाइश भी समाचारपत्रों की तुलना में कहीं अधिक होती है। नियतकालीन समाचार पत्रिकाओं का आधार तो समाचार फीचर ही होते हैं, लेकिन इनमें कुछ स्तंभ और विशेषकर लेख भी संमिलित किए जाते हैं ताकि पूरी पत्रिका एक समग्रता के साथ पाठक तक पहुंचे।

नियतकालीन पत्रिका में समाचार–लेखन का स्वरूप इसलिए भी बदल जाता है कि उसमें सप्ताह, पक्ष या महीने भर के चुने हुए समाचार को जगह दी जाती है और इसलिए स्थान का वैसा अभाव नहीं होता जैसा अखबारों में होता है। यह बात और है कि समाचारों पर विज्ञापनों का दबाव यहां भी उतना ही मुखर है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां समाचार को उसके पारंपरिक संरचना में लिखने का आग्रह नहीं है क्योंकि इन पत्रिकाओं में समाचारों से अधिक समाचारों के एक अवधि तक हुए विकास का संक्षेपण, उस पर टिप्पणी और उसके बारे में पत्रकार या लेखक का नजरिया या विभिन्न दृष्टिकोण देने का रिवाज है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि समय के साथ मुख्य धारा की पत्रकारिता से पत्रिकाओं के निकल जाने से अब ज्यादा से ज्यादा वैचारिक आग्रह वाली पत्रिकाएं हो गई हैं जिनमें चुने गए समाचारों पर एक निश्चित राजनीतिक दृष्टिकोण से लेखन किया जाता है। एक समय था जब 'दिनमान' और बाद में 'रविवार' ने हिन्दी में समाचार पत्रिका का स्वरूप निश्चित किया था। आज कहने को 'इंडिया टुडे' के अलावा भी कुछ पत्रिकाएं हैं जैसे राजनैतिक संवाद परिक्रमा (पाक्षिक) लेकिन विशुद्ध वैचारिक नियतकालीन पत्रिकाएं कहीं अधिक मात्रा में निकल रही हैं। ऐसी पत्रिकाओं में से कुछ प्रमुख पत्रिकाएं हैं 'तीसरी दुनिया', 'सजग प्रहरी', 'समकालीन जनमत' आदि। यहां हमने दोनों ही प्रकार की पत्रिकाओं से उदाहरण लेकर इनमें लेखन का तरीका जानने का प्रयत्न किया है –

पश्चिम बंगाल

माकपा के गढ़ में दरारें

उप चुनावों में इंका हारी तो किन्तु

(गंगाप्रसाद)

माकपा या वाम मोर्चा की मंशा पूरी हो गई। वह 14 जून के उपचुनाव में इका और दूसरी विरोधी पार्टियों को परास्त कर अपनी राजनैतिक श्रेष्ठता और जनसाधारण में लोकप्रियता प्रमाणित करने में सफल रही, भले ही यह प्रमाण अपेक्षा से कम रहा हो।

लोकसभा के एक स्थान (श्रीरामपुर) और विधानसभा के आठ स्थानों के लिए चुनाव हुए। सुजापुर और खरबा पर इंका और मेदनीपुर पर माकपा और वाममोर्चा द्वारा समर्थित माकपा विजयी हुई। (देखें दिनमान 21–27 जून)

(दिनमान, 28 जून–4 जुलाई, 1981)

मध्यप्रदेश

बुलंद सितारे दिग्विजय के

मुख्यमंत्री को अपने हर दांव–पेच में सफलता मिल रही है। हाई कोर्ट के एक फैसले ने भी उनके रुख की पुष्टि की

कांग्रेस में दिग्विजय छा गए हैं। सोनिया गांधी को झाबुआ का दौरा कराया तो यूपी में कांग्रेस को जिंदा करने के उनके गुर–मंत्रों की चर्चा भी हुई। राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत उनके कई गुर आजमा भी रहे हैं। और तो और चन्द्रबाबू नायडू ने भी उन्हें हैदराबाद का न्यौता दिया। सचमुच विधानसभा चुनाव की जीत से दिग्विजय सिंह कामयाबी के नुस्खे बन गए हैं। सितारे इतने अच्छे हैं कि जो चाल चलते हैं, दाव सही पड़ता है। पंचायत को अधिकार, मानव संसाधन विकास की कामयाबियों के नुस्खे ऐसे पकड़े हैं कि काम हो न हो, जनसंपर्क और प्रचार प्रसार ऐसा हुआ है मानो मध्यप्रदेश केरल से आगे बढ़ गया है।

मध्यप्रदेश हाई कोर्ट का हाल में एक फैसला आया तो उसमें भी वे सही साबित हुए। इस फैसले से राज्यपाल भाई महावीर की छवि पर बट्टा लगा है, लेकिन राज्य के दो पूर्व मंत्रियों बी.आर.यादव और राजेन्द्रकुमार सिंह को अभी आखिरी राहत नहीं मिली है। गौरतलब है कि हाईकोर्ट ने इन दोनों के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए राज्यपाल की तरफ से दी गई इजाजत को खारिज कर दिया। हाईकोर्ट ने दोनों मंत्रियों की इस दलील को मंजूर कर लिया कि राज्यपाल ऐसी इजाजत नहीं दे सकते। यह अधिकार मंत्रिपरिषद का है और मध्यप्रदेश मंत्रिपरिषद ने ऐसी इजाजत देने के लोकायुक्त के अनुरोध को ठुकरा दिया था। हाईकोर्ट के इस फैसले से मंच पूर्व मंत्रियों से ज्यादा मुख्यमंत्री दिग्विज्य सिंह को फायदा हुआ है।

(राजनीति संवाद परिक्रमा, 28 फरवरी, 1999)

अब ऐसा ही उदाहरण विचारधारात्मक आग्रह वाली पत्रिका से लेकर देखते हैं :

आवरण कथा

शिक्षा में घोल दी नफरत की राजनीति

साजिश हिंदुत्व के नाम पर

22 अक्टूबर को नई दिल्ली में आयोजित राज्यों के शिक्षामंत्रियों के संमेलन में हंगामे की शुरुआत यद्यपि सरस्वती वंदना के मुद्दे को लेकर हुई लेकिन इसके पीछे मुख्य कारण भाजपा सरकार की वह सांप्रदायिक विचारधारा थी जिसे पिछले कुछ वर्षो से बडे सुनियोजित ढंग से भाजपा शासित राज्यों में पाठ्य पुस्तकों के जरिए शिक्षा के क्षेत्र में पहुंचाया जा रहा है। शिक्षामंत्रियों का कहना था कि सरस्वती वंदना की बजाय राष्ट्रगान से संमेलन की शुरुआत होनी चाहिए।.. इस पर टिप्पणी कर रहे हैं राम शिरोमणि शुक्ल...

(समकालीन तीसरी दुनिया, नवम्बर, 1998)

22.3.2 शीर्ष लेखन– आप पाएंगे कि नियतकालीन पत्रिकाओं में समाचार लेखन की तरह ही शीर्ष लेखन भी दैनिक समाचारपत्र से भिन्न होता है। कुछ पत्रिकाओं के इन शीर्षकों को गौर से देंखे और उनके अंदाजे बयां को परखें:

'दिनमान' साप्ताहिक के कुछ शीर्षक

बहुद्देशीय उद्यमों के बेनामी साम्राज्य

डाकखाना समाजवाद : शहर दिल्ली

उपभोक्ता महाशय की खोज

चीन का गंवार साम्यवाद

लालकिले पर रोशन हाथों की दस्तके

कान महोत्सव : सेक्स या सिनेमा

शबाना होने का अर्थ

मानसून अधिवेशन का ऐंटीक्लाइमेक्स

राजनीति संवाद परिक्रमा के कुछ वार्षिकों की बानगी

कहने भर को पटेल (गृहमंत्री लालकृष्ण आडवानी पर आवरण कथा का शीर्षक)

मालवा में वैलेंटाइन डे

अफसर बड़े या सेना?

पत्रिकाओं में मुखपृष्ठ पर आवरण कथा के अलावा अन्य प्रमुख और रोचक समाचारों–फीचरों आदि के शीर्षक दिए जाते हैं। इनके लेखन का भी एक अलग अंदाज होता है।

चर्चो पर हमले : बात का बतंगड़

उत्तरप्रदेश : भयमुक्त हुए कल्याण

पार्टी हाल : संघ पर भारी हुई भाजपा

भ्रष्ट या भ्रष्ट जांच

(राजनीति संवाद परिक्रमा, 31 जनवरी, 1999)

बहुत खुश बहुगुणा

उस लड़की की तलाश

चीन की चालें और हमारी ?

कंबुजिया की खाली कुर्सी * जगत परमाणुमय है

शिल्पी चिह्नों की खोज

(दिनमान, 28 जून–4 जुलाई, 1981)

साझा राजनीति और सरकारें

देश में, विदेश में

- अमेरिका: कितना लोकतांत्रिक?
- अशोक वाजपेयी से साक्षात्कार
- सुपर स्टार का जमाना अब कहां
- वैद्यनाथ आयुर्वेद को नई चुनौती

(देशकाल संवाद, जुलाई, 1996)

बोध प्रश्न–2

1. दैनिक और नियतकालीन समाचार पत्रिकाओं में समाचार लेखन के गुण।
2. नियतकालीन पत्रिकाओं में समाचार लेखन में विचारधारा का कितना प्रभाव होता है?
3. नियतकालीन पत्रिकाओं में किस प्रकार के शीर्षक लिखे जाने चाहिए?
4. समाचार लेखन के समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

22.4 रेडियो समाचार–लेखन

रेडियो के लिए समाचार–लेखन में बहुत–सी ऐसी बाते होतीं है जो अन्य माध्यमों के लिए समाचार–लेखन से बहुत ज्यादा भिन्न नहीं होतीं। जैसे घटना का महत्व, वस्तुपरकता, छः ककारों की उपस्थित, आमुख और विस्तार सभी कुछ रेडियो समाचार–लेखन के लिए भी उतने ही अनिवार्य हैं जितने समाचारपत्र, पत्रिकाओं, संवाद समितियों और टेलीविजन के लिए समाचार–लेखन में होते हैं। ऐसी स्थिति में सवाल यह है कि अगर सब कुछ एक–सा ही है तो रेडियो के लिए समाचार–लेखन पर चर्चा ही क्यों की जाए? इसका उत्तर यह है कि विषयवस्तु भले ही एक है पर माध्यम अलग–अलग है। इसलिए विषय–वस्तु को प्रस्तुत करने की संरचना बदल जाती है, साथ ही भाषा भी परिवर्तित हो जाती है।

समाचारपत्र के लिए समाचार लिखते समय हमारा ध्यान समाचारपत्र में उसके मिलने वाले स्थान की ओर जाता है, लेकिन रेडियो में समाचार–लेखक की चिंता का विषय यह होता है कि इस समाचार को कितना समय मिलेगा। निश्चय ही दृश्य माध्यम और श्रव्य माध्यम का अंतर ही यह है कि अगर एक दिशा और स्थान से शक्ति पाता है तो दूसरा काल और अंतराल पर आधारित है। हालांकि अक्षर का अर्थ है वह जिसका क्षरण न हो और यह भी सामान्य ज्ञान है कि शब्द अक्षरों को मिलाकर बनाया जाता है। लेकिन तथ्य यह है कि लिखा जाने वाला शब्द ही वास्तव में अक्षर हैं और बोला हुआ शब्द नश्वर है, अस्थाई है। शब्दों के इन दो प्रकारों की वजह से ही विभिन्न माध्यमों से समाचार–लेखन में अंतर दिखाई पड़ता है।

रेडियो के समाचारों की संरचना की बात करें तो सबसे पहले तो हमें समाचार के विभिन्न स्रोतों की बात करनी होगी। हालांकि रेडियो–समाचारों के लिए सबसे बड़ा स्रोत तो संवाद–समितियां ही होती हैं। पर सही मायने में रेडियो समाचार का असली स्रोत तो उसके संवाददाता ही हो सकते हैं। अतः यहां कहा जा सकता है कि रेडियो के लिए समाचार तैयार करने के दो तरीके हैं। पहला तो विभिन्न संवाद स्रोतों से आए हुए समाचारों का संपादन और रेडियो के लिए पुनर्लेखन और दूसरा रेडियो के संवाददाता दारा भेजे गए मौखिक संवाद। यह बात और है कि आज से कुछ वर्ष पहले तक रेडियो के संवाददाता भी अपने संवाद लिखकर ही भेजते थे।

रेडियो समाचार लेखन और प्रसारण की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि उसके प्रमुख बुलेटिन में 15 मिनट के भीतर ही दिनभर के प्रमुख समाचार प्रस्तुत करने होते हैं। यह भी इस चुनौती का ही परिणाम है कि समाचार संपादक को भी समाचार प्रस्तुत करने से पहले यही सही–सही आभास नहीं होता कि वह कौन–कौन से समाचार देगा और उन्हें कितना दे पाएगा। प्रमुख और विशेष समाचारों के अलावा हर समाचार समय सीमा को देखते हुए काटा या छोड़ा जा सकता है।

उदाहरण के लिए नीचे कुछ समाचार दिए गए हैं और बाद में उन्हीं समाचारों का प्रस्तुत किया गया अंश भी दिया जा रहा है।

राज/कुमार प्रातः पूल 1 17.9.18

1. अंकटाड

संयुक्त राष्ट्र व्यापार और विकास सम्मेलन–अंकटाड की 1998 की रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्तमान एशियाई आर्थिक संकट अपने विस्तार और प्रभाव की दृष्टि से पिछले तीन दशकों के किसी भी ऐसे संकट से गंभीर है। लेकिन इसके पूरे प्रभाव अभी सामने नहीं आए हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि इससे विश्व के कारोबार और उत्पादन में इस वर्ष लगभग एक प्रतिशत की कमी आई है।

कल नई दिल्ली में जारी एक 260 पृष्ठों की इस रिपोर्ट में विश्व की आर्थिक स्थिति और संभावनाओं का विस्तृत विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि अलग–अलग क्षेत्रों मे इसका अलग– अलग प्रभाव हुआ है लेकिन विकसित देशों के मुकाबले विकासशील देशों पर इसका बहुत ज्यादा असर पड़ा है। कई वर्षों बाद पहली बार विकासशील देशों की विकास दर 2 दशमलव पांच प्रतिशत से भी कम रहेगी, जो 1997 की विकास दर की आधी होगी। चीन पर भी इसका असर पड़ा है, जहां विकास दर 6 प्रतिशत से ऊपर जाने की उम्मीद नहीं है, जबकि इस दशक के शुरू से इसकी औसत विकास दर इससे लगभग दुगनी रही है।

दक्षिण अमेरिका में विकास दर 1997 में पिछली चौथाई शताब्दी में सबसे अच्छी रही, लेकिन अब यह तीन प्रतिशत के आसपास है। अफ्रीका में विकास दर पिछले वर्ष की तीन दशमलव तीन प्रतिशत से अधिक हो सकती है, लेकिन 1996 के मुकाबले कम रहेगी। एशियाई देशों के साथ व्यापार करने वाले अफ्रीकी देशों पर भी एशियाई आर्थिक संकट का सीधा असर पड़ेगा।

विकसित देशों की अर्थ व्यवस्था पर भी इसके प्रभाव के बारे में रिपोर्ट में चिंता की गई है। रिपोर्ट में कहा गया है कि अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार के उतार–चढ़ावों पर नियंत्रण रखने के लिए नई और पुरानी दोनों तरह की तकनीकों को अपनाना होगा।

अंग्रेजी पूल/0526

अब यह देखिए कि प्रात: 8 बजे के समाचार में इसे कैसे लिया गया। अन्य समाचारों और समय सीमा को ध्यान में रखते हुए बुलेटिन संपादक को इस समाचार को बहुत ही संक्षेप में लेना पड़ा।

संयुक्त राष्ट्र व्यापार और विकास सम्मेलन– अंकटाड की 1998 की रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्तमान एशियाई आर्थिक संकट अपने विस्तार और प्रभाव की दृष्टि से पिछले तीन दशकों के किसी भी ऐसे संकट से अधिक गंभीर है। लेकिन इसके पूरे प्रभाव अभी सामने नहीं आए हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि इससे विश्व के कारोबार और उत्पादन में इस वर्ष लगभग एक प्रतिशत की कमी आई है।

कल नई दिल्ली में जारी एक 260 पृष्ठों की इस रिपोर्ट में विश्व की आर्थिक स्थिति और संभावनाओं का विस्तृत विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि अलग–अलग क्षेत्रों में इसका अलग–अलग प्रभाव हुआ है लेकिन विकसित देशों के मुकाबले विकासशील देशों पर इसका बहुत ज्यादा असर पड़ा है।

जहां समाचारपत्र को हर रोज सवेरे समाचार देने होते हैं और इसलिए अपेक्षा करता है कि उसे समाचार पूरे और विस्तार से मिलें वहीं रेडियो को यह सुविधा है कि वह चौबीस घंटे अपने प्रसारण कर सकता है। इन चौबीस घंटों में हर घंटे एक समाचार बुलेटिन तो दिया ही जा सकता है। यही वजह है कि पूल में या विस्तृत समाचार रेडियो में टुकड़े–टुकड़े कर प्रसारित किया जा सकता है।

रेडियो समाचार लेखन का एक प्रमुख हिस्सा 'मुख्य समाचार' लिखना भी होता है। लेकिन समाचारपत्रों में जहां हर समाचार के साथ एक शीर्ष लिखने की आवश्यकता होती है वही रेडियो में पूरा

समाचार बुलेटिन बन जाने या बनाए जाते समय बुलेटिन में शामिल सभी समाचारों में से प्रमुख को चुनकर उनके लिए एक–एक पंक्ति के मुख्य समाचार लिखे जाते हैं। इनका उद्देश्य श्रोताओं को बुलेटिन के आरंभ होते ही यह बताना होता है कि इस बुलेटिन में कौन से महत्वपूर्ण समाचार सुनेंगे। रेडियो के मुख्य समाचार ऐसे शीर्ष हैं जिनका कोई दृश्यात्मक प्रभाव नहीं होता। श्रव्य माध्यम होने की वजह से रेडियो में दिए जाने वाले समाचारों के मुख्य समाचार ऐसे होने चाहिए जो श्रोताओं में पूरे बुलेटिन को सुनने की उत्सुकता बढ़ाए। नीचे रेडियो में प्रसारित कुछ मुख्य समाचार उदाहरण स्वरूप दिए जा रहे हैं–

श्री यशवंत सिन्हा के अनुसार सरकार वित्तीय घाटे को 5.6 प्रतिशत के भीतर रखने के लिए दृढ़ संकल्प।

एक वर्ष के अंदर इंडियन एयरलाइंस और एयर इंडिया के शेयरों का विनिवेश।

ईरान ने अफगान सीमा पर और सैनिक भेजे। और

सहारा कप क्रिकेट प्रतियोगिता में भारत, पाकिस्तान से पराजित।

रेडियो के लिए 'मुख्य समाचार' लिखने के दो तरीके प्रचलित हैं। पहला वह जिसमें वाक्य के अंत में क्रिया पद न होकर या तो संज्ञा होती है या किसी क्रिया का प्रत्यय जैसे ऊपर दिए गए उदाहरणों में किया गया है। दूसरा वह जिसमें हर वाक्य अंत में क्रिया के साथ समाप्त होता है। विस्तार से अध्ययन के लिए 'रेडियो प्रसारण के सिद्धांत' पाठ का अवलोकन करें।

22.5 टेलीविजन समाचार– लेखन

टेलीविजन मुख्यत: दृश्य माध्यम है जो फिल्म की तरह दृश्यों को निश्चित अर्थ और परिप्रेक्ष्य प्रदान करने के लिए शब्दों का प्रयोग करता है। इसलिए टेलीविजन–समाचार लेखन अखबार और रेडियो के लिए समाचार लेखन से काफी भिन्न होता है। रेडियो समाचारों की विश्वसनीयता बढ़ाने के लिए नेताओं और लोगों के वक्तव्यों और संवाददाताओं का हवाला उन्हीं की आवाज में देने का प्रचलन इन दिनों बढ़ रहा है। लेकिन टेलीविज़न में उसके आरंभ से ही दृश्य पर उसकी निर्भरता की वजह से विभिन्न प्रकार की आवाजों और स्वरों की भरमार रही है। किसी समाचार के लिए उपलब्ध दृश्यों और स्वरों की वजह से टेलीविजन के लिए समाचार लिखते समय पत्रकारों को उनका भी खयाल रखना पड़ता है। यही वजह है कि टेलीविजन समाचार लेखन में छ: ककारों का तो समावेश हो जाता है लेकिन विलोम पिरामिड या आमुख जैसी संकल्पनाओं की जगह काफी लचीला ढांचा दिखलाई पड़ सकता है।

एक मायने में यह कहना भी गलत नहीं होगा कि टेलीविजन के समाचार कलम से कम से कम और कैमरे और माइक की मदद से ज्यादा लिखे जाते हैं। कई संचारविदों की राय है कि टेलीविजन संवेदनाओं पर आधारित माध्यम है। इसलिए अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति रेनाल्ड रीगन के प्रेस सलाहकार टेलीविजन के पत्रकारों के लिए अक्सर रीगन के ऐसे चित्र प्रसारित करते थे जिनसे अमेरिकी राष्ट्रपति का मानवीय चेहरा उभर कर आता था। उदाहरण के लिए जो क्लिपिंग्स जारी की जाती थी उनमें रीगन अपन कुत्ते को प्यार से सहलाते हुए या अपनी पत्नी के साथ बगीचे में घूमते हुए या फिर समुद्र को निहारते हुए दिखलाए जाते थे। इस सबके बावजूद समाचार लेखन तो होता ही है।

टेलीविजन समाचार लेखन में शब्दों के साथ दृश्यों का और दृश्यों का शब्दों के साथ सामंजस्य बैठाना पड़ता है। बहुत से दृश्य ऐसे होते हैं जिन्हें समझाना नहीं पड़ता। ऐसे में शब्दों का प्रयोग समाचार से जुड़ी अन्य महत्वपूर्ण सूचनाएं देने के लिए किया जाता है। अधिकतर दृश्य ऐसे होते हो जो घटना

का क्या और कैसे वाला पक्ष तो बतलाते हैं पर कहां, कब और कितना नहीं दिखला पाते। इसलिए टेलीविजन समाचार में शब्द का उपयोग दृश्य की इस कमजोरी को पूरा करने के लिए किया जाता है।

टेलीविज़न समाचार लेखन में भाषा की आवश्यकता सबसे अधिक समाचार में तब पड़ती है जब हम समाचार की कालक्रमबद्धता को तोड़ते हैं। कालक्रम में जो सबसे पहले घटा वह सबसे बाद में आएगा और जो सबसे ताजा है वहीं समाचार के बारे में दर्शक की उत्सुकता को बढ़ाएगा। इस लिहाज से जब हम समाचार के दृश्यों का संपादन करते हैं तो हम पाते हैं कि हम दृश्यों में संगीत बिठाने और अलग– अलग काल खंडों को एक–दूसरे से अलग करने के लिए 'इससे पहले' जैसे वाक्य पदों का प्रयोग करना पड़ता है।

टेलीविजन समाचार में समाचार लेखन के अलावा समाचार वाचन, पीस टू कैमरा, साक्षात्कार आदि भी होते हैं। इसलिए टेलीविजन के लिए लिखते समय रेडियो समाचार लेखन को तरह ही यह ख्याल रखना पड़ता है कि जितने महत्वपूर्ण समाचार के तथ्य और कथ्य है, उतना ही उन्हें बातचीत के अंदाज के निकट और जहां तक संभव हो सके अनौपचारिक भाषा में लिखना भी है। टेलीविजन समाचार लेखन के कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं –

कांग्रेस

भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता डॉ. मुरलीमनोहर जोशी ने कहा है कि सुश्री ममता बनर्जी के कांग्रेस से निकाले जाने के बाद उनकी पार्टी पश्चिम बंगाल कांग्रेस की घटनाओं पर करीब से नजर रखे हुए है। वे कलकत्ता में एक संवाददाता सम्मेलन में बोल रहे थे।

–होल्ड अपसाउंड–

पश्चिम बंगाल में भारतीय जनता पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष श्री तपन सिकंदर ने संकेत दिया है कि उनकी पार्टी सुश्री ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस के साथ गठबंधन करेगी। उन्होंने बताया कि बृहस्पतिवार तक गठबंधन को अंतिम रूप दिया जा सकता है।

उधर पश्चिम बंगाल कांग्रेस की विद्रोही नेता सुश्री ममता बनर्जी ने कलकत्ता में कल घोषणा की कि वे अलग चुनाव चिह्न पर अपनी पार्टी तृण्मूल कांग्रेस के झंडे तले लोकसभा का चुनाव लड़ेंगी। उन्होंने संवाददाताओं को बताया है कि इसके लिए निर्वाचन आयोग को अलग चुनाव चिह्न दिए जाने के वास्ते पहले ही अनुरोध किया जा चुका है।

–होल्ड अपसाउंड–

सुश्री बनर्जी ने बताया कि कांग्रेस से अलग हुए श्री मणिशंकर अय्यर तृणमूल कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार के रूप में लोकसभा चुनाव लड़ेंगे।

(दूरदर्शन समाचार 23.12.97 7.00)

टेलीविज़न समाचारों के आरंभ और अंत में रेडियो की तरह ही मुख्य समाचार प्रसारित किए जाते हैं, जिनका उद्देश्य तो समाचारपत्रों के शीर्षो की तरह श्रोताओं को यह जानकारी देना होता है कि बुलेटिन में कौन–कौन से समाचार प्रमुख हैं। लेकिन जिस प्रकार समाचारपत्रों के पाक शीर्षक की मदद से पूरे समाचारपत्र का जायजा ले पाते हैं उस प्रकार रेडियो और टेलीविजन के मुख्य समाचार श्रोताओं को एक नजर में सारे समाचारों के बारे में जानने का मौका नहीं दे पाते क्योंकि इनमें केवल उस दिन के खास समाचारों का ही जिक्र होता है, हर समाचार का नहीं।

दूरदर्शन से प्रसारित होने वाले समाचार बुलेटिनों के मुख्य समाचार की बानगी नीचे प्रस्तुत है–

मुख्य समाचार

नमस्कार। इस बुलेटिन के मुख्य समाचार –

1. भारतीय जनता पार्टी के नेता मुरलीमनोहर जोशी ने कहा है कि उनकी पार्टी पश्चिम बंगाल कांग्रेस की घटनाओं पर नजर रख रही है।
2. सुश्री ममता बनर्जी अलग चुनाव चिह्न पर पार्टी तृणमूल कांग्रेस के झंडे तले लोकसभा चुनाव लड़ेंगी।
3. कांग्रेस ने कहा कि वह आगामी लोकसभा चुनावों के दौरान उत्तरप्रदेश की सभी पिचासी सीटों पर अपने उम्मीदवार खड़े करेगी।
4. निर्वाचन आयोग मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों के साथ आज चुनाव सम्बन्धी मुद्दों पर विचार विमर्श करेगा।
5. संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने अपने शस्त्र निरीक्षकों को बिना शर्त राष्ट्रपति के आवासीय परिसरों में जाने देने के लिए इराक से अनुरोध किया है।
6. विश्व शतरंज प्रतियोगिता के सेमीफाइनल में आज भारत के विश्वनाथन आनन्द का मुकाबला बेलारूस के बोरिस गेलफांड के साथ होगा।

टेलीविजन के मुख्य समाचार लिखने के भी कई तरीके पिछले दिनों ईजाद किए गए। दूरदर्शन के समाचारों में भी रेडियो की तरह क्रिया रहित वाक्यों का प्रयोग भी किया गया। मुख्य समाचारों के मामले में 'आज तक' ने कई प्रयोग किए और उन्हें दूरदर्शन जैसी औपचारिक भाषा से दूर, तकरीबन विज्ञापन की भाषा के निकट लाकर एक सृजनात्मक प्रयोग किया, जिसे लोगों ने पसंद भी किया। इसके बाद अन्य चैनलों से समाचारों का प्रसारण हुआ तो जी टीवी और स्टार न्यूज ने भी अपनी– अपनी शैली विकसित करने के प्रयास किए। टेलीविजन समाचार का विस्तृत अध्ययन आप 'टेलीविजन के लिए समाचार' तथा टेलीविज़न समाचारों का अनुवाद इकाई में करें।

बोध प्रश्न–2

1. मुद्रित माध्यम रेडियो और टेलीविज़न से कैसे भिन्न है?
2. समाचारपत्रों के लिए समाचार–लेखन पर रेडियो और टेलीविज़न समाचारों का क्या प्रभाव पड़ा है?
3. रेडियो और टेलीविजन के मुख्य समाचार समाचारपत्र के शीर्ष से कैसे भिन्न हैं?
4. टेलीविजन के लिए एक 'समाचार बुलेटिन' तैयार करें।

22.6 समाचारों की भाषा

समाचार अन्य लेखन से अलग दिखलाई पड़ते हैं तो अपने भाषा प्रयोग की वजह से वह अन्य गद्य से भिन्न होते हैं। हालांकि यह प्रचलित धारणा है कि समाचारों की भाषा सरल और स्पष्ट होनी चाहिए और यह सही भी है। लेकिन केवल सरलता और स्पष्टता ही समाचार की भाषा के विशेष गुण नहीं हैं। यह भी माना जाता है कि समाचार लेखन की भाषा भले ही ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचने के लिए लिखी जाती है जिस पर भी समाचारों की भाषा का गौर से विश्लेषण करने पर आप पाएंगे कि वह सामान्य जन के लिए होते हुए भी काफी औपचारिक भाषा होती है।

इसकी भाषा में सरल वाक्य और अधिक लोगों को समझ में आने वाले शब्दों का होना वांछनीय हूं। समाचारों की सुग्राह्यता केवल सरल वाक्य और प्रचलित शब्दों से ही नहींआती, इसके लिए विषय का आसानी से समझ में आना भी अनिवार्य है। लेकिन जाने–पहचाने विषय पर अगर कोई हमें अजनबी शब्दों और दुरूह वाक्य संरचना में बतलाएगा तो भी हमें समझने मे कठिनाई हो सकती है।

समाचार की भाषा के बारे में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि सरल और सुबोध होने के साथ–साथ यह एक मानक भाषा हो। ऐसा इसलिए अनिवार्य है कि अगर प्रांतीयता का समाचार की भाषा में अधिक पुट हुआ तो अखबार को प्रांतीय माना जाएगा राष्ट्रीय नहीं क्योंकि आवश्यक नहीं कि दूसरे प्रांतों में वैसी शब्दावली बोली या समझी जाती है। लेकिन विभिन्न प्रांतीय अखबार भी अमूमन मानक हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं। भले ही प्रांतीय पाठकों को आकर्षित करने और उनके साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए वह कुछ स्तंभ या समाचार का एक पृष्ठ वहीं की भाषा में जैसे भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी आदि में दे देते हैं।

विभिन्न संचार माध्यम समाचारों की भाषा को अपने अनुरूप परिवर्तित करते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि हम रेडियो को ही लें तो हम पाते हैं कि जहां अखबारों में समाचार लिखते समय पत्रकार भाषा के व्याकरण और वाक्य की विभिन्न स्थापित संरचनाओं पर अधिक ध्यान देते हैं वहीं रेडियो और काफी हद तक टेलीविज़न के पत्रकार भाषा के मौखिक स्वरूप पर अधिक ध्यान देते हैं। वाक्य बनाते समय उनका ध्यान इस बात पर होता है कि इसे जब बोला जाएगा तो यह कैसा सुनाई देगा। दृश्य–श्रव्य माध्यमों में तद्भव शब्दों के प्रयोग पर अधिक जोर होता है जबकि समाचारपत्रों में तत्सम शब्द का प्रयोग इसलिए भी अटपटा नहीं लगता कि साक्षर और पढ़े–लिखे लोगों में ऐसे शब्द आसानी से समझे जाते हैं।

समाचारपत्रों के लिए यह आवश्यक है कि वह लोगों, वस्तुओं, स्थलों आदि के नाम देते समय उनकी वर्तनी का विशेष ध्यान रखें। श्रव्य माध्यमों में इन्हीं शब्दों की वर्तनी की जगह उच्चारण का ध्यान रखना जरूरी हो जाता है। इसके अलावा एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि विभिन्न समाचार संस्थाएं या संगठन समाचार देने की अपनी शैली विकसित करते हैं क्योंकि उनकी एक निश्चित पहचान बनती है। विशिष्ट शैली की इसी आवश्यकता के कारण यह संस्थाएं अपना अलग शैली पत्रक (स्टाइल बुक) बनाती हैं।

समाचारपत्रों में समाचार देने के अंदाज उतने स्पष्ट नहीं दिखते थे लेकिन पिछलें दिनों 'आज तक' और बाद में जी. टीवी, बीबीसी और स्टार न्यूज के प्रसारण से यह अंतर बहुत खुलकर दिखलाई पड़ने लगा है।

22.7 सारांश

इस इकाई में हमने समाचार की अवधारणा और समाचारपत्रों के लिए समाचार लेखन की संरचना को जाना। साथ ही हमने नियतकलीन पत्रिकाओं में समाचार लेखन की शैलियों पर भी विचार किया) आधुनिक समाज में रेडियो और कालांतर से टेलीविजन संप्रेषण के सशक्त माध्यम बने और इन्होने समाचारपत्र और पत्रिकाओं का स्थान तो नहीं लिया मगर समाचार लेखन की अपनी शैलितों से इनके समाचार लेखन को खासा प्रभावित किया। अत: इस इकाई में हमने रेडियो और टेलीविजन की माध्यमगत विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए माध्यमों के लिए समाचार लेखन की चर्चा भी की। विभिन्न संचार माध्यमों के लिए समाचार लेखन में अंतर भाषा से ही परिलक्षित होता है।

22.8 शब्दावली

आमुख	–	समाचार का वह आरंभिक अंश जिसमें उसका सारांश दिया गया हो।
शीर्ष	–	समाचार का शीर्षक जो दो से आठ कॉलम तक फैला हो सकता है और जो समाचार के बारे में पहली उत्सुकता पैदा करता है।
नियतकालीन पत्रिकाएं	–	ऐसी तमाम पत्रिकाएं जो साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक अंतराल में प्रकाशित होती है।
विलोम पिरामिड	–	समाचार संरचना जिसमें सबसे महत्वपूर्ण बात को सबसे पहले लिखा जाता है और सबसे कम महत्व वाला तथ्य सबसे बाद में दिया जाता है।
मुख्य समाचार	–	रेडियो और टेलीविजन में समाचार बुलेटिन से पहले उस बुलेटिन की खास–खास खबरें।
श्रव्य माध्यम	–	वह माध्यम जो समाचार या अन्य कार्यक्रमों के लिए केवल मौखिक भाषा पर निर्भर करते हैं।
पीस–टू–कैमरा	–	टीवी कैमरे के सामने खड़े होकर संवाददाता द्वारा बोले गए संवाद का हिस्सा जो समाचार के आरंभ या अंत में दिया जाता है।
साउंड बाइट	–	संवाददाता द्वारा रिकार्ड किए गए वक्तव्य जिन्हें वह अपनी रपट में शामिल करता है।

22.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. जोगलेकर, काशीनाथ गोविन्द, समाचार और संवाददाता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. भट्ट, एस. सी., ब्राडकास्ट जर्नलिज्म : बेसिक प्रिंसिपल, हर आनंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. रत्तू डॉ. कृष्णकुमार, दूरदर्शन : हिन्दी के प्रयोजनमूलक विविध प्रयोग, इना श्री पब्लिकेशन, जयपुर।
4. पातंजलि, डॉ. प्रेमचन्द (संपादन)–मीडिया के पचास वर्ष, राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
5. समाचार संपादन और पृष्ठ सज्जा, डॉ. जैन रमेश, दी यूनिवर्सल बुक डिपो, जयपुर
6. डॉ. जैन रमेश–संवाददाता और समाचार लेखन–राजस्थान प्रकाशन, जयपुर

22.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. समाचारपत्रों के लिए समाचार–लेखन की विशेषताएं बतलाइए।
2. समाचारपत्र और नियतकालीन पत्रिकाओं में समाचार लेखन किस प्रकार भिन्न होता है?
3. रेडियो के लिए समाचार लिखते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
4. टेलीविजन के समाचार रेडियो से किन अर्थो में भिन्न होते हैं?
5. टेलीविजन समाचार लेखन में दृश्यों और भाषा का सम्बन्ध समझाइए।
6. समाचार संपादन करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

इकाई 23 संपादन के रूप में लेखन

23.0 इकाई की रूपरेखा
23.1 उद्देश्य
23.2 प्रस्तावना
23.3 संपादन के रूप में लेखन: कार्य का स्वरूप
23.4 संपादन–संपादकीय दृष्टि
23.4.1 संपादकीय
23.4.2 संपादकीय लेखन: आवश्यक सजगताएं एवं दक्षताएं
23.5 संपादन: भाषा, वर्तनी, शैली
23.6 संपादन:प्रेस कॉपी तैयार करते समय लेखन–कार्य
23.7 शीर्षक
23.8 आमुख (इंट्रो)
23.9 फोटो शीर्षक एवं फोटो परिचय
23.10 पाठकों के पत्रों का संपादन
23.11 प्रश्न–चर्चाएं और संवाद : सूचनाएं एवं आमंत्रण
23.12 संपादन के रूप में लेखन महत्व
23.13 सारांश
23.14 शब्दावली
23.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें
23.16 निबंधात्मक प्रश्न

23.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप,

- संपादकीय दृष्टि के महत्व से परिचित हो जाएंगे,
- संपादन के रूप में लेखन कार्य के स्वरूपों के जानकार हो जाएंगे,
- लेखन कार्य में संपादन कर्मियों के योगदान का आंकलन कर सकेंगे,
- खबरों, लेखों के शीर्षक और इंट्रो की महत्ता से अवगत हो जाएंगे,
- चित्र–परिचय की सामर्थ्य से परिचित हो जाएंगे,
- आप एक योग्य एवं कुशल संपादन कर्मी बन जाएंगे।

23.2 प्रस्तावना

एक अखबार में सीमित रूप में ही खबरें और विचार छप सकते हैं, जबकि मानव–जीवन घटनाओं की बहुलता और विराटता से भरपूर है। ऐसी स्थिति में संपादक की मुख्य जिम्मेदारी खबरों और विचार–सामग्री के ऐसे विवेकपूर्ण चयन की होती है, जो समकालीन सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक

जीवन का प्रतिनिधि चयन हो। चयन की यह दृष्टि संपादन के रूप में व्यक्त होती है। इस चयन को प्रस्तुत करते समय संपादन के रूप में लेखन करना होता है। यही संपादन के रूप में लेखन है।

समकालीन समाज, राष्ट्र और विश्व की क्रियाशीलताओं को उनके महत्व के क्रम में प्रस्तुत करते समय संपादक को मुख्यत: निम्नांकित पक्षों के प्रति सजग रहना होता है–

1. विश्व एव राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण क्रियाशीलताएं
2. पाठकों की जिज्ञासा और आकांक्षा
3. संपादन का स्वधर्म
4. कानूनी संदर्भ एवं मर्यादाएं
5. पाठकों पर पड़ने वाले प्रभाव

स्पष्ट है कि विराट वैविध्यपूर्ण घटनाक्रमों का महत्व भी संपादनकर्त्ता की दृष्टि के अनुरूप दिखाई पड़ता है। अत: संपादन के रूप में लेखन जहां संपादन (संपादन कर्मी) की भाषा–सामर्थ्य, शब्द–कौशल, वाक्–संयम, वाक्–पटुता, विदग्धता और प्रभावोत्पादकता का पैमाना सिद्ध होता है, वहीं ऐसा प्रत्येक लेखन स्वयं संपादन की चयन दृष्टि एवं प्रस्तुति की दृष्टि को भी स्पष्ट करता है। चाहे वह खबरों या लेखों का शीर्षक हो या इंट्रो, फोटो–शीर्षक हो या पाठकीय पत्रों का संपादन, प्रश्न–चर्चा का स्वरूप निर्धारण एवं आमंत्रण हो या संवादों का, सभी में यह सामर्थ्य और दृष्टि व्यक्त होती है। खबर, लेख और फीचर को पाठक बाद में पढ़ता है। उसकी नजर सबसे पहले शीर्षक, इंट्रो और चित्र–परिचय पर जाती है। ये सब मिलकर पत्र–पत्रिकाओं में छपी सामग्री को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं और प्रकाशन का व्यक्तित्व भी निखारते हैं। संपादकीय में तो यह दृष्टि सर्वाधिक होती ही है।

23.3 संपादन के रूप में लेखन– कार्य का स्वरूप

संपादन के रूप में लेखन के मुख्य कार्य निम्नांकित हैं :

1. कॉपी तैयार करना
2. खबरों के शीर्षक देना
3. खबरों के इंट्रो का संपादन और पुनर्लेखन
4. पाठकों, एजेन्टों, विज्ञापनदाताओं आदि के लिए सूचनाएं लिखना
5. संपादकीय
6. लेखों–फीचरों के इंट्रो
7. फोटो शीर्षक एवं फोटो परिचय
8. संपादक के नाम पाठकों के पत्रों का संपादन व टिप्पणी आदि
9. प्रश्न–चर्चाओं एव संवादों का आमंत्रण तथा सूचनाएं।

23.4 संपादन : संपादकीय दृष्टि

संपादन एक कर्म है। प्रत्येक कर्म संकल्प, दृष्टि, जानकारी, प्रशिक्षण और तत्परता की मांग करता है। संपादन के लिए तत्पर व्यक्ति को निष्पक्ष, सजग एवं संतुलित रहने का संकल्प लेकर ही संपादन–कर्म में प्रवृत्त होना उचित है। प्रत्येक संपादन के पीछे एक दृष्टि होती है। यह दृष्टि कॉपी तैयार करते समय भी विद्यमान होती है, शीर्षक देते समय भी, इंट्रो लिखते समय भी, पाठकों के पत्रों

के संपादन के समय भी और संपादकीय के लिए विषय का चयन करते समय भी। भाषा, वर्तनी और शैली के बारे में भी प्रत्येक संपादन की एवं प्रत्येक अखबार की अपनी एक दृष्टि होती है।

श्रेष्ठ संपादन दृष्टि के मुख्य लक्षण हैं – असंकर्णिता, असांप्रदायिकता, निष्पक्षता, निर्वरता, सजगता और संयम। किसी मतवाद–विशेष के प्रति अनुचित राग या द्वेष, पक्षपात या परहेज–ये सब सांप्रदायिकता या गिरोहबाजी के ही रूप हैं। इनसे बच पाना बहुत आत्म संयम की अपेक्षा रखता है। अक्सर राजनैतिक परिवेश में व्याप्त किसी धारणा के प्रति विशेष उत्साह या अनुराग संपादक को प्रभावित या अभिभूत कर सकता है। इसीलिए संपादक की अपनी दृष्टि जितनी प्रशांत व निष्पक्ष होगी, उतना ही वह असांप्रदायिक और असंकर्णि रहकर अखबार चला सकेगा।

23.4.1 संपादकीय

संपादन के रूप में लेखन का मुख्य रूप है संपादकीय। किसी भी अखबार की नीति संपादकीय से ही झलकती है। संपादन–दृष्टि, संपादन की बुद्धि–सामर्थ्य, जानकारी की प्रामाणिकता, दृष्टि की विराटता और प्रखरता तथा अभिव्यक्ति का कौशल, शब्दों पर अधिकार, शैली की विशेषता एवं संप्रेषण की क्षमता–इन सभी गुणों एवं विशिष्टताओं का परिचय देते हैं संपादकीय।

वस्तुत: किसी भी अखबार का अपना विशेष व्यक्तित्व उसके संपादकीय ही गढते हैं।

अच्छे संपादकीय लिखने के लिए वैचारिक प्रखरता, तेजस्विता, निर्भीकता और जानकारी की नवीनता तो चाहिए ही, परन्तु यह सब होते हुए भी कई संपादकीय बोझिल, जटिल, नीरस और थकाऊ–उबाऊ हो जाते हैं। हिंदी के कुछेक बड़े संपादकों के संपादकीय बोझिल व जटिल होते रहे हैं। दूसरी ओर चुस्त, सटीक, पैने और विषय को नया उभार, नई ताजगी देने वाले संपादकीय लिखने वाले भी प्रसिद्ध संपादक हुए हैं। स्वाधीन भारत में सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय के द्वारा 'दिनमान' में लिखे संपादकीय कभी–कभी ('दिनमान' में ही), रघुवीर सहाय के कुछेक संपादकीय, इंदौर की 'नई दुनिया' के संपादकीय तथा 'जनसत्ता' के कुछेक संपादकीय अपने सटीक और चुस्त होने के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। समास– शैली, सटीक और सीधी सहज अभिव्यक्ति तथा संवेदना जगाने वाली दृष्टि श्रेष्ठ संपादकीय के तत्व होते हैं।

कुछ–एक दृष्टांत इसे समझने मे सहायक होंगे। शिक्षाविद् राष्ट्रपति जाकिर हुसैन के निधन पर नए राष्ट्रपति की तलाश के संदर्भ में रघुवीर सहाय के संपादन का आरंभिक अंश–

शून्य में शब्द

'कहावत है कि इतिहास में शून्य का प्रवेश नहीं। किन्तु यथार्थ यह है कि शून्य की जगह कभी–कभी घटना ले लेती है और लोग समझते हैं कि शून्य की क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती तो भी वह पूर्ति होती है, बहुधा एक घटिया परिस्थिति द्वारा और हर बार होती जाती है जब तक कि समाज का ढांचा किसी क्रांतिकारी परिस्थिति के हाथों उलट–पुलट न दिया जाए।

जाकिर साहब के निधन पर राष्ट्रपति पद के लिए जिस फुर्ती से नए नाम की खोज शुरू हुई है वह समाज के ढांचे और राजनैतिक तंत्र के ढांचे की चरमराहट सुनकर पैदा हुई है और अब ध्यान भावी उम्मीदवार की राजनैतिक उपयोगिता पर है, उसके सामाजिक व्यक्तित्व पर उतना नहीं... नए उम्मीदवार की तलाश में कुछ गर्मी इस वजह से है कि सन् 1972 या उसके आसपास केन्द्र में कांग्रेस

का मौरुसी हक खत्म हो जाने का डर बहुत लोगों को है और उस वक्त जो राष्ट्रपति होगा उसे संविधान के भाष्य का ऐतिहासिक अवसर मिलेगा। (दिनमान, 11 मई, 1969)

परमाणु परीक्षण के बाद 15 मई, 1998 को 'नवभारत टाइम्स' (दिल्ली) में प्रकाशित संपादकीय निष्पक्ष और आंकलन और संतुलन की दृष्टि से उल्लेखनीय है –

विस्फोट, प्रतिबंध और देश

तमाम अमीर देशों के विरोध के बावजूद यदि भारत ने दो और परमाणु परीक्षण कर डाले तो इसलिए नहीं कि भारत किसी को अपनी धौंस दिखाना चाहता था, बल्कि ये इसलिए आवश्यक थे कि अपनी शक्ति की पहचान और परीक्षण का जो सिलसिला भारत ने शुरू किया था, उसे यूं ही मंझधार में नहीं छोड़ा जा सकता था। साथ ही यह भी सही है कि यदि भारत परमाणु विस्फोट की पहली श्रृंखला को अधूरा छोड़कर चुप बैठ जाता तो आरोप लगता कि भारत इन देशों की घुड़कियों के आगे झुक गया है। इसलिए भारत ने अंतर्राष्ट्रीय कोहराम की परवाह न करते हुए तीन परमाणु परीक्षणों के बाद बुधवार को दो और परीक्षण कर डाले। यहां पहले तीन परीक्षण भारत की शक्ति के द्योतक थे, वही बाद के दो परीक्षण उसकी परमाणु प्रौद्योगिकी की उन्नति के सूचक हैं। ये परीक्षण जिन्हें सब–किलो टन परीक्षण कहा जा रहा है, मात्र 5 से 10 किलो टन तक के हैं। इन्हें 250 किलोमीटर मारक क्षमता वाले पृथ्वी प्रक्षेपास्त्रों के अस्त्रमुख के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। भारत ने पाँच विस्फोटों के बाद ही इस श्रृंखला के पूर्ण होने की घोषणा की है। साथ ही यह भी संकेत दिया है कि अब भारत व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि के कुछ प्रावधानों को स्वीकार भी कर सकता है।

वैज्ञानिकों का कथन है कि अब भारत सब–क्रिटिकल टैस्ट अर्थात् प्रयोगशाला परीक्षण करने लायक हो गया है इसलिए अब भूमिगत विस्फोटों की जरूरत नहीं है। भारत सी.टी.बी.टी. की इस शर्त को मानने को तैयार है कि वह किसी और देश को परमाणु प्रौद्योगिकी नहीं देगा। लेकिन वह परमाणु के प्रयोगशाला परीक्षण के अधिकार पर समझौता नहीं करना चाहता। वैसे सी.टी.बी.टी. के मौजूदा प्रावधानों के तहत प्रयोगशाला परीक्षण पर किसी तरह की रोक है भी नहीं। अमेरिका ने प्रयोगशाला परीक्षण पर रोक का प्रावधान इसलिए नहीं रखवाया क्योंकि वह स्वयं प्रयोगशाला परीक्षण करते रहने चाहता था। और तब तक यह सुविधा थी भी सिर्फ उसी के पास। आज की तारीख में उसके अलावा भारत ने भी उस स्तर को छू लिया है। सी.टी.बी.टी. पर दस्तखत करने को लेकर आज देश एकमत नहीं है। हालांकि पूर्व प्रधानमंत्री इंद्रकुमार गुजराल का कहना है कि भारत को दस्तखत कर देने चाहिए लेकिन कांग्रेस व भाजपा के भीतर इसे लेकर कुछ संदेह हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि भले ही ऊपर से आज भारत अभिमन्यु की तरह घिरा दिख रहा हो, लेकिन वास्तव में वह एक परमाणु ताकत के रूप में उभरा है। अमेरिका ने भी संकेत दिया है कि अब भारत सी.टी.बी.टी. पर दस्तखत का प्रस्ताव रखता है तो उस पर विचार किया जाना चाहिए। अर्थात् आज वह दुनिया को अपनी शर्तों के आगे झुका सकता है। इसलिए सी.टी.बी.टी. में दस्तखत की हड़बड़ी दिखाने की बजाय इस मुद्दे पर देश में आम राय कायम की जाए, तभी कोई निर्णय होना चाहिए।

इसी प्रकार 'अमर उजाला', इलाहाबाद 11 जून का यह संपादकीय कारगिल में सीमा पर जूझ रहे वीर सैनिकों के प्रति समाज में उमड़ा समर्थन और सहयोग–भाव तथा आदर–भाव का भी स्मरण करता है और कहीं –कहीं शहीद सैनिकों और उनके परिजनों के प्रति बरती गई उस उदासीनता का भी जो वेधक और शर्मनाक है।

जरा आंख में भर लो पानी

सीमा पर घुसपैठियों का मुकाबला करते हुए जितने सैनिक अब तक शहीद हुए हैं उनमें से ज्यादातर शहीदों के प्रति पूरे राष्ट्र ने जिस तरह संमान और कृतज्ञता प्रकट की है, वह सुखद है। उनके शवों को जिस तरह ससंमान उनके गांवों में पहुंचाया गया है और उनके परिजनों को जिस तरह सांत्वना दी गई है, वह तो खैर स्वाभाविक ही है। शहीदों की शवयात्रा पर हजारों लोगों का साथ होना यह प्रमाणित करता है कि सीमा पर दुश्मनों को गोली खाते वक्त वे अकेले जरूर रहे होंगे, लेकिन चलाचली की इस बेला में वे अकेले नहीं है, पूरा देश उनके साथ है। कई जगहों पर सड़कों और संस्थाओं के नाम कारगिल में शहीद हुए सैनिकों के नाम पर रखे गए हैं, जो लोगों में उनकी श्रद्धा और आदर भावना को प्रतिबिंबित करता है। यही नहीं, स्वयं राज्य सरकारें इन शहीदों के परिवारों की मदद के लिए जिस तत्परता के साथ आगे आई हैं, वह भी अत्यंत स्वागत योग्य है। बिहार सरकार ने सीमा पर शहीद होने वाले अपने सैनिकों के लिए दस लाख की राशि मुकर्रर की है, तो पंजाब सरकार ने अपने शहीद सैनिकों के परिजनों को राहत राशि के साथ–साथ अपने राज्य में बसाने की सदिच्छा भी प्रकट की है। हालांकि अपने देश के लिए जान न्यौछावर करते जांबाज सैनिकों के बलिदान की तुलना में उनके परिजनों को दी जाने वाली कोई भी राहत छोटी ही पड़ेगी। दूसरी तरफ, जो सैनिक फिलहाल मोर्चे पर हैं और घुसपैठियों की कड़ी परीक्षा ले रहे हैं, उनके लिए उमड़ा जनसमर्थन इंटरनेट पर सेना की बेवसाइट पर देखा जा सकता है, जिसमें देशवासियों के ही नहीं, अप्रवासी भारतीयों के भी प्यार और समर्थन भरे संदेश हैं।

इन्हीं सुखद –खबरों के बीच कई खबरें शहीद सैनिकों और उनके परिजनों के प्रति बरती गई उदासीनता की भी हैं, जो उतनी ही दुःखद और मर्मातक हैं। कायदे से तो ऐसी एक भी खबर या घटना हमारी शर्मिंदगी के लिए काफी होनी चाहिए। लेकिन यहां तो ऐसी भी कुछ घटनाएं हैं, जहां सीमा पर लड़ते हुए शहीद होने की सूचना सैनिकों के परिजनों को नहीं है और उन्हें इसकी जानकारी अखबारों या अन्य सूचना माध्यमों से मिली है। कही–कहीं तो सरहद से सैनिकों की चिट्ठियों के पीछे–पीछे उनके शव भी गांव आ पहुंचे हैं। जिन्होंने सीमा पर दुश्मन से लड़ते हुए अपनी जान दी है, उन्हें मृत्यु के बाद वह सम्मान और आदर मिलना ही चाहिए, जिसके वे उचित और स्वाभाविक हकदार हैं। उतनी ही दुखद शहीद सैनिकों के उन परिजनों के प्रति बरती गई थोड़ी भी उदासीनता है, जिनका सहारा छिन चुका है और जो मदद या राहत के लिए एक जगह से दूसरी जगह दौड़– धूप कर रहे हैं। देशभक्ति के नजरिए से देखिए, तो कोई भी तमगा या प्रमाणपत्र सीमा पर शहीद हुए इन सैनिकों से बड़ा और कीमती नहीं है, नहीं हो सकता, जिन्होंने मौसम की मार और दुश्मनों की गोलियों का सामना करते हुए अपने प्राण दिए हैं। सात के दशक में प्रदीप के एक गीत ने पूरे देश में देश भक्ति की लौ जगा दी थी और जिसे लता मंगेशकर की आवाज में सुनकर तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू भी रो पड़े थे। उम्मीद करनी चाहिए कि पेरू देश को उस गीत की स्मृति अभी है। यह कम विडंबना नहीं है कि सैनिक हमेशा नहीं, सिर्फ युद्ध भूमि में लड़ते समय याद आते हैं। लेकिन सीमा पर घुसपैठियों के साथ लड़ते और मृत्यु का वरण करते हुए सैनिक भी अगर विस्मृति और अनादर की धुंध में भुला दिए गए, तो भविष्य शायद ही हमें माफ करेगा।

23.4.2 संपादकीय लेखन: आवश्यक सजगताएं व दक्षताएं

संपादकीय लेखन के लिए निम्नांकित सजगताएं एवं दक्षताएं आवश्यक हैं :–

1. जिस विषय पर संपादकीय लिखा जा रहा है, उसका मानवीय जीवन पर क्या–क्या प्रभाव है?
2. विषय के तथ्य क्या हैं और मुख्य तर्क क्या–क्या हैं?
3. निष्कर्ष तथ्यों पर आधारित है या नहीं?
4. संपादकीय में 'डायरेक्टनेस' है या नहीं? वह बात को सीधे ढंग से कह रहा है या नहीं?
5. संपादकीय का आकार संतुलित हो। वाक्य लंबे व जटिल न हों। रूपक और मुहावरे ऐसे न हों जो ज्यादातर पाठक न समझें।
6. संपादकीय विचारोत्तेजक हो पर भड़काऊ नहीं।
7. व्यर्थता, व्यर्थ की तेजी, वाक्–छल एवं अज्ञान से सदा बचा जाए।
8. नितांत अपरिचित विषय में हाथ साफ करने का दुस्साहस न किया जाए। जैसे आइंस्टाइन के मस्तिष्क पर हो रही खोज की जानकारी मिलते ही सापेक्षता–सिद्धान्त की खोज की प्रतिभा को मस्तिष्क की किसी संरचना से जोड़कर दिखाने की उतावली न बरत डाली जाए।
9. जन–हित के नाम पर किसी छोटी सी बात को तूल न दे दिया जाए।
10. अतिरंजना और प्रमाद से बचा जाए।
11. नागरिकों, न्यायालयों तथा विधायिकाओं की कोई भी मानहानि तो संपादकीय के किसी अंश से नहीं हो रही है, इस बारे में सजगता बरती जाए।
12. भारतीय सरकारी गोपनीयता कानून का उल्लंघन न हो, यह भी ध्यान रखा जाए।
13. किसी भी अंश द्वारा न्यायिक प्रशासन में अवरोध या हस्तक्षेप नहीं नजर आना चाहिए।
14. न्यायालयों में विचाराधीन मामलों पर पूरा संयम बरतते हुए लिखा जाए। अपनी कोई राय उस मामले मे न दी जाए। पक्षकारों या साक्षियों के विषय में भी अपनी कोई राय न दी जाए, क्योंकि विचारार्थ मामलों पर किसी प्रकार का पूर्वाग्रह पैदा करते दिखना भी अदालत की अवमानना माना जा सकता है।

बोध प्रश्न–1

1. संपादकीय दृष्टि समूचे अखबार को - चयन, प्रस्तुतीकरण आदि को–कैसे प्रभावित करती है।
2. संपादकीय के गुण बताइए।
3. संपादकीय के रूप में लेखन कार्य के रुप बताइए।
4. किसी एक सामयिक विषय पर संपादकीय लिखिए।

23.5 संपादन: भाषा, वर्तनी, शैली

संपादन के रूप मे लेखन के संदर्भ में भी तथा संपादन की दृष्टि से भी, भाषा, वर्तनी और शैली का विशेष महत्व है। संपादक की भाषा को लेकर अपनी मान्यताएं होती हैं। जैसे, हिंदी के कुछ संपादक, पूर्वी उत्तरप्रदेश एवं बिहार के सामाजिक परिवेश के प्रति विशेष लगाव के कारण उर्दू– बहुल को ही आसान हिन्दी या सरल हिन्दी मानते और कहते हैं। जबकि देश की विविध भाषाओं का ध्यान रखने वाले संपादक को तत्सम तथा तद्भव–प्रधान हिन्दी ही श्रेयष्कर भाषा–दृष्टि प्रतीत होती है।

हाल में एक ही खबर का शीर्षक भिन्न –भिन्न अखबारों में यूं गया –

(क) 'पुंछ में उग्रवादियों ने 15 व्यक्तियों को जीवित जलाया'

(ख) 'आतंकवादियों ने पुंछ में पंद्रह को जिंदा जलाया'

(ग) 'पंद्रह आदमी जिन्दा जला डाले गए पुंछ में'

(घ) 'पुंछ में पन्द्रह को फूंका उग्रवादियों नें

एक की भाषा–दृष्टि में 'जीवित जलाया' प्रयोग प्रभावशाली है तो दूसरे की दृष्टि में 'जिंदा जलाया'। पहला 'व्यक्तियों ' शब्द का प्रयोग करता है तो तीसरा 'आदमी' का। चौथे ने जला डालने के लिए 'फूंका' का प्रयोग असरकारक समझा।

भाषा संबंधी दृष्टि का यह भेद रिपोर्टिंग और संपादकीय में अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है। शीर्षक में तो शब्दों का चयन कई बार स्थान या 'स्पेस' के हिसाब से, यानी 'स्पेस' के दबाव से करना पड़ता है। 'दुश्मन की कोशिश नाकाम' लिखें या 'शत्रु–चेष्टा विफल' –यह कई बार कॉलम और प्वाइंट–साइज पर निर्भर करता है। परन्तु संपादकीय और रिपोर्ट में ऐसा दबाव नहीं होता। वहां तो भाषा–दृष्टि महत्वपूर्ण होती है।

वर्तनी के बारे में संपादक को स्पष्ट नीति स्थिर कर पूरे कार्य –दल को वह नीति बता देनी होती है। नहीं तो कंपोजिंग और प्रूफ रीडिंग के समय झमेले उठ खड़े होते हैं। 'मारे गये' लिखना है या 'मारे गए', 'सन्यास' लिखना है या 'संन्यास', 'लाई है' लिखना है या 'लायी है'. 'अंतरराष्ट्रीय' लिखना है या 'अंतर्राष्ट्रीय', इस सब पर प्राय: संपादकों में दृष्टि–भेद मिलता है। एक मुख्य दृष्टि– भेद तो यह है कि विभक्तियों को संयुक्त रूप में लिखा जाए या विभक्त रूप में। वाराणसी से प्रकाशित 'दैनिक आज' में विभक्तियां संस्कृत की तरह से मिलाकर लिखी जाती हैं। यथा– 'सियाचिन ग्लेशियर पर कब्जे की शत्रु की कोशिश नाकाम' या 'किसी भी हालत में नियंत्रण रेखा में बदलाव बर्दाश्त नहीं'। जबकि अन्य अखबारों में इसे ही 'ग्लेशियर पर कब्जे की शत्रु की' आदि रूप में विभक्तियों को पृथक कर लिखा जाएगा।

इस प्रकार शैली को लेकर भी प्रत्येक समाचारपत्र की अपनी एक नीति होती है। कुछ नीतियां राष्ट्रीय हैं, जैसे उत्तेजक भाषा में न लिखना, झगड़ों मे संप्रदायों के नाम–उल्लेख से यथा संभव बचना आदि। वे भी शैली पर प्रभाव डालती हैं। साथ ही, प्रत्येक पत्र की अपनी एक शैली संबंधी नीति होती है। दैनिक 'जनसत्ता' के संपादक प्रभाष जोशी को 'दोफाड़' जैसे कुछ शब्द इतने प्रिय थे कि वहां के अधिकांश रिपोर्टर इस शब्द का अतिप्रयोग करने लगे।

अखबारों के संपादकीय प्राय: अपनी शैली के लिए ही विशेष चर्चित होते हैं। कुछ अखबारों में तीसरा 'संपादकीय' प्राय: व्यंग्यात्मक शैली में लिखा जाता है। कुछ अखबार सदा विरोधी दल की शैली में संपादकीय लिखते हैं तो कुछ अन्य शासन में सदा गुण ही देखते हैं। शैली से संपादक मंडल की मनोदशा और वैचारिक आग्रहों का भी पता चलता है, विशेष हुनर और दक्षता का भी।

23.6 संपादन : प्रेस कॉपी तैयार करते समय लेखन– कार्य

समाचार–या भेंटवार्ता या फीचर की प्रेस कापी तैयार करते समय संपादन कर्मी को लेखन कार्य भी करना होता है। प्रकाशन के लिए समाचारों मे घटनास्थल का पूरा भौगोलिक विवरण नहीं होता।

दुर्घटना स्थल या युद्ध के मोर्चे के समीपवर्ती ठिकानों का पूरा भौगोलिक विवरण संपादकीय विभाग को जोड़ना पड़ता है, जिससे कि पाठक को आसानी से समझ में आ जाए कि समाचार का भौगोलिक केन्द्र बिन्दु कहां है। एटलस या संदर्भ ग्रंथ देखकर आवश्यक विवरण खबर में शामिल किए जाते हैं।

कारगिल में सशस्त्र घुसपैठ के समाचार अथवा आलेखों के साथ पाकिस्तानी घुसपैठ का इतिहास– 1947 से लेकर आज तक –दिया जाना चाहिए। अगर संवाददाता या स्तंभकार यह जानकारी नहीं दे पाया है तो संपादनकर्मी को यह धर्म निभाना होता है। ऐसी जानकारी बाक्स बनाकर भी दी जा सकती है।

हाल में उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया में नौसैनिक झड़प हुई। इस समाचार में यह जान्नकारी दे देनी चाहिए कि उनमें सन् पचास के दशक से अनबन चली आ रही है।

संवाद समितियों से प्राप्त समाचारों के इंट्रो अक्सर नए सिरे से लिखे जाते हैं जिससे कि समाचार का सारतत्व या सर्वाधिक महत्वपूर्ण या आकर्षक पहलू उसमें आ जाए। शीर्षक बहुत सटीक हो तो भी इंट्रो में पाठक को यह बताना आवश्यक हो जाता है कि हम किस रास्ते से या कहां ले जा रहे हैं। कई बार वाक्य लंबे या जटिल हुए तो उन्हें चुस्त–दुरुस्त बनाने के लिए दुबारा लिखना पड़ता है। प्राप्त समाचार में विस्तार अधिक हो और अनावश्यक विवरण हो, अथवा अखबार में स्थान कम हो तो समाचार का पुनर्लेखन भी करना पड़ता है।

भाषा और प्रस्तुति– शैली की दुर्बोधताओ तथा दोषों को दूर करने के लिए कई बार कोशों तथा संदर्भ–ग्रंथों से सहायता लेनी होती है। उप–संपादकों द्वारा दिए गए शीर्षकों को कभी–कभी मुख्य उप–संपादक को दुबारा बेहतर रूप में या अधिक प्रभावशाली रूप में लिखना होता है। कई बार समाचारपत्र के पृष्ठ तैयार होने के प्रथम चरण में भी ऐसे कुछेक संशोधन करने पड़ जाते हैं। ये सभी कापी तथा पृष्ठ तैयार होते समय किए जाने वाले महत्वपूर्ण लेखन–कार्य हैं जो संपादन के रूप में करने होते हैं। स्थान, तिथि तथा आवश्यक संदर्भ जब–जहां छूट रहे हों, वहां उन्हें भरना और जहां अस्पष्ट हों वहां स्पष्ट करते हुए लिखना आवश्यक होता है।

23.7 शीर्षक

संपादन के रूप में लेखन की दृष्टि से शीर्षकों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वयं संपादकीय के शीर्षकों का बड़ा महत्व है। उदाहरणार्थ वर्ष 1997 में काशी में दो महाविद्यालयीन छात्र गुटों के बीच हुए खून–खराबे पर 'जे वी जी टाइम्स', नई दिल्ली ने शीर्षक दिया– 'मध्य देश का महापतन।' इसमें एक स्थानीय दिख रही हिंसक को उसके व्यापक सांस्कृतिक–सामाजिक संदर्भ में देखने का आग्रह शीर्षक से ही प्रकट है।

इसी प्रकार कारगिल मसले को लेकर भारत का न्यायपूर्ण पक्ष लेता दिख रहा संयुक्त राज्य अमेरिका जिस तरह अपने वरिष्ठ सैनिक दूत को दोनों देशों में भेजकर बीच–बचाव करने का रास्ता बनाने का जुगत करता दिख रहा था, उस पर 29 जून, 1999 को 'अमर उजाला' (इलाहाबाद) ने संपादकीय टिप्पणी का शीर्षक दिया 'अमेरिका ऐसे आता है'। शीर्षक स्वयं यह संकेत कर रहा था कि अमेरिका कैसे जबरन बीच में घुस आता है।

रिपोर्टो के शीर्षक का भी संपादन के रूप में लेखन की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। इस दृष्टि से 'दिनमान' सर्वाधिक अनूठा समाचार–साप्ताहिक रहा है। वर्ष 1980 के आसपास एक अत्यंत दुःखद घटना थी –कुतुब मीनार मे अचानक घबराकर उतरने को विवश बच्चों की दर्दनाक मौतें, जो घबराहट,

जगह की तंगी तथा सांस न ले पाने की स्थिति बन जाने पर हुई थी। कारण था–वर्षो से उन भीतरी सीढ़ियों की मरम्मत व सुधार न होना जिन पर चढ़कर बच्चे और बड़े ऊपर–नीचे जाते–आते थे। 'दिनमान' ने शीर्षक दिया– 'घिसी हुई सीढ़ियों पर मौत। स्वयं शीर्षक बहुत कुछ कह गया।

1981 में गुजरात में मेडिकल कॉलेजों में आरक्षण विरोधी आंदोलन उभरा–फैला। आग्रह था कि आरक्षण से आ रहे छात्र अच्छे डॉक्टर नहीं सिद्ध होंगे, जबकि बिना आरक्षण के डॉक्टर बने हुए लोगों की भी अच्छी–बुरी सभी तरह की किस्में सामने थीं। 'दिनमान' ने 1–7 मार्च, 1981 के अंक में उस रिपोर्ट का शीर्षक दिया– 'अच्छी डॉक्टरी का झूठ'।

इसी प्रकार पाठकीय पत्रों के भी शीर्षकों का बड़ा महत्व है। यह शीर्षक भी संपादनकर्ता द्वारा ही लिखा जाता है। 'दिनमान' के 28 जुलाई– 2 अगस्त, 1980 के अंक में माया त्यागी प्रकरण पर छपी एक चिट्ठी पर संपादक ने शीर्षक दिया– 'औरत की आबरू, हां मगर पुलिस की?' यह शीर्षक स्वयं में मुख्य सवाल हो उठा गया।

संवाददाताओं द्वारा भेजी गई रिपोर्टो तथा पाठकों की चिट्ठियों –सभी में शीर्षक संपादनकर्ता को ही लिखना होता है। शीर्षकों की चुस्ती और संप्रेषणीयता पाठकों को बरबस खींचती है। इसीलिए संपादन के रूप में लेखन के क्षेत्र में शीर्षक–लेखन का अत्यधिक महत्व है। हाल में, 24 जून, 1999 के अंक में 'अमर उजाला' ने प्रथम पृष्ठ पर दूसरी लीड का सुंदर शीर्षक दिया– 'कैबिनेट कहे तो हम सीमा लांघ जाए–सेनाध्यक्ष' यह संक्षिप्त शीर्षक समाचार के सार को सुंदर रूप में सामने रख देता है।

कई बार भावात्मक प्रोत्साहन से भरपूर शीर्षक समयोचित होते हैं। जैसे यह शीर्षक– 'बचे–खुचे घुसपैठियों पर सेना का धावा' इसमें सेना के प्रति भारतीय उत्साह एवं विश्वास भरा पल है कि ज्यादातर घुसपैठिए तो मार ही भगाए गए हैं, बचे–खुचों पर धावा बोल दिया गया है। इसके विपरीत, जहां आलोचनात्मक शीर्षक देना होता है, वहां चुभती भाषा का प्रयोग होता है। जैसे, 'टाइम्स ऑफ इंडिया', लखनऊ के 26 जून 1999 कं अंक में लीड है – 'बी जे पी डमिंग अप वार हिस्टीरिया इन यू पी' (भाजपा उ.प्र. में युद्धोन्माद भड़का रही है)।

इसी प्रकार फीचर्स, भेंट–वार्ताएं तथा लेख देते समय संपादक को सुंदर शीर्षक सोचकर देना होता है जो पाठक को बरबस अपनी ओर खींचले और अभिप्रेत संदेश या पहलू को उभारे।

23.8 आमुख (इंट्रो)

संपादन के रूप में लेखन का एक अन्य विशिष्ट रूप है –इंट्रो। यह अंग्रेजी के 'इंट्रोडक्शन' का संक्षिप्त रूप है। हिन्दी में इसे 'आमुख' कह सकते हैं, परन्तु 'इंट्रो' शब्द हिंदी में भी प्रचलित व लोकप्रिय है। यों तो, प्रत्येक संवाददाता समाचार भेजते समय आरंभ ही 'इंट्रो' से करता है। ये इंट्रो संवाददाता की दृष्टि और रुचि तथा समाचार के स्वरूप व महत्व के अनुरूप तथ्यात्मक हो सकते हैं या भावनात्मक हो सकते हैं या फिर उद्धरणात्मक भी हो सकते हैं। लेकिन कई बार भेजे गए समाचार का महत्व देखकर उसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए संपादन के समय इंट्रो पुन: लिखा जाता है। इसी प्रकार कितने कॉलम में दिया जा रहा है, इसे देखते हुए भी इंट्रो संपादन के समय फिर से लिखना पड़ जाता है। बहुकालमी आमुख चुस्त हों, इस दृष्टि से संपादन के समय उन्हें लिखना आवश्यक हो जाता है।

लेखों और फीचरों के प्रारंभ में या मध्य में विषय–वस्तु और लेखक का परिचय देते हुए इंट्रो लिखना संपादन का महत्वपूर्ण कार्य है। ये इंट्रो प्रभावशाली व आकर्षक होने जरूरी हैं ताकि पाठक में बरबस उस लेख या फीचर को पढने की उमंग उठे। ये इंट्रो संपादक की प्रतिभा, समझ, जानकारी, लगाव और हुनर का परिचय देते हैं।

जनसत्ता 20 मई, 1999 के रविवारी के पहले पृष्ठ पर समाजवाद पर लंबा लेख छपा, जिसका शीर्षक था–'समाजवाद का संकट और समाजवाद की दुविधा'। इस सचित्र आलेख का तीन कॉलम यह इंट्रो बताता है कि भारत में समाजवाद के सफर की चर्चा क्यों आवश्यक है :–

समाज में बुनियादी परिवर्तन की राजनीति का स्वप्न लेकर आया था समाजवाद। लेकिन आज वह किस हाल में है? वह बिखराव और टूट–फूट से ग्रस्त है और जनाधार खो चुका है। उसके एक नेता सांप्रदायिक सत्ताधारियों के साथी हैं और उन्होंने समाजवादियों से एकजुट होने की अपील भी की है। (आचार्य नरेंद्रदेव और लोहिया से शुरू हुए समाजवाद के सफर पर अरुणकुमार त्रिपाठी)

एक दिन पूर्व रविवारी के आकर्षणों की सूचना देते हुए शीर्षक के नीचे था 'आचार्य नरेंद्र– देव और डॉ. राममनोहर लोहिया से शुरू हुआ समाजवाद आज किस हालत में है? समाजवाद के सफर पर अरुणकुमार त्रिपाठी'।

नवभारत टाइम्स (रविवार्ता, 4 जुलाई, 99) में 'अनसुलझी हत्याओं का लंबा सिलसिला' शीर्षक लेख छपा, जिसका सारांश बताने वाला इंट्रो इस प्रकार था–

राजधानी में हर साल सैकड़ों की संख्या में हत्याएं और संदिग्ध मौतें होती हैं। इनमें से बड़ी तादाद में मामले अनसुलझे रह जाते हैं और फाइलों में गुम हो जाते हैं। पुलिस इन मामलों के कारणों और उद्देश्यों तक भी नहीं पहुंच पाती है। पुलिस बस दावे करती रहती है और आश्वासन देती रहती है। दहशत में जीती जनता खुद को बड़ी असहाय महसूस करती है। आखिर क्यों दिल्ली पुलिस इतनी निष्क्रिय और अक्षम साबित हो रही है? इन तमाम पहलुओं के बारे में बता रहे हैं गुलशनराय खत्री।

पत्रिकाओं में भी, चाहे वे समाचार से संबधित हों या पारिवारिक जीवन से, इंट्रो की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। 'राजनीति संवाद परिक्रमा' पाक्षिक (18 जुलाई, 1999) में, 'एक विशेष रपट' का शीर्षक था 'आखिर कैसे टलेंगे चुनाव'। जो बात शीर्षक से ध्वनित नहीं हुई वह इंट्रो में बताई गई। यह इंट्रो न होता तो पाठक को कई पैरा पढने के बाद पता चलता कि लेखक क्या कहना चाहता है। इंट्रो था– 'संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे युद्ध की हालत में भी छह महीनों के भीतर नई लोकसभा का चुनाव टाला जा सके। संविधान तो चुनाव को अनिवार्य बताता है।'

बोध प्रश्न–2

1. कापी तैयार करते समय लेखन कार्य की आवश्यकता बताइए।
2. शीर्षकों के तीन गुण बताइए।
3. इंट्रो जीवंत भाषा में लेख का सार और दिशा बताता है। स्पष्ट कीजिए।

23.9 फोटो शीर्षक एवं फोटो परिचय

समाचारपत्र में फोटो का अनूठा महत्व है। एक तो वह पाठक को माध्यम परिवर्तन का सुख देता है। पाठय के स्थान पर दृश्य माध्यम सामने पाकर पाठक में नया उत्साह जगता है। अखबार की

प्रभावशीलता बढती है। साथ ही, कई बार फोटो थोड़े में वह कह जाते हैं जो लंबा समाचार नहीं कह पाता। ऐसे समय, फोटो परिचय और फोटो – शीर्षकों का महत्व अत्यधिक हो उठता है। संपादन के रूप में यह लेखन भी बहुत मनोयोग और बुद्धिमत्ता से करना होता है। कई बार फोटो– परिचय के रूप में पूरा समाचार–सार ही लिख डाला जाता है। उसके लिए सूझबूझ और जानकारी दोनों ही अपेक्षित हैं। 'टाइम्स ऑफ इंडिया', नई दिल्ली के 24 मई,1999 में प्रथम पृष्ठ पर विश्व क्रिकेट कप में ब्रिस्टल में केन्या के विरुद्ध खेलते हुए सचिन का चौका मारते हुए एक फोटो छापा है और नीचे पूरा समाचास्–सार ही फोटो परिचय के रूप में दिया है–

""Sachin Tendulkar hits a four off the bowling of Thomas Odoyo during the India vs Kenya World cup match at Bristol on Sunday. The master blaster scored 140, while Dravid made 104. India won the match.

21 जून, 1999 की 'जनसत्ता' (नई दिल्ली) में पृष्ठ 2 पर दो फोटो तथा पृष्ठ 4,5, व 6 पर एक–एक फोटो–इस तरह कुल 5 ऐसे फोटो छपे हैं, जिनके परिचय स्वयं में एक पूरा समाचार ही है। पृष्ठ 2 का एक फोटो एक प्रसिद्ध पॉप गायक द्वारा रेडक्रॉस, युनेस्को और नेल्सन मंडेला बाल–कोष के लिए धन एकत्र करने के पेश किए जा रहे कार्यक्रम का है और दूसरा, समलैंगिक आंदोलन के एक समर्थक का अजगर लपेटे फोटो है, जिसके परिचय में समाचार–सार व समाचार– गृहभूमि दोनों ही संक्षेप में दे दिए गए हैं। पृष्ठ 4 का फोटो दिल्ली में कूड़े के ढेर में पड़े मिले मृत नवजात शिशु का है, जिसका यह मार्मिक परिचय संपादक ने दिया है:

'दुनिया में सिर्फ इस कूड़े के ढेर के लिए आया था यह नवजात शिशु। दिल्ली के मंडावली इलाके में सरकारी डिस्पेंसरी के पास कूड़े के एक ढेर में सोमवार सुबह यह मृत मिला है।' (फोटो: प्रेमनाथ पांडेय)

पृष्ठ 5 पर एक सादी वर्दीधारी पुलिसकर्मी द्वारा पैगंबर मोहम्मद के जन्म दिन पर करांची में एक समूह पर आंसू गैस दागने का फोटो–है। इस फोटो का महत्व सुंदर और विडंबनापूर्ण उस फोटो–परिचय के बिना कभी स्पष्ट ही न होता, जो संपादनकर्त्ता ने दिया है। पृष्ठ 7 का फोटो अनेक अखबारों के साथ–साथ जनसत्ता में भी एक शीर्षक सहित छपा है। जनसत्ता में छपे चित्र का परिचय है :–

ओरेनबर्ग सर्कस के टैमर वलेरी फिलातोव अपने पालतू चीते के साथ। वलेरी और उनकी पत्नी युनिया अपने मशहूर सर्कस खानदान की चौथी पीढ़ी है। उनके सर्कस में जानवर बिना पिंजरे के अपने खेल दिखाते हैं। यह तस्वीर सर्कस के नए खेल 'खुला चीता' की है जिसे हाल ही में सर्कस के कार्यक्रम में शामिल किया गया है।' (फोटो : इतार/प्रेट्र)

इस तरह फोटो–शीर्षक एवं फोटो–परिचय संपादन के रूप में लेखन का एक उल्लेखनीय अंग हैं। अनेक पत्र–पत्रिकाएं नववर्ष के आरंभ या वर्ष के अंत मे या फिर दीपावली पर एक या दो पृष्ठ फोटो–फीचर के ही दिया करती हैं। उसमें भी फोटो–परिचय किस तरह लिखा गया है, इसका पाठकों पर विशिष्ट प्रभाव पड़ता है।

23.10 पाठकों के पत्रों का संपादन

प्रत्येक लोकप्रिय पत्र–पत्रिका में पाठकों के पत्र बड़ी संख्या में आते हैं। इनका संपादन बहुत सूझ–बूझ, धीरज, लगन और संयम से करना होता है। पत्रों के चयन में संपादक की दृष्टि का विशेष योगदान होता है। पत्र व्यापक पाठकों का प्रतिनिधित्व कर रहा है, यह दृष्टि रखना ही उत्तम है। साथ ही, मत–वैविध्य भी सामने लाया जाना चाहिए। तीव्र विरोध यदि तर्कपूर्ण ढंग से किया गया हो तो भले ही वह एकमात्र पाठक ने किया हो, उसे अवश्य स्थान देना चाहिए। कई बार, कुछेक पत्रों को प्रकाशित करते समय उनके उत्तर भी संक्षेप में देने पड़ते हैं। ये उत्तर स्पष्ट, सौम्य, शांत एवं पाठकों के प्रति समान–भाव से संपन्न होने चाहिए। छपाई या लिखाई की भूल पर खेद व्यक्त करना, ध्यान दिलाने के लिए आभार जताना तथा किसी विशेष पाठकीय मांग पर उसकी पूर्ति की संभावना होने पर आश्वासन देना और संभावना न होने पर विनम्र स्पष्टीकरण देना आवश्यक है। संपादन के रूप में पाठक के लिए किया जाने वाला यह लेखन विवेक विचारशीलता, विनय और आत्मीयता की भी अपेक्षा रखता है।

23.11 प्रश्नचर्चाएं और संवाद : सूचनाएं एवं आमंत्रण

पत्र–पत्रिका को पाठकों से अधिकाधिक तादात्म्य एवं आत्मीयता स्थापित करने के लिए उन्हें सक्रिय रूप में जोड़ने की पहल करनी होती है। प्रश्न चर्चाएं और संवाद इसके महत्वपूर्ण माध्यम हैं। संवाद तथा प्रश्नचर्चा के लिए विषय का चुनाव, समय, परिवेश, घटना–क्रम और संपादकीय सूझबूझ पर निर्भर है। संवाद और प्रश्न–चर्चा सम्बन्धी सूचनाएं एवं आमंत्रण संपादन के रूप में लेखन का एक उपयोगी प्रकार है। संपादन की ओर से छुट्टी आदि की सूचना तथा पर्व –उत्सव आदि पर स्वागत, बधाई एवं शुभकामनाएं आदि भी पाठकों, विज्ञापनदाताओं एवं एजेंटों से संवाद का ही अंग है। संवाद और प्रश्न–चर्चा इस रिश्ते को अधिक सक्रिय रूप देती है। इनकी सूचना एवं आमंत्रण की भाषा जितनी उत्साहवर्धक, उत्प्रेरक, स्पष्ट और समझाकर लिखी हुई होगी, पाठको की सहभागिता उतनी ही अधिक होगी। विषय का चयन तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ही। जो बात पाठकों के मन की होगी या मन को छू लेगी अथवा मथ देगी, उस पर सर्वाधिक संवाद संभव है।

23.12 संपादन के रूप में लेखन का महत्व

इस इकाई से स्पष्ट है कि संपादन के रूप में लेखन का महत्व पत्र–पत्रिकाओं के लिए अत्यधिक है। चाहे वह अच्छे से अच्छा समाचार हो या फीचर अथवा लेख, उसकी प्रभावशाली प्रस्तुति तभी संभव है, जब कॉपी तैयार करते समय तथा शीर्षक और इंट्रो देते समय संपादन के रूप में लेखन– कार्य पूरी संवेदनशीलता, सजगता, दक्षता और जानकारी के साथ किया गया हो। नहीं तो समाचार या लेख अपेक्षित ध्यान नहीं खींच पाता तथा अपेक्षित प्रभाव–परिणाम भी उत्पन्न नहीं कर पाता। इसी प्रकार फोटो कितना भी सुंदर व अनूठा हो, उसका वैसा ही बढ़िया परिचय उसे जो संपूर्णता एवं प्रभावशीलता देता है, वह बेजोड़ होता है। पाठको को पत्र से जोड़ ने और बांध रखने के लिए तथा सक्रिय रूप में सहभागी बनाने के लिए भी संपादन के रूप में लेखन का निर्णायक महत्व है।

23.13 सारांश

इस इकाई में हमने 'संपादन के रुप में लेखन' के बारे में विस्तार से जाना किसी समाचार के कार्यालय में पहुंचने के बाद से उसका संपादन–कार्य आरंभ होते ही संपादन के रुप में लेखन– कार्य भी साथ–साथ शुरू हो जाता है। प्रेस कॉपी तैयार करते समय यह सावधानी से देखना होता है कि कोई जरूरी जानकारी छूटी तो नहीं या अपर्याप्त तो नहीं। भाषा शैली वर्तनी आदि पर भी दृष्टि रखनी होती है। शीर्षक इंट्रो एवं फोटो - शीर्षक/फोटो परिचय तैयार करते समय संपादन के रूप में लेखन की विशिष्ट भूमिका होती है संपादकीय तो पत्र का व्यक्तित्व ही बनाता है। इस प्रकार संपादन के रुप में लेखन मात्रा में उतना विशद नहीं होता, जितना वह गुणवत्ता और प्रभावोत्पादकता में बड़ा और महत्वपूर्ण होता है यह इस पाठ में उदाहरणों सहित स्पष्ट रुप में दिखाया– समझाया गया है।

23.14 शब्दावली

1. **संपादकीय:** किसी भी समाचारपत्र या पत्रिका में किसी समकालीन विषय या घटना पर अथवा संपादकीय पृष्ठों में दी जा रही विषय–वस्तु पर या कि पत्रिका की आमुख कथा और कुल सामग्री पर लिखी गई वह टिप्पणी जो पाठकों को संबोधित होती है। समाचारपत्रों में संपादकीय प्रमुख समकालीन घटनाओं पर संपादक के विचार/दृष्टिकोण को सामने लाते हैं।
2. **समाचार–**किसी घटना या कार्यक्रम या भाषण का विवरण–स्थान, तिथि, संदर्भ, मुख्य पात्रों और मुख्य क्रियाशीलताओ या घटनाक्रमों या प्रतिपादित बिंदुओं का परिचय देते हुए।
3. **संपादन–**प्राप्त समाचार या लेख आदि को महत्व, उपलब्ध स्थान, पाठकीय रुचि तथा अखबार की नीति के संदर्भ में दुरुस्त कर प्रकाशन के योग्य संवारना–सम्हालना।
4. **कॉपी तैयार करना–**समाचार, लेख, फीचर या अन्य प्रकाश्य सामग्री को प्रकाशन के योग्य तकनीकी दृष्टि से तैयार करना।
5. **शीर्षक–** समाचार या लेख की वस्तु को बताने वाली मुख्य घोषणा या सूचना या लेख आदि के ऊपर लिखी जाती है।
6. **आमुख (इंट्रो)–** परिचयात्मक टिप्पणी। आमुख। अंग्रेजी 'इंट्रोडक्शन' (परिचय) का संक्षिप्त रूप।
7. **फोटो–परिचय/फोटो–शीर्षक–** प्रकाशित हो रहे फोटो के बारे में आवश्यक तथा रोचक जानकारी।

23.15 उपयोगी पुस्तकें

1. संपादन कला–के पी. नारायण, : म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
2. हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम–संपादक वेदप्रताप वैदिक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली– 110002
3. बेसिक जर्नलिज्म : रंगास्वामी पार्थसारथी, मैक्मिलन इंडिया लिमिटेड
4. आर्ट ऑफ एडिटिंग : फ्लायड के. बास्कोट, जैड जेर सिसर्स,ब्रियान एस. ब्रुक्स
5. समाचार संपादन और पृष्ठ सज्जा(द्वितीय संस्करण) : डॉ. रमेश जैन, यूनिवर्सल बुक डिपो, जयपुर
6. फोटो पत्रकारिता–गुलाब कोठारी

23.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. संपादन के रूप मे लेखन से क्या अभिप्राय है?
2. कॉपी तैयार करते समय संपादन के साथ क्या–क्या लेखन–कार्य करना होता है और क्यों?
3. संपादकीय किसी भी समाचारपत्र के व्यक्तित्व का सूचक है – इस पर टिप्पणी लिखिए।
4. लेख और फीचर के इंट्रो का क्या महत्व है? सोदाहरण समझाइए।
5. फोटो के साथ दिया गया एक अच्छा फोटो–शीर्षक पूरा समाचार ही बन जाता है। टिप्पणी कीजिए।
6. संपादन के रूप में लेखन का क्या महत्व है? संक्षेप में स्पष्ट करे
7. पाठक को जोडने में संवादों और प्रश्न–चर्चाओं की क्या भूमिका है? प्रकाश डालें।
8. 'एक अच्छा प्रेस फोटो हजार शब्दों के बराबर होता है' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

NOTES

NOTES

NOTES

विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की सूची

	पाठ्यक्रम का नाम	अवधि
1.	स्नातक उपाधि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
2.	भोजन एवं पोषण में सर्टिफिकेट	6 माह
3.	कम्प्यूटर ज्ञान एवं प्रशिक्षण का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
4.	सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटिंग	6 माह
5.	पंचायती राज प्रोजेक्ट में प्रमाण-पत्र	6 माह
6.	संस्कृति एवं पर्यटन में प्रमाण-पत्र	6 माह
7.	महिलाओं में वैद्यानिक बोध में प्रमाण-पत्र	6 माह
8.	राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति में प्रमाण-पत्र	6 माह
9.	बी.ए.एफ./बी.सी.एफ. (त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम)	1 वर्ष
10.	एम.ए.(अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, हिन्दी)	2 वर्ष
11.	एम.बी.ए.	3 वर्ष
12.	पी.जी.डी.एच.आर.एम.	1 वर्ष
13.	पी.जी.डी.एफ.एम.	1 वर्ष
14.	पी.जी.डी.एम.एम.	1 वर्ष
15.	पी.जी.डी.एल.एल.	1 वर्ष
16.	टी.एच.एम.	1 वर्ष
17.	डी.एन.एच.ई.	1 वर्ष
18.	डी.सी.ओ.	1 वर्ष
19.	डी.एल.एस.	1 वर्ष
20.	डी.सी.सी.टी.	18 माह
21.	बी.जे.(एम.सी.)	1 वर्ष
22.	एम.जे.(एम.सी.)	2 वर्ष
23.	बी.लिब.	1 वर्ष
24.	पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा	1 वर्ष
25.	बी.एड.	2 वर्ष
26.	पी.एच.डी.	3 वर्ष
27.	पी.जी.डी.ई.एस.डी.	1 वर्ष